॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

दयानन्दतिमिरभास्कर।

अर्थात्

सनातनधर्मकल्पतरु।



जिसको
दयानन्दनिर्मितसत्यार्थप्रकाशके खण्डनमें वेद ब्राह्मण
शास्त्र स्मृति पुराण वैद्यकादि प्रमाणोंसे अलंकृत
कर संस्कृत और भाषाटीका सहित।

विद्यावारिधि महोपदेशक भारतधर्ममहामण्डल
पण्डित-ज्वालाप्रसाद मिश्रने निर्माण किया।

[illegible]
खेमराज श्रीकृष्णदासने
मुम्बई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९७१, शके १८३६.



प्रथमावृत्तिकी-भूमिका।

में यह भारतवर्ष विद्याबुद्धिसम्पन्न सर्व गुणोंकी खान था, जिस
शकी कीर्तिपताका भूमण्डलके चारों ओर फहरा रहीथी, उस समय
कीर्तियोंको नेत्रोंसे देखनेके निमित्त अनेक देशोंके यात्री यहां आते
नेत्रोंको सफल कर यहांकी अतुलनीय कीर्तिको अपनी भाषाके ग्रथोंमें
थे, वे ग्रंथ आजतक इस देशकी गुरुता और कीर्तिका स्मरण कराते
समय यह सब विश्व अज्ञानांधकारमें मग्न था, पृथ्वीके अधिकांशमें
पूर्ण होरहीथी उस समय यही देश धर्म आस्तिकता और भक्ति तथा
पूर्ण प्रकाशसे जगमगा रहाथा, उस समय इस देशमेंही ज्ञान, विज्ञान,
ित, ज्योतिष, भेषजतत्त्व, काव्य, पुराण, साहित्य, धर्मादि विषयोंने
कीथी. कश्यप मरीचि विश्वामित्रादि जहांके ऋषि, व्यास वाल्मीकि-
प्रभृति जहांके कवि, पाणिनी पतञ्जलि आदि जहांके वैयाकरण,
सुश्रुत, चरक आदि जहांके वैद्य, कपिल, कणाद और गौतमप्रभृति
स्त्राकार, नारद मनु बृहस्पति आदि जहांके धर्मोपदेष्टा, वसिष्ठ, आर्य-
शरादि जहांके ज्योतिर्विद्, शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, वल्लभाचार्य
हांके धर्मप्रचारक, सायनाचार्य, याज्ञदेव, मल्लिनाथप्रभृति जहांके भाष्य-
मरसिंह, महेश्वर प्रभृति जिस देशके कोपकार होगये हैं, ऐसा एक देश
रतही है, जिस समय यह सब सामग्री विद्यमान थी, उस समय इस
नातन वैदिक धर्म पूर्णरूपसे प्रचलित था, नरपति ऋषि मुनियोंके
पुण्य क्षेत्र, पञ्च यज्ञसे गृहस्थियोंके घर, और आरण्यक पाठसे काननमें
प्रवाह बहरहाथा, सनातन धर्मकी महिमा और भक्ति सबके अन्तः-
खिल रहीथी.

न्तु समयकीभी क्या अलौकिक महिमा है कि, सूर्यमंडलको आकाशमें
मध्याह्न समय महातीक्ष्ण होकर फिर नीचेको उतरना पडता है, ठीक
दशा इस देशकी हुई, जो सबका शिरमौर था वह पराधीनताके भारसे महा
त होरहा है, भारतके उपरान्त यह देश विदेशी चढाइयोंसे ऐसा गारत होकर
हुआ है, कि निस्सार बलहीन होकर आलस्यका भंडार होगया है,
ी विद्या बुद्धि सब विदेशीय शिक्षामें लय होगई है, धर्म कर्ममें असावधानी
है, संस्कृत विद्या जो द्विजमात्रका आधार थी, उसके शब्दभी अब शुद्ध नहीं

उच्चारण होते, इस प्रकार धर्मविप्लव होनेसे अनेक मत भेदभी होगये, जिस पुरुषको कुछभी सहायता मिली झट उसने अपना नवीन पंथ कल्पना कर शब्द-ब्रह्मकी कल्पना करली, और शिष्योंको उपदेश देना प्रारम्भ किया, इसका फल इस देशमें यह हुआ कि, फूटका वृक्ष उत्पन्न होकर सत् धर्ममें बाधा पड़ने लगी, इन नवीन मतोंसे तौ हानि होरही थी, कि, इसी समय दयानन्दसरस्वतीनेभी एक अपना मत चलाकर लोपलीला करनी प्रारम्भ की, इस मतमें भक्ति, भाव, देवपूजा, अवतार, श्राद्ध, पाप दूर होना, तीर्थ, माहात्म्य आदिका निषेध करके जपतक जाति आचार विचार मेटकर, कर्मसे ब्राह्मणादि वर्ण, नियोग प्रचार, स्त्रीके एकादश पति करनेकी विधि, शूद्रके हाथका भोजन करनेकी आज्ञा देकर वेदमें रेल, तार, कमेटी आदिका वर्णन कर सब कुछ वेदके नामसेही लिखा गया है इससे संस्कृतके न जाननेवाले सनातन धर्मसे हीन हो उनकी व्याख्या सुन अपनी महान् पुरुषोंकी गति त्याग, इस नाममात्रकी व्याख्यामें मग्न ही जाते हैं, इनके संघट्टका नाम आर्यसमाज है, उक्त संन्यासीजीके बनाये हुए ग्रन्थोंमें दूसरी बारका छपाहुआ सत्यार्थप्रकाशही इस मतकी मूल है, स्वामीजीके अनुयायी इसे पत्थरकी लकीर समझते, तथा इसका पाठ करते और कोई कोइ इसकी कथा भी कहाते हैं, इसका पाठ होता है, शास्त्रार्थमें उसीके प्रमाणभी देते हैं, यहभी गुप्त न रहे कि, सत्यार्थप्रकाश दो हैं, एक पुराना एक नया पुराने सत्यार्थप्रकाशको स्वामीजीने कह दियाथा कि, इस पुस्तकमें मृतक पुरुषोंका श्राद्ध और पशुयज्ञ छापेवालोंकी भूलसे छपगया है, इस लिये अब यह दूसरा सत्यार्थप्रकाश तैयार किया जाता है, इसमें जो कुछ कहा है, वह बहुत कुछ समझकर वेदानुसार ही कहा है, और सज्जनोंको माननीय है, यद्यपि पुराने सत्यार्थप्रकाशमें उक्त दो बातें छोडकर और सब स्वामीजीके कथनानुसार ठीक हैं, यह स्पष्ट है तथापि दूसरी बारके सत्यार्थप्रकाशपर वे और उनके अनुयायी अधिक श्रद्धा रखते हैं, कि जो कुछ इसमें हैं, वह हमारे निमित्त ओषधी है, बस हमको पहले उस ओषधीके गुणदोषकी परीक्षा करनी अवश्य है, कि जो कुछ उसमें लिखा है वह यथार्थ है वा नहीं, जहांतक मेरी बुद्धिकी पहुँच है और विचार कर देखा जाता है तौ सत्यार्थप्रकाश वेद शास्त्र प्रतिकूल, परस्पर विरुद्ध बातोंसे भरा हुआ दीखता है, वेदके नामसे लाल बाग दिखाया गया है और संस्कृतानभिज्ञोंको वशीभूत करनेको शंबरकी माया दिखाई गई है इसके अनुवर्ती बहुतसे नवशिक्षितोंको होते देखकर हमको इसकी समीक्षाकी आवश्यकता हुई, कारण कि इसकी समीक्षासेभी देशका उपकार होकर सनातन धर्मकी वृद्धि होगी और इसको पढकर मनुष्य इस कपोलकल्पित मतसे बचेंगे, यदि स्वामीजी जीवित

होते तौ इसका खंडन बनानेकी आवश्यकता: नहीं थी, कदाचित् इसको स्वामीजी बदलकर और छापेवालोंके शिर इसकाभी कलंक डालकर तीस सत्यार्थप्रकाश नवीन तयार करते, * परन्तु यह पुस्तक सम्वत् १९३९ स्वामीजीने पुनः शोधकर छपवाया, और उन्नीससौ चालीसमें शरीर गया जो कि, यह मत स्वामीजीका स्थापित किया हुआ है, इस कारण ग्रन्थोंको छोडकर उन्हींके ग्रंथोंकी समालोचना करनी उचित है, सो इस पुस्तकमें स्वामीजीके कपोलकल्पित ग्रंथोंको प्राचीन ग्रंथोंसे मिलान कर सज्जनोंके सामने प्रगट करताहूं, इससे बुद्धिमान् सत्यासत्यका निर्णय कर सकेंगे, सत्यार्थप्रकाशके दो भाग हैं, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध पूर्वार्द्धके दश समुल्लासोंमें स्वामीजीने अपने मन्तव्य प्रकाशित कर नवीन मतकी नीम डाली है और उत्तरार्द्धके चार समुल्लासोंमें आर्यावर्तीय मतोंका खंडन किया है, जैन, बौद्ध, चार्वाक और ईसाई तथा यवनोंकाभी खंडन किया है, इनके खंडनसे हमारा प्रयोजन नहीं है, हमको प्रथम उन्हींके स्थापित मतकी परीक्षा करनी है जिसको वह वेदानुसार बतलाकर मनुष्योंको भ्रममें डालते हैं, खंडन करनेसे मेरा प्रयोजन द्वेष वा शत्रुता अथवा किसीके जी दुखानेसे नहीं है, किन्तु इसके लिखनेसे केवल यही प्रयोजन है कि मनुष्योंको सत्यासत्यका ज्ञान होकर स्वामीजीके ग्रन्थोंका वृत्तान्त विदित होजाय कि उनके अनुसार वर्तनेसे हम यथार्थमें धर्मपथमें स्थित हैं वा नहीं ॥

इसमें जो पृष्ठ पंक्ति लिखी गई हैं यह दूसरी बारके छपे हुए सत्यार्थप्रकाशके अनुसार हैं सत्यार्थप्रकाश कईवार छपा है उसमें भी चाहे न मिलें परन्तु आशय तौ मिलैहींगे यदि उस पृष्ठमें न होगा तो अगलेमें मिलैगा।

मैंने जो इस ग्रंथमें प्रमाण लिखे हैं वे उन्हीं ग्रंथोंके हैं जिनको स्वामीजीने माना और अपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है और मंत्रोंके अर्थ प्राचीन भाष्यानुसार लिखे हैं सनातन धर्मावलंबियोंको इससे महालाभकी संभावना है, क्योंकि, सम्पूर्ण धर्मविषय वेदसे भाष्यसहित प्रतिपादन किये हैं जिससे किसी प्रकारकी भ्रान्ति नहीं रहती, धर्मकी प्राप्ति और पाखण्डकी निवृत्तिही इस ग्रंथका उद्देश्य है ॥

आर्यसमाजियोंसे विशेष प्रार्थना है कि, जब वे इस पुस्तकको देखने बैठें तो पक्षपात छोडकर विचारें यदि बकरेकी तीन टांगकाही हठ है तो सत्य सत्यका निर्णय नहीं होसकेगा और फिर किसीके समझाये कुछ फल न होगा क्योंकि

* यह बात स्वामीजीके चेलोंने स्वीकार की है, जो दिव्य थीटर समझे जाते हैं उनका कहना है, यह बात संभव थी ।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥ १ ॥

अर्थात् अज्ञानी सुखसे और विशेष ज्ञानी महासुखसे समझाया जासका है परन्तु ज्ञानके लेशसे दुर्विदग्ध मनुष्यको ब्रह्माजीभी नहीं समझा सक्ते ॥

देशोपकारके निमित्त यह पुस्तक निर्मित्त कर इसका सबप्रकारका सत्त्व वैश्य-वंशदिवाकर सद्गुणाकर वेदशास्त्रप्रवर्तक परोपकारनिरत "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यंत्रालयाधिपति सेठजी खेमराजजी श्रीकृष्णदासको समर्पण करदिया है ॥

पाठक महाशयोंसे निवेदन है कि-यदि इसमें कहीं भूल रहगई हो तो कृपाकर सूचित करदें उचित होगी तो पुनरावृत्तिमें बनादी जायगी आपको लाभ होनेसे मेरा परिश्रम सफल होगा ॥

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, (मोहल्ला दीनदारपुरा) मुरादाबाद.



द्वितीय तृतीय और चतुर्थ आवृत्तिकी भूमिका ।



गौरीपुत्रं गणाधीशं भक्तानामभयप्रदम् ।
वन्देहं कामदं देवमखिलानन्ददायकम् ॥

इस समय यह वार्ता किसीसे छिपी नहीं है कि, सनातनधर्ममें चारों वर्णोंव विशेष ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है, इस समय केवल कथाश्रवणसेही का नहीं सफल होगा, किन्तु अब विशेष परिश्रमकी आवश्यकता है, अपने धर्मके गृ अभिप्रायोंकी व्याख्या विना श्रवण किये, विना विचारे, बुद्धिमान् संस्कृत विद्वानोंकी संगति विना किये, धर्मसे साधारण पुरुषोंके विश्वासका कुछ शिथि हो जाना कोई आश्चर्य नहीं है. इस समय अनेक पन्थ समाजादि वेद पुस्त हाथमें लिये टट्टीकी ओटमें साधारण पुरुषोंका आखेट करते हैं चौहद हां आदिमें मोरछल लिये वेद २ पुकारते भोलेभाले लोगोंको वेदके नामसे मिथ्य उपदेश देते हैं, जिसे सुनकर संस्कृतानभिज्ञ मनुष्योंके हृदयमें अधर्मका संचा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, इस समय सबसे अधिक सनातनधर्मका श एक नवीन पंथ आर्य्यसमाज खडा हुआ है जो साधारण मनुष्योंके चित्तमें अस न्तोपका अंकुर उत्पन्न कर गली बाजारोंमें वेद २ पुकार करता सनातनधर्मसे शत्रुतामें कोई यत्न उठा नहीं रखता है, व्यास महर्षि जैमिनि आदि सम्पू आचार्योंके ग्रन्थ वेदविरुद्ध बतलाकर श्राद्ध, तर्पण, तीर्थ, पापनाशक मन्त्र स्तुति प्रार्थनाके वाक्योंके अर्थोंका उलट पुलट करता, मिथ्या वाक्योंसे सनातन धर्मप बडे २ आक्षेप करता हुआ यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है, इस नवीन पंथके स्थाप करनेवाले स्वामी दयानंद नामक संन्यासी हुए हैं, इन्होंने लोकोंको भ्रममें डालनेक एक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका बनाई है तथा यजुर्वेद और कुछ ऋग्वेदका भाष्य किया है, नवीन आर्य इन्हीं ग्रन्थोंके सहारे बडी उछलकूद कर हैं और उन्हीं ग्रन्थोंको हाथमें लिये व्याख्यान करते हैं, परन्तु यदि उनके ग्रन्थ विचारके साथ देखेजाय तो उनकी पोल और मिथ्या प्रपंच सब खुल जाता है इस कारण उनके ग्रन्थोंकी असत्यता सर्व साधारणमें प्रगट होनेसे सनातन धर्मि योंको बहुत बडा लाभ होगा, इस कारण मैंने यह पुस्तक निर्माण कर सर्व साधार णके दृष्टि गोचर की जिसके द्वारा बहुत कुछ उपकार हुआ और पुस्तककी द्विती यावृत्ति छापनेकी आवश्यकता हुई ॥

यद्यपि अब समाजी यह भी कहने लगे हैं, कि स्वामीजीका कथन सर्वथा हमको स्वीकार नहीं, और सत्यार्थप्रकाशपर श्रद्धा न रखकर कहते हैं, हम वेदकोही मानते हैं, परन्तु समाजी या समाजी चालढालके मनुष्य नई चमकसे चकाचौंधमें आकर जितने ग्रन्थ निर्माण करते हैं या कहीं कुछ प्रमाण का विचार करते हैं तो वही दयानंदजीका किया अर्थ करते हैं, इस कारण सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्यके विरुद्ध अर्थ खण्डन करनेसे उन सब नई रोशनीवालोंका लेख खंडन होजायगा इसी कारण इस ग्रन्थको निर्माण कर विद्वानोंके सन्मुख उपस्थित किया ॥

प्रथमावृत्तिमें जो कहीं पृष्ठ पंक्ति आदिकी अशुद्धि रहगई थी वह दूर करके शुद्ध करदी है और जो कोई विषय संक्षेप लिखाथा आवश्यकतानुसार कोई २ अधिक वेदादिका प्रमाण देकर दृढ करदिया गया, जिससे पाठकोंको उन प्रमाणोंको अवलोकन कर विशेष सन्तोषकी प्रीति होगी ॥

दयानन्दीय वेद कैसा है उसके अर्थमें कैसा गौरव और क्या अपूर्वता है इस बातके दिखानेको दयानन्दीय वेदका थोडासा नमूना पाठकोंके अवलोकनार्थ इसी ग्रन्थके पीछे लिखदिया है, जिनके देखनेसे पाठकोंको विदित होजायगा कि, दयानंदीय वेदमें कैसी शिक्षा और कैसा अर्थ है, तथा दयानन्दकृत वेदभाष्यकी पोल दिखानेके लिये उसके पृष्ठ पंक्तिभी लिखदिये हैं, पाठक महाशय एक बार उन वार्ताओंको समाजियोंसे पूछ तो देखें कि,आपके वेदमें ऐसी २ निर्लज्जादि वार्ता भी लिख रक्खी है ॥

वेदका सत्य अर्थ सब पर प्रकाशित होजाय इसी कारण श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालयमें भाषाटीका कर यजुर्वेद छपायाहै इसमें पदार्थ भावार्थ तत्त्वविचार विधि सब कुछ प्रमाणों सहित लिखी है टिप्पणीमें दयानन्दीय अर्थकी पोल भी कहीं २ खोली है. १७००पृष्ठमें ग्रन्थ पूर्ण हुआ है सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये कीमत १२] रक्खीहै॥ दयानन्द ति० भा० में १८८४ के सत्यार्थप्रकाशकी पृष्ठ पंक्तिही मुख्य रहनेदी है परन्तु अब सत्यार्थप्रकाशमें बहुत कुछ फेर फार कियाजाता है × [जिसमें समाजियोंका कोई स्वत्व नहीं है] उस बातको दिखानेके लिये भी इस चतुर्थावृत्तिमें टिप्पणी दी है और सन १८८४ के सत्यार्थ प्रकाशके पृ० पं० लिखकर छपे सत्यार्थप्रकाशका विषय लिखकर उसके पीछे इस समय सन १९१२ ग्यारहवीं बारके छपे सत्यार्थप्रकाशकी पृष्ठ पंक्ति भी लिखी है जिससे पाठकोंको विदित होजाय कि,

---

× ग्यारहवीं बारतकमें फेरफार हुआ है।

अबके सत्यार्थप्रकाशमें वह विषय कहां है और किस प्रकार फेरफार किया गया है परन्तु शास्त्रार्थके लिये १८८४ काही सत्यार्थप्रकाश सन्मुख रखना उचित है ॥

हर्षका विषय है कि, समाजी लोग भी अब दयानन्दजीकी मिथ्या उक्तियोंको समझने लगे हैं और शास्त्रार्थके समय सत्यार्थप्रकाश और उनके वेदभाष्य तथा उनकी आप्ततापर शास्त्रार्थ करनेसे सर्वथा नटजाते हैं, और उनके भाष्यादिका नाम-भी नहीं लेते । हमारा उद्देश्य भी यही था कि, स्वामीजीके मिथ्यात्वका ज्ञान सर्व साधारणको हो जाय ॥

फूटकी भी अब आर्यसमाजमें कमी नहीं है घास पार्टी मांसपार्टीवालोंकी कटूक्तियोंकी बौछार तो थी ही पर अब गुरुकुलके विरोधमें अनेक पार्टीकी लीलाभी चलरहीहै अबदुलगफूर (धर्मपाल) पोल खोल रहेहैं और परस्पर आक्षेपोंकी कमी नहीं है, सत्य है प्रपंच खुले विना नहीं रहता ॥

जो कि दितिपुत्र पुरोहितकी समान किसी २ ने विरुद्ध पक्षका अवलम्बन कर इस ग्रंथपर आक्षेप किये, अन्तमें वह आक्षेप उन्हींपर पडे कारण कि, उन लोगोंने दयानन्दके सिद्धान्तोंकाभी अतिक्रमण करदिया इससे वह ग्रंथ दयानन्दियोंको मान्य वा प्रमाण कैसे हो सक हैं, तोभी उनके उत्तरमें धर्मदिवाकर भास्कराभास-निवारणादि ग्रंथ बनचुके हैं, और उनकी समालोचना टिप्पणीमें इस ग्रंथमें भी, अबकी बार कुछ विस्तारसे लिखी है और कहीं ग्रन्थमें वृद्धि भी की है और जब कि इनके महान् पंडित भीमसेनजी सनातन धर्मपर आरूढ होगये और दयानन्दकी पोल खोल रहे हैं तब उनके चेलोंकी स्थिति कबतक रह सकेगी, प्रयोजन समाप्त होते ही रंग बदलेगा इसीसे आधुनिकग्रंथोंके विशेष खंडनकी आवश्यकता नहीं है-

इस समय मैं वेदभाष्य भूमिकाकी समीक्षामें लगा हुआ हूं इसके समाप्त होतेही सनातन धर्म प्रचार पाखण्डमतकुठार ग्रंथ प्रकाशित होगा.

इस अवसरपर हम धर्मसभाओंके कर्मचारी तथा पंडितमंडलीका ध्यान भी इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि, अब आपको आलस्य दूर करना चाहिये जिस प्रकार वार्षिकोत्सवमें उत्साह करते हो इसी प्रकार संवत्सरके मध्यमें भी तो कुछ कार्य्यवाही किया कीजिये यह सभाओंकी कार्यवाही जितनी यथायोग्य कीजायगी, उतनीही अच्छी है नहीं तो विचार लीजिये कि हमारे आपके देखते नवशिक्षितमण्डली कुसंस्कारके कारण नास्तिक बनजायगी अभी सनातन धर्मके उपदेशक बहुत कम हैं, जैसे २ कुतर्की प्रायः सर्वत्र प्रश्न कर घूमतेहुए भोलेभाले लोगोंको बहकाते हैं, वैसे उनके उत्तर देनेवाले सर्वत्र नहीं मिलते, माना कि, इस समय पण्डितजीकी उपाध्यायजीकी यजमान बडी प्रतिष्ठा करते हैं, आपको कुछ आवश्यकता नहीं परंतु यजमानके पुत्रका आपके चरणोंमें तथा आपकी सन्तानमें

शतांश भाग भी नहीं है, इस कारण जैसे प्रतिदिन दूसरे कार्य करते हो इसी प्रकार दश पांच मिनट इस धर्मकार्यमें भी तो व्यय कीजिये, जिससे धर्मकी उन्नति हो, यही कारण है कि, सभा स्थापित होकर थोडेही दिनोंमें शिथिल होजाती है, कोई कोई सभा नाममात्रकी हैं अपने कार्यको उद्योगके साथ सफल करना चाहिये और केवल व्याख्यानही देकर कृतार्थ न हूजिये, कोई कामभी तो करना चाहिये द्विजातियोंका संस्कार, संध्या पञ्च यज्ञका प्रचार, पुस्तकालय, पाठशाला आदि इन श्रेष्ठ देशहितैषी कार्योंका संपादन करनेसे आप कुछ उन्नति लाभ कर सकेंगे, यह छोटेसे बडे तक सब कोई करसकतेहैं, अब किसीके भरोसे न बैठिये, अपना काम आप सँभालिये, कारण कि, जिनके किये कुछ होसकता है वह कभी इस ओर झुककर नहीं पूछते कि, अमुक सभाकी क्या दशा है, क्या कार्यवाही है, किस बातका अभाव है, उच्च श्रेणीके पुरुषोंको उचित है कि, सभाओंका वृत्तान्त पूछकर उनके सुधारका प्रबन्ध करें, तभी कुछ उन्नति होसकती है अहंकार त्यागकर नम्रताके साथ सभाकी उन्नति हो सकती है, वह कार्यवाही करो जिसमें दूसरोंके उदाहरण बनो अभीतक इस हमारे पश्चिमोत्तरप्रदेशमें सभाओंकी बडी शिथिलता और न्यूनता है, महामण्डलसेभी कोई आशा नहीं है पण्डित और महोपदेशक गण कहीं २ सभाओंमें पधारकर शास्त्रोंके मर्म सुनाकर जगाते रहते हैं, परन्तु सभासद और उन २ नगरोंके विद्वान् जब कटिबद्ध होंगे तब बहुत शीघ्र कार्य सफल होगा ॥ प्रिय पाठकगण धर्मसभाओंकी उन्नतिमें कटिबद्ध हूजिये, समाजियोंके उत्तर देनेको यह पुस्तक बहुत है तथा और भी अनेक विद्वानोंके निर्मित किये ग्रन्थ हैं, आपके आलस्य त्यागकी देर है, सामग्री जयकी सब प्रस्तुत है, इस ग्रन्थको प्रेमसे अवलोकन कर लाभ उठाइये इतनेमेंही मेरा परिश्रम सफल है ॥

आपका–ज्वालाप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

दयानन्दतिमिरभास्करस्य सूचीपत्रम् ।

इति अनुक्रमणिका समाप्ता ।

जिन २ ग्रन्थोंका इसमें वर्णन है उनके नाम.

वेदे

मंत्रभाग

ऋक् यजुः साम अथर्व.

ब्राह्मणभाग

ऐतरेय शतपथ ताण्ड्य गोपथ.

उपनिषद्

ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तैत्तिरीय बृहदारण्यक छान्दोग्य.

धर्मशास्त्र

याज्ञवल्क्य. मनुस्मृति.

वेदांग

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष,

दर्शन

न्याय २ योग सांख्य मीमांसा वेदान्त.

इतिहास

महाभारत

पुराण

भागवतादिअष्टादश,

रामायण

वाल्मीकि,

वैद्यक

चरक; सुश्रुत

१ जैसी गंगरा गैह सुलतानैं सिंह

1 2 3 4

इति
दयानन्दतिमिरभास्करस्य
अनुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीः ॥

अथ दयानन्दतिमिरभास्करः।

ॐ यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥

हरिः ॐ

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु माम्, अवतु वक्तारम्, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ (तैत्तरी० व०)

अर्थ-प्राणवृत्ति और दिवसका अभिमानी देवता मित्र हमको सुखकारी हो, अपान वृत्तिका और रात्रिका अभिमानी देवता वरुण हमको सुखकारी हो, चक्षु

---

१ यह मित्रादि शब्द पृथक् देवताओंके वाचक हैं इसमें प्रमाण-

महित्रीणामवोस्तुद्युक्षमित्रस्यार्य्यम्णः ॥ दुराधर्षंवरुणस्य ॥ यजु० अ० ३ मं० ३१

(मित्रस्य) प्राणवृत्ति और दिवसके अधिष्ठात्री देवता मित्र (अर्यम्णः) चक्षु वा सूर्यके अधिष्ठात्री अर्यमा देवता (वरुणस्य) अपना और जलोंके अधिष्ठात्री देवता वरुण (त्रीणाम्) इन तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाली (महि) बड़ी (द्युक्षम्) कान्तिमान् सुवर्णादि द्रव्योंसे युक्त (दुराधर्षम्) तिरस्कार पानेको अशक्य (अवः) पालना वा रक्षा (अस्तु) हमको प्राप्त हो। इससे अगले मन्त्रमें लिखा है।

तेहिपुत्रासो अदितेः प्रजीवसेमर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ यजु० अ० ३ मं० ३३

यह तीनों देवता अदितिके पुत्र हैं यजमानको अखण्ड तेज और दीर्घायु देते हैं॥ दयानन्दने अपने वेदभाष्यमें मित्रका प्राणवायु, अर्यमाका सूर्यलोक, वरुणका जल अर्थ किया है, प्राचीन अर्थोंमें इनके अधिष्ठात्री देवता लिखे हैं इससे मित्रादिक ईश्वरसे भिन्नही देवता हैं और 'यच्छन्ति' देते हैं यह बहुवचन है इससे सत्यार्थप्रकाशका अर्थ जो स्वामीजीने किया है वह अशुद्धही है।

या सूर्यका अभिमानी अर्यमा हमको सुखकारी हो, बलका अभिमानी इन्द्र और वाणी और बुद्धिका अभिमानी बृहस्पति हमको सुखकारी हो, उरुक्रम-बलिराजासे तीन पादकी याचनासे सर्व राज्यके ग्रहणके अर्थ विश्वरूप धारके विस्तीर्ण पादके क्रमवाले चरणके अभिमानी विष्णु हमको सुखकारी हो, ब्रह्मरूप वायुके अर्थ नमस्कार. हे वायो ! तेरे निमित्त नमस्कार है, तूही चक्षु आदिकी अपेक्षा करिके बाह्य समीप और अन्तरायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है, इस कारण मैं तुझेही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं और जैसे शास्त्रमें कहा है और जैसे करनेको योग्य है, ऐसा बुद्धिमें सम्यक् निश्चय किया अर्थ ऋत कहाता है, सो वह तेरे अधीन है इससे तुझे ऋत कहताहूं वाणी और शरीरसे सम्पादन हुआ जो सत्य है सोभी तेरे अधीन है, इस कारण तुझे सत्य कहताहूं, सो सर्वात्मा वायु नाम ईश्वर मुझसे स्तुतिको प्राप्त हुआ मुझ विद्या (ज्ञान)के अर्थीको विद्यासे युक्त कर रक्षा करो, मुझको रक्षा करो, वक्ताकी रक्षा करो, दो वार कथन आदरके हेतु है, शांति हो शांति हो, शांति हो. तीन वार शांति करना, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूप जो विद्याकी प्राप्ति विषे विघ्न हैं तिनकी निवृत्तिके अर्थ है, दयानंदजीने सत्यार्थप्रकाशमें इसका अन्यथा व्याख्यान किया है सो त्याज्य है ॥ शांकर भा० ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतप्रथमसमुल्लासस्य खण्डनं प्रारभ्यते मंगलाचरणप्रकरणम् ।

(सत्यार्थ०) भूमिका पृ० १ पं १ से-

ॐ सच्चिदानंदेश्वराय नमो नमः ॥ जिस समय मैंने यह ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने पठन पाठनमें संस्कृतही बोलने और जन्मभूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारणसे मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी अब भाषा बोलने और लिखनेका अभ्यास होगया है, इस लिये इस ग्रंथको भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है, कहीं २ शब्द वाक्यरचनाका भेद हुआ है सो करना उचित था क्यों कि, इसके भेद किये बिना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थका भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है. हां, जो प्रथम छपनेमें कहीं २ भूल थी वह निकाल शोधकर ठीक ठीक करदी गई है ॥ सन् १९१२ सम्वत् १९६९ पृ० १

समीक्षा-इस लेखसे पहला सत्यार्थप्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित विदित होता है किन्तु उसमें कोई गुजराती भाषाका शब्द पाया नहीं

जाता, भला वह तो अशुद्ध हो चुका पर अब यह तो आपके लेखानुसार सम्पूर्ण ही शुद्ध है, क्योंकि इसके बनानेके पूर्व न तो आपको लिखनाही आता था, न शुद्ध भाषाही बोलनी आती थी, इससे यह भी सिद्ध होता है कि, इस सत्यार्थसे पूर्व रचित वेदभाष्यभूमिका तथा यजुर्वेदादि भाष्योंकी भाषाभी अशुद्ध होगी, क्योंकि शुद्ध भाषाका ज्ञान तो आपको इस सत्यार्थप्रकाशके लिखनेके समय हुआ है और इसी कारण आप इसको निर्भ्रान्त सत्य मानते हैं ॥

स० प्र० पृ० ११ पं० ११

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवस्सोक्षरस्सपरमः ।
स्वराट् स इन्द्रस्सकालाग्निस्सचन्द्रमाः । कैवल्यउपनिषत् । *

अर्थ-सब जगत्के बनानेसे ब्रह्मा, सर्वत्र होनसे व्यापक विष्णु, दुष्टोंको दंड देके रुलानेसे रुद्र, मंगलमय और कल्याण कर्ता होनेसे शिव, जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी सो अक्षर, जो स्वयंप्रकाशस्वरूप सो स्वराट्, प्रलयमें सबका काल और कालकाभी काल होनेसे उसका नाम कालाग्नि वही चन्द्रमा है। पृ० ९ पं ७ फिर पृ० १९ पं० ११ में लिखते हैं कि, इस लिये मनुष्योंको योग्य है कि, परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना उपासना करें उससे भिन्नकी कभी न करें, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्योंनेभी उसीकी प्रार्थना की है अन्यकी नहीं । पृ० ८ । १७

समीक्षा-धन्य है स्वामीजी आप तो दशही उपनिषद् मानतेथे आज मतलब पड़ा तो कैवल्यभी मान बैठे, और प्रमाणसे ब्रह्मा, विष्णु, शिवको ईश्वर बताया और यहां उनको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो: इसमें कोई प्रमाण दिया होता कि, यह मनुष्य थे यदि प्रमाण नहीं मिलाथा तो कोई उलटी सीधी संस्कृतही गढी होती, आपके चेले उसे पत्थरकी लकीर समझलेते, यह आपहीको योग्य है कि, ब्रह्मादिक ईश्वरके नाम बताकर फिर इन्हें एक विद्वान् बतादिया, और यह अर्थ भी आपका अशुद्ध है । इसका अर्थ यह है कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत्की रचना करता, विष्णुरूप हो पालन करता, रुद्ररूप हो दुष्टोंको कर्मफल भुगाकर

* यह पाठ सत्यार्थप्रकाशमें वर्षोंसे अशुद्ध चला आता है वास्तवमें (स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् स एव विष्णुः स प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमाः) ऐसा पाठ है । अर्थ भी अशुद्ध किया है वही काल वही अग्नि है ऐसा अर्थ है आपने कालाग्नि ऐसा एक अर्थ किया है । खं० १ श्रु० ८.

१ भास्करप्रकाशमें वादी कहता है यह अर्थ कहांसे आया कि वह ब्रह्मारूप हो जगत् रचता है ? उ० हमारे अर्थ तो वेदशास्त्रपुराणसे सिद्ध हैं पर वह बतावें कि जगत्के बनानेसे ब्रह्मादि कहांसे आगया अक्षरार्थमें तो वह ब्रह्मा वही विष्णु दिखाई देता है फिर वह विद्वान् मनुष्य थे यह स्वामीजीके लेखका ढकोसला कहांका है ?

रुलाता, शिव हो मंगल करता है, वही अक्षर स्वराट् इन्द्र चन्द्रमा है और कालाग्निरूप धारण कर प्रलय करता है, यह सब देवता उसीके रूप हैं नहीं तो आप बताइये कि, यह तीनों विद्वान् किनके पुत्र थे, जो कहो कि, स्वयं उत्पन्न होगये थे, तो आपका सृष्टि क्रम जाता रहैगा कि, माता पिताके विना कोई मनुष्य नहीं उत्पन्न होता, यही तो आपकी भंगकी तरंग है, जो जीवनचरित्रमें लिखा है कि मुझे भंग पीनेकी ऐसी आदत थी कि दूसरे दिन होश होता था ॥

स० प्र० पृ० ४ पं० ९

भूरसिभूमिरस्यदितिरसिविश्वधायाविश्वस्यभुवनस्यधर्त्री । पृथिवींयच्छपृथिवींदृ१७ँह पृथिवीं माहि१७ँसीः। यजु० १३ मं १८ । इन्द्रोमह्नारोदसी पप्रथच्छव इंद्रः सूर्यमरोचयत् इन्द्रेहविश्वाभुवनानियेमिर इन्द्रेस्वानासइन्दवः । सामवेद ७ प्र० ३ अ० ८ सू० १६ अ० २ खण्ड ३ सू० २ मंत्र ८।

पृ० ५ पं० २१ में अर्थ जिसमें सब भूतप्राणी होते हैं इसलिये ईश्वरका नाम भूमि है शेषनामोंका अर्थ आगे लिखेंगे । इन्द्रोमह्ना इस मंत्रमें इन्द्र परमेश्वरहीका नाम है इसलिये यह प्रमाण लिखा है ।

समीक्षा—दयानन्दजी इन दोनों मन्त्रोंमें ईश्वरके नामोंकी संख्या लिखते हैं परन्तु एक २ नाम लिखकर शेषके लिये लिखते हैं कि, आगे व्याख्या करेंगे और व्याख्या कहीं भी नहीं की, भला जब इस मंत्रमें भूमि नाम ईश्वरका है तो (पृथिवीं माहिंसीः) पृथिवी नाम भी ईश्वरका होगा तो फिर दयानन्दजीके मतानुसार यह अर्थ होगा कि हे ईश्वर ईश्वरको मत मार समस्त सत्यार्थप्रकाश ऐसेही गपोड़ोंसे भरा पडा है हम इनका यथार्थ व्याख्यान दिखलाते हैं ।

ओंभूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः प्रस्तारपंक्तिश्छन्दः स्वयमातृणा देवता, हे स्वयमातृणे तुम (भूः) सुखोंकी भावना करनेवाली (भूमिः) भूमिनामसे प्रसिद्ध (असि) हो (विश्वधायाः) विश्वके पुष्ट करनेवाली (अदितिः) देवमाता (असि) हो (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) संसारकी (धर्त्री) धारण करनेवाली (असि) हो (पृथिवीम) पृथिवीको (यच्छ) कृपा करके देवो (पृथिवीम् भूमिभागको (दृ १७ँ ह) दृढ करो (पृथिवीम) पृथिवीको (माहि १७ँ सीः) मत पीडा दो । अब बुद्धिमान विचारें कि यह मंत्र ईश्वरके नामोंका कथन करताहै या इसमें दूसरा उपदेश है १८ ।

सामवेदके मंत्रका अर्थ—(इन्द्रः) इन्द्र (मह्नारोदसी पप्रथत्) अपने बलकी महिमासे द्युलोक और पृथिवीको पूर्ण करता हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (सूर्यम) सूर्यमें

इके सूर्यको (अरोचयत्) प्रकाशित करता हुआ (इन्द्रे) इन्द्रमें (:ह) निश्चय (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (येमिरे) ठहरे हुए हैं (स्वनासः) अभिषू-यमाण (इंदवः) सोम (इंद्रे) इंद्रमेंही नियमित होते हैं । उत्तरार्चिक अ०१६ खं० १ मंत्र २ अब बुद्धिमान् विचारें कि इस मंत्रमें क्या ईश्वरकी नामावलि है वा इंद्रकी महिमा कही है और ऊपरका पताभी कितना विलक्षण है ।

स०पृ० १६ पं०९ बृहत् शब्दपूर्वक पा रक्षणे धातुसे डतिप्रत्यय बृहत्के तका-रका लोप और सुडागम होनेसे बृहस्पति शब्द सिद्ध होता है जो बड़ोंसे भी बड़ा और आकाशादि ब्रह्मांडोंका स्वामी है इससे परमेश्वरका नाम बृहस्पति है ॥ ९ । १९

स० पृ० १७ पं० २८ दिवु क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गतिषु, जो शुद्ध जगतको क्रीडा करावे, विजिगीषा धार्मिकोंको जितानेकी इच्छा युक्त व्यवहार सब चेष्टाओंके साधनोपसाधनोंका दाता, द्युति स्वयंप्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक, स्तुति प्रशंसाके योग्य, मोद आप आनन्द-स्वरूप दूसरोंको आनंद देनेहारा, मद मदोन्मत्तोंको ताडन करनेहारा (यह अर्थ तो व्याकरणसे सिद्ध नहीं होता कि, मदोन्मत्तोंको ताडन करे किन्तु आपके प्रसं-गसे यह अर्थ बनता है कि, आप मदोन्मत्त दूसरोंको मद करनेहारा) कान्ति कामनाके योग्य, गति ज्ञानस्वरूप है इस लिये परमेश्वरका नाम देव ११।१४ है इसी प्रकार देवीभी १७।१७ परमेश्वरका नाम है पृ० २७। ११

पृ० १९ पं० २०

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्या-
यनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ मनु० अ० १ श्लो १०

जलजीवोंका नाम नारा है वे अयन अर्थात् वासस्थान हैं जिसका इस लिये सब जीवोंमें व्यापक परमात्माका नाम नारायण है (यह अर्थभी अशुद्ध है इसका अर्थ तो यह है कि, जलको नारा इस कारण कहते हैं कि, नर जो परमात्मा उससे उत्पन्न हुआ है वह जल है प्रथमस्थान जिसका इस कारण परमात्माको नारायण कहते हैं) ॥ १३ । १२

स०पृ० २१ पं० ७गृ शब्दे इस धातुसे गुरु शब्द सिद्ध होता है जो सकल धर्मप्रतिपादक सकल विद्यायुक्त सब वेदोंका उपदेश करता सब ब्रह्मादिकोंकाभी गुरु जिसका नाश कभी नहीं होता इससे उसका नाम गुरु है (इसमें ब्रह्मादिकोंकाभी गुरु यह पद स्वामीजीके घरका है) १९।१९॥

स० पृ० १९ पं० २३ चदि आह्लादे इस धातुसे चन्द्र शब्द सिद्ध होताहै जो आनंदस्वरूप और सबको आनंद देनेहारा है इस कारण परमेश्वरका नाम चन्द्र है

मगि गत्यर्थक धातुसे 'मंगरलच' इस सूत्रसे मंगलशब्द सिद्ध होताहै जो आप मंगल स्वरूप और सब जीवोंके मंगलका कारण है इस कारण उस परमेश्वरका नाम मंगल है 'बुध अवगमने' इससे बुधशब्द सिद्ध होताहै जो स्वयंबोधस्वरूप और सब जीवोंके बोधका कारण है इस लिये उस परमेश्वरका नाम बुध है ईशुचिर् पूतीभावे इस धातुसे शुक्रशब्द सिद्ध होता है जो अत्यन्त पवित्र जिसके संगसे जीवभी पवित्र होजाते हैं इस लिये परमेश्वरका नाम शुक्र है 'चर गतिभक्षणयोः, इस धातुसे शनैस अव्यय उपपद होनेसे शनैश्चर शब्द सिद्ध हुआ है जो सबमें सहजसे प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वरका नाम शनैश्चर है। रह त्यागे इस धातुसे राहु शब्द सिद्ध होताहै जो एकान्तस्वरूप जिसके स्वरूपमें दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं जो दुष्टोंको छोडने और अन्यको छुडानेहारा है इससे उस परमेश्वरका नाम राहु है. 'कित निवासे' इस धातुसे केतुशब्द सिद्ध होताहै जो सब रोगोंसे रहित सब जगत्का निवासस्थान है और मुमुक्षुओंको मुक्तिसमयमें सब रोगोंसे छुडाता है इससे उस परमात्माका नाम केतु है (यह दोनों अर्थ अशुद्ध हैं)॥१४।६

स० पृ० १४ पं०२९ 'दो अवखंडने' इस धातुसे अदिति और इससे तद्धित करनेसे आदित्य शब्द सिद्ध होताहै जिसका विनाश कभी नहीं हो इससे ईश्वरकी आदित्य संज्ञा है (यह अर्थभी अशुद्ध है किन्तु यहां दित्यादित्य० ४।१।८५ से ण्य प्रत्यय है जो अदितिका अपत्य हो वह आदित्य है)॥८।१

स०पृ० २२ पं०२९ 'गण संख्याने' इस धातुसे गण शब्द सिद्ध होता है इसके आगे ईश और पति रखनेसे गणेश और गणपति सिद्ध होते हैं जो प्रकृत्यादि जड और सब जीव प्रख्यात पदार्थोंका स्वामी वह पालन करनेहारा है इससे परमेश्वरका नाम गणेश वा गणपति है ॥ १६।२९

स० पृ० २३ पं० ४ शक्लृ शक्तौ इस धातुसे शक्तिशब्द बनताहै जो सब जगत्के बनानेमें समर्थ है इस लिये उस परमेश्वरका नाम शक्ति है, 'श्रिञ् सेवायाम्' इस धातुसे श्रीशब्द सिद्ध होताहै जिसका सेवन सब जगत्के विद्वान् योगीजन करते हैं इससे उस परमेश्वरका नाम श्री है 'लक्ष दर्शनांकनयोः' इस धातुसे लक्ष्मी शब्द सिद्ध होताहै, जो सब चराचर जगत्को देखता, चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीरके नेत्र नासिका वृक्षके पत्र पुष्प फल मूल पृथ्वी जलके कृष्ण रक्त श्वेत मृत्तिका पाषाण चंद्र सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको देखता सब शोभाओंकी शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियोंका लक्ष अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम लक्ष्मी है ' सृ गतौ' इस धातुसे सरस और उससे मतुप् और ङीप्प्रत्यय होनेसे सरस्वती शब्द सिद्ध

होताहै जिसको विविध ज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ संबंध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होवै इससे उस परमेश्वरका नाम सरस्वती है १७ । २९

स० पृ० २९ पं०१० यः शिष्यते स शेषः जो उत्पत्ति प्रलयसे बच रहाहै इससे उसका नाम शेष है, तथा इसी पृष्ठकी २७ पंक्तिमें 'शिवु कल्याणे' इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होता है, जो कल्याण स्वरूप और कल्याणकारक है इस लिये उस परमेश्वरका नाम शिव है इस प्रकार परमेश्वरके सौ १०० नामका कथन किया है पुनः आपही फिर प्रश्न संबंधसे लिखते हैं * २० । १२

स० पृ० २६ पं० ८ (प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करते हैं वैसा आपने न कुछ लिखा न किया (उत्तर) वैसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करेगा तो उस आदि मध्य अंतके बीचमें जो लेख होगा वह अमंगलही रहेगा इसलिये मंगलाचरण " शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतिश्चेति " यहभी सांख्यशास्त्रका वचन है. अभिप्राय यह है कि, जो न्याय पक्षपातरहित सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा है उसीको यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाताहै ग्रंथके आरंभसे लेके समाप्तिपर्यन्त सत्याचारका करनाही मंगलाचरण कहाताहै न कि, कहीं अमंगल लिखना २० । २२

समीक्षा—धन्य है स्वामीजी आपके अर्थ और अभिप्रायको आप तो मंगलाचरण करते जांय और पूछनेपर नहीं कहें यदि आप मंगलाचरण नहीं करते तो बताइये कि—सत्यार्थप्रकाशभूमिकाके पहले " ओम् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः" और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" और "शन्नोमित्रादि" सत्यार्थप्रकाशके प्रारम्भमें और अन्तमें ५९२ पृष्ठमें फिर "शन्नोमित्र इत्यादि" और यह सौ नाम परमेश्वरके किस आशयसे लिखेहैं तथा अपने वेदभाष्यके प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें "विश्वानिदेव" इत्यादि क्यों लिखाहै इससे आपके लेखानुसार यह विदित होताहै कि आपके वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाशमें बीच २ में अमंगलाचरणही है और सत्यभी है ऊपरके सांख्यसूत्रके टीकेमें सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा कहनी मंगलाचरण है और आपने पोपादि बहुतसे अपशब्द और दुर्वचन आगे इस पुस्तकमें लिखेहैं जिनके उच्चारणकी आज्ञा वेदमें कहीं नहीं पाई जाती न उन शब्दोंका उच्चारण करना न्याय और निष्पक्षता संपादन करताहै इस लिखनेसे जाना जाताहै कि, स्वामीजी प्रगटमें मंगलाचरणमें हिचकतेहैं, और स्वयं यौही परिपाटी ग्रहण करते हैं यदि

* भा० प्र० पृ० ६ वादी कहताहै कि इनका उत्तर द० ति० भा० में नहीं है. (उत्तर) इनका उत्तर अच्छी तरहसे है यह अर्थ अशुद्धभी बनाये है तथा पृ० ७ में इसका फल निकाला है इसको देखिये बिरकुल आंख मीचना ठीक नहीं ।

ऐसा न करते तो यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीत होता और सांख्यवचनका अर्थ यह है कि मंगलाचरणसे मंगल होताहै यह शिष्टाचार है और इसका फलभी दीखता है श्रुतिप्रमाण है.

सत्या० पृ० २६ पं० २० इस लिये आधुनिक ग्रंथोंमें "श्रीगणेशाय नमः, सीतारामाभ्यां नमः, श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यां नमः, शिवाय नमः, सरस्वत्यै नमः, नारायणाय नमः, श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः" इत्यादि देखनेमें आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें कहीं ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षग्रंथोंमें तो ओम् तथा अथ शब्द देखनेमें आता है जैसे " अथ शब्दानुशासनम्" महाभाष्यमें " अथातो धर्मजिज्ञासा" मीमांसामें "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" वैशेषिक दर्शनमें " अथ योगानुशासनम् " योगमें " अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" वेदान्तमें " ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ उपासीत" छान्दोग्यमें यह वचन हैं जो ऋषि मुनियोंने ग्रन्थ बनाये हैं २१ । ७

स० पृ० २७ पं० ११ जो वैदिक लोग वेदके आरम्भमें हरिः ओम् लिखते हैं और पढते हैं यह पौराणिक तांत्रिक लोगोंकी मिथ्या कल्पनासे सीखे हैं, वेदादि शास्त्रोंमें कहीं प्रथम हरि शब्द देखनेमें नहीं आता २२ । ८

समीक्षा—विदित होताहै कि स्वामीजीको परमेश्वरके नाम कुछ तो प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगोंकी परिपाटी है इसका तो खंडना मानो इन्होंने नियमही कर लिया है इसलिये प्रथम तो गणेश गुरु शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परमात्माके लिखे जिनका उल्लेख हम पहले करचुके हैं, और अब यह कहते हैं कि, इनको विद्वान् मिथ्याही समझतेहैं, विद्वान् तो मिथ्या नहीं समझते हैं आप इनको दोष,मत दीजिये यही कह दीजिये मैं मिथ्या समझताहूं डरिये नहीं आप तो रोलको डरायुके हैं (जीवन०) क्या यह आप परमेश्वरके नाम नहीं मानते जो मानते हो तो मिथ्या कैसे? जो नहीं मानते तो परमेश्वर १०० नामोंमें यह शब्द क्यों लिखे इन्हेंभी वेदमेंसे निकाल डालो, कहिये क्या यदि आपकी चलती तो प्राचीन महात्माओंने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखा है आप उसकाभी निषेध करते परन्तु इसमें चल नहीं सकी, और जैसे आपने धातुओंमें परमेश्वरके नाम सिद्ध किये हैं क्या "रमु क्रीडायाम" इस धातुसे राम और हरति दुःखानीति हरिः' सबमें रम रहाहै वह राम है, भक्तोंके दुःख हरनेसे परमेश्वरका नाम हरि है हृञ् हरणे सर्वधातुभ्य इन् उणा० पा० ४ और "कृषि-

१ जीवनचरित्रमें लिखाहै मुझसे रोल डरकर भागगया ।

र्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण-इत्यभिधीयते॥
इस प्रकार कृष्णके अर्थभी तो ईश्वरहीके हैं या परमेश्वरको कोई अपना नाम यारा है कोई नहीं जो आप निषेध करते हो, आप तो विद्वत्ताका दम भरते हो ईश्वरको पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वरके यह नाम लेनेसे कौनसी देशोन्नतिमें हानि होती है, यदि विचारा जाय तो जैसे प्राचीन ग्रंथोंमें विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम हैं वही आशय उभारकर यह आपनेभी शत नाम लिखे हैं भलाजी ग्रंथकी आदिमें १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसे वेदानुकूल हैं प्रत्यक्ष लिख देते कि, विष्णुसहस्रनामके स्थानमें हमारे शिष्य शतनामका पाठ किया करें, फिर यह कैसी बात है कि, अपने नामोंको आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि पर, आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता, इससेभी विदित होताहै कि, ऐसा नहीं तो और प्रकारका तो देखनेमें आता है, सो आपने लिखाही है कि अथ ओम् देखनेमें आते हैं सो उसी प्रकार आपनेभी अथ और ओम् लिखा है तो आपनेभी मंगलाचरण किया (अब आपके ग्रंथके मध्य और अंतमें क्या है) मुकरते क्यों हो मंगलाचरण करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी आदिमें तो अग्निमीळे० इषेत्वा० अग्नआयाहि० पद पड़े हुए हैं आप वेदानुकूलही चलते हैं फिर अथ और ओम् मंत्रसंहिता ओंमेंसे किसके अनुकूल लिखा है॥

और हरि शब्दसे तो कोई आपका बडा भारी द्वेष है कदाचित् कहीं इसके दूसरे अर्थवालेसे भेंट तो नहीं होगई (जीवनचरित्रमें तो भालू मिलाथा) भयसे मारे आपको परित्राण पाना कठिन होगया होगा तबसे उस नामसे ऐसा जी खट्टा हुआ कि, वह शब्द जिस * में आरूढ हो उस उससेही भयभीत हो द्वेष करनेलगे जैसा मारीचको भय हुआ था (रा अस नाम सुनत दशकंधर, रहत प्राण नहिं भम डर अंतर) और इसी कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगोंके ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो॥

ॐकारप्रकरण।

स० पृ० १ पं० १० (ओ ३ म) यह ॐकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ उ म तीन अक्षर मिलकर एक (ओ ३ म) समुदाय हुआ है इस एक नाममें परमेश्वरके बहुत नाम आते हैं जैसे अकारसे विराट्

१ कृषु+नक्=कृष्ण । इणसिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् उणा० तृ० पादः ।

२ भास्क० प्र० पृ० ६ वादी मंगलाचरण स्वीकार करते हैं सब गुरुदेवोंमें सच्चा कौन है।

ऐसा न करते तो यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीत होता और सांख्यवचनका अर्थ यह है कि मंगलाचरणसे मंगल होताहै यह शिष्टाचार है और इसका फलभी दीखता है श्रुतिप्रमाण है.

सत्या० पृ० २६ पं० २० इस लिये आधुनिक ग्रंथोंमें "श्रीगणेशाय नमः, सीतारामाभ्यां नमः, श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यां नमः, शिवाय नमः, सरस्वत्यै नमः, नारायणाय नमः, श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः" इत्यादि देखनेमें आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें कहीं ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षग्रंथोंमें तो ओम् तथा अथ शब्द देखनेमें आता है जैसे " अथ शब्दानुशासनम्" महाभाष्यमें " अथातो धर्मजिज्ञासा" मीमांसामें "अथातो धर्म व्याख्यास्यामः" वैशेषिक दर्शनमें " अथ योगानुशासनम् " योगमें " अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" वेदान्तमें " ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ उपासीत" छान्दोग्यमें यह वचन हैं जो ऋषि मुनियोंने ग्रन्थ बनाये हैं २१ । ७

स० पृ० २७ पं० ११ जो वैदिक लोग वेदके आरम्भमें हरिः ओम् लिखते हैं और पढते हैं यह पौराणिक तांत्रिक लोगोंकी मिथ्याकल्पनासे सीखे हैं, वेदादि शास्त्रोंमें कहीं प्रथम हरि शब्द देखनेमें नहीं आता २२ । ८

समीक्षा—विदित होताहै कि स्वामीजीको परमेश्वरके नाम कुछ तो प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगोंकी परिपाटी है इसका तो मेटना मानो इन्होंने नियमही कर लिया है देखिये प्रथम तो गणेश गुरु शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परत्माके लिखे जिनका उल्लेख हम पहले करचुके हैं, और अब यह कहते हैं कि, इनको विद्वान् मिथ्याही समझतेहैं, विद्वान् तो मिथ्या नहीं समझते हैं आप उनको दोष,मत दीजिये यही कह दीजिये मैं मिथ्या समझताहूं डरिये नहीं आप तो रीछको डराचुके हैं (जीवन०१) क्या यह आप परमेश्वरके नाम नहीं मानते जो मानते हो तो मिथ्या कैसे? जो नहीं मानते तो परमेश्वर १०० नामोंमें यह शब्द क्यों लिखे इन्हेंभी वेदमेंसे निकाल डालो, करिये क्या यदि आपकी चलती तो प्राचीन महात्माओंने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखा है आप उसकाभी निषेध करते परन्तु इसमें चल नहीं सक्ती, और जैसे आपने धातुओंसे परमेश्वरके नाम सिद्ध किये हैं क्या 'रमु क्रीडायाम्" इस धातुसे राम 'और हरति दुखानीति हरिः' सबमें रम रहाहै वह राम है, भक्तोंके दुःख हरनेसे परमेश्वरका नाम हरि है हृञ् हरणे सर्वधातुभ्य इन् उणा० पा०४ और "कृषि-

१ जीवनचरित्रमें लिखाहै मुझसे रीछ डरकर भागगया ।

भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इस प्रकार कृष्णके अर्थभी तो ईश्वरहीके हैं या परमेश्वरको कोई अपना नाम प्यारा है कोई नहीं जो आप निषेध करते हो, आप तो विद्वत्ताका दम भरते हो ईश्वरको पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वरके यह नाम लेनेसे कौनसी देशोन्नतिमें हानि होती है, यदि विचारा जाय तो जैसे प्राचीन ग्रंथोंमें विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम हैं वही आशय उभारकर यह आपनेभी शत नाम लिखे हैं भलाजी ग्रंथकी आदिमें १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसे वेदानुकूल हैं प्रत्यक्ष लिख देते कि, विष्णुसहस्रनामके स्थानमें हमारे शिष्य शतनामका पाठ किया करें, फिर यह कैसी बात है कि, अपने नामोंको आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि पर, आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता, इससेभी विदित होताहै कि, ऐसा नहीं तो और प्रकारका तो देखनेमें आता है, सो आपने लिखाही है कि अथ ओम् देखनेमें आते हैं सो उसी प्रकार आपनेभी अथ और ओम् लिखा है तो आपनेभी मंगलाचरण किया (अब आपके ग्रंथके मध्य और अंतमें क्या है) मुकरते क्यों हो मंगलाचरण करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी आदिमें तो अग्निमीळे॰ इषेत्वा॰ अग्नआयाहि॰ पद पड़े हुए हैं आप वेदानुकूलही चलते हैं फिर अथ और ओम् मंत्रसंहिताओंमेंसे किसके अनुकूल लिखा है ॥

और हरि शब्दसे तो कोई आपका बड़ा भारी द्वेष है कदाचित् कहीं इसके दूसरे अर्थवालेसे भेंट तो नहीं होगई (जीवनचरित्रमें तो भालू मिलाथा) भयके मारे आपको परित्राण पाना कठिन होगया होगा तबसे उस नामसे ऐसा जी खट्टा हुआ कि, यह शब्द जिस र में आरूढ हो उस उससेही भयभीत हो द्वेष करनेलगे जैसा मारीचको भय हुआ था (रा अस नाम सुनत दशकंधर, रहत प्राण नहिं मम उर अंतर) और इसी कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगोंके ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो ॥

ओंकारप्रकरण ।

स॰ पृ॰ १ पं॰ १० (ओ ३ म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ उम् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ ३ म्) समुदाय हुआ है इस एक नामसे परमेश्वरके बहुत नाम आते हैं जैसे अकारसे विराट्

१ कृष्+नक्=कृष्ण । इणसिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् उणा॰ तृ॰ पादः ।

२ भास्क॰ प्र॰ पृ॰ ६ वादी मंगलाचरण स्वीकार करताहै अब गुरुचेलोंमें सच्चा कौन है ।

अग्नि और विश्वादि, उकारसे हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि, मकार ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादिक सत्य शास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान किया है ॥ २ । १

समीक्षा–स्वामीजीकी वेदज्ञता तो इस ओंकारक अर्थनिरूपणसेही सज्जन पुरुष जान लेंगे कि, प्रथम ग्रासमेंही मक्षिकापात हुआ, अब देखना चाहिये कि, प्रणवकी व्याख्या अनन्त प्रकारसे वेदादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है, परन्तु स्वामीजीने अपने अर्थकी पुष्टिमें एकभी प्रमाण नहीं लिखा भला वह कौनसा मंत्र है जिसमें स्वामीजीके लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ओंकारके ऐसे अर्थका प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराणमें एकभी नहीं मिलनेका ऋग्वेदमें इस प्रकार कथन है ॥

ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः ।
यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यतियइत्तद्विदुस्तइमेसमासते ॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९

इति विदुष उपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषा वागिति शाकपूणिर्ऋचो ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मंत्रेष्वेतद्धवा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्टे, प्र० भाष्यम् कतमत् तदक्षरं इति ओं इत्येषा वाक् इति शाकपूणेः अभिप्रायः ओं कारमृतेन खर्वयन्ति तस्या अक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिन्छन्द-जातमोतमिति व्योम तस्मिन तिसृषु मात्रासु अकारोकारमकारलक्षणासूपशा-न्तासु पदवाशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्दसामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः ॥ यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्य शब्दकारणत्वात् अथवा प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवीलोकनिवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायाम् अन्तरिक्षम वायुः यजूंषि तल्लोकनिवासिनो जना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लो-कनिवासिनो जना इति विज्ञापने हि ओंकार एवेदं सर्वम इति यस्तन्न वेद अनया विभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यन्तदाक्षरात्मना पश्यति। य इत्तद्विदुस्त इमे समासते इति विदुष उपदिशति ते हि तत्परिज्ञानात्सा-

---

१ भा० प्र० वाली कहता है यह निरुक्त कुछ छोडकर लिखा है उसको यह भी नहीं दीखा कि निरुक्त वचनके सिवाय इसमें पहले और क्या है यथा ऋचो अक्षरे परमे व्यवने यस्मिन् देवा अधिनिषण्णाः सर्वे यस्तन्न वेद किं स ऋचा करिष्यति य इत्तद्वि० इसमें पद-निरुक्तके सिवाय और क्या है। धन्य पक्षपात।

व्यमुपगताः प्रणवविग्रहमात्मानमनुप्रविश्य सर्मीकृता निर्यान्ति शान्तार्चिष इवानला इति ॥

पद-ऋचः अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवाः अधिविश्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते ॥ ऋ० ॥

भावार्थ-इस मंत्रका व्याख्यान ओंकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्त्वपरतामें है, तिसमेंसे प्रथम शाकपूणि नामक निरुक्तकारके मतसे ओंकार परतो निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परम व्योम संज्ञक अक्षरमें देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौन हैं (उत्तर) ओं यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट (व्योमन्ः) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ओंकार है तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मन्त्र अध्ययन किये जाते हैं और जो अनेक देवता हैं वे सर्व मंत्रोंमें स्थित हैं और मंत्रोंमें कारण होनेसे यह अक्षर व्याप्त है, क्योंकि सर्व वेदत्रयी विद्याके प्रति यह अक्षर व्याप्त है, ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार विना ऋगादि मंत्रोंका उच्चारण नहीं होता इससे व्योमसंज्ञक जो अक्षर है तिसमें नानाविध शब्दसमूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार शब्दरूप हैं इससे यह दोनों आकाशमें स्थित हैं यावत् शब्द समूह ओंकारमें स्थित कैसे कहते हो ? (उत्तर) ओंकार नाम यह अकारादि मात्राके शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योम, नामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकारमें यावत् मंत्र स्थित हैं और उसमें सर्व देवता स्थित हैं, क्योंकि मंत्रोंमें देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नाद नामक अक्षरमें स्थित हैं, इससे मंत्र द्वारा सब देवता भी अक्षरमें स्थित हैं अथवा प्रथम मात्रामें पृथ्वीलोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोकनिवासी जन स्थित हैं और द्वितीयमात्रामें अन्तरिक्ष वायु यजुर्मंत्र और अन्तरिक्षलोक निवासी जन स्थित हैं, और तृतीय मात्रामें द्युलोक आदित्य साम मंत्र और स्वर्गलोकनिवासी जन स्थित हैं इसी कारण मांडूक्य उपनिषद्में (ओंकार एवेदं सर्वम्) यह कहा है जो इस विभूतिसहित अक्षरको नहीं जानता सो ऋगादि मंत्रोंसे क्या करेगा ? अर्थात् विना ओंकारके जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेदके मंत्र फल नहीं देंगे, और जो पुरुष उक्त रूप नाद विभूतिसहित अक्षरको जानते हैं वे पुरुष (समासते) प्रणव ज्ञानमें अक्षर भावको प्राप्त हुये अपने आत्माको प्रणवरूप निश्चय करके प्रणवमें प्रविष्ट होकर समताको प्राप्त हो शान्तज्वाल अग्निवत् (निर्यान्ति नाम निर्वाणपदम् मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाणको प्राप्त होते हैं अथवा मुक्त होते हैं, आदित्य पक्षमें यह अर्थ है कि, जिस व्योमरूप परम अक्षररूप

अग्नि और विश्वादि, उकारसे हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि, मकार ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और ग्राहक है इसका ऐसाही वेदादिक सत्य शास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान किया है ॥ = । १

समीक्षा—स्वामीजीकी वेदज्ञता तो इस ॐकारके अर्थनिरूपणसेही सज्जन पुरुष जान लेंगे कि, प्रथम ग्रासमेंही मक्षिकापात हुआ, अब देखना चाहिये कि, प्रणवकी व्याख्या अनन्त प्रकारसे वेदादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है, परन्तु स्वामीजीने अपने अर्थकी पुष्टिमें एकभी प्रमाण नहीं लिखा भला यह कौनसा मंत्र है जिसमें स्वामीजीके लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ॐकारके ऐसे अर्थका प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराणमें एकभी नहीं मिलनेका ऋग्वेदमें इस प्रकार कथन है ॥

ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः ।
यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यतियइत्तद्विदुस्तइमेसमासते ॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९

इति विदुष उपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषा वागिति शाकपूणिर्ऋचो ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मंत्रेष्वेतद्धवा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्टे. प्र० भाष्यम् कतमत् तदक्षरं इति ॐ इत्येषा वाक् इति शाकपूणेः अभिप्रायः ॐकारमृतेन ह्यर्चयन्ति तस्या अक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिञ्छन्दजातमोतमिति व्योम तस्मिन् तिसृषु मात्रासु अकारोकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदवशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्दसामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः ॥ यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्य शब्दकारणत्वात् अथवा प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवीलोकनिवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायाम् अन्तरिक्षम् वायुः यजूंषि तल्लोकनिवासिनो जना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लोकनिवासिनो जना इति विज्ञायते हि ॐकार एवेदं सर्वम् इति यस्तन्न वेद अनया विभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यस्तत्राक्षरात्मना पश्यति । य इत्तद्विदुस्त इमे समासते इति विदुष उपदिशति ते हि तत्परिज्ञानात्ताद्रा-

---

१ भा० प्र० वादी कहता है यह निरुक्त कुछ छोडकर लिखा है, उसको यह भी नहीं दीखा कि विवरण करनेके सिवाय इससे पहले और क्या है यथा ऋचो अक्षरे परमे व्यवने यस्मिन् देवा अधिनिषण्णा सर्वे यस्तं न वेद किं स ऋचा करिष्यति य इत्तद्वि० इसमें पदविवरणके सिवाय और क्या है । धन्य पक्षपात ।

व्यमुपगताः प्रणवविग्रहमात्मानमनुप्रविश्य समीकृता निर्वान्ति शान्तार्चिष इवानला इति ॥

पद–ऋचः अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवाः अधिविश्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते ॥ ऋ० ॥

भावार्थ–इस मंत्रका व्याख्यान ॐकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्त्वपरतामें है, तिसमेंसे प्रथम शाकपूणि नामक निरुक्तकारके मतसे ॐकार परता निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परम व्योम संज्ञक अक्षरमें देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौन है (उत्तर) ॐ यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट (व्योमन्ः) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ॐकार है तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मन्त्र अध्ययन किये जाते हैं और जो अनेक देवता हैं वे सर्व मंत्रोंमें स्थित हैं और मंत्रोंमें कारण होनेसे यह अक्षर व्याप्त है, क्योंकि सर्व वेदत्रयी विद्याके प्रति यह अक्षर व्याप्त है, ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार विना ऋगादि मंत्रोंका उच्चारण नहीं होता इससे व्योमसंज्ञक जो अक्षर है तिसमें नानाविध शब्दसमूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार शब्दरूप है इससे यह दोनों आकाशमें स्थित हैं यावत् शब्द समूह ओंकारमें स्थित कैसे कहते हो ? (उत्तर) ओंकार नाम यह अकारादि मात्राके शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योम, नामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकारमें यावत् मंत्र स्थित हैं और उसमें सर्व देवता स्थित हैं, क्योंकि मंत्रोंमें देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नाद नामक अक्षरमें स्थित हैं, इससे मंत्र द्वारा सब देवता भी अक्षरमें स्थित हैं अथवा प्रथम मात्रामें पृथ्वीलोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोकनिवासी जन स्थित हैं और द्वितीयमात्रामें अन्तरिक्ष वायु यजुर्मंत्र और अन्तरिक्षलोक निवासी जन स्थित हैं, और तृतीय मात्रामें द्युलोक आदित्य साम मंत्र और स्वर्गलोकनिवासी जन स्थित हैं इसी कारण मांडूक्य उपनिषद्में (ओंकार एवेदं सर्वम्) यह कहा है जो इस विभूतिसहित अक्षरको नहीं जानता सो ऋगादि मंत्रोंसे क्या करेगा ? अर्थात् विना ओंकारके जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेदके मंत्र फल नहीं देंगे, और जो पुरुष उक्त रूप नाद विभूतिसहित अक्षरको जानते हैं वे पुरुष (समासते) प्रणव ज्ञानसे अक्षर भावको प्राप्त हुये अपने आत्माको प्रणवरूप निश्चय करके प्रणवमें प्रविष्ट होकर समताको प्राप्त हो शान्तज्वाल अग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाणपदम् मोक्षं प्राप्नुवन्ति) [illegible] प्राप्त होते हैं अथवा मुक्त होते हैं, आदित्य पक्षमें यह अर्थ [illegible] परम अक्षररूप

आदित्यमें सब देवता स्थित हैं मंत्र द्वारा तिस आदित्यको जो नहीं जानते ये ऋगादि मंत्रोंको क्या करेंगे ये इत् नाम एव तिस आदित्यको जानते हैं वे पुरुषही विद्वज्जन भूमिमें सुखपूर्वक रोगादिरहित भोगसम्पन्न चिरकाल जीवते हैं मांडूक्य उपनिषद्में इस प्रकार लिखा है ॥

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्व्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भवि-ष्यदितिसर्व्वमोङ्कारएव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंका-रएव ॥ मां० मं० ॥ १ ॥

अर्थ–ओं इस प्रकारका यह अक्षर यह सर्व है ऐसे कहते हैं जो यह विषय रूप अर्थका समूह है तिसको नाममें अभिन्न होनेसे और नामको ओंकारसे अभिन्न होनेसे ओंकारही यह सर्व है. और जो परब्रह्म नामक कथनरूप उपायपूर्वकही जानने योग्य हैं सो ओंकारही है, तिस इसपर और अपर ब्रह्मरूप ओं इस प्रकारके अक्षरका ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे ब्रह्मके समीप होनेसे विस्पष्ट कथनरूप प्रसंगविषे प्राप्त जो उपव्याख्यान है सो जाननेको योग्य है, उक्त न्यायसे भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालोंसे परिच्छेद करनेको योग्य जो वस्तु है सो भी यह ओंकारही है और अन्य जो तीन कालसे भिन्न कार्यरूप लिंगसे जानने योग्य और कालसे परिच्छेद करनेको अयोग्य अव्याकृत आदिक है सोभी ओंकारही है इहां नाम (वाचक) और नामी वाच्य की एकताके हुएभी नामकी प्रधानतासे यह निर्देश किया है ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोधिमात्रम् पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ २ ॥

जो वाच्यकी प्रधानतावाला ॐकार चारों पादवाला आत्मा है ऐसा पूर्व व्याख्यान किया है यथा (सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्) सर्व (कारण और कार्य) ही यह ब्रह्म है, सर्व जो ॐकार मात्र है ऐसे श्रुतिने कहा है सो यह ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है सो यह ॐकारका (वाच्य) और पर (अधिष्ठान) और अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होनेसे स्थित हुआ आत्मा चार पादवाला है, सो यह आत्मा अध्यक्षर है वाचककी प्रधानतासे अक्षरको आश्रय करके वर्णन किया है। इससे अध्यक्षर कहा है फिर वह अक्षर क्या है, इसपर कहते हैं सो अक्षर ॐकार है सो यह ॐकार (पाद) चरणोंसे विभागको पाया हुआ अधिमात्र है, जिस कारण मात्राको आश्रय करके वर्तता है इससे अधिमात्र कहते हैं (प्रश्न) आत्माही पादोंसे विभागको प्राप्त होताहै, और मात्राको

आश्रय करके ॐकार स्थित होता है, इस कारण पादसे विभागको प्राप्त हुए ॐकार-का अधिमात्रपना कैसे है उसपर कहते हैं आत्माके जो पाद हैं वे ॐकारकी मात्रा हैं और ॐकारकी जो मात्रा हैं वे आत्माके पाद हैं, इससे पाद और मात्राकी एकतासे यह कथन अविरुद्ध है कौनसी वे ॐकारकी मात्रा हैं उसपर कहते हैं अकार उकार मकार यह तीन ॐकारकी मात्रा हैं ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ९॥

जो जागरित स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्रा है, किस तुल्यतासे दोनोंकी एकता है इसपर कहते हैं व्याप्तिसे वा आदिवाले होनेसे जैसे अकारसे सर्व प्राणी व्याप्त हैं तैसे वैश्वानरसे जगत् व्याप्त है "तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तक ही स्वर्ग है" इत्यादि श्रुतियोंके वाक्यसे वाच्य वाचककी एकताको हम कहते हैं जिसकी आदि है सो आदिवाला कहाताहै तैसेही आदिवाला अकार नाम अक्षर है तैसेही आदिवाला वैश्वानर है इस कारण तुल्यता होनेसे वैश्वानरको अकारपना है अब इनकी एकताके ज्ञाताको फल कहते हैं जो ऐसे उक्त प्रकारकी वैश्वानर और अकारकी एकताको जानताहै, सो निश्चय ही सब भोगोंको पाता है और यही बडे पुरुषोंके बीचमें प्रथम होता है ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ माण्डूक्य० ॥ १० ॥

जो स्वप्नस्थानवाला तैजस है सो ॐकारकी उकाररूप द्वितीय मात्रा है दोनोंकी एकता कैसे है सो कहते हैं—उत्कर्षसे वा उभय (द्वितीय) रूप होनेसे जैसे अकारसे उकार पाठके क्रमसे उत्कृष्ट है, तैसे स्थूल उपाधिवाले विश्वसे सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट है, तिस उत्कर्षसे इनकी एकता है या जैसे अकार और मकारके मध्यविषे स्थित उकार है तैसे विश्व और प्राज्ञके मध्यमें तैजस है, इससे तिनकी उभयरूपताकी तुल्यता एकता है, अब तिनकी एकताके ज्ञाताको जो फल होताहै सो कहतेहैं जो ऐसे जानताहै सो ज्ञानकी संततिको बढाता है और तुल्य होता है, मित्रके पक्षकी नाईं शत्रुके पक्षके मध्यम द्वेष करनेको अयोग्य होता है और इसके कुलमें अब्रह्मवेत्ता नहीं होते हैं ॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति हवा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ॥ ११ ॥

जो सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ है सो ॐकारकी मकाररूप तृतीय मात्रा है इस

तुल्यतासे दोनोंकी एकता है उसमें कहतेहैं कि, परिमाणसे वा एकतामें यहां दोनोंकी समानता है प्रस्थ (धान्यपरिमाणके पात्र) से गये धान्यके परिमाण (माप) की नाई जैसे लय और उत्पत्तिमें प्रवेश और निकलनेमें प्राज्ञमें विश्व और तैजस परिमाण कियेकी नाई होतेहैं तैसे अकार और उकार यह दोनों अक्षर ॐकारकी समाप्तिमें और फिर उच्चारण किये मकारमें प्रवेश करके निकलते हुएकी समान होते हैं, इससे ये मकारसे परिमाण कियेकी समान होते हैं इसमें इन दोनोंकी तुल्यतासे एकता है अथवा जैसे ॐकारके उच्चारण किये मकाररूप अंतके अक्षरमें अकार और उकार यह दोनों एकरूप हुएकी समान होते हैं इसी प्रकार विश्व और तैजस सुषुप्तिकालमें प्राज्ञ विषे एकरूप हुयेकी नाई होते हैं इससे तुल्य होनेसे प्राज्ञ और मकारकी एकता है अब इनकी एकताके ज्ञाताको फल कहतेहैं, जो ऐसे जानताहै सो निश्चय कर इस सर्व जगतको यथार्थ जानता है और जगतका कारणरूप होताहै यहां बीचके (अवांतर) फलका कथन मुख्यसाधनकी स्तुतिके अर्थ है ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ माण्डूक्य० ॥ १२ ॥

जिसकी मात्रा नहीं है ऐसा जो ॐकार सो अमात्र है और चतुर्थ अर्थात् तुरीयरूप हुआ केवल आत्मा ही है और वाच्यवाचकरूप वाणी और मनको मूलाज्ञानके क्षयसे क्षीण होनेसे व्यवहार करनेको अयोग्य है और प्रपंचके उपशमवाला है और शिव (कल्याणरूप) है और अद्वैत है ऐसे उक्त प्रकारके ज्ञानवाले पुरुषसे उच्चारण किया हुआ ॐकार तीनमात्रावाला और तीन पादवाला आत्माही है, जो ऐसे जानता है · जो ऐसे जानताहै सो अपनेही आत्मासे अपने परमार्थरूप आत्मामें प्रवेश करताहै, अर्थात् सुषुप्ति नामक तीसरे स्थानरूप बीजभावको दग्ध करके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके आत्माके अर्थ प्रवेश पायाहुआ फिर जन्म नहीं पाता, काहेसे कि तुरीयको अबीजरूप होनेसे, जैसे रज्जू और सर्पके विवेकके होनेमें रस्सीके विषे प्रवेशको पाया सर्प फिर तिन विवेकी पुरुषोंको भ्रान्तिज्ञानके संसारसे पूर्वकी समान नहीं होता तैसे यहां भी जानना, साधक भावको प्राप्त हुए और सन्मार्गमें वर्तनेवाले मात्रा और पादोंकी निश्चित तुल्यता जाननेवाले संन्यासी जनोंको तो यथार्थ उपासना किया हुआ ॐकार ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ आश्रय होताही है, इस प्रकार स्वामी शंकराचार्यजीने मांडूक्यउपनिषद्पर ॐकारका भाष्य किया है । इसी प्रकार

और भी उपनिषदोंमें वर्णन है यह केवल दिग्दर्शनमात्र है. परन्तु स्वामी दयानंदजीका किया अर्थ किसी भी ग्रंथके अनुसार नहीं है, इस कारण सत्यार्थप्रकाशमें यह ओंकारका अर्थ मिथ्या ही जानना बुद्धिमानोंको उचित है कि दयानन्द या उनके अनुयायियोंके वाग्जालसे सावधान रहें * ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतप्रथमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ।

समाप्तश्चेदमीश्वरनामप्रकरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतद्वितीयसमुल्लासस्य खण्डनम् ।

शिक्षाप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० २८ पं० १० धन्य है वोह माता जो गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्या न हो सुशीलताका उपदेश करे २३ । १० ।

समीक्षा–यहां तो स्वामीजीकी विलक्षणबुद्धि होगई जो लिखा कि "गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्या न हो सुशीलताका उपदेश करे" भला ! गर्भाधानमें सुशीलताका उपदेश किस प्रकार होसक्ताहै हां यदि बालकके पुष्टि होनेकी कोई औषधी लिखते तो ठीक होता कि, गर्भमें बालककी पुष्टि होना सदैवकाल अच्छा है उपदेश तो 'सत्यं वद धर्मं चर' इस प्रकार उपनिषदोंमें कहे हैं क्या दयानन्दियोंको गर्भमें उपदेश दिये जाते हैं क्या रजवीर्य मिलतेही उपदेश समझनेकी शक्ति आजाती है ।

स० प्र० पृ० २८ पं० १६ जैसा ऋतुगमनकी विधिका समय है कि, रजोदर्शनके पांचवें दिवससे लेके सोलहवें दिवसतक ऋतुदान देनेका समय है उन दिनोंमें प्रथमके चार दिन त्याज्य हैं रहे बारह दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी छोडके बाकीमें गर्भाधान करना २३ । १६ ।

समीक्षा–क्यों साहब क्या ? यह आपका लेख जो मनुस्मृतिसे उद्धृत किया है ज्योतिष विद्यासे सम्बन्ध रखता है या नहीं और ज्योतिष किसको कहते हैं यह रात्रि त्याज्य इसी कारण हैं कि, इनमें गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान उत्पन्न होती है और शेष रात्रियोंमें श्रेष्ठ संतान उत्पन्न होती है, तथा युग्म रात्रियोंमें पुत्र अयुग्ममें कन्या होना मनुजीने लिखा है, त्याज्यरात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान और प्रशस्त रात्रियोंमें श्रेष्ठ संतानका होना यह फल नहीं तो और क्या है, आप फल मानते भी नहीं और यहाँ यह गुप्त लिख भी दिया । यदि

* इन सर्वोपर भा० म० वादीसे कुछ कहते न बना मौन हो बैठा ।

एकादशीको रजोधर्म हो तो बारह दिन निरन्तर बचे । स० पृ० २९ पं० ३० स्त्री योनिसंकोच शोधन और पुरुष वीर्यस्तम्भन करें–२४।२४ ।

समीक्षा–शिक्षा तौ इसीका नाम है परन्तु इसमें संकोचनकी औषधी आपने क्यों नहीं लिखी आपकी शिक्षा माननेहारी स्त्रियें हाथही मलती रह जायँगी क्योंकि स्त्रियें संकोचन किस प्रकार करें यह आपने नहीं लिखा यदि आप औषधी लिख देते तौ विषयी स्त्रीपुरुष आपसे बहुत प्रसन्न होते, क्योंकि यह आपको अच्छी तरह ज्ञात है कि, विना संकोचन स्त्री पुरुषोंको आनन्द कमती होताहै कामशास्त्रमें भी आपका बडा अभ्यास है पर यह तौ कहिये कि, यह शिक्षा स्त्रियोंसे कौन करै आप या उनके माता पिता ॥

स० प्र० पृ० ३० पं० ४ उपस्थेन्द्रियके स्पर्श और मर्दनसे वीर्यकी क्षीणता नपुंसकता होती है तथा हस्तमें दुर्गन्ध भी होती है इससे उसका स्पर्श कभी न करें ॥ २९ । १० ।

- समीक्षा–यह शिक्षा माताको करनी लिखी है माता जब इस शिक्षाको करैगी तब लज्जा जो स्त्रीजातिका भूषण है कोनेमें रख देगी क्योंकि, पृ० २९ पं० २२ में आप लिखते हैं माता इस प्रकार शिक्षा करै आपने सोचा होगा हम कहाँतक समझाते फिरेंगे स्त्रियोंपर ही इस बातका बोझ डालदिया परन्तु आपकी समान औरको इतना अभ्यास न होगा क्योंकि, आपने इसको खूब जांच करली मालूम होती है ॥ (१) ।

स० पृ० ३० पं० १५। गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ मनु० ॥ ५ । ६५ ॥ श्लो० ।

जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होताहै, और जब उस शरीरका दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होताहै अर्थात् यह अमुकनामा पुरुष था जितने उत्पन्न हों वर्त्तमानमें आके न रहें वे भूतस्थ होनेसे उनका नाम भूत है ऐसे ब्रह्मासे लेकर विद्वानोंका आजतक सिद्धान्त है परन्तु जिसको शंका कुसंग कुसंस्कार होताहै उसको भय और शंका रूप भूत प्रेत शाकिनी डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं (फिर२७पंक्तिमें लिखा है कि) अज्ञानी

१ भा० प्र० में माता गणनान्त्याकी बात कहता है सो यहां उसको बाधन्ते शुन्धामि माधुते शुन्धामि इस मंत्रके दयानन्दीभाष्यका स्मरण करना चाहिये तभी लाज रहेगी । गुरुप्रेता गुरुपत्नी यह सब मृतके विरुद्धही बन गया है ।

लोग वैदिक शास्त्र वा पदार्थविद्याके पढने सुननेसे और विचारसे रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरक और उन्मादादी मानस रोगोंका नाम भूत प्रेतादि धरते हैं २५। १९। और २६।९ ॥

समीक्षा-स्वामीजी आप जब कोई बात बनाते हैं तौ कोई श्लोक लिखकर उसका अर्थ उलटा कर देते हैं यही लीला इस श्लोकमें फैलाई है कि (पितृमेध समाचरन्) इस पदके अर्थही खुलासा न लिखे इसका अर्थ यह है कि, जब गुरुका शरीर छूट जाय तौ शिष्य गुरुकी अन्त्येष्टि क्रिया पिंडादि विधान करता हुआ मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होताहै और प्रेतयोनि एक पृथक् है जिसको जीव शरीर त्यागने उपरान्त कर्मानुसार प्राप्त होताहै "और जो वर्तमानमें आकर न रहे वह भूत कहलाता है" यह स्वामीजीका लेख समयका बोधक है इसका यहाँ कोइभी प्रकरण नहीं है जो आपने यह मनुष्योंपर लगाया तौ आपभी अब मरकर भूत संज्ञक हुए, यह शिक्षा आपके शिष्योंको ग्रहण करनी योग्य है चाहिये कि, आपके नामके अन्तमें अब भूतशब्द और लगा दें तौ परमहंसकी शोभा बढ जायगी, ब्रह्मादिकोंने तौ कहीं ऐसा नहीं लिखा, यह आपहीके मुखसे निर्गत है, आप अपना मुँह क्यों छिपाया करते हैं, क्या यहाँभी पिताजीका डर है जो वह आकरें पकड लेजायँगे, अपना नाम लिख दिया कीजिये कि, मैं ऐसा मानता हूं, आप भूत प्रेतादिकोंको नहीं मानते देखिये मनु वेद चरक सुश्रुत आदिसे आपको दिखाते हैं । भूतप्रेतके होनेमें प्रमाण अथर्व कां० ८ सू० ९ प्रपाठक १८ नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः सर्वा दिशो विराजति यो बिभर्तीमं मणिम् १ मं० १३ यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् । छायामिव प्रतान्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ८ ॥ स्त्रोणां श्रोणि प्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय १३ येषां पश्चात्प्रपदानि पुरःपार्ष्णीः पुरोमुखाः खलजाः शक-धूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुंभमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतिबो-धेन नाशय १५ य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः॥ गर्भान् खादन्ति केश-वास्तानितो नाशयामसि सू० ६ प्र० १९ मंत्र १३।१५॥२३।*

अर्थ-गर्भवती स्त्रीकी रक्षामें मणिबन्धन मंत्र है बालकोंकी रक्षार्थ मणिबन्धन मन्त्र है जो इसको धारण करते हैं उनको अप्सरा गंधर्व मनुष्य बाधा नहीं दे सकते १ हे गर्भवती स्त्री ! सोते समय जो गन्धर्वादि तेरे साथ छल करें जो जागतमें बाधा दे उसका नाश यह मंत्रयुक्त मणिबन्ध करै जैसे सूर्य अन्धकार दूर करता है २ जिन पिशाचोंके पैर पीछेको फिरे हुए, एडी पांवके आगे उलटे चरण इस नामसे प्रसिद्ध हैं, हे ब्रह्मणस्पते ! उन दुष्टोंका नाश करो ३ जो गंधर्व पिशा-

* मेरठके स्वामी यहां मौन है।

न्यादिक कच्चे मांसके खानेवाले मनुष्य मांसको खाते गर्भको खाते उनका नाश करो ४ (यस्ते गर्भं प्रति मृशाज्जातं वा मारयति ते पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् । अथर्व० १८)हे स्त्री ! जो तेरे गर्भमें प्रवेश कर बालकको मारता है उस पिशाचका नाश हो ॥

वृहदारण्यक अ० ३ ब्राह्मण । ३ । श्रु० १ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ते पतंजलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कासीति सोऽब्रवीत् सुधन्वांगिरस इति १ *

याज्ञवल्क्यने कहा–हम मद्रदेशमें फिरते रहे वहां पतंजलकी कन्याको गन्धर्वने ग्रहण किया हमने उससे पूंछा तुम कौन हो उसने कहा मैं सुधन्वाआंगिरस हूं जब कि, वेद उपनिषद् गंधर्व पिशाच राक्षसके लक्षण और उनका होना स्वीकार करते हैं उपनिषदमें इतिहास विद्यमान है फिर इसको कौन खण्डन कर सकता है कि, पिशाचादि नहीं हैं जैसे दर्पणमें छाया प्रवेश करती है ऐसे यह देहमें प्रवेश करतेहैं, अथर्वमें बहुत विस्तार है जिसे देखना हो देख ले अंक ऊपर दिये हैं तथा सुश्रुतके उत्तर तंत्र अध्याय साठमें पूरा वर्णन है जब वेदमें है तब वहांसे उतारकर ग्रन्थका विस्तार करना बाहुल्यमात्र है बुद्धिमानोंको यही बहुत है ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोसुरान् । नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ मनु अ० १ श्लो० ३७

यक्ष राक्षस पिशाच गन्धर्व अप्सरा नाग सर्प गरुड और पितृगणोंकोभी उत्पन्न किया ॥

प्रजापतिः ऋषिः कव्यवाहनाग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः उल्मुकं पुरस्तात्करोतीति कात्या० ४ । १ । ९

ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ॥ परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ यजु० अ० २ मं० ३० । अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । तस्मादेव निदधाति श० २ । ४ । २ । १५ ॥

"अग्नि ही राक्षसोंका नाशक है इस कारण "उल्मुकधारण किया जाता है"

---

* मेरठके स्वामी यहां चुप लगा गये हैं ।

(स्वधया) पितरोंका अन्न श्राद्धमें भक्षण करनेकी इच्छासे (रूपाणि प्रतिं मुञ्चमानाः) अपने रूपोंको पितरोंकी समान करते हुये (ये) जो देवविरोधी (असुराश्चरन्ति) असुर पितृस्थानमें फिरते हैं तथा (ये) जो असुर (परापुरो निपुरः) स्थूल और सूक्ष्म देहोंको अपना अपना असुरत्व छिपानेके लिये (भरन्ति) धारण करतेहैं उल्मुकरूप (अग्निः) अग्नि (तान्) असुरोंको इस पितृ यज्ञस्थानसे (प्रणुदात्) हटावे इससे प्रगट है कि, राक्षसादि विघ्नदायक होते हैं और मंत्र पढनेसे भाग जातेहैं सुश्रुतमें भी इस प्रकार लिखा हैः–

भूतविद्यानामदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहा-द्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान १

अर्थ–भूतविद्या जो आठ प्रकारके आयुर्वेदके विभागमें चतुर्थ है उसको कहतेहैं कि, देव असुर गंधर्व यक्ष राक्षस पितर पिशाच और नाग आदि ग्रहोंकरके व्याप्त चित्तवाले पुरुषोंको ग्रहशान्ति करनेसे आरोग्यता होती है, जो शान्ति बलि देना आदि कर्मको भूतविद्या कहतेहैं वे समझे यहां भी यह योनिवर्णन करी हैं जिनको बलि देनेसे मनुष्यपर जो आच्छादन होताहै सो जाता रहताहै ॥

स० पृ० ३१ पं० १९ परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पांच जूता दंड या चपेटा लातें मारे उसके हनुमान देवी भागजाते हैं ॥ २६ । २७

समीक्षा–वाह क्या आपका यही न्याययुक्त सभ्यताका कथन है इसीका नाम मंगलाचरण है निश्चय जानिये उन देवतोंने ही आपका प्राण शरीरसे निर्गत करदिया, नहीं तो ब्रह्मचर्यवालोंकी तो आपके कथनानुसार बडी उमर होती, आगे भी यह प्रसंग लिखेंगे देवताओंको दुर्वचन कहनेसे आयु क्षीण होती है (निकट काल जेहि आव गुसाई । तेहि भ्रम होय तुम्हारी नाई ॥)

स० पृ० ३१ पं० ३० (प्रश्न) तो क्या ज्योतिश्शास्त्र झूंठा है (उत्तर) नहीं जो उसमें अंकबीज रेखागणितविद्या है वह सब सच्चा जो फलकी लीला है वोह सब झूंठ है यह जन्मपत्र नहीं शोकपत्र है ॥ २७ । ९

समीक्षा—न जाने यह शिक्षा कौनसे वेदकी है जो प्रश्नोत्तर आप ही गढलिये हैं ज्योतिशास्त्र फल झूंठा है अंक सत्य हैं इसमें कुछ प्रमाण भी है या जो मुँहमें

१ भा० प्रका० में इस मंत्रका अर्थ प्रमाणरहित संगहीन लिखा और दयानंदके भाष्यसेभी विरुद्ध लिखा इस कारण वह सर्वथा विरुद्ध है और सुश्रुतके प्रमाणका समाधान कुछ न होसका और एकप्रकारसे भूतादि मानही बैठे जहां ६० अध्यायपर दृष्टितो दी होती ॥

आया सो लिख दिया, जरा अपने ही टीका किये कारकीयके पृ० २० पं० १९ में देखा होता ॥

(उत्पातेन ज्ञाप्यमाने) वार्तिक-आकाशसे बिजली चमकने और ओले गिरनेको उत्पात कहतेहैं, इस उत्पातसे जो बात जानी जावे उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है यथा-

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ (महाभाष्यम्)

जो पीली बिजली चमके तो अधिक हवा चले, लोहित वर्णकी चमके तो आतप अर्थात् गरमी अधिक हो, जो काली चमके तो सर्वका नाश प्रलय हो, श्वेत चमके तो दुर्भिक्ष हो, कहिये यह फलित नहीं तो और क्या है शुभाशुभ फल भविष्य वार्ता सब कुछ ज्योतिषसे ही जाना जाताहै. धन्य है आपकी बुद्धिको जो शास्त्रकर्ताओंको झूंठा बतातेहो यदि जन्मपत्री शुभाशुभ फलके ज्ञानमात्रसे शोकपत्र है इस कारणसे उसका बनाना निष्प्रयोजन है तो यावत् शास्त्र विद्यादिक जो मनुष्योंको शुभाशुभका ज्ञान करानेवाले हैं सब ही निष्फल होजायँगे, और यह तो कहिये यह आपके उत्पन्न होनेका दिन संवत् आपको उत्पन्न होनेसे ही याद है या कोई प्रमाण भी है कि, आपका जन्म इसी संवत्में हुआथा वाह लोगोंके जन्म दिनकी तिथि ही आप मेटना चाहतेहैं जिसमें कि, जन्मदिन, नक्षत्र, मास, संवत्, ग्रह लिखे होते हैं जिससे मनुष्योंको अपने जन्मदिवसका ज्ञान होजाताहै और ग्रहोंसे फल और जन्मतिथिका भी ज्ञान होजाताहै वह शोकपत्र और आपके लिखे विवाहके फोटो और जीवनचरित्र क्या है ॥ शोलहूर्के छपाये नोटिसमें ' तथैका भृगुसंहिता सत्या ' इस वचनसे आप भृगुसंहिता सत्य मानतेहैं उसमें फलित नहीं तो और क्या है ।

पृ० ३१ पं० २७ क्या ये (ग्रह) चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख देसकें ॥ २७ । ६

समीक्षा-यदि यह दुःख सुख नहीं दे सकें तो वेदोंमें इनकी शान्ति क्या वृथा की है सुनिये ॥

शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाःशमादित्यश्च राहुणा ॥ अथर्व वेद ।

अर्थ-ग्रह चन्द्र तथा राहुसे ग्रस्त हमारे लिये शान्तिकारक हों, यह वेदमें शांति प्रकरण क्या वृथा है इसीसे ग्रह दुःख सुख देनेहारे सिद्ध होतेहैं विशेष वर्ण ज्योतिषप्रकरण ११ समुल्लासमें करेंगे जन्मपत्रमें ग्रह लिखे जाते हैं यह बात

वाल्मीकियरामायणमें विदितं है: रामचन्द्रजीके जन्मसमय उन्होंने नक्षत्रादि लिखे हैं * ॥

स॰ प्रकाश पृ॰ ३३ पं॰ २ कोई कहता है कि, जो मंत्र पढ़के डारा वा यंत्र बना देवे तो हमारे देवता उस मंत्र यंत्रके प्रतापसे कोई विघ्न नहीं होने देते उनको वही उत्तर देना चाहिये तुम क्या परमेश्वरके नियम और कर्मफलसे भी बचा सकोगे ॥ २८ । १३

समीक्षा-अब गंडे डोरी बांधनेसे जो रक्षा होतीहै सो भी सुनो ॥

नतद्रक्षांसिनपिशाचाश्चरन्तिदेवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् । योबिभर्तिदाक्षायणꣳहिरण्यꣳसदेवेषु कृणुतेदीर्घमायुः समनुष्येषुकृणुतेदीर्घमायुः ॥ ५१ ॥ यजु॰ अ॰ ३४

जो सुवर्णको धारण करते हैं, राक्षस और पिशाच उनको अतिक्रमण नहीं करसक्ते यह देवगणका प्रथम उत्पन्न तेज है, यह दाक्षायण तेज जो धारण करता है वह देवता और मनुष्यलोकमें सर्वत्रही दीर्घायु लाभ करता है ॥ ५१ ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणाहिरण्यꣳशतानीकाय सुमनस्यमानाः ॥ तन्मआबध्नामिशतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ यजु॰ अ॰ ३४ मंत्र ५२

श्रेष्ठ ब्राह्मण डोरेमें यही सुवर्ण बडी सेनावाले राजोंके बांधते हुए, शरीरमें धारण करनेसे सुमन और सैकडों वर्ष इसके धारण करनेसे सुख साधनमें समर्थ हुआ जाताहै, संवत्सरजीवी हूं इस कारण मैं भी इस सुवर्णको डोरेमें बांधताहूँ॥५२॥

डोरा बांधनेसे और मंत्र पढके रक्षा नहीं होती तो अपने पंचमहायज्ञविधिमें पृ॰ ५ पं॰ ११ में लिखा है " इसके अनंतर गायत्रीमंत्रसे शिखाको बांधके रक्षा करे, अब कोई स्वामीजीसे पूछे कि, आप बताइये गायत्री पढकर रक्षा क्या करे और किससे करे यदि शिखा बांधनेहीसे रक्षा होजाय तो तलवार बंदूक तमंचा किसी कामका नहीं है, यदि दो दयानन्दी संध्योपासनके अनन्तर कुस्ती लडें तो कोई भी न हारे क्यों कि, दोनों रक्षा कर चुके हैं और कोई जीते भी नहीं क्यों कि, दोनों रक्षा कर चुके हैं (प्रश्न) तो तुम रक्षा और मंत्रका फल कैसा मानते हो (उत्तर) हम लोग मांत्रिक रक्षाका फल अध्यात्मगत मानतेहैं देखिये:गायत्री मंत्रका फल ॥

---

* पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः वा॰ रा॰ स॰ १८ श्लो॰ १५
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ-१९

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ॥ महतोप्येन-सो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ मनु० अ० २ श्लो० ७९ ॥

संध्या वा प्रातः समयमें इस त्रिक अर्थात् गायत्रीको सहस्रवार ग्रामके बाहर नदीतीर वा अरण्यमें एक मास जपनेसे द्विज महान् पापसे छूटताहै क्यों साहब यह मंत्रसे पाप दूरकी विधि लिखी है या नहीं फिर क्या यह मंत्र परमेश्वरके नियममें है या नहीं ? अघमर्षण मंत्र वह पाप दूर होनेके निमित्त जपा जाताहै या नहीं ? वाल्मीकिरामायणमें लिखा है जब रामचंद्र वनको चले तौ कौशल्याने मंत्र पढकर रक्षा की,[१] सुश्रुतके सूत्रस्थानमें रोगोंकी भूत प्रेतादिसे मंत्र पढकर रक्षा करनी लिखी है, मणिबंधनादि पूर्व लिख चुके हैं, जितने विघ्नोंका विधान है उन सबकी शान्ति मंत्रोंद्वारा होजाती है और उन मंत्रोंके देवता विघ्न नहीं होने देते, यह ईश्वरका नियम ही है कि, देवताओंके मंत्र जपनेसे विघ्न नहीं होता शौनक कृत ऋग्विधान देखिये कि उसमें अनेक वैदिक मंत्रोंके जपनेसे रोगशान्ति ग्रहशान्ति अरिष्टशान्ति लिखीहै, तथा और भी अनेक मंत्र हैं वेदके जो भूत प्रेत पिशाचोंकी शान्ति करतेहैं ग्रहोंकी शान्ति करते हैं ।

८।७।१४ रात्रिसूक्तं जपेद्रात्रौ त्रिवारं तु दिने दिने ।
भूतप्रेतादिचोरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम् ॥ १ ॥
३।४।२३ कृणुष्वेति जपेत्सूक्तं श्राद्धकाले प्रशस्तकम् ।
रक्षोघ्नं पितृतुष्टयर्थं पूर्णं भवति सर्वतः ॥ २ ॥
६।२।९ येपामावाधमंत्रं च जपेच्चेऽयुतं जले ।
बालग्रहा न पीडयन्ते भूतप्रेतादयस्तथा ॥ ३ ॥ *

जो रात्रिसूक्तको रात्रिमें प्रति दिन तीन वार जपता रहै तौ भूत प्रेत आदि चोर आदि दुष्ट मनुष्य व्याघ्रादि दुष्टजंतुओंका नाश हो १

जो इस कृणुष्वेति सूक्तको श्राद्धके समयमें जपै तौ राक्षसोंका नाश और पितरोंकी तृप्ति होती है २

येपामावाधेति इस मंत्रको जलमें खडे हो तीस सहस्र ३०००० जपे तौ बालग्रह भूत प्रेत नाश होजाते हैं ३

---

१ अयोध्याकाण्ड २९ वां सर्ग देखो ।

* भा० प्र० के कर्ताको वेदमें यह सूक्त और मंत्र पता लिखा होनेपरभी नहीं सूझता तो हम क्या करें " विमूढा नानुपश्यन्ति " यहांपर उनके आक्षेपभी मिथ्या हैं कारण हमारा पाठ उन्होंने अशुद्ध उतारा है ।

स० पृ० ३३ पं० २९ नौवर्षके आरंभमें द्विज अपने संतानोंका उपनयन करके आर्यकुलमें अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों वहां लडके और लडकियोंको भेज दे, और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदें २९ । ११

समीक्षा–इस स्थानमें तो मति ठिकाने है कि, शूद्रका उपनयन न हो जातिहीं सिद्ध रक्खी है, और द्विजसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्यका ग्रहण किया है यह प्रतिज्ञा यहाँ छूटगई कि, महामूर्खकोही शूद्र कहते हैं जिस पढायेसे कुछ न आवे परन्तु आगे तीसरे समुल्लासमें इस अपने लेखकी बहुतेरी मट्टी ख्वार की है सो इसका खंडन वहीं होगा ॥

स० प्र० पृ० ३९ पं० १ बडोंको मान्य दे उनके सामने उठकर जाकर उच्चासनपर बैठा प्रथम नमस्ते करे ३० । १४ पृ० ९६ पं० १७ और दिनरातमें जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक दूसरेसे करें ३०।२०

समीक्षा–यह नमस्ते की परिपाटी भी अजब ढंगकी चलाई है, पर परस्पर नमस्ते करनेका कोई प्रमाण नहीं लिखा, आपने तो सबही ढंग बदल दिये कोई पुरानी बात रहने ही नहीं दी यदि वश चलता तो आप संस्कृतके स्थानमेंभी कोई औरही विद्या गढते परन्तु उससे कोई कार्य की सिद्धि नहीं होती, जिस प्रकार यवन लोगोंमें भी यह परिपाटी प्रचलित है कि, स्त्री अपने पतिको मियाँ कहती हैं और बेटे बेटीभी बापको मियांही कहते हैं उसी प्रकार यह आपका नमस्ते है कि, बेटा बाप गुरु चेले लुगाई भंगी चमार सब कोई एक दूसरेसे नमस्ते करते हैं और छोटाई बडाई कुछभी नहीं है सच बूझिये तो यही वर्णसंकरकी जड है, नमस्तेका अर्थ तो यही है कि, मैं तेरेसे नीचा हूं कमताइ इससे बडे लोगोंका मान तो कुछ नहीं, किन्तु जब वेभी नमस्ते करते हैं तो उनका गौरव नष्ट हो जाताहै, स्तुतियोंमें यह शब्द आता है पर यह नहीं कि, जिस देवताकी स्तुति करो वहभी नमस्ते करने लगे, और जो बुद्धिको तिलाञ्जलि देकर यह कहते हैं कि (नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च) यजुः अ० १६ मं० ३२ छोटे बडेको नमस्कार लिखा है वह प्रथम यह तो विचारें कि, यह रुद्राध्यायका मंत्र है जिसमें ज्येष्ठ कनिष्ठके अर्थ व्यष्टि और समष्टिके हैं अर्थात् व्यष्टिसमष्टिरूप शिवके लिये नमस्कार किया है, इसमें कुछ बडे छोटे मनुष्यको नमः करनेको नहीं लिखा है, परन्तु जो प्राचीन विधि व्यवहार की है सो दिखलाते हैं ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामंति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥
अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ।
असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥ १२२ ॥
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ।
तान्प्राज्ञोहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥ १२३ ॥
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोभिवादने ।
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः ॥ १२४ ॥
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरप्लुतः ॥ १२५ ॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ १२७॥ मनु० अ० २

अर्थ–जिससे लौकिक विद्या पढे वा वेदविद्या पढे तथा ब्रह्मविद्या पढे उस प्रति- कि बीचमें बैठे हुएको प्रथम अभिवादन करे ११७ शय्यासन विद्याधिक ः अधिक वा गुरु इनके स्वीकार किये होनेपरभी उसी समयमें आप बराबर ठे और गुरु आवे तौ उठकर प्रणाम करै ११९ थोडी उमरवालेके वृद्धके घर में प्राण ऊपरको होते हैं जब उठकरके प्रणाम करता है तौ स्वस्थानको प्राप्त हैं, इस कारण अपनेसे बडोंको नित्य अभिवादन करना १२० जो प्रतिदिन की सेवा और नमस्कार करनेवाला है उसकी आयु, धन, बल, यश यह चार वृद्धिको प्राप्त होती हैं १२१ विप्र वृद्धजनोंको प्रणाम करता हुआ मैं प्रणाम हूं इस शब्दके अन्तमें अमुक नामवाला हूं यह कहै १२२ जो कोई नामधे-

यके उच्चारणपूर्वक अभिवादन करना नहीं जानते विना संस्कृत पढे हुए, उनके प्रति बुद्धिमान् ऐसा कहे कि, प्रणाम करता हूं और स्त्रियेंभी ऐसाही करें १२३ नाम और अभिवादनके अन्तमें भो शब्दका उच्चारण करें अभिवाद्यके नामके स्वरूपकी जो सत्ता है सो (भोः) इस संबोधनसे होती है यह ऋषियोंने कहाहै १२४ प्रणाम करनेपर आयुष्मान् भव सौम्येति अर्थात् जीते रहो ऐसा ब्राह्मण करे प्रणाम करनेवालेके नामके अन्तके पूर्व अक्षरको प्लुत करे १२५ जो ब्राह्मण अभिवादनपर क्या कहना चाहिये इसको नहीं जानता यह ब्राह्मण शूद्रवत् है अभिवादन करनेके योग्य नहीं है (समाजी पण्डित जो समाजके नाई धोबी शूद्रादि सबसे नमस्तेही करतेहैं उन्हें इस श्लोकपर ध्यान रखना चाहिये) १२६ प्रणामादिके अनन्तर ब्राह्मणसे कुशल क्षत्रियसे अनामय वैश्यसे क्षेम शूद्रसे आरोग्य पूछे १२७

इस प्रकार मनुस्मृतिमें वर्णन है स्वामीजी इस स्थलमें मनुस्मृति देखते २ ऊंघ गये होंगे दृष्टि उनकी इस स्थानपर न पडी होगी परन्तु समाजियोंको क्या सूझी है कि, सबसे नमस्तेही कहते हैं चाहे बेटा हो छोटा भाई हो शूद्र हो गुरु हो समाजका उपदेशक हो सबसे नमस्ते करते हैं, परन्तु विशेष आश्चर्य तो उन समाजी पंडितोंपर है जो आनन्दसे बैठे वैश्य शूद्रोंको नमस्ते कहते हैं वे (यो नवेत्त्यभिवादस्य०) इस वाक्यानुसार शूद्रवतही हैं महाशयो ! क्या तुम्हारी बुद्धि समाजियोंने कोई औषधी खिलाकर हर ली है, पैसेका लोभ करो तो तुम्हारे पितादिकभी तो उदर पूर्ण करतेही थे और तुमसे चौगुना द्रव्योपार्जन करते थे, क्यों काठकी पुतलीकी नाई नाचरहे हो सदैव यहाही रहना नहीं होगा, समझो तो नमस्ते है क्या पदार्थ, जो चिट्ठीमेंभी लिख देते हो कि, हमारी अमुकसे नमस्ते कहदेना, यह कैसे बनसक्ता है जो सामने विद्यमान हो उससे कह सक्ते हैं इससे चिट्ठीमेंभी यह बात नहीं बनसक्ती इस कारण नमस्ते कभी नहीं करना चाहिये प्रणाम दंडवत् आदि करना योग्य है ॥

स० प्र० पृ० ३९ पं० ३ यही माता पिताका कर्तव्यकर्म परम धर्म और कीर्तिका काम है जो सन्तानोंको उत्तम शिक्षा करना (पुनः) यह बालशिक्षामें थोडासा लिखा है इतनेहीसे बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे ॥ ३१।२०

समीक्षा-वाह वडी सुन्दर शिक्षा लिखी बालकोंके माता पिताको शिक्षा करी माता पिता अपने बालकों और बालकियोंको करेंगे यह शिक्षा आपकी कौनसे वेदानुसार है कोई वेदका प्रमाण नहीं लिखा इस शिक्षाको स्वतः प्रमाण मानें या

---

* स्वामीजी तो भंग पीते थे इससे ऊंघगये पर भास्करीके कर्ताकी एक दृष्टिभी इन श्लोकोंपर न पडी और शिक्षामें आपही वेदमंत्रका कोई प्रमाण न देसके जब गुरुही मटकते हैं तो चेलोंकी क्या दशा है ।

परतः प्रमाण जिसमें संकोच न करना उपस्थेन्द्रियपर हाथ न रखना नमस्ते परस्पर करना यही सिखाया पर यह तो आपकी कल्पनाही है यह थोडीसी बालशिक्षा नहीं सत्यानाश करने तथा नास्तिक वर्णसंकर बनानेको यही बहुत है, बुद्धिमान् इसको बहुत ही अच्छी तरह समझतेहैं और आपकी वेदविरुद्ध शिक्षाओंसे पृथक् ही रहते हैं ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतद्वितीयसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥२॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनम् ।

अध्ययनाध्यापनप्रकरणम् ।

स० पृ० ३८ पं० १२ कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् । मनु०

इसका अभिप्राय यह है कि, इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि, पांचवे अथवा आठवें वर्षसे आगे अपने लडके और लडकियोंको घरमें न रखसकें पाठशालामें अवश्य भेजदेवें, जो न भेजें वे दंडनीय: हों प्रथम लडकेका यज्ञोपवीत घरमें हो और दूसरा पाठशालामें आचार्यकुलमें हो पिता माता वा अध्यापक लडके लडकियोंको अर्थसहित गायत्रीमंत्रका उपदेश करें ३३ ।१७

समीक्षा-यह इतना लम्बा चौडा अभिप्राय कौनसे अक्षरोंसे सिद्ध होताहै आठ वर्षसे आगे पुत्र पुत्रीको घरमें रखनेसे मनुष्य दंडनीय हों, ऐसे ही अभिप्रायोंने तो नव शिक्षितोंकी बुद्धिपर परदा डालदियाहै इस श्लोकका यों तात्पर्य है और राजधर्मप्रसंगमेंका है ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेक एव वा ॥ १५१ ॥
परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ।
कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥ १५२॥ अ०७

राजाको योग्य है, कि, दुपहर आधी रातके समयमें जब विश्राम युक्त हो और शरीर खेदरहित हो उस समय राजा मंत्रियों सहित वा आप ही धर्म काम अर्थ इनका विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके इनके अर्जनका उपाय अपने कुलकी कन्याओंका दान अर्थात्

किस स्थानमें विवाह करना चाहिये, और कुमारोंका रक्षण विनयादिक शिक्षा करनेका विचार करें इस श्लोकसे स्वामीजीका अर्थ किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता, यह एक बडी अद्भुत बात है कि, एक यज्ञोपवीत घरमें करे एक पाठशालामें, इसमें कोई अपनी ही संस्कृत बना गढके श्लोकके नामसे लिखी होती, और जब स्त्रियोंके यज्ञोपवीत होता ही नहीं तो भला उन्हें गायत्री पढनेका कब अधिकार है धन्य है आपकी बुद्धि यहां गायत्री पढना लिखदिया तो यज्ञोपवीत भी लिख देते, क्या डरथा समाजी तो मान्तेही उन्हें तो आपके वचन पत्थरकी लकीर हैं ॥

स० पृ० ३८ पं० १९ सावित्रीप्रकरणम् ।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इस मंत्रमें जो प्रथम ओ ३ म है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें करदिया है वहींसे जानलेना अब तीन महाव्याहृतियोंके अर्थ संक्षेपसे लिखतेहैं "भूरिति वै प्राणः यः प्राणयति चराचरं जगत् सः भूः स्वयंभूरीश्वरः" जो सब जगत्के जीवनका आधार प्राणसे भी प्रिय और स्वयंभू है उस प्राणवाचक होके भूः परमेश्वरका नाम है, "भुवरित्यपानः यः सर्वं दुःखमपानयति सोपानः" जो सब दुःखोंसे रहित जिसके संगसे जीव सब दुःखोंसे छूट जातेहैं इस लिये उस परमेश्वरका नाम भुवः है "स्वरिति व्यानः यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति सः व्यानः" जो नानाविध जगत्में व्यापक होके सबका धारण करता है इस लिये उस परमेश्वरका नाम स्वः है यह तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यकके हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत्का उत्पादक और सब ऐश्वर्यका दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखोंका देनेहारा और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब करतेहैं उस परमात्माका जो (वरेण्यम्) "वर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्ध स्वरूप और चेतन करनेवाला ब्रह्म स्वरूप है (तत्) उसी परमात्माके स्वरूपको हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें किस प्रयोजनके लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरण करे अर्थात् बुरे कामोंसे हटाकर अच्छे कामोंमें प्रवृत्त करे ३४ । २६

समीक्षा—दयानंदजीने महाव्याहृतियोंके अर्थमें भी गोलमाल कराहै तैत्तिरीय आरण्यकके नामसे स्वयं कल्पना की है अब ये वाक्य लिखे जातेहैं जो तैत्तिरीयमेंहैं।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामुह स्मैतां चतुर्थीम् माहाचमस्यः प्रवेदयते । मह इति तद्ब्रह्म स आत्मा अंगान्यन्यादेवताः भूरितिवाअयंलोकः भुव इत्यन्तारिक्षम् । सुव इत्यसौ लोकः १ मह इत्यादित्यः आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते ॥ तैत्तिरी०

इस उपनिषद्में ब्रह्मका उपदेश आगे पंचकोशरूप गुहामें करेंगे इस कारण प्रथम श्रद्धापूर्वक गृहीत व्याहृतियोंका त्याग असंभव है इसमें व्याहृति शरीर वाले हिरण्यगर्भकी उपासना स्वराज्यफलप्राप्ति हेतुका विधान करतेहैं, वोह व्याहृतिशरीररूप हिरण्यगर्भ हृदयमें ध्यान करने योग्य है भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृति हैं कहीं तो स्वः ऐसा व्याहृतिका आकार होताहै और कहीं सुवः ऐसा आकार होताहै, अर्थका भेद नहीं, क्यों कि, प्रातिशाख्य नाम वेदके व्याकरणमें स्वःके स्थानमें सुवः और स्वर्गके स्थानमें सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग होताहै, इन तीन व्याहृतियोंके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोक है, इसको महाचमसके पुत्र माहाचामस्य ऋषिने जाना वा देखा, यहां उपदेशसे जो यह माहाचामस्य ऋषिने देखी हुई महः व्याहृति है सो ब्रह्म है, अब इनकी तुल्यताको कथन करतेहैं जैसे कि ब्रह्म महत् है और व्याहृति महः है इससे इनकी एकता बनतीहै और यह महः आत्मा (ब्रह्मका रूप) है, क्योंकि, वोह महः व्याप्ति रूपकर्म वाला है, इससे सो आत्मा है और अन्य जो व्याहृतिरूप लोक देव वेद और प्राण हैं वे जिससे कि "महः" ब्रह्म है इस आगे कहनेके वाक्यसे कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देवलोक आदिक सर्व अवयवरूप हैं, और जिससे ये सूर्य चन्द्र ब्रह्म और अन्न रूपसे व्याप्त होते हैं इससे और देवता (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं और महाव्याहृति अंगी है, भाव यह है कि महाव्याहृति रूप जो अंगी है, हिरण्यगर्भ तिसके भूः व्याहृतिको पाद और भुवः व्याहृतिको बाहु और सुवः व्याहृतिको शिररूपसे ध्यान करें, ऐसी उपासनाकी विधि है सो कथन करतेहैं अर्थात् इत्यादि प्रजापति अंगोंको जिस २ रूपसे चिन्तन करताहै सो निरूपण करतेहैं ॥

पृथ्वीलोक प्रजापतिके पादरूप भूः व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापतिके बाहुरूप भुवः व्याहृति है, और स्वर्गलोक प्रजापतिका शिरोरूप सुवः व्याहृति है, और जो प्रकाशमान आदित्य है सो प्रजापतिका मध्यभागरूप महाव्याहृति है, भाव यह है कि पृथ्वीलोकमें प्रजापतिके पादकी दृष्टि करना, और अन्तरिक्षमें बाहुकी दृष्टि करना, स्वर्गमें प्रजापतिका शिर दृष्टि करना, और प्रजापतिके शरीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभागसे अंगोंकी वृद्धि

होतीहैं, इसी कारण कहतेहैं कि आदित्यसे सब लोकोंकी वृद्धि होतीहै, इसी प्रकारसे आगे अग्नि आदिमें प्रजापतिके अंगकी दृष्टि जानना ॥

भूरितिवाअग्निः । भुवइति वायुः सुवरित्यादित्यः महइति चन्द्रमाः चन्द्रमसावावसर्वाणिज्योती ँ षि महीयन्ते । भूरितिवा ऋचः भुवइति सामानि सुवरिति यजू ँ षि ॥ २ ॥

भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है भुवर् यह वायु है स्वर् सूर्य है महर् यह चन्द्रमा है चन्द्रमासे प्रसिद्ध सब ज्योति (तारा) वृद्धिको पातेहैं भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है भुवर् यह सामवेद है स्वर् यह यजुर्वेद है ॥ २ ॥

मह इतिब्रह्म । ब्रह्मणावाव सर्वे वेदामहीयन्ते । भूरितिवै प्राणः भुव इत्यपानः । सुवरितिव्यानः महइत्यन्नम् । अन्नेनवावसर्वेप्राणामहीयन्ते। तावाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ता यो वेद सवेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवाबलिमावहन्ति असौ लोको यजूंपि वेद द्वेच । तैत्तिरियउपनिपदि अनु० ५

अर्थ महर् यह ब्रह्म ॐकार है क्यों कि ॐकारसे ही सब वेद वृद्धिको प्राप्त क्योंकि होते हैं भूः यह प्राण है भुवर यह अपान है स्वः यह व्यान है महर् यह अन्न है अन्नसे ही सब प्राण वृद्धिको पातेहैं, जो यह उपचार व्याहृति चार प्रकारकी हैं इनका फल वर्णन करतेहैं कि एक एक व्याहृति चार चार प्रकारकी होगई तब प्रकरणानुसार षोडशकला युक्त पुरुषका ध्यान कहा व्याहृतिसे पृथ्वीकला अग्निकला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसी चतुष्कला तो प्रजापतिके पाद हैं, और अंतरिक्षकला वायुकला सामवेदकलाअपानकला ऐसी चतुष्कला बाहु हैं,, स्वर्गलोककला आदित्यकला यजुर्वेदकलाव्यानकला, ऐसी चतुष्कला प्रजापतिका शिर हैं, आदित्यकला चन्द्रकला ॐकारकला अन्नकला ऐसी प्रजापतिका आत्मशब्दप्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडशकला युक्त पुरुषको हृदयमें ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होताहै सो कथन करतेहैं, इन व्याहृतियोंको एवं प्रकारसे जो जानता है सो ब्रह्मको जानता है, तिसके अर्थ प्रजापतिके अंगभूत सब देवता बलिको प्राप्त करते हैं, सो यह लोक और यजुः दोनोंको जानता है और दयानन्दजीने इस षोडशकलायुक्त प्रजापतिकी उपासनाके प्रकरणमें भूरिति वै प्राणः भुवरित्यपानः सुवरिति व्यानः इतने भागको लेकर प्राण अपान और व्यान पदको परमेश्वरपरता वर्णन किया है परन्तु बुद्धिमान् विचारे कि यह कितनी धृष्टता है कि सगुणोपासनाके फलके लोप करनेको यह लीला रची है कि यह कौन प्रकरणके वाक्य हैं सो भी नहीं लिखा इस प्रकरणमें यह व्यानादि

ईश्वरवाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखा है कि (अन्नेन वाव सर्वे प्रा
महीयन्ते) अन्नसे ही सब प्राण वृद्धिको प्राप्त होतेहैं यदि यहां प्राणादि शब्
ईश्वरका ग्रहण किया जाय तो अन्नसे वृद्धि कहना असंगत हो जाय अब
देखना चाहिये कि स्वामीजीने जब ओंकार और व्याहृतियोंके ही अर्थोंमें अन
किया तो और मंत्रोंकी क्या कथा है अब गायत्री अर्थ लिखते हैं कि, प्राची
ग्रन्थोंमें इसका कैसा व्याख्यान किया है * ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौवादित्यः सविता सवा प्रवरणीय
आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथभर्गोदेवस्यधीमहीति सवि
तावैदेवस्ततोयोऽस्यभर्गाख्यस्तंचिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनः॥

प्रथम पादकी प्रतीक धरकर अर्थ करतेहैं सवितृपदका अर्थ असौ वा इत्यादि
यह जो प्रत्यक्ष आदित्य है सो सविता है आत्मकामकरके प्रवरणीय है अर्था
यह जो आत्मातिरिक्त पदार्थकी कामनारहित है तिसको यह सविता ही एकताबु
द्धिकरके प्रार्थनीय है, भाव यह है कि पिण्डसारप्राण और ब्रह्माण्डसार आदि
त्यकी एकताभावना करके दोनों उपाधिसे उपलक्षिततत्त्वको आत्मारूपसे भावन
करे, यह वेदवित् पुरुष कहते हैं अब द्वितीयपादकी व्याख्या करतेहैं देवशब्दवाच्य
सविता ही है तिस कारणसे सविताका जो भर्गाख्यरूप है तिसको चिन्तन करतेहैं
ऐसे वेदवित् कहतेहैं ॥

अथ धियोयोनः प्रचोदयादितिबुद्धयोवैधियस्तायोऽस्मा-
कंप्रचोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थ-अन्तःकरणकी वृत्तियोंको जो परमात्मा प्रेरणा करताहै यह ब्रह्मवादी
कहतेहैं तब मन्त्रका अर्थ ऐसा जानना " सवितुर्देवस्य यत् भर्गाख्यं वरेण्यं तत्
धीमहि । तत् किम् योऽस्माकं धियोऽन्तःकरणवृत्तीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सविता
देवता जो भर्ग तथा वरेण्य है तिसे हम ध्यान करतेहैं जो हमारी बुद्धिवृत्ति-
योंको प्रेरणा करता है ॥

अथभर्गं योहवा इति अमुष्मिन्नादित्य निहितस्तारकोऽ-
क्षिणिवैपभर्गाख्योभाभिर्गतिरस्यहीति भर्गोभर्जयतीतिवै-
पभर्ग इति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथ भइति भासयतीमान्
लोकान् रइति रंजयतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मि-

* भास्करप्रकाश कहताहै कि यही स्वामीजीका अर्थ है अब बुद्धिमान् विचारें कि इनका कथन कहांतक सत्य है।

न्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भर्गत्वाद् भर्गः शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यःसवनात् सविताऽऽदानादादित्यः पावनात् पवनोऽथापोप्यायनादित्येवंह्याह ॥

इसमें भर्ग और सवितृपदका व्याख्यान है और प्रसंगसे आदित्य सूर्य पावन आप शब्दोंके अर्थकोभी निर्णय करते हैं "योऽसुम्मिन्नादित्ये निहितो वा यश्चाक्षिणि तारको निहित एष भर्गाख्यः " यह अन्वय है जो यह आदित्यमंडलमें स्थित है अन्तर्यामी तथा जो नेत्रमें कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थित है यह भर्गाख्य वाला देव है (भाभिर्गमनमस्येतिभर्गः) किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाशकरके गमन होताहै तिस अन्तर्यामीका योह भर्ग है आशय यह कि केवल चेतनमें गमन व्यापक होनेसे बनता नहीं, परन्तु किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूपप्रकाश उपाधिके गमनसे गमन प्रतीत होताहै, ऐसे एक प्रकारसे भर्गशब्दकी निरुक्ति कहकर प्रकारान्तरसे निरुक्ति करते हैं (भर्जयतीति वा एष भर्गः) जो सर्वजगत्का संहार करताहै सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूप है परमात्माको, ऐसे वेदवित् कहते हैं । अब एक २ अक्षरके अर्थ करते हैं (भासयतीमान्लोकानितिभः) अपने मंडलके अन्तर्गत प्रकाशसे सर्वजगत्को प्रकाश करताहै इसकारण भ और (रंजयतीमानिभूतानि इति रः) अपने आनन्दरूपसे सर्व प्राणिवर्गको आनन्दित करताहै इससे र है (गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात् सर्वा इमाः प्रजा इति गः) और सुषुप्ति प्रबोधमें वा महाप्रलय उत्पत्ति कालमें सर्व प्रजा परमात्मामें लीन होकर फिर उत्पन्न होती है इससे ग है ऐसे भर्गपना होनेसे भर्ग है और (शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः) निरन्तर उदय और अस्त होकर, प्रातः कालादिकरनेसे सूर्य है और (सवनात् सविता) सर्व प्राणिवर्गकी सृष्टि अन्तर्यामीद्वारा उत्पत्ति कर्त्ता होनेसे सविता है और (आदानात् आदित्यः) पृथ्वीका रस तथा प्राणिवर्गकी आयुको ग्रहण करनेसे आदित्य है और (पवनात् पावनोप्येष एव) सबको पवित्र करनेसे पावन नाम वायु भी यह परमेश्वर है और आपनाम जल भी यह परमेश्वर ही है क्यों कि सर्व जगत्को (प्यायनात्) वृद्धि करनेसे वेदार्थवित् कहते हैं, इस प्रकारसे गायत्री मंत्रके दोपादसे अधिदैवतत्वका निश्चय करा, अर्थात् सूर्य वायु जल उपलक्षित सम्पूर्ण देवत - रूप परमात्माको बोधन किया, और सब जगत् उत्पत्तिपालनसंहारकर्तृत्व बोधन किया, तथा जगत् लयाधार और जगत् उपादान कारण भी भर्गपदव्याख्यानसे कहा, इस कहनेसे जड प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दजीका गायत्री ब्रह्मविद्याविरुद्ध है, इससे सज्जनोंको वे अर्थ त्याज्य है, अब गायत्रीके तृतीय

पादसे अध्यात्म तत्त्वका निर्णय करते हैं जिसके निर्णयसे स्वामीजी स्वीकृत चेतनका वास्तव भेद पक्ष भी खंडित हो क्यों कि औपाधिक भेद तो स्वीकृत है॥

खल्वात्मनोत्मानेतामृताख्यश्चेतामन्तागन्तोत्स्रष्टानन्दयिताकर्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशाति च ॥

अर्थ-(अमृताख्यः खलु आत्मनः आत्मा नेता) यह जो अमृताख्य प्राण है सो निश्चय ही आत्मा अर्थात् शरीर इन्द्रियसंघातका आत्मा है और नेता अर्थात् सर्व संघातका प्रेरक है, यहाँ अमृत कहनेसे प्राणके भी प्रेरक आत्मतत्त्वका ग्रहण है, प्राण उपाधिक होकर वह आत्मा नेता और चित्त औपाधिक चेता और मन औपाधिक मन्ता, पद औपाधिक गन्ता, पायु उपाधिसे उत्स्रष्टा, उपस्थ उपाधिसे आनन्दयिता, हस्त उपाधिसे कर्ता, वागिन्द्रिय उपाधिसे वक्ता, रसना उपाधिसे रसयिता (रसग्राही) और घ्राण उपाधिसे घ्राता (सूंघनेहारा) चक्षु उपाधिसे द्रष्टा देखनेहारा, श्रोत्र उपाधिसे सुननेहारा, त्वगिन्द्रिय उपाधिसे (स्पृशाति) छूनेवाला होताहै, चकारसे बुद्धि उपाधिसे अध्यवसैता, अहंकार उपाधिसे अभिमन्ता होताहै यह जानना ॥

विभुर्विग्रहेसन्निविष्टइत्येवंह्याह अथ यत्र द्वैतीभूतंविज्ञानं तत्रहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्वमात्माजानीतीति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यकारणकर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

अर्थ-(प्रश्न) जो पूर्व नेतृत्वादिविशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्या है (उत्तर) (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवं हि आह) विभु नाम व्यापक परमात्मा ही विग्रह (देह) में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिंगशरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेदसे नेतृत्वादिरूपसे कहा जाता है भाव यह है सो एक ही परमात्मा सर्व बुद्धिप्रेरक रूपसे उपास्य है ऐसे वेदज्ञाता कहते हैं इसी प्रकार बृ० उपनिषद्में लेख है कि:-

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येते सर्वएकंभवन्ति बृ० उ०अ०१ ब्रा० ४ । कं० ७

"द्रष्टा श्रोता आदिको (आत्मा इति एव उपासीत अत्र हि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मारूप करके परमात्मामें अभिन्न जानकर उपासना करे क्योंकि इस आत्मामें ही सर्व एक होतेहैं, " अब औपाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्षको अन्वय व्यतिरेकसे दृढ करतेहैं जहां द्वैतीभूत विज्ञान होताहै जाग्रदादि

• सब पाठ अलग २ लिखा होनेपर भी छोटे, स्वामी झूठा बताते हैं जिसे दीखैही नहीं उसे कोई क्या कहे।

अवस्थामें वहां सुनता है, देखता है, सूँघता है, रस लेता है, स्पर्श करता है और उपाधिविशिष्ट होकर एक ही आत्मा सर्वको जानता है, ऐसे उपाधिके सद्भाव कालमें भेद व्यवहार होता है, और जब सुषुप्ति समाधिकालमें अद्वैतीभूत विज्ञान होताहै, तब कार्य अर्थात् विषय, करण अर्थात् करणग्राम, कर्म अर्थात् क्रिया, इससे रहित निर्विशेष उपमारहित अप्रमेय होताहै, सो वस्तु निषेधबोधक शब्दोंसे ही क्यों कहते हो किसी तत् वा इदं आदि शब्दोंसे क्यों नहीं कहते यह (प्रश्न) करते हैं कि तद् इस पदसे अर्थ यह तत् सो वस्तु किं अर्थात् कैसी है (उत्तर) अवाच्यं नाम सर्व इन्द्रियव्यापारके उपराम होते जो सर्व व्यवहारका साक्षी होकर व्यवहारोपरति या साक्षी है सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्मरूप है किसी शब्दका वाच्य नहीं इस प्रकार इस स्थानमें उपाधिके व्यतिरेकमें अद्वैत कहा, यह ब्राह्मणादि ग्रंथोंसे गायत्रीका अर्थ वर्णन किया अब इस स्थानमें यह विचारणीय है कि दयानंदजीने जो सत्यार्थप्रकाश पृ० ६०१ में लिखा है ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रंथ हैं ता गायत्री जो वेदोंमें प्रधान है तिसका अर्थ किसी एक व्याख्यानकी रीतिसे तो लिखना दयानंदजीको अवश्य था, और जो ग्यारह सौ सत्ताईसशाखा लिखी हैं इसमें भी चार कमती लिखी हैं क्यों कि महाभाष्यकी रीतिसे ग्यारह सौ इकतीस शाखा होती हैं तो इन मंत्रोंके व्याख्यात होनेपर भी दयानंदजीको एक व्याख्यान भी गायत्री मंत्रके अर्थ निर्णयवास्ते न मिला तो फिर इनके कल्पित अर्थको कौन मानेगा फिर स्वामीजीने सवितृपदका व्याख्यान यह लिखा है जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता) दयानंदजी तो अपनेको निघण्टु निरुक्तका पण्डित मानते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्यों कि नि० * अ० ५ खं० ४ में सवितृपदका भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सविता षु प्रसवैश्वर्ययोः भू०। प०। तृचि सविता सर्वकर्म्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्यमें है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञानका है, अर्थात् फल देने वास्ते कर्मका स्वीकार करना सो सवितादेव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्गके कर्मको स्वीकार करता है और ऐश्वर्य नाम प्रेरणाका है सो सवितादेव सर्व जन्तु मात्रको कर्ममें प्रवृत्त करता है उदय होकर या ईश्वररूपसे सबका प्रेरक है तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानंदजीने "सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता" यह व्युत्पत्ति करी है इससे भाष्यविरुद्ध है तथा षुञ् अभिषवे स्वादिगणीय धातुका प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति यह अर्थ करा है सो भी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थसे विरुद्ध है।

* यहां निघण्टुका पद भा० प्र० कर्त्ताको निरुक्तका सूझी है धन्य दृष्टि धन्य पक्षपात।

क्यों कि अभिषव नाम कण्डनका है यथा सोमवल्लीका रस निकालनेमें सोमवल्लीका अभिषव अर्थात् कण्डन होताहै उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीका नहीं इससे पाणिनिके मतसे भी दयानंदजीका यह अर्थ विरुद्ध है और जो देवपदकी व्युत्पत्ति करी है ' यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः' इस व्युत्पत्तिसे तो व्याकरणको भी समेट धरा क्यों कि दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु, दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातुका प्रयोग लिखा है तो 'दीव्यति दीव्यते वा स देवः' उस स्थानमें धातु तो केवल परस्मैपदी और प्रयोग आत्मनेपदका भी लिख दिया सो प्रश्न यह है (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्ममें प्रत्यय करके लिखा है (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्ममें प्रत्यय करते तो इस कर्तृपदमें तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना योग्य था, और देवशब्दका वाच्य अर्थ प्रकाश क्रियाका कर्म जगत् जड वस्तु हो जाता, और जो कर्मकर्तृ अर्थमें प्रयोग कहैं तो भी असंगत है क्यों कि प्रथम परमात्मा प्रकाशक क्रियाका कर्म हो पश्चात् उसी कर्मको कर्तृस्वरूपसे विवक्षा हो तब कर्मकर्तरि प्रयोग हो, सो परमात्मा प्रकाशक्रियाका कर्म होगा तो पर प्रकाश्यत्वरूप जडताकी प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थमें दिव धातुको मानकर कर्ममें प्रत्यय करें तो देवशब्दका कर्तरि अर्थके प्रकरणमें पचादि गणमें पाठ होनेसे असंगत है, इससे दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषामें (सब सुखोंका देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा-किसी बाह्य साधनमें विलास, विजिगीषा-जीतनेकी इच्छा, व्यवहार-क्रयविक्रय करना, द्युति-प्रकाश, स्तुति-स्तवनक्रिया, मोद-आनंद होना, मद-अहंकार करना-स्वप्न-शयनक्रिया, कान्ति-इच्छा, गति-ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनिजीने इसके स्पष्ट लिख दिये हैं, परन्तु दयानन्दजीने टोटा समझ सुखदान भी इस धातुका अर्थ और कल्पना करलिया क्या पाणिनि ऋषिके अर्थोंसे आपका निर्वाह नहीं होता है, परन्तु मनमाना अर्थ तो नहीं निकलता इससे दयानन्दजीने नये अर्थकी कल्पना करी है ॥ गायत्रीप्रकरण पूर्ण हुआ ॥

अथ आचमनप्रकरणम् ।

स० पृ० ४१ पं० ७ आचमनसे कंठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोडासी होती है, मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे नेत्रादि अंगोंपर जल छिडके इससे आलस्य दूर होता है और जलप्राप्ति न हो तो न करे ॥ ३६ । २४

समीक्षा-यदि आचमन करना कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तो क्या सब ही संध्याकालमें कफपित्तग्रसित रहते हैं, और सबको आलस्य और

निद्रा ही दबाये रहती है, वह समय निद्राका कदापि नहीं और जलसे कफकी शान्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है, आचमन करना यदि कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तो हाथमें जल लेकर गायत्री और ब्रह्मतीर्थसे ही आचमन करनेकी क्या आवश्यकता है, क्या कोई आलस्य और कफने प्रतिज्ञापत्र लिख दिया है कि संध्यासमय हम सब संस्कार कर्ता तथा संध्या करनेवालोंके कंठमें फेरा करेंगे, यदि मार्जनका प्रयोजन आलस्य ही दूर करनेका होय तो एक चुटकी हुलास न सूंघलिया करें, अथवा चाहे व काफी पीलें जो पहरोंको काफी हो, नहीं तो सर्वोत्तम उपाय यह कि ऐमोनियाकी सीसी सूंघलें जिससे मूर्च्छातक भंग होजाय, आलस्यकी तो बात ही क्या है और स्नान करके ही प्रातःकाल संध्या करते हैं फिर स्नान करते ही आलस्य आगया तो मार्जनसे कैसे जा सका है, इससे स्वामीजीका यह कथन सर्वथा मिथ्या ही है, मनुजी आचमनकी विधि इस प्रकार लिखते हैं कि आचमन करनेसे आभ्यंतर शुद्धि होती है। तथा हि अध्याय २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥
अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥
कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ६० ॥
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ॥
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिस्तु भूमिपः ॥
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ६२ ॥

अर्थ--ब्राह्मण ब्राह्मतीर्थसे सदा आचमन करे अथवा देवतीर्थसे आचमन करे परन्तु पितृतीर्थसे आचमन न करे ५८ क्यों कि उसकी विधि नहीं है अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं और कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें कायतीर्थ और उसीके अग्रभागमें देवतीर्थ तथा अंगुष्ठ प्रदेशिनीके मध्यमें पितृतीर्थ कहते हैं ५९ प्रथम जलसे तीन आचमन करे अनन्तर दोबार मुखको जलसे स्पर्श कर ज्ञानेंद्रियको शिरको हृदयको जलसे स्पर्श करे ६० फेनरहित शीतलजलसे पवित्र होनेकी इच्छा करनेवाला एकान्त और पवित्र भूमिमें पूर्व या उत्तरमुख होकर आचमन करे ६१

वह आचमनका जल हृदयमें पहुँचनेसे ब्राह्मण पवित्र होता है, उसके कंठमें प्राप्त होनेसे क्षत्री, मुखमें पहुँचनेसे वैश्य तथा स्पर्शमात्रसे शूद्र पवित्र होते हैं ६२ क्यों स्वामीजी इन श्लोकोंको मनुमें देखते २ ऊंघगये थे भला जो संध्या करनेको बैठेगा वह दोनों समय नहीं तो एक समय निश्चय ही स्नान करेगा पर आपके चेले तो कोट पतलून ही पहरकर करेंगे, फिर आपने मनसा परिक्रमा करनी लिखी सो काहेकी परिक्रमा करै ? आपकी या सत्यार्थप्रकाशकी परमेश्वरको तो आप निराकार मानते हो उसकी परिक्रमा कैसी, जब मनने उसकी परिक्रमा करली तो उसका महत्त्व जाता रहा और परमेश्वर निराकारकी ही सीमा होगई, फिर जल तो कफनिवृत्तिके अर्थ है आप पं० १४ (अपां समीपे) इस श्लोकसे जलके धोरे बैठकर गायत्रीका जप लिखते हैं परन्तु जिसे कफने घेरा हो वह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसरमें बैठकर जप करे ॥*

पृ० ४१ पं० २० अग्निहोत्र और संध्या दो ही कालमें करै दो ही रात दिनकी संधिवेला हैं अन्य नहीं ॥ ३७ । १०

समीक्षा—यह तो स्वामीजीने खूब ही कही दो कालसे अधिक ईश्वरका नाम लेना क्या कोई पाप है तपस्वी तो वर्षों निरन्तर परमात्माका ध्यान करते रहे हैं इससे दो ही कालमें उसका अर्चन वन्दन करे यह कहना ठीक नहीं परमेश्वरका नाम लेना सर्वदा श्रेयस्कारक है ॥

इससे त्रिकाल संध्या करना किसी प्रकार हानिकारक नहीं किन्तु लाभकी ही दायक है, इसमें प्रमाण यह है कि जहां तैत्तिरीयारण्यकमें प्रभात संध्याके आचमन आये हैं वहीं मध्याह्नकी संध्याका आचमन लिखा है यथा—

> ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् ।
> पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥
> यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम ।
> सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ँ स्वाहा ॥
>
> तैत्ति० आ० अनु० २३

अर्थ—जल पृथिवीको पवित्र करें वा मेरे पार्थिव शरीरको पवित्र करें यह पृथिवीजलोंसे पवित्र हुई अपने गुणोंसे मुझे पवित्र करे यही जल ज्ञानके पति

* भा० प्र० में वादी कोई एक तो ऐसा प्रमाण लिखता कि आचमनसे कफ दूर करना और संध्यामें गलेमें कफ अटकता है तब दयानन्दजीकी पुष्टि होती पर कपोलकल्पनामें प्रमाण कहां होसकता है ?

वेदोंके धारण करनसे पति हुं आत्माको पवित्र करें सबके पवित्र करनेवाले ब्रह्म को पवित्र करें जो मैंने जूँठा निन्दित भोजन किया है जो मेरा बुरा कर्म है असत् अर्थात् जिनका धान्य ग्राह्य नहीं है उनका मैंने अन्न ग्रहण किया इन सबसे जलके अधिष्ठातृदेवता मुझे पवित्र करें विशेष विवरण हमारी काल संध्यामें देखो ॥

जब राजा युधिष्ठिरसे दुर्वासाजीने दुपहरको भोजन मांगा और उन्होंने स्वीकार ा तब दुर्वासाजी दुपहरकी संध्या करने गये यथा--

ते चावतीर्णा सलिले कृतवन्तोघमर्षणम् ॥

महाभारत वनपर्व अ० २६३ श्लो० २८ वें नदीमें जाय जलमें अवतीर्ण हो मर्षण जपने लगे ॥

गायत्री नाम पूर्वाह्ने सावित्री मध्यमे दिने ॥
सरस्वती च सायाह्ने सैव संध्या त्रिषु स्थिता ॥ व्या०
संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ॥
त्रिकालसंध्याकरणात्तत्सर्वं च विनश्यति ॥ याज्ञ०

यासजी कहते हैं प्रभातकी संध्या गायत्री, मध्याह्नकी सावित्री, संध्याकी वती है। याज्ञवल्क्यका वचन है कि ब्राह्मणको तीनों कालकी संध्या करनी ये तथा त्रिकाल संध्यासे सब पाप दूर होते हैं ॥

० ४२ पं० १९ स्वाहा शब्दका अर्थ यह है कि, जैसा ज्ञान आत्मामें हों ी जीभसे बोले ॥ ३८ । ७

मीक्षा--यह स्वाहाशब्दका अथ कौनसे निघण्टु निरुक्तसे निकाला भला जो आपने लिखा है कि, प्राणाय स्वाहा तो इसका यह अर्थ हुआ कि, अर्थात् परमेश्वरके अर्थ जैसा ज्ञान आत्मामें होवे वैसा बोले भला यह क्या हुई इससे हवनकी कौनसी कला सिद्ध होती है, सुनिये स्वाहा अव्यय है, का अर्थ हविस्त्यागन करनेके हैं जो देवताके उद्देशसे अग्निमें हवि दिया जाता है स्वाहा शब्दका प्रयोग होताहै जैसे "प्राणाय स्वाहा" प्राणोंके अर्थ हवि वा प्राणोंके अर्थ श्रेष्ठ होम हो (स्वाहाकारश्च वषट्कारश्च देवा उपजी- ति श्रुतेः) ॥

० ४२ पं० १९ सब लोक जानते हैं कि, दुर्गंधियुक्त वायु और जलसे रोग ोगसे प्राणियोंको दुःख और सुगंधित वायु तथा जलसे आरोग्य और नष्ट होनेसे सुख प्राप्त होताहै और पृ० ४३ पं० ९ में लिखा है कि, मंत्रमें ाख्यान हैं कि, जिनसे होम करनेके लाभ विदित होजायँ और मंत्रोंकी

आवृत्ति होनेसे कंठस्थ रहैं पृ० ४२ पं० १४ गायत्रीमंत्रसे आहुति देवे तथा (विश्वानि) इस मंत्रसे होम करै ॥ पृ० ३९ । १०

समीक्षा–प्रथम तो अग्निहोत्रोंकी विधि ही वेदविरुद्ध लिखी गई है, * दूसरे यज्ञपात्रोंकी आकृतियाँ सब मनःकल्पित लिख दी हैं, वेदमें कहीं इनकी ऐसी रचना नहीं है, तीसरे अग्निहोत्रका प्रयोजन जो जलवायुकी शुद्धि होना सिद्धान्त किया है सो यह भी शास्त्र और युक्ति दोनोंके विरुद्ध है, यदि स्वर्गफल न होकर अग्निहोत्र घी जलाकर जलवायुकी शुद्धिके निमित्त है; तो इन पांच आहुतियोंसे क्या होगा ? किसी घीके आढतियेकी दूकानमें आग लगादेनी चाहिये, जो सैकडों मन घी जलकर खूब जलवायुकी शुद्धि होकर अनेक अनेक लोकोपकार होजायँ, पदार्थविद्याको जाननेवाले पंडित लोग इस बातको जानते हैं, कि जलवायुकी शुद्धि परमेश्वरके प्राकृतिक नियमसे ही होती रहती है; सूर्यकी आकर्षणशक्ति जलकी तरलता और वनमें अनेक सुगन्धित पुष्प औषधियोंका उत्पन्न होना वायुकी प्रसरणशक्ति सुगंधित पुष्पादिकोंके परमाणुओंका वायुमें मिलना ऋतुका परिवर्तन इन सब कारणोंसे जलवायुकी शुद्धि होतीहै और यदि जलवायुकी शुद्धिपरही तात्पर्य्य हो तो ऐसा उपाय न करै कि, कमखर्च और बालानशीन गंधककी धूनी दिया करैं, जिससे डॉक्टरलोग हैजे तककी वायु शुद्ध करलेते हैं और जलकी शुद्धिको दमडीकी फटकरी या निर्मलीके बीज ठीक हैं, और देखो गायत्रीमें स्वाहा लगाकर होम करना भी लिखा है, भला इसमें कौनसे अग्निहोत्रके लाभका अर्थ है (अर्थ इसका पूर्व प्रकाश करचुके हैं) अग्निहोत्रका अर्थ तो है नहीं पर घी फूंके जाइये, प्रथम इससे स्वामीजीने चुटिया बँधवाई फिर रक्षा की फिर जप किया, अब घी फूंका, एक गायत्रीसेही कितने काम लिये हैं, आगे जब और विद्याकी उन्नती होगी तब इसमें इंजन लगाकर रेल चलावैंगे और पंख लगाकर बेलून उडावैंगे, जब हवनसे वायुकी शुद्धि मात्र होतीहै, तो प्रातःसंध्याका नियम वृथा है, फिर तो चाहे जब आगमें घी डालदें और उसके लिये स्नानादिककी कुछ आवश्यकता नहीं, चाहे जब चूल्हे या भट्टीमें घृत झोंक दें, फिर क्यों इकतालीस ४१ बयालीस ४२ पृष्ठमें चमचा थाली प्रोक्षणीपात्रादिका विधान लिखा ? केवल पली भर२ के डाल देना लिखदेते और मंत्र पढनेसे होमके लाभ विदित होते हैं यहभी आपका कथन मिथ्या ही है । भला आपने जो गायत्री मंत्र और (विश्वानिदेव) इन

---

* यज्ञपात्र आदिके बनानेकी विधि परिमाणादि हमारे भाष्य किये यजुर्वेदमें देखो यहां मंत्रदर्शन पृ० १ से ७ तक ।

दो मंत्रोंसे हवन करना लिखाहै इन मंत्रोंसे कौनसा हवनका लाभ प्रतीत होताहै फिर आप लिखतेहैं कि, इस प्रकार करनेसे मंत्र कंठ रहेंगे ठीक है जब मंत्र कंठ करना ही इष्ट है तो याद करनेवाले विना ही हवनके किये परिश्रम कर कंठ कर-सक्ते हैं और जब मंत्र कंठ करनेका ही लाभ है तो स्वाहा लगानेकी फिर क्या आवश्यकता है चाहैं जहाँके मंत्र पढदिये फिर नियतमंत्रसे आहुति देनी यह क्यों लिखा है इससे यह कहना स्वामीजीका ठीक नहीं कि, केवल जलवायुकी शुद्धि होती है, हवनसे स्वर्गलोककी भी प्राप्ति होतीहै यथा यजुर्वेदे ॥

अयमग्नौ अग्निर्वीरवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्। अयवाजाञ्जयतु वाजसाता वय ꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ अ० ९ मंत्र० ३७ यजु०

अर्थ-यह अग्नि हमारे धनको संपादन करो यह अग्नि संग्रामोंको विदीर्ण करता आगे आओ यह अन्न विभाग निमित्त अन्नोंको हमें देनेके लिये शत्रुओंको जीतो उसके लिये श्रेष्ठ होम हो " अग्नि ही यह हवि देवताओंके पास पहुंचाता है और यजमानका कल्याण करताहै " यथा ॥

सीद होतः स्वउ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञ ꣳ सुकृतस्य योनौ। देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ यजु० अ० ११ मं० ३५

भावार्थ-हे देवताओंके आह्वान करनेवाले अग्निदेवता सब कुछ जाननेवाले तुम अपने लोकमें ठहरो और और श्रेष्ठकर्म यज्ञके स्थान कृष्णाजिन पर ही यज्ञको स्थापन करो, हे अग्ने ! जिस कारण देवताओंके तृप्ति करनेवाले तुम हव्यसे देवताओंको पूजते हो, इसी कारण यजमानमें बडी आयु और अन्नको धारण करो (कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिरिति) श० ६, ४, २, ६।

स ꣳ सीदस्व महाँ २ ॥ असि शोचस्व देववीतमः ॥ विधूममग्ने अरुषम्मियेद्ध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ अ० ११ मं० ३७

अर्थ-हे यज्ञके योग्य उत्कृष्ट अग्नि देवताओंके अत्यन्त तृप्त करनेवाले तुम महान् हो पुष्करपर्णपर भले प्रकार बैठो, प्रदीप्त हो, दर्शनयोग्य शान्तरूप धूम्रको,

छोडो ३७ और अग्निहोत्रसे पाप भी दूर होते हैं अघनाशन प्रकरणमें (यद्ग्रामे यदरण्ये) श्रुतिका अर्थ देखो ॥

इसी प्रकार सामवेदमें भी अग्निको देवताओंका दूत लिखा है इत्यादि वेदोंमें अनेक प्रकारसे अग्निकी स्तुति परलोकप्राप्त्यर्थ लिखी है अब जो मनुजी हवनके लाभ कहतेहैं सो श्रवण कीजिये ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० २ । २८

सब विद्या पढने पढाने व्रतोंके करने हवन करने त्रैविद्यनामक व्रत करने तथा यज्ञादिके करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है मुक्तिके साधनमें मनुजीने हवन भी लिखा है अब लौकिक लाभ सुनिये ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ अ० ३ श्लो०७६
जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

यजमान करके अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचतीहै सूर्यसे अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होती है ७६ आहुत अर्थात् जप हुत-हवन, प्रहुत अर्थात भूतबलि, ब्राह्म्य हुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा, प्राशित श्राद्ध पितृतर्पण ७४ मनुष्य वेदाध्ययनमें सर्वदा युक्त होकर अग्निहोत्रमें भी सर्वदा युक्त होय तो यह संपूर्ण जगत्को धारण करता है ७५.

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०२

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका, संध्याकालकी संध्या करनेसे दिनका किया पाप दूर होता है इसी प्रकार हवनसे भी पाप दूर होतेहैं क्यों कि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधि है वोही हवनमें उच्चारण किये जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि, हवन करनेमें पाप निवृत्त होता है और पुण्य होता है ॥ •

---

१ इषो वा अन्नमूर्ज्जे रेतः सिञ्चति धूम सूर्यरश्मिभिरभ्येति श्रुतेः ।
• इस प्रकारसे भास्कर प्रकाशने इस प्रकरणको मान लिया है ।

वेदे शूद्राऽधिकारप्रकरणम् ।

प्रथम तो वह वार्ता लिखते हैं जो शूद्रके विषयमें स्वामीजी मान चुके हैं ॥

स० पृ० ४३ पं० २९ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके। सुश्रुत ३९ । २० ।

अर्थ-और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मंत्रसंहिता छोडके सब शास्त्र पढावे यह मत किन्हीं आचार्योंका है (सुश्रुतका मत यह नहीं है) और

स० पृ० ३४ पं० १ शूद्रादिवर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदें । २९ । १३ ।

स० पृ० ७५ पं० २ और जहाँ कहीं निषेध है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढने पढानेसे कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होनेसे शूद्र कहाता है उसका पढना पढाना व्यर्थ है ॥ ७४ । २६

समीक्षा-इतने स्थानोंमें तो स्वामीजीने यह माना कि शूद्रको यज्ञोपवीत न देना चाहिये और यह भी कहा कि, मंत्रसंहिता छोडकर और सब कुछ पढाना और फिर कहा कि, जो मूर्ख हो जिसे पढायेसे कुछ न आवे वह शूद्र है उसका पढना पढाना व्यर्थ है जब शूद्र मूर्खको ही कहते हैं जिसे पढायेसे कुछ न आवे तो फिर भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें शूद्रको वेद पढनेका अधिकार दे दिया सो आगे लिखते हैं ॥

स० प्र० पृ० ७४ पं० २ क्या स्त्री शूद्रभी वेद पढें ? जो यह पढेंगे तो फिर हम क्या करेंगे और फिर इनके पढनेका प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इति श्रुतेः ॥ ७३ । २७

स्त्री और शूद्र न पढें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और मनुष्यमात्रको पढनेका अधिकार है तुम कुएमें पडो और यह तुम्हारी श्रुति कपोलकल्पनासे हुई है किसी प्रामाणिक ग्रंथकी नहीं और सब मनुष्योंको वेदादि शास्त्र पढने सुननेका अधिकार है यजुर्वेदके २६ वें अध्यायका दूसरा मंत्र है ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुखको देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीको (आवदानि) उपदेश करताहूं वैसे तुम भी किया करो ॥ परमेश्वर कहताहै कि, हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादिकोंको भी वेदोंका

छोडो ३७ और अग्निहोत्रसे पाप भी दूर होते हैं अघनाशन प्रकरणमें (यद्ग्रामे यदरण्ये) श्रुतिका अर्थ देखो ॥

इसी प्रकार सामवेदमें भी अग्निको देवताओंका दूत लिखा है इत्यादि वेदोंमें अनेक प्रकारसे अग्निकी स्तुति परलोकप्राप्त्यर्थ लिखी है अब जो मनुजी हवनके लाभ कहतेहैं सो श्रवण कीजिये ॥

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० २ । २८

सब विद्या पढने पढाने व्रतोंके करने हवन करने त्रैविद्यनामक व्रत करने तथा यज्ञादिके करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है मुक्तिके साधनमें मनुजीने हवन भी लिखा है अब लौकिक लाभ सुनिये ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ अ० ३ श्लो० ७६
जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ॥
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

यजमान करके अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचतीहै सूर्यसे अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होती है ७६ आहुत अर्थात् जप हुत–हवन, प्रहुत अर्थात् भूतबलि, ब्राह्म्य हुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा, प्राशित श्राद्ध पितृतर्पण ७४ मनुष्य वेदाध्ययनमें सर्वदा युक्त होकर अग्निहोत्रमें भी सर्वदा युक्त होय तो यह संपूर्ण जगत्को धारण करता है ७५

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ मनु० अ० २ श्लो० १०२

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका, संध्याकालकी संध्या करनेसे दिनका किया पाप दूर होता है इसी प्रकार हवनसे भी पाप दूर होताहै क्यों कि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधि है वोही हवनमें उच्चारण किये जाते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि, हवन करनेसे पाप निवृत्त होता है और पुण्य होता है ॥ *

१ इतो वा अयमूर्ध्व २ रेतः सिञ्चति धूम २ सामुत्र वृष्टिर्भवतीति श्रुतेः ।

* एक प्रकारसे भास्कर प्रकाशने इस प्रकरणको मान लिया है ।

वेदे शूद्राधिकारप्रकरणम् ।

प्रथम तो वह वार्ता लिखते हैं जो शूद्रके विषयमें स्वामीजी मान चुके हैं ॥

स० पृ० ४३ पं० २९ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके। सुश्रुत ३९ । २० ।

अर्थ-और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मंत्रसंहिता छोडके सब शास्त्र पढावे यह मत किन्हीं आचार्योंका है (सुश्रुतका मत यह नहीं है) और

स० पृ० ३४ पं० १ शूद्रादिवर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदें । २९ । १३ ।

स० पृ० ७५ पं० २ और जहाँ कहीं निषेध है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढने पढानेसे कुछ भी न आवै वह निर्बुद्धि और मूर्ख होनेसे शूद्र कहाता है उसका पढना पढाना व्यर्थ है ॥ ७४ । २६

समीक्षा-इतने स्थानोंमें तो स्वामीजीने यह माना कि शूद्रको यज्ञोपवीत न देना चाहिये और यह भी कहा कि, मंत्रसंहिता छोडकर और सब कुछ पढाना और फिर कहा कि, जो मूर्ख हो जिसे पढायेसे कुछ न आवै वह शूद्र है उसका पढना पढाना व्यर्थ है जब शूद्र मूर्खको ही कहते हैं जिसे पढायेसे कुछ न आवै तो फिर भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें शूद्रको वेद पढनेका अधिकार दे दिया सो आगे लिखते हैं ॥

स० प्र० पृ० ७४ पं० २ क्या स्त्री शूद्रभी वेद पढें ? जो यह पढेंगे तो फिर हम क्या करेंगे और फिर इनके पढनेका प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इति श्रुतेः ॥ ७३ । २७

स्त्री और शूद्र न पढें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और मनुष्यमात्रको पढनेका अधिकार है तुम कुएमें पडो और यह तुम्हारी श्रुति कपोलकल्पनासे हुई है किसी प्रामाणिक ग्रंथकी नहीं और सब मनुष्योंको वेदादि शास्त्र पढने सुननेका अधिकार है यजुर्वेदके २६ वें अध्यायका दूसरा मंत्र है ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्या ँशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुखको देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीको (आवदानि) उपदेश करताहूं वैसे तुम भी किया करो ॥ परमेश्वर कहताहै कि, हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादिकोंके भी वेदोंका

प्रकाश कियाहै, कहिये अब तुम्हारी बात मानें या परमेश्वरकी, क्या ईश्वर पक्षपाती है यदि वह पढाना न चाहता तो इनके वाक् और श्रोत्र इन्द्रियोंको क्यों बनाता, वेदमें कन्याओंका पढना लिखाहै पृ० ७६ पं० ७

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व०का० ११ सू०७ मं १८

कुमारी ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्थामें अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुषको प्राप्त होवे (प्रश्न) क्या स्त्रीलोग भी वेदोंको पढे (उत्तर) अवश्य देखो श्रौतसूत्रादिमें (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) स्त्री यज्ञमें इस मंत्रको पढे जो वेदादि शास्त्रोंको पढा न हो तो उच्चारण कैसे करसकैं ॥

समीक्षा—प्रथम तो स्वामीजी लिख चुके कि, शूद्र मंत्रभाग न पढें और अब लिखते हैं कि, पढें और तुम कुएमें पडो यह दुर्वचन नहीं तो और क्या है, तुम्हारी ही पुस्तक और तुम ही प्रश्नकर्त्ता तुम्हारी ही पठी हुई श्रुति इससे तुम ही कुएमें गिरे, संसाररूपी कूपमें गिरानेको आपके वाक्य निश्चय प्रबल है. जब शूद्र महामूर्खको ही कहते हैं कि. जिसे पढानेसे कुछ न आवै फिर जब पढानेसे कुछ न आवै तो उसे वेद पढाना कैसा और जब आप जाति कर्मानुसार मानतेहैं तो भी वेद पढा हुआ शूद्र नहीं हो सक्ता वह तो उच्चवर्ण हो जायगा, फिर भी मूर्ख बेपढा ही शूद्रसंज्ञक रहा इससे आपके वचनसे भी शूद्र वेद पढा नहीं हो सक्ता और जब इस मंत्रमें ब्रह्मचर्यका अर्थ वेद पढना है तो इस मंत्रका उत्तरार्द्ध (अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति) तो क्या बैल और घोडेको भी वेद पढानेके पश्चात् घास खानेकी आज्ञा दीजियेगा । अब व्याससूत्र सुनिये ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३६

विद्या पढनेके लिये, उपनयनादि संस्कार व सुननेसे शूद्र वेदविद्या पढनेका अधिकारी नहीं है ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ शा०-अ० १, पा० ३ सूत्र० ३८ शूद्रको वेदका अधिकार नहीं है क्योंकि श्रवण अध्ययनवास्ते निषेध होनेसे स्मृतिमें ऐसा, लिखा है ॥ कात्यायन श्रौतसूत्र १ । १ । १ में लिखा है " अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ड- शूद्रवर्जम् ५" अङ्गहीन, अश्रोत्रिय, नपुंसक और शूद्रका यज्ञमें अधिकार नहीं है ॥

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ॥
न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबंधनात् ॥ १७१ ॥
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते १७२ अ० २

वेदके प्रदानसे आचार्यको पिता कहते हैं मौञ्जीबन्धनसे पूर्व वेदका कुछ भी अंश उच्चारण न करे, और श्राद्धादिकोंमें जो वेदोक्त मंत्र हैं उनको छोडकर और मंत्र उच्चारण न करे कारण कि जबतक वेद पढनेका अधिकार नहीं हुआ जब तक शूद्रके तुल्य है, यहां विना यज्ञोपवीत हुए शूद्रकी समान तीनों वर्ण कहे १७१-१७२ अब आगे शूद्रका उपनयन नहीं होता यह दिखाते हैं ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥
यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।
तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिंदितः ॥ १२८ ॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मंत्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवंति च १२७ अ० १०

शूद्रको कोई पातक नहीं है और न कोई संस्कार योग्य है और न कोई वैदिक धर्ममें इसको अधिकार है और कहे हुए धर्म करनेका निषेध नहीं है १२६ निंदाको न करनेवाला शूद्र जैसा २ अच्छे पुरुषोंके आचरणोंको करता है वैसा २ इस लोक तथा परलोकमें उत्कृष्टताको प्राप्त होता है १२८ धर्मकी इच्छा वाले तथा धर्मको जाननेवाले शूद्र मंत्रसे रहित होकर भी सत्पुरुषोंके आचरण करते हुए दोषोंको नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसाको प्राप्त होते हैं १२७ अब वेद मंत्रका अर्थ सुनिये (यथेमां) इसमें प्रसंग देखना योग्य है सो इससे पहले यह मंत्र है इस मंत्रमें इमाम् इदम् शब्दसे प्रयोग है ॥

अग्निश्च पृथिवी च सन्नतेतेमेसन्नमतामदोवायुश्चान्तरिक्षं चसन्नतेतेमेसन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नतेतेमे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नतेतेमे सन्नमतामदः सप्तस१ꣳ सदोऽअष्टमीभूतसाधनीसकामाँ२॥ ऽअध्वनस्कुरुसंज्ञानमस्तुमेऽमुना॥ १ ॥

(अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) परस्पर अनुकूलतासे संगत हैं (ते) वे दोनों (मे) मेरे (अदः) अमुककामनाके (सन्नमताम्) इसी प्रकार वशवर्ती करो (च) और (वायुः) वायु (च) और

(अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (सन्नते) संगत हैं (ते० वे मेरे इत्यादि) (च) और (आदित्यः) आदित्य (च) और (द्यौः) द्युलोक (सन्नते) जैसे परस्पर वशवर्ती हैं (ते० वे इत्यादि) (च) और (आपः) जल (च) और (वरुणः) वरुण (सन्नते) परस्पर संगत हैं (ते० वे) हे देव जिस आपके (सप्त) सात (संसद) अधिष्ठान अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, अप, वरुण हैं, (अष्टमी आठवीं भूतसाधनी) प्राणियोंकी आधारस्वरूप वा उत्पादक भूमि है इन सबके अधिष्ठानरूप तुम (अध्वनः) हमारे मार्गोंको (सकामान्) सफल (कुरु) करो (मे) मेरी (अमुना) इस इष्टसे वा सबसे (संज्ञानं) संगति (अस्तु) हो, अर्थात् हे देवपथस्वरूप सप्तसंसद और आठवीं भूतसाधनी बुद्धिको हमारे अधीन करो अथवा विज्ञानात्माके प्रति कहते हैं हे देव ! कि सप्तसंसद, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि यह सात स्थान और आठवीं प्राणियोंको वश करनेवाली वाणी है आप हमारे मार्गोंको सकाम करो इनके संग मेरी संगति हो। विशेष अर्थ हमारे वेदभाष्यमें देखो अनन्तर यह मंत्र है ॥

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳫं शूद्रायचार्य्यायचस्वायचारणायच॥ प्रियोदेवानां दक्षिणायैदातुरिहभूयासमयंमेकामःसमृध्यतामुपमादोनमतु॥ य० अ० २६ मं० २

पूर्व मंत्रमें स्थित भूतसाधनी वाणीका अध्याहार होता है तब इसका यह अर्थ होता कि यज्ञके अन्तमें यजमान अपने भृत्योंसे कहता है (दक्षिणायै यथेमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं जनेभ्यः आवदानि तथा त्वं कुरु इति शेषः)

भाव यह है कि (दक्षिणायै) दान देनेको जनोंके अर्थ (यथा) जैसे (इमाम्) इस भूतसाधनी (कल्याणीं) शोभना (वाचं) (दीयतां भुज्यताम्) दो भोजन ऐसी वाणीको (जनेभ्यः) सम्पूर्ण जनोंके निमित्त (आवदानि) सबप्रकारसे कहताहूं वैसे तुम भी करो और कहो कि जनोंके लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मणक्षत्रियोंके निमित्त (च) और (शूद्राय) शूद्रके निमित्त (अर्य्याय) वैश्यके निमित्त (स्वाय) अपने भृत्यके निमित्त तथाः (अरणाय) अति शूद्रके निमित्त आशय यह कि दान भोजनमें किसी जातिका विचार नहीं है सबको चाहिये ऐसा करनेसे (देवानाम्) देवताओंका (दातुः) सबके देने परमेश्वरका (प्रियः) प्यारा (भूयासम्) हूंगा (मे) मेरा (अयम्) धनयुक्त लाभरूप यह (कामः) कार्य (समृध्यताम्) समृद्धिको प्राप्त हो (अदः)

परलोकसुखादि (उपनमतु) प्राप्त हो २ इसमें 'दक्षिणाये' और 'दातु' पद आनेसे स्पष्ट ही अन्न और दानकी महिमा विदित होतीहै ॥

यदि दयानंदजीका ही अर्थ माना जाय तो परमेश्वरकी वाणी भी माननी होगी जब वाणी हुई तो शरीर भी होगा और वेदाविर्भावप्रसंग भी स्वामीजीका स्वामीजीके ही लेखसे भ्रष्ट होजायगा, क्यों कि जब इस मंत्रसे उपदेशवत् अग्निआदिको उपदेश कर सकतेथे तो उनके अन्तर्वेदका प्रादुर्भाव होना असंगत है इससे शूद्रको वेदपठन पाठनका उपदेश करना अशुचिमें शुचिबुद्धिरूप अविद्या है और प्रथम तो यहां स्वामीजीसे यह पूछना है कि यह ब्राह्मणादिशब्द मंत्रमें जातिके बोधक हैं, अथवा जो तुमने पचीसवें वर्षमें परीक्षासे नियत करी है उस ब्राह्मणादि जाति बोधक हैं, जैसे आपने ८८ पृष्ठमें, माना है यदि प्रथम पक्ष कहोगे तो ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगई तो आपकी स्वकपोलकल्पित वर्णव्यवस्था है सो दत्तजलांजलि होगई, और यह भी विचारना चाहिये कि यह उपदेश आदिमें होना चाहिये या अन्तमें होना चाहिये मध्यमें कैसे होसक्ता है क्यों कि (इमाम्) यह शब्द प्रयोग समीपवस्तुका बोधक है, सो अभीतक चतुर्वेद विद्या समीप है नहीं, वक्ष्यमाणा है और यदि गुणकृत वर्ण व्यवस्थाको मानकर मंत्रमें ब्राह्मणादिशब्द कहेंगे तब ब्राह्मणत्वादिशून्यमें ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करनेसे ईश्वर भ्रान्त होगा क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्तमें पूर्ण तो विद्वान् ब्राह्मण है सो अभीतक हुआ नहीं, और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेदविद्या उपदेशरूप ईश्वरकी आज्ञा निष्फल है, और शूद्रशब्द तमोगुणविशिष्टका वाचक है तिसको भी वेदविद्या उपदेशकी आज्ञा निष्फल है, और अरण शब्दार्थ जो अतिशूद्र है तिसमें तो सर्वथा उपदेश निष्फल है, जैसे ऊपरमें बीज बोना तैसे शूद्र और अतिशूद्रमें उपदेश निष्फल है, और जब जाति ही ब्राह्मणादिकोंकी लिख दी तो फिर (स्वाय अपने भृत्योंको) यह शब्द प्रयोग निष्फल ही हो जायगा क्या वे भृत्य चार वर्णोंसे पृथक् हैं, इस कारण शूद्रको वेदका अधिकार कदापि नहीं और भी सुनिये ॥ शूद्रके सिवाय इतनोंका और निषेध है ।

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ॥ असूयकायानृजवेऽयतायनमाब्रूयावीर्यवती तथा स्याम् नि० अ० २खं०४

अर्थ-विद्या अधिदेवता कामरूपिणी होकर नियमित वेद वेदाङ्गके जाननेवाले ब्राह्मणके पास आकर बोली (गोपाय माम) मेरी रक्षा कर (अहम्) मैं रक्षित हुई (शेवधिः) खजाना हूंगी किससे रक्षा करनी चाहिये (असूयकायानृजवेऽयताय) (असूयकाय) पराया अपवाद निन्दा करनेवाले (अनृजवे) जिसकी

मन वाणी देहकी असमानवृत्तिहा (अपताय) विपर्कीर्णेन्द्रियाय जिसकी इन्द्रियां शुद्ध न हों ऐसे पुरुषसे मुझे मत कहो ऐसा करनेसे में वीर्यवती हूंगी । स्वामीजी लिखते हैं कि चाण्डालतकको वेदविद्या पढा दो यहे निरुक्त भाष्ययुक्त कौनसे चूरणके साथ गडापगये इससे नीचको कुटिल शूद्रोंको कदापि विद्या नहीं देनी इसी प्रकार स्त्रियोंको वेदादि पढनेमें अधिकार दिया है और (ब्रह्मचर्येण कन्या) इस मंत्रका अर्थ उल्टा लिखा है और इसमें स्त्रियोंको वेद पढना नहीं लिखा और जो चाहे सो पढे केवल स्त्रीशूद्रको मंत्रभागका पढना मने किया है और वेदवाक्यका अर्थ यह है कि (ब्रह्मचर्येण युवानं पतिं कन्या विन्दते) यह अन्वय हुआ अर्थात् ब्रह्मचर्यसे जवान हुये पतिको कन्या प्राप्त होवे और (इमं मंत्रं पत्नी पठेत) पहले तो इसका पता ही नहीं लिखा कि कहांका है तो भी इसकी व्यवस्था इस प्रकार है कि-

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया । मनुः अ० २ श्लो० ६७

विवाहमें वेदमंत्रसे संस्कार होताहै यही स्त्रियोंको यज्ञोपवीत है, पतिसेवा करनी यही गुरुकुलका वास है, गृहका कामकाज करना अग्निकी सेवा है, पतिके सन्निधिमें विवाहमें संस्कारके अर्थ तथा कहीं यज्ञमें पत्नीके मंत्र बोलनेकी विधि हैं, सो ऋत्विक् कहलादेतेहैं कुछ पढनेकी विधि नहीं है, गार्गी आदि स्त्रियें मंत्रभागको छोड और सब कुछ पढी थीं इससे ।

स्त्री शूद्रको * वेद न पढाना और भी सुनिये ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ मनुः ॥ २।१६८ ॥

जो ब्राह्मण वेदको छोड और विद्याओंमें परिश्रम करता है वो जीते हुएही शूद्रपनेकू वंशसहित प्राप्त होजाताहै अब विचारनेकी बात है जब कि वेद नहीं पढनेसे शूद्रपना प्राप्त होता है तो शूद्र कैसे वेद पढ सकते हैं क्योंकि जो ब्राह्मण भी वेद न पढे तो शूद्रसरीखा हो जाय जब शूद्र वेद पढे तो वोह शूद्र कैसा, तीन वर्ण तो वेद विना पढे शूद्रसरीखे होजाते हैं, आप उन्हीं अवैदिक शूद्रोंको वेदका अधिकार देते हो. धन्य है आपकी बुद्धि, मालूम होता है कि किसी शूद्रने कुछ झुकादिया है नहीं तो शूद्रोंकी ऐसी तरफदारी न करते कि पूर्व तो अधिकार नहीं दिया, यहां लिखदिया और शूद्रको वेदमें अनधिकार होनेसे ईश्वरमें पक्षपातका दोष नहीं

* भास्करप्रकाशक कर्ताको जब कोई युक्ति न सूझी तो अपनी ओरसे एक अधिकारमीमांसा बनाई पर इससे क्या शूद्रको वेदाधिकार सिद्ध हो सकता है ?

आसक्ता क्योंकि उसके कर्म ही जब अनधिकार और शूद्रपनके थे तब तो उसका कल्याण उस शरीरकेही धर्मसे है इससे कर्मानुसार सुख दुःख ब्राह्मणशूद्रादि होनेसे अपने २ कार्य और धर्मके सब पृथक् २ अधिकारी हैं यदि दोष देते हो तो ईश्वर धन संतान भी सबको बराबर देता और जब कर्मसे न्यूनाधिक है तो जातिभी कर्मसे है इसका विशेष वर्णन जातिप्रकरणमें लिखेंगे ॥

स० पृ० ५० पं० १० अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ॥ गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ २ । १६४

इसी प्रकार कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे धीरे वेदार्थके ज्ञानरूप उत्तम तपको बढाते जायँ ॥ ४७ । १६

समीक्षा–इस श्लोकमें स्वामीजीने कुमारी ब्रह्मचारिणी यह अर्थ कौनसे पदसे उद्धृत किया है सो नहीं विदित होता और उपनयनका सम्बन्ध भी शायद कन्याके साथ लगाया होगा क्यों कि विना उपनयनके वेद नहीं पढाया जाता दयानन्दजीके मतमें कन्याका भी उपनयन लिखा है धन्य है (संस्कृतात्मा द्विजः शनैः) इसमें द्विजशब्दसे केवल ब्रह्मचारीहीका ग्रहण होताहै कन्याका नहीं और वेद कन्याको न पढाना यह पहलेही लिख चुके हैं इति ॥

सृष्टिक्रमप्रकरणम् ।

स० पृ० ५४ पं० १४ जो जो सृष्टिक्रमसे विरुद्ध है वोह सब असत्य है जैसा विना मातापिताके योगसे पुत्रका होना तथा १२ पंक्तिमें जो ईश्वरके गुण कर्म स्वभाव और वेदके अनुकूल हो वोह सब सत्य और उसके विरुद्ध असत्य है५२।२९

समीक्षा–न जाने स्वामीजी स्वप्नावस्थामें कभी महम्मद साहबकी तरह ईश्वरके पास हो आयेथे जो उसने इन्हें सारी सृष्टिका क्रम उपदेश कर दिया, जिससे इन्हें यह बात निर्भ्रान्त मालूम होगई है कि ईश्वरकी सृष्टिका विषय इतना ही है वेदमें तो ऐसा लिखा है कि ॥

एतावानस्यमहिमातोज्यायाँश्वपूरुषः ॥ पादोस्यविश्वभूतानित्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु०,अ० ३१ मं० ३

ईश्वरकी विभूति इतनीही है यह नहीं किन्तु इससे भी अधिक है, यह जो कुछ विश्व जीवों सहित है यह उसकी महिमाका एक भाग है, और शेष तीन भागमें प्रकाशमान मोक्षरूप आप हैं और ब्राह्मणवाक्यभी कहते हैं (नाहं विदाथ न त्वं विदाथ) हे मैत्रेयी ! मैं कौनहूं तू नहीं जानती सो कौन है यह भी तू नहीं जानती और गीतामें भी लिखा है कि (बुद्धेः परतस्तु सः) कि वोह परमेश्वर बुद्धिसे परे है

जब वोह बुद्धिसे परे है तो उसकी कार्य पूर्णतासे कौन जान सकता है पर स्वामीजी तो शरीर रहते भी सृष्टिका क्रम सब उससे पूछिआये, क्यों जी ॥

तस्मादश्वाऽअजायन्तयेकेचोभयादतः ॥ गावोहजाज्ञिरेतस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥ यजु० अ० ३१ मंत्र ८

उस परमेश्वरसे अश्व और जो कोई दूसरे पशु ऊपर नीचेके दांतवाले हैं उत्पन्न हुए उससे गौ बैल उत्पन्न हुए उससे भेड बकरी उत्पन्न हुई ॥

अब स्वामीजी बतावें कि आप तौ उत्पत्ति स्त्रीपुरुषके योगसे मानते हैं यह घोडे बैल भेड बकरी कैसे उत्पन्न हुए औरभी सुनिये ॥

योवैब्रह्माणंविदधातिपूर्वम् ।-श्वे०

जिस परमेश्वरसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जब आप स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पत्ति मानते हैं तौ आपने ईश्वरकीभी लुगाई बनाई होगी जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं और घोडे आदिके उत्पन्न करनेकोभी स्त्रियें होनी चाहिये फिर वे ईश्वरकी स्त्रियें कहांसे आई यह प्रश्न होगा इससे यह आपका कपोलकल्पित सृष्टिक्रम सब भ्रष्ट हुआ जाता है धन्य है उसकी महिमाको जाननेकी कहां सामर्थ्य है वोह सब कुछ करता है बिना मातापिताके आपने भी पृ० २३४ पं० १९ में अनेक मनुष्योंकी उत्पत्ति मानी है यहां सृष्टिक्रम कहां उडगया उसे कोई जान नहीं सक्ता क्योंकि (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते) उसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सुनी जाती है अब भी कभी २ ऐसे आश्चर्य प्रतीत होते हैं जो कभी पूर्व नहीं हुए सृष्टिक्रम तौ दूर रहे स्वामीजीको अपनी भी खबर नहीं है यदि खबर होती तौ आप कहीं कुछ कहीं कुछ यह विरुद्धतासे भराहुआ 'सत्यार्थप्रकाश' न लिखते, तथा पहला सत्यार्थप्रकाश भी भ्रष्ट होजानेसे आपको थोह अप्रमाण कर नया गडना न पडता, जो कि यहां आपने सृष्टिक्रमका बहाना कर टट्टीकी ओलटमें शिकार खेला है, जो बात समझमें नहीं आई लिख दिया कि सृष्टिक्रमके विरुद्ध है कहीं तो लिख दिया होता कि सृष्टिक्रम इतना है जो मालूम तौ होजाता फिर आपको वैसेही प्रमाण देते, वेदानुकूलताका वर्णन आगे लिखेंगे ॥

स० पृ० ९७ पं० १ 'सम्भवति यस्मिन्स सम्भवः' कोई कहै विर्माने पहाड उठाये मृतक जिलाये समुद्रमें पत्थर तराये परमेश्वरका अवतार हुआ यह सब बातें सृष्टिक्रमके विरुद्ध होनेसे असंभव हैं ॥ ९९ । १३

समीक्षा—स्वामीजीका मत तौ उनकी बुद्धि है जो बात इनकी बुद्धिके अनुकूल हो वही सत्य जो बुद्धिके प्रतिकूल हो वोह सृष्टिक्रमके भी प्रतिकूल होगी आर वेदानुकूल और सृष्टिक्रमानुकूल का नाम धरते हो यों कहो कि हमारी

बुद्धिके अनुकूल होना चाहिये, यदि किसी योगसे आपकी भेंट होती तो वह मुर्दा भी जिलाकर दिखा देता, और आपकी इस बुद्धिको भी सुधार देता, तथापि जिन ग्रंथोंका आपने सत्यार्थप्रकाशमें प्रमाण लिखा है उसीसे हम यह सब बातें दिखाते हैं महाभारतके अश्वमेध पर्वके ६९ अध्यायमें देखो श्रीकृष्णने परीक्षितको जो मृतक उत्पन्न हुआ था पुनर्जीवित किया, वाल्मीकिमें लिखा है कि रामचंद्रके राज्यमें एक शंबुक नाम शूद्र तप करता था इस कारण उस अनधिकारीके पापसे एक ब्राह्मणका पुत्र मरगया. रामचंद्रने उस शूद्रको मार ब्राह्मणकुमारको जीवित किया और श्रीकृष्णने गोवर्द्धन उठाया,[1] महावीरजी लक्ष्मणजीके अर्थ संजीवन बूंटीवाला पहाड उठा लाये थे, समुद्रपर पुल बांधा हुआ आजतक मौजूद है, आंखें हायँ तो देख आओ, यह लंकाकाण्डमें स्पष्ट है, और (आप्तोपदेशः शब्दः) शब्द प्रमाण आप मानही चुके हैं सो वाल्मीकिजी पूर्ण आप्त थे उन्होंने ही नल नीलको लिखा है कि इन्होंने पुल बांधा, यह पत्थर समुद्रमें नहीं तो क्या आपके सत्यार्थप्रकाशपर तरे थे और सम्भव किसे कहते हैं. जो कुछ भी होजाय उसे संभव कहते हैं समर्थ पुरुषोंसे जो सम्भव है वही असमर्थोंको असंभव है अवतार विषय सप्तमसमुल्लासमें लिखेंगे इससे यह भी विदित होगया कि शूद्रको तप करनेका अधिकार नहीं है पर जो कहीं आज दिन रेल तार न होता तो स्वामीजीको यह भी असंभव विदित होता ॥

पठनपाठनविधिप्रकरणम् ।

स० पृ० ६८ पं० १८ आर्षग्रंथोंका पढना ऐसा है जैसा कि समुद्रमें गोता लगाना और बहुमूल्यमोतियोंका पाना अष्टाध्यायी माहाभाष्य पढाना पं० १९ यास्कमुनिकृत निघंटु पं० २१ तदनन्तर पिंगलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ पढे पं० २३ फिर मनुस्मृति वाल्मीकिरामायण और महाभारतके अन्तर्गत विदुरनीति आदि काव्य रीतिसे पदच्छेद आदि पढे पृ० ७० पं०९ आयुर्वेद चरक सुश्रुत चार वर्षमें पढे पृ०७०पं० १७ नारदसंहिता आदि आर्षग्रंथ पढे पृ०७० पं० २३ ज्योतिश्शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित अंकविद्या भूगर्भ यथावत सीखे फिर पृ० ७१ पं०४ से पूर्व मीमांसा व्यासकृतभाष्य वैशेषिक गौतमकृत भाष्यसहित, न्यायसूत्र वात्स्यायनभाष्यसहित पतञ्जलिकृतयोगपर व्यासकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यपर भागुरिमुनिकृत भाष्य, वेदान्तपर वात्स्यायन और बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढावें, इन सूत्रोंको कल्पके अंगोंमेंभी गिनना चाहिये, ऋक्-यजु-सामअथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय शतपथ

[1] उत्तरकाण्ड । सर्ग ७३

साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, छन्द और ज्योतिष, छः वेदोंके अंग मीमांसादि वेदोंके उपांग आयुर्वेद धनुर्वेद गन्धर्ववेद और अथर्ववेद यह चारवेदोंके उपवेद, इत्यादि सब ऋषि मुनियोंके किये हुए ग्रंथ हैं इनमें जोजो वेदविरुद्ध प्रतीत होंवे उस उसको छोडदेना क्यों कि वेद ईश्वरकृत होनेसे स्वतः प्रमाण अर्थात् वेदका प्रमाण वेदहीसे होताहै, ब्राह्मणादि सब ग्रंथ परतः प्रमाण वेदाधीन हैं, और पृ० ६९ में, पं० १ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, इन दश उपनिषदोंको पढना ॥ ६८ । ६ से ।

समीक्षा—यहां तो स्वामीजीने बडीभारी चाल खेली है जरा आप अपने ऊपर लिखे हुएको तो विचार कीजिये जो, आप सत्यार्थप्रकाश पृ० ७१ पं० १ में लिखते हो कि (ऋषिप्रणीत ग्रंथोंको इस लिये पढना चाहीये कि वे बडे विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे[१]) जब कि ऋषिप्रणीत ग्रंथोंमें भी आप लिखते हैं कि वेदानुकूल जो बात होगी वह मानी जायगी, तो उन ऋषियोंकी पूर्णविद्वत्ता कहां रही, और वे धर्मात्मा किस प्रकार होसक्ते हैं, जो वेदविरुद्ध कोई बात कहे यह आपने पूर्ण विद्वान् ऋषियोंकी निन्दा करी है, तो आपको मनुजीके वाक्यानुसार हम यह श्लोक भेंट करते हैं ॥

योवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिंदकः ॥ मनु ०२।११

जो वेद और आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका तर्कसे अपमान करताहै उस वेदनिन्दक नास्तिकको जाति पंक्ति और देशसे बाहर निकाल देना चाहिये ॥

अब कहिये आप इन्हीं महात्माओंके ग्रंथोंमें वेदविरुद्धता ठहराते हो तो अब आपकी क्या दशा की जाय, जब आपको वेदानुकूल ही प्रमाण है तो पृथा और ग्रंथोंमें भटकते हो क्यों कि आपको तो वही बात प्रमाण होगी जो वेदमें होगी । फिर औरोंके माननेकी आवश्यकता क्या है, पर ऐसा करनेसे आपका काम कैसे चल सकताहै आप तो अपने अनुकूल होनेसे सब कुछ मानते हैं. भला यह तो कहिये यह सत्यार्थप्रकाशकी रचना कोनसे वेदके अनुकूल है, आप तो प्राचीन ऋषियोंसे भी अपनेको अधिक मानते हो उन महात्माओंका लेख तो वेदविरुद्ध होगया जो कि पूर्ण विद्वान् थे, और आपका लेख जो स्वार्थपरता और वेदवि-

---

१ इसीके आगे लिखते हैं कि और अनार्ष जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुये ग्रंथ भी वैसे ही हैं । इस वचनसे आर्ष अनार्ष एकसे बनाये और दयानंदके ग्रंथ भी पक्षपाती होनेसे वैसे ही हैं ।

अर्थोंसे पूर्ण है सत्य है, धन्य है यह बड़ाई ही तो आपका गुण प्रगट करती है. भला यह तो बताओ कि (अहरहः सन्ध्यामुपासीत, स्वर्गकामो यजेत) अर्थात् रोज रोज संध्या करो स्वर्गकी इच्छा हो तो यज्ञ करे यह विधिवाक्य यज्ञोपवीत मंत्रोंके ऋषिदेवता और उनके प्रयोग, यह पंचयज्ञ आदि यह कौनसे मंत्रभागके अनुकूल हैं, और कौनसे मंत्र इनके विधायक हैं बताओ तो सही जब मंत्रभागमें यह वार्ता नहीं तो आपके मतानुसार यह विधिकर्मकाण्ड सब वेदविरुद्ध हुआ, और यह पठन पाठन शिक्षा कौनसे मंत्रभागके अनुकूल है, और संन्यासी होकर घोगा बूट जूता पहरना, हुक्का पीना कुरसी मेजको ही काममें लाना, विरागी होकर रुपया जमा करना यह कौनसे मंत्रभागके अनुकूल है महात्माजी जब आप वेदके अर्थ लिखने बैठते हो तो आप उसके अर्थको ब्राह्मण निघण्टु महाभाष्य उपनिषदूसे सिद्ध करते हो, कि इस शब्दका निघण्टुमें यह अर्थ है, शतपथमें इसका आशय इस प्रकार कथन किया है, इस कारण इसका यह अर्थ हुआ जब यह दशा है कि बिना ब्राह्मण निघण्टुके आप वेदका अर्थ सिद्ध नहीं कर सके तो वे ब्राह्मण निघण्टु वेदके अर्थको सिद्ध करनेसे स्वतः सिद्ध और स्वतःप्रमाण क्यों नहीं क्योंकि मंत्रवर्णनमें तो यह लिखा ही नहीं कि इसका अर्थ इस प्रकार करना, यह विधि तो ब्राह्मण निघण्टु आदिमें ही कथन करी है कि मंत्रका यह अर्थ है और यह इसके प्रयोगकी विधि है इससे इनका वेदवत् प्रमाण है इन ग्रंथोंमें अंश भी वेद विरुद्ध नहीं है और इसी कारणसे (मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) मंत्र और ब्राह्मणका नाम दोनों मिलकर वेद कहा जाता है अब कहिये इन ग्रंथोंसे अर्थ करनेमें वेदानुकूलता आपकी कहां गई और जिन ग्रंथोंमें थोड़ा भी असत्य है आप उन्हें त्यागन करने कहते हैं जैसा कि स० प्र० पृ० ७१ पं० ३० में लिखा है (विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः) जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे संयुक्त होनेसे छोड़ने योग्य होताहै वैसे ही असत्यतामिश्रित ग्रंथ त्याज्य है और पृ० ७२ पं० १२ (असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति) असत्यसे युक्त सत्य भी दूरसे छोडना चाहिये ऐसे ही असत्य मिश्रित ग्रंथ भी त्यागने, क्यों कि जो सत्य है सो वेदादि सत्यशास्त्रोंका है मिथ्या उनके घरका है वेदके स्वीकारमें सब सत्यका ग्रहण होजाता है और जो इन मिथ्याग्रंथोंसे सत्यका ग्रहण करना चाहे तो असत्य भी उसके गलेमें मढजाताहै यह पृ० ७२ पं० ३ से ७ पंक्तितक कथन है ॥

जो यह दशा है तो ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें भी आपके कथनानुसार असत्य है तो विषवत् होनेसे इनका भी त्यागन करना चाहिये, फिर इनको क्यों मानते हो यह आपका बडाभारी अन्याय है कि जिस थालीमें खांय उसीमें छेद करें. यह आपकी बडी भारी भ्रान्ति है, कि ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें [illegible] वेदविरुद्धता मानते हैं

यदि आप इनमें भी असत्य और वेदविरुद्ध बताते हो तो फिर इन्हींका प्रमाण देते आप क्यों नहीं लजाते, आप अपने पूर्वलखको बडी जल्दी भूलगये, विष मिला अमृत भी विष ही होजाताहै बस इसीने मारदिया आपका सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका असत्य होनेसे त्याज्य है ॥

स० पृ० ७१ पं० १७ नीचे लिखे जालग्रन्थ समझने चाहियें ॥ ७२ । ६

व्याकरणमें कातंत्र, सारस्वत, चन्द्रिका, शेखर, मुग्धबोध, कौमुदी, मनोरमादि कोशमें अमरकोशादि, छन्दोग्रन्थमें वृत्तरत्नाकरादि, शिक्षामें 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा' इत्यादि, ज्योतिषमें शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि, काव्यमें नायिकाभेद, कुवलयानंद, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीय आदि, मीमांसामें धर्मसिंधु, व्रतार्कादि, वैशेषिकमें तर्कसंग्रहादि, न्यायमें जागदीशी आदि, योगमें हठप्रदीपिकादि. सांख्यमें सांख्यातत्त्वकौमुद्यादि, वेदान्तमें योगवासिष्ठ पंचदश्यादि, वैद्यकमें शार्ङ्गधरादि, स्मृतियोंमें एक मनुस्मृति इसमेंभी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सब स्मृति सब तंत्र ग्रंथ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमंगल आदि और सब भाषा ग्रन्थ यह सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं ७१ । १० पृ० ७० पं० २५ परन्तु जितने ग्रह जन्मपत्र राशि मुहूर्त आदि फलके विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूँठ समझके कभी न पढे ॥७०।१६

समीक्षा--यहां तो कौमुदीकी यह निन्दा और जब आप मरे तो निजवस्तेमें वैयाकरणसर्वस्व और सिद्धान्तकौमुदी यह दो ग्रन्थ निकले, इन व्याकरणोंके ग्रंथोंमें क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रन्थोंने अष्टाध्यायीका खण्डन किया है; कौमुदी आदिकोंमें तो पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके सूत्रोंकी वृत्ति की है यदि वृत्ति करनेहीसे वे जाल ग्रन्थ आपने बताये तो तुम्हारा रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायीकी भाषाटीका कौमुदीकी रीतिपर है वोह भी मिथ्या ही होना चाहिये कोशमें यदि निघण्टु जिसमें वैदिक शब्द हैं पढे और अमरकोशादि न पढे तो लौकिक शब्दोंके अर्थ आपके सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्यभूमिकासे करें काव्योंसे आपकी शत्रुता क्यों है, क्या यह भी आजीविकाको ही रचना कियें हैं यदि यह काव्य जिनसे व्युत्पत्ति होती है न पढें तो आपका बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिसमें सैकडों अशुद्धि भरी पडी हैं उसे पढें, जो और भी बुद्धि भ्रष्ट होजाय, तर्कसंग्रहमें कौनसी बात वैशेषिकके विरुद्ध है, और आपने भी तो ९४ पृष्ठसे ९६ पृष्ठतक तर्कसंग्रह ही लिखी है, यह आपकी बडी भारी चालाकी है, कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकालकर अलग छपालेगा, तो तर्कसंग्रहके स्थानमें यही काम आवेगा और हमारा नाम होगा, यह लिखा तो होता, कि तर्कसंग्रहने कौनसी आपकी रोजी छीन ली और उसमें विरुद्ध कौनसी बात है पर

हठको क्या करिये और जब मनुमें प्रक्षिप्त श्लोक हैं तो यह भी विषमिश्रित अन्नकी नाईं आपने त्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसे भी छोडते तो काम कैसे चलता पुराणोंकी सिद्धि आगे चलकर करेंगे, तुलसीदासजीने क्या बात विरुद्धताकी लिखी है और जब सब भाषाके ग्रन्थ कपोलकल्पित हैं तो आपका सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आपकी भाषाकी गढंत है यह भी कपोलकल्पित और त्याज्य हैं, भाषाकी अतिव्याप्ति होनेसे, जो आप अपनी बनाई भाषा माने तो औरोंके बनाये क्यों प्रमाण नहीं ? बीमारी होनेसे आप अँगरेजी दवाई उडाना और शार्ङ्गधरको जाल ग्रन्थ बताना, धन्य है यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्या हैं तो संस्कार विधिमें यज्ञोपवीत विवाहमें पुण्यनक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्तविधि क्यों लिखी हैं, अब सुश्रुतका भी प्रमाण सुनिये जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाशमें बहुधा लिखते हैं।

उपनयनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु प्रशस्तायां दिशि शुचौ समे देशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोमयेन दर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तै रत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि ॥ सुश्रुतसूत्रस्थान अ० २

अर्थ-दीक्षा योग्य तो ब्राह्मण है अच्छी तिथि करण मुहूर्त अच्छी (पुष्य हस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्रमें उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशामें पवित्र समान देशमें चौकोन चार बिलायंद अथवा चार हाथकी वेदी रचे, उसको गोबरसे लीप उसपर कुशा बिछावें पुष्प खीलें रत्नादिसे देवताओंका पूजन कर ब्राह्मण वैद्योंका पूजन करे (जब शिष्य हो) पुनः शकुन ॥

ततो दूतनिमित्तशकुनं मंगलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च० सु० सूत्र० अ० १०

अर्थ-जब दूतके साथ वैद्य जाय तो निमित्त-सुन्दरगन्धादि शकुन-पक्षियोंकी चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारे फिर रोगीके पास जाय देखे छुवे और पूछे ॥

इन वाक्योंसे स्पष्ट है कि, सुश्रुत आदि महर्षि भी ज्योतिष शकुन ग्रह नक्षत्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मानते थे, जब आपने इन ग्रन्थोंको प्रमाण माना है मुहूर्तादि स्वयं सिद्ध हो है तिससे ग्रहादि फलका न मानना आपकी बडी भूल है वेदसे आगे लिखेंगे ॥ *

* मा० प्र० से इस प्रसंगमें कुछ करते न बना पुराणोंके विरोध वे पते लिखे हैं जिसका उत्तर धर्मदिवाकरमें दिया है ।

इसमें इतिहासपुराणादि पांच नाम पृथक् २ ग्रहण किये हैं तथा और भी कहते हैं-

सहोवाच, ऋग्वेदं भगवोध्योमि यजुर्वेद५सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्य५राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्या५सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि ॥ छां ० प्र० ७ खण्ड १

नारद बोले ऋग्वेदको स्मरण करताहूं तथा साम, यजु, अथर्व वेदको स्मरण करताहूं (इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं) और इतिहास पुराण पांचवां वेद पढाहै (पित्र्यं) श्राद्धकल्प (राशिं) गणित (दैवम्) 'उत्पातज्ञानम्' जिससे देवताओंके किये हुए उत्पातका ज्ञान होताहै (निधिं) महाकालादि निधिशास्त्र (वाकोवाक्यं) तर्कशास्त्र (एकायनं) नीति शास्त्र (देवविद्या) निरुक्तम् (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मसम्बन्धी उपनिषद् विद्याकूं (भूतविद्या) भूततंत्रकूं (क्षत्रविद्या) धनुर्वेदकूं (नक्षत्रविद्या) ज्योतिषकूं (सर्पदेवजनविद्या) सर्पविद्यागारुडिकन्धयुक्त नृत्यगीतादि वाद्य शिल्पज्ञानकूं भी मैं स्मरण करताहूं ॥

देखिये इस छान्दोग्यके वाक्यमें कितनी विद्या सिद्ध होगई और यह भी पुराण इनसे पृथक् ही ग्रहण किया है और सुनिये ॥

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरस इतिहासः पुराण विद्या उपनिषदः श्लोकासूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट हुतमाशितं पायितमयञ्चलोकः परश्च लोक सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥ वृह० अ० ४। ११ कं० ब्रा० ५.

इस परमेश्वरके निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराणविद्या, उपनिषद, श्लोक सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान हैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होता है सो इतिहास १ जिसमें सर्गादि जगत्की पूर्व अवस्थाका निरूपण होताहै सो पुराण २ उपासना और आत्मविद्याका प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या ३ उपास्य देवके रहस्यका नाम उपनिषद् है ४ जो श्लोकनाममें मंत्र पढे जाते हैं वे श्लोक हैं ५ जो संक्षिप्त अर्थका प्रतिपादक वाक्य है सो सूत्र है ६ जिस वाक्यमें तिसका विस्तार होताहै सो व्याख्यान है और जिस वाक्यमें व्याख्यानको भी स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यान है ॥

पुनः आश्वलायनसूत्र अ० ३ पंचयज्ञप्रकरण ।

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीतेपयसः कुल्या अस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्या यद्ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः स यावन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिदधाति नमो ब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यो नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमीति ॥

आशय यह है कि जो ऋगादि चारों वेदोंके और ब्राह्मणादि ग्रंथोंको कल्प गाथादि सहित पढते हैं उनके पितरोंका स्वधासे अभिषेक होता है, ऋग्वेदके पढनेवालोंके पितरोंकूं दूधकी कुल्या, यजुर्वेदके पढनेवालोंके पितरोंको घृतकी कुल्या, सामवेदके पढनेवालोंके पितरोंकूं मधुकी कुल्या, अथर्वांगिरसके पढनेहारोंके पितरोंकूं सोमकी कुल्या, और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराणके पाठ करनेवालेके पितरोंकूं अमृतकी कुल्या प्राप्त होती है इसकारण इनका पाठ करना, ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णु देवको नमस्कार है ॥

और महाभाष्यमें भी १ आह्निकमें शब्दप्रयोगविषयमें पुराणको पृथक् गिनाहै।

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदा वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषय इति।

सातद्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षाकल्पादि अंगसहित चारों वेद (सरहस्याः) उपनिषद् एकसौ एक शाखा यजुर्वेदकी, सहस्र शाखा सामवेदकी इक्कीस ऋग्वेदकी नौ शाखा अथर्ववेदकी (वाकोवाक्यम,) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक इनमें शब्दप्रयोग होताहै, यदि नाराशंसीका नाम ही पुराण होता तो साथ लिखकर फिर पुराण लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, क्योंकि

ग्रंथोंके वाक्यसे यह बात सिद्ध है कि, ब्राह्मणभाग उपनिषद् सूत्रादिसे पृथक् ही कोई पुराण और इतिहास संज्ञावाले ग्रंथ हैं यदि इतिहासका पुराण विशेषण मानो तो इतिहास पुंल्लिंग और पुराण नपुंसकलिंग है, सो पुल्लिंग और नपुंसकलिंगका विशेषण हो नहीं सक्ता, इससे यह विदित होताहै कि पुराणसे इतिहास भी कोई पृथक् ग्रंथ है, सो न्यायके भाष्यकार महर्षि वात्स्यायनजी चतुर्थ अध्याय प्रथम आह्निकके ६२ सूत्रपर जो कथन करते हैं सो आपके सामने दिखाया जाताहै जिससे विदित हो जायगा कि ब्राह्मणादि भागसे अतिरिक्त कोई पुराणेतिहास संज्ञक ग्रंथ है ॥

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः । न्या० अ० ४ आ० सू० ६२

(भाष्यम्) तत्र प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदिति श्रूयते तेन विजानीमः प्रजावित्तलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भिक्षाचर्य्यं चरन्तीति; एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्य पात्रचयान्तानि कर्म्माणि नोपपद्यन्ते इति नाविशेषेण कर्तुः प्रयोजकफलं भवतीति चातुराश्रम्यविधानाच्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वैकाश्रम्यानुपपत्तिः तदप्रमाणमितिचेन्न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहास पुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् 'इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेद इति' तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रमाणे च धर्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहारलोपाल्लोकोच्छेदप्रसंग इष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्यानुपपत्तिः य एव मंत्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्, अन्यो मंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः, तत्रैकेन सर्वं व्यवस्थाप्यत इति यथाविषयमेतानि प्रमाणानि इंद्रियादिवदिति।

(भाषा) प्राजापत्य इष्टिका निरूपण करके उसमें सार्ववेदसनाम याग करनेके अनन्तर अग्निको आत्मामें समारोपण करके ब्राह्मण संन्यासाश्रमको धारण करे ऐसी विधि श्रुतियोंमें लिखी है, इससे जाना जाता है कि प्रजावित्तस्वर्लोकादिकी इच्छासे निवृत्त हुएको यतिधर्मका आचरण करना उचित है, और इसीकारण संन्यासीको पात्र चयान्तादि क्रियायें नहीं होती, इस हेतु यावत् कर्म मात्रके सभी अधिकारी नहीं हो सक्ते, किन्तु भिन्न भिन्न कर्मोंके भिन्न २ अधिकारी होते हैं, और यदि यह कहो कि हम ही कोई आश्रम मानेंगे, अनेक आश्रम न मानेंगे तब सभीका कर्माधिकार एक ही होगा तो ऐसा नहीं हो सक्ता क्योंकि इतिहास पुराण और धर्मशास्त्रके ग्रंथोंमें अनेक आश्रमकी विधि लिखी लिखाई है तब एक ही आश्रम कैसे होसक्ता है, न चेत् एक कहो कि इतिहासादि ग्रंथोंका प्रमाण ही नहीं मानते हैं, तो यह भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि प्रमाणभूतब्राह्मण इतिहासादि

ग्रंथोंके प्रमाणकी आज्ञा करताहै, तथा यह अथर्वांगिरसभी इसका प्रमाण कहते हैं कि इतिहासपुराण वेदोंमें पांचवां वेद है, इससे इनका प्रमाण नहीं है ऐसा कहना महा अनुचित है और धर्मशास्त्रका प्रमाण न करोगे तो प्राणियोंका व्यवहार लोप होनेसे सृष्टि ही उच्छिन्न होजायगी, और दोनोंके देखने और कथन करनहार भी तो एक ही हैं, जो मंत्रब्राह्मणके द्रष्टा ,वक्ता हैं वही धर्मशास्त्र पुराण इतिहासके कहनेहारे हैं, फिर इनका अप्रमाण कैसे होसक्ता है तथा भिन्न भिन्न विषयोंके व्यवस्थापन करनेसे भी तो यथा विषय इनका प्रमाण है, मंत्र ब्राह्मणका विषय और है और धर्मशास्त्र पुराण इतिहासादिका विषय और है, यज्ञ मन्त्र और ब्राह्मणका और लोक वृत्तान्त इतिहासपुराणका, तथा लोकवृत्तान्त व्यवस्थापन धर्म शास्त्रका विषय है उनमेंसे एकसे सबही विषय नहीं व्यवस्थापित होते, इससे यथा विषयमें सब ही प्रमाण हैं इंद्रियोंकी नाई अर्थात् जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इत्यादि सब ही विषय किसी एक ही इंद्रियसे नहीं जाने जाते इसकारण इन पांचोंके क्रमसे नेत्र जिह्वा नासिका त्वक् कर्ण सभी पृथक् २ प्रमाण माने जाते हैं इत्यादि इससे स्पष्टरूपसे जान पडता है कि यज्ञरूप प्रतिनियत असाधारण विषयोंके प्रतिपादक मंत्र ब्राह्मण ग्रंथोंसे अतिरिक्त ही कोई पुराणेतिहास संज्ञक लोकवृत्तरूप असाधारण विषयोंका प्रतिपादक वाक्यकलापहै, यदि ब्राह्मणभागोंकी इतिहास पुराण पदार्थता ऋषियोंको अभिमत होती तो वह पुराणादिके प्रामाण्य व्यवस्थापन करनेकी इच्छासे उनके अप्रामाण्यकी शंका करके (प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहास पुराणोंकी अभ्यनुज्ञा करतेहैं) इत्यादि पूर्वोक्त बहुतसा कैसे कहते, और प्रयास करते ब्राह्मणको इतिहास पुराणसंज्ञक होनेमें वैसा कहना असंगत होता जिसकी बुद्धि कुछ भी ठिकाने होगी और कैसा भी मूर्ख क्यों न हो पर अपने प्रमाणका साधक अपनेको कभी न कहेगा और सुनियेवेदमें भी इतिहास पुराणका वर्णन है * ।

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च नाराश १ंसीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वैसपुराणस्य च गाथानां च नाराश १ंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ अथर्व० का १५ प्र ६ अनु० १ मं० १२

* भास्कर प्रकाशकर्ताके तो यहां तोते उडगये हैं अनाप शनापके सिवाय कुछ कहते न बना ।

१ वह बडी दिशाको गया और उसके पीछे इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसी चली, जो ऐसा जानता है वह इतिहास गाथा और नाराशंसीयोंका प्यारा घर बनता है। इसमें भी इतिहास पुंल्लिंग पुराण नपुंसकलिंग है इससे विदित होगया कि पुराण भिन्न हैं यही महत्व है ।

यह बात वेदसे भी स्पष्ट होगई अब इसके गोपथ ब्राह्मणका लेख देखिये ।

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्ये वमाचक्षते (गोपथपूर्वभागः द्वितीयप्रपाठकः)

यदि ब्राह्मणग्रंथोंहीमें इतिहास पुराणका अन्तर्भाव होता तो गोपथमें इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखता इससे भी ब्राह्मणसे अतिरिक्त ही पुराण इतिहास जाना जाताहै, इस कारण जो पुराणको इतिहासका विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्यों कि सेतिहासाः सपुराणाः ऐसा पृथक् कहना ही इनमें भेद प्रतीति कराता है जब इतिहाससहित और पुराणसहित ऐसे दो शब्द कहे तो निःसंदेह यह दोनों पृथक्ही हैं, और सूत्रकारने भी तो अश्वमेधप्रकरणमें आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखा है अब यह तो निश्चय होगया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणोंसे अतिरिक्त ही कोई ग्रंथ हैं, परन्तु अब पुराण किसे कहते हैं और वह कैसे बना उनके सुनने वा पढनेसे क्या लाभ है सो मनुस्मृति और महाभारतादि ग्रंथोंसे दिखलाते हैं कि महाभारतमें भी पुराण सुननेकी विधि लिखी है इससे भारतसे पृथक् पुराण हैं यह सिद्ध होताहै ॥

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च ॥ मनु०

श्राद्धमें वेद धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण सूत्रादि इन सबको सुनावै, इससे विदित होता है कि, मनुस्मृति पुराण नहीं है किन्तु पुराण किसी और ग्रंथका नाम है और देखिये ।

पुराणमितिहासश्च तथाख्यानानि यानि च । महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव तत् ॥ महाभारते दानधर्मे--य च भाष्यविदः केचिद्ये च व्याकरणे रतः ॥ अधीयंते पुराणानि धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥ ९० अ० ॥

पुराण इतिहास आख्यान महात्माओंके चरित्र नित्य सुनने योग्य हैं १ कोई महाभाष्य जाननेवाले जो व्याकरणमें प्रीति रखतेहैं तथा जो धर्मशास्त्र और

पुराण भी पढते हैं फिर वाल्मीकिरामायण बालकाण्डमें राजा दशरथ और सुमन्त्रका संवाद इस प्रकार है कि जिससे पुराण प्राचीन ही प्रतीत होतेहैं ।

•एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ वाल्मी० बालकाण्ड ॥

यह सुनकर सूतने एकान्तमें राजासे कहा सुनो महाराज ! यह प्राचीन कथा है जो पुराणोंमें मैंने सुनी है इसके अनन्तर सम्पूर्ण रामजन्मका चरित्र जो भविष्य था सब राजाको सुनाया कि रामचंद्र तुम्हारे यहां उत्पन्न होंगे शृंगी ऋषिको बुलाइये और वैसा ही हुआ ॥

"एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारतम् ।
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥ "

इस प्रकार वेदोंमें सूत्रोंमें इतिहाससे भारतका ग्रहण और पुराणोंसे अष्टादश पुराणोंका ग्रहण होता है यह सिद्धान्त अर्थात् प्रसंगका निष्कर्षहै और महाभारतमें लिखा है कि ॥

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥ महा०

अठारह पुराणोंको व्यासजी संकलित करके फिर महाभारतकी रचना करते हुए । अब पुराणोंका लक्षण कथन करते हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय वंशमन्वन्तर वंशानुचरित्र यह पुराणके पांच लक्षण हैं, जिसमें यह पांच लक्षण हों वह पुराण कहाताहै लिंग पुराणके प्रथम अध्यायसे विदित होताहै कि पुराणोंका बडा विस्तार था जो ब्रह्माजीने बनाये थे व्यासजीने उन विस्तृत ग्रंथोंको संक्षिप्त करके अठारह विभाग करदिये हैं, क्या यह कथायें व्यासजीसे पूर्व नथीं जो यह माना जाय कि पुराण नवीन हैं और स्वामीजीने ३२६ पृष्ठमें (कर्ता) यह शब्द :लिखा है जिसके माने बनानेवालेके हैं सो यह उनकी भूल है वहां (कृत्वा) शब्द है (जिसके अर्थ संक्षेपसे करके) के हैं इतिहासोंको महाभारतमें मिला दिया इस कारण इतिहास नाम महाभारतका होगयाहै इससे यह न समझना चाहिये कि पुराण आधुनिक हैं किन्तु जगत्की पूर्व अवस्था कहनेसे ही इनका पुराण नाम है व्यासजीने इन कथाओंका संग्रह किया

किया है और उसमें जिस अवतार और जिस बातकी प्रधानता रक्खी है उसी नामपर उस पुराणका नाम रखदिया है बिना पुराणोंके और ऐसा कौनसा ग्रंथ है जिसमें सब पूर्व राजोंके चरित्र वर्णन हैं इसी कारण लिखा है कि॥

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ भा०

पुराण मनुस्मृति सांगवेद चिकित्सा इन चारोंकी आज्ञा स्वतःसिद्धि हैं जब ब्राह्मणादि ग्रंथ पुराणोंकी महिमा कहते हैं तो पुराणोंको क्यों न माने जहां सज्जन पुरुष बैठे हों उनमें कोई किसीकी बडाई करै तो वह बडाई किया हुआ बडाई करनेवालेसे अलग होताहै, इसी प्रकार जब पुराणोंकी महिमा ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें है तो ब्राह्मणादिकोंसे अतिरिक्त कोई पुराण ग्रंथ हैं यह स्पष्ट विदित होता है और बुद्धिमानोंको मानना उचित है ॥

तिलकप्रकरणम् ।

स० पृ० ७३ पं० १९ ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र तिलक कंठी माला धारण एकादशी आदि व्रत तीर्थ नारायण शिव भगवती गणेशादिक स्मरण करनेसे पापनाशक विश्वास यह विद्या पढने पढानेके विघ्न हैं ॥ ७३ । १४

समीक्षा—क्यों जी मस्तकपर तिलक लगानेमें कौनसी हानि है इसके लगानेमें कौनसा पाप है तिलक बहुधा चन्दनका लगाते हैं जिससे चित्त प्रसन्न हो शीतलता आरोग्यता होती है, परन्तु तिलक लगानेमें भेद इस कारण होगये कि जैसे आपने नमस्तेकी परिपाटी अपनी समाजमें चलाई है कि जहाँ नमस्ते किया कि

---

१ भास्कर प्र०इस प्रकरणका आशयतक नहीं समझा असली बात छिपागये इतिहासका नाम पुराणका नाम कहकर बातें बनाई कथाभाग होनेसे ब्राह्मणका नाम पुराण बताया है गोपथमें परीक्षितकी कथा बताकर उसे पुराण बताया है हम अथर्ववेदमें परीक्षितकी कथा दिखाते हैं तब भा० प्र० के कर्ताके गलेमें उलटी आपडी अब वेदको भी पुराण मानो जनः (स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः अथर्वकां० २० प्र० १२७ मं १०) राजा परीक्षितके राजमें सब मनुष्य आनन्द करतेथे, मं. १० कहिये अब क्या करोगे मिथ्या बातें बनानेसे काम नहीं चलता सदा यहां रहना नहीं है पंडित, भीमसेनकी समान तुम भी अपनी आत्मा शुद्धकरो और तुम्हारे गुरु बाबा दयानंदने भी तो यजुर्वेद अध्या० १२ मं० ४ ' वामदेव्यं साम ' इसका अर्थ वामदेव ऋषिका जाना वा पढाया साम किया है तो वामदेवके पीछे यह मंत्र बनाया पहले और आपके मतमें तो यजुर्वेद पुराण ही ठहरेगा और गुरुघंटालके मतमें वामदेवके पीछेका बना भीमसेनके पीछे छोटे मोटे स्वामी आप भी बनबैठे पर इतने पर भी दयानन्दी पूर्ण श्रद्धा आपके ग्रंथोंमें नहीं करते । जन्मेजयो ह वै परीक्षितो मृगयाश्चरिष्यन्, जो० प्रपा २ ब्रा० ९ इस प्रमाणसे यहां भविष्यरूपसे परीक्षित राजाका ही वर्णन है और पुराणोंमें जो विरोध दिखाते हो जरा इन श्लोकोंका पता तो दिया होता तो भेद खुले ।

दयानन्दी मालूम होगये परमात्मा जयति कहते ही इन्द्रमणिके पंथी विदित होने लगे, इसी प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र आदि तिलकोंसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह अमुक पुरुषके शिष्य हैं जैसे शेरके चिह्नसे गवर्नमेंटकी वस्तु सेना आदि विदित होतेहैं वैसे ही यह चिह्न हैं और देवताके पूजन उपरान्त स्वयं भी तिलक धारण करे जिस देवताके अर्चन पूजनमें तिलकका जो विधान है वैसा ही आप तिलक धारण करे जिससे विना पूछे उसका उपासना वृत्तान्त विदित होजाय वाल्मीकिरा० अयो० का० सर्ग १६ । ९ रामचन्द्रका तिलक लगाना लिखा है॥

" वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगंधिना । अनुलिप्तं परार्घ्येन चन्दनेन परंतपम् ।" अर्थ-महाराज रामचन्द्र सुगंधियुक्त लालचंदन लगाये थे चन्दनके गुण राजनिघण्टुमें इस प्रकार हैं ॥

श्रीखंडं कटुतिक्तशीतलगुणं स्वादे कषायं क्रिय-
त्पित्तभ्रांतिवमिज्वरक्रिमितृषासंतापशांतिप्रदम् ।
वृष्यं वक्ररुजापहं प्रतनुते कांतिं तनोर्देहिनां
लिप्तं सुतमनोजसिधुरमदारंभातिसंरंभदम् ॥ १ ॥
वेट्टं चंदनमतीवशीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम् ।
छर्दिमोहतृपिकुष्ठतैमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम् ॥ २ ॥

चन्दनके गुण यह हैं कटु तिक्त शीतल स्वादिष्ठ कसैला है और पित्त, भ्रांति, वमन, ज्वर, गरमी, कृमि, तृषा, संताप इनकी शान्ति करनेवाला वृष्य मुखरोगहारक देहमें लगानेसे कान्तिका देनेवाला और सुगंधि करनेहारा है तथा रतिकारक है १ मलयगिरिके निकटके पर्वतोंपर जो चन्दन होता है उसे वेट्ट कहते हैं यह चन्दन अत्यन्त शीतल है दाह पित्त ज्वरका शान्तिकारक व मनमोहन तृषा कुष्ठ तिमिर काम रक्तदोषका शमन करनेहारा और तिक्त भी है आप तिलक लगाना निषेध करते हैं देखिये इस विषयमें मनुजी लिखते हैं ॥

मंगलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥ १४५ ॥
मंगलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥ १४६ ॥

चन्दन रोली आदिका लगाना मंगल है गुरुसेवा आचार है इन दोनोंसे युक्त तथा बाहरी भीतरी शौचसे युक्त जितेन्द्रिय रहे गायत्री आदिका जप और

होमको नित्य आलस्यरहित होकर करै ॥ १२५ ॥ चन्दन आदि लगाने, गुरुसेवा करने, जितेन्द्रिय रहने, गायत्री जप और हवन करनेसे दैवी मानुषी उपद्रव नहीं होते हैं ॥ १२६ ॥ मनु–अ० ४ त्र्यायुषं जमदग्ने० इस यजु० अ० ३ मं० ६२ से यज्ञकी विभूति लगाते हैं ॥

यदि स्वामीजी चन्दन लगाते होते तो बुद्धिको भ्रांति न होती न मगजको इतनी गरमी चढती पर आपके चेले वार्षिकोत्सवमें खूब चन्दन लगाते हैं यह बडी विपरीत रीति करते हैं परन्तु एक दिन लगानेसे बुद्धि शुद्ध नहीं होती होय कहांसे उस एक दिनमें भी उसमें बहुतेरी केशर डाल देते हैं जिससे बुद्धि ज्योंकी त्यों रहती है और जब गणेश शिव देवी आदि नाम आप ईश्वरके लिख चुके हैं तो क्या इन नामोंसे पाप दूर न होंगे ईश्वरका नाम ही पाप दूर न करैगा तो क्या आपके कल्पित ग्रन्थ दूर करैंगे इसकी विशेष महिमा नाम तीर्थ और मत तथा देव प्रकरणमें लिखैंगे जिस प्रकारसे नामादि जपनेसे मनुष्योंके पाप दूर होते हैं ॥

स० पृ० ७२ पं० १४ तुम्हारा मत क्या है (उत्तर) हमारा मत वेद है, जो जो वेदमें करने और छोडनेकी शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोडना मानते हैं ॥ ७२ । ९

समीक्षा–क्या जो कुछ आपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है उसमें आपने सब वेदके ही मंत्र लिखे हैं जब आपका मत वेद ही है तो क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादिमें घुसते हो वेदके ही मंत्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तो जानते कि तुम्हारा मत वेद है वेदमें आपके यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोडे नफेसे पुस्तकें बेंचे दुशाला ओढे ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतचतुर्थसमुल्लासस्य खंडनम् ।

समावर्तनविवाहप्रकरणम् ।

स० पृ० ७८ पं० १८

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ मनु० ३ । ५

जो कन्या माताके उसकी छः पीढियोंमें न हो और पिताके गोत्रकी न हो उससे विवाह करना योग्य है इसका प्रयोजन यह है कि–

(परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विपः)

यह निश्चित बात है कि जैसे परोक्ष पदार्थमें प्रीति होतीहै वैसी प्रत्यक्षमें नहीं जैसे किसीने मिश्रीके गुण सुने हों और वह खाई न हो उसका मन उसीमें लगा रहताहै जैसे किसी परोक्ष वस्तुकी प्रशंसा सुनकर मिलनेकी उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माताके कुलमें निकट सम्बन्धकी न हो उसी कन्यासे वरका विवाह होना चाहिये निकट और दूर विवाह करनेमें यह गुण है १ जो बालक बाल्य अवस्थासे निकट रहतेहैं परस्पर क्रीडा लडाई और प्रेम करते एक दूसरेके गुणदोष स्वभाव वा बाल्यावस्थाके विपरीत आचरण जानते और जो नंगे भी एक दूसरेको देखते हैं उनका परस्पर विवाह होनेसे प्रेम कभी नहीं होसक्ता २ दूसरे जैसे पानीमें पानी मिलनेसे विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एकगोत्र पितृ वा मातृकुलमें विवाह होनेमें धातुओंके अदलबदल नहीं होनेसे उन्नति नहीं होती, ३ तीसरे जैसे दूधमें शुंठयादि औषधियोंके योग होनेसे उत्तमता होतीहै वैसे ही भिन्नगोत्र मातृपितृ कुलसे पृथक् वर्तमान स्त्रीपुरुषोंका विवाह उत्तम है ४ जैसे एकदेशमें रोगी हो वह दूसरे देशमें वायु और खानपानके बदलनेसे रोगरहित होताहै वैसे ही दूरदेशस्थ विवाह होना उत्तम है ५ निकट संबध करनेसे एक दूसरेके निकट होनेमें सुखदुःखका भान और विरोध होना भी संभव है और दूरदेशके विवाहमें दूर २ प्रेमकी डोरी लम्बी बढजाती है ६ छठे दूरदूर देशमें वर्तमान और पदार्थोंकी प्राप्ती भी दूर संबंध होनेमें सहजतासे हो सक्ती है धोरे होनेमें नहीं इसलिये (दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति निरुक्त०) कन्याका नाम दुहिता इस कारणसे है कि इसका विवाह दूर देशमें होनेसे हितकारी होताहै ७ कन्याके पितृकुलमें दारिद्र्य होनेका भी संभव है क्योंकि जबजब कन्या पितृ कुलमें आवेगी तबतब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा ८ आठवां कोई निकटसे एक दूसरेको अपने पितृकुलके सहायका घमंड और जब कुछ भी दोनोंमें वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिताके कुलमें चली आयगी एक दूसरेकी निन्दा भी अधिक होगी और विरोध क्यों कि प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होताहै इत्यादि कारणोंसे पिताके एकगोत्र माताकी छः पीढी और समीप देशमें विवाह करना अच्छा नहीं ॥ ७८ । १

समीक्षा—वाह अच्छा तात्पर्य निकाला गोत्रके अर्थ आपने धोरेके किये दूर देशमें विवाह करे दूर वस्तुमें प्रीति होतीहै प्रत्यक्षमें नहीं तो यदि वोह दूर हो और पितृकुल वा मातृकुलकी लडकी हो उससे तो विवाह करले, धोरे न होनी चाहिये, तो दूरमें होनेसे आप सम्बन्धी भाई बहनके विवाहमें भी अनुमति दे देंगे

जैसा कि यवनोंमें होता है और दूरवस्तुमें प्रीति होगी धोरेमें न होगी तो जब वह दूरकी स्त्री धोरे आई तो फिर वह दूर कहां रही और स्त्रीपुरुषका संग होते ही प्रीति दूर होजानी चाहिये सो ऐसा देखनेमें नहीं आता, किन्तु निकट रहनेसे तो प्रीति अधिक बढती है, इस श्लोकमें आप भूल रहे हैं आचार्योंने सात पीढीका त्याग किया है आप छः पीढीका त्याग लिखते हैं और जब कि दूर देशका ही अभिप्राय है तो छः पीढीका आपने त्याग क्यों किया आप यहां धर्मशास्त्रकी मर्यादा मेटते हैं सुनिये माताका कुल तो ननसाल होता है और पितृकुलके लडके लडकियोंका परस्पर भगिनी भाईका सम्बन्ध होताहै । इस कारण वहां विवाह वर्जित है इसी प्रकार अपने गोत्रमें भी विवाह नहीं होता, क्यों कि जिनका गोत्र एक है वह सब एक ऋषिके सन्तान वा शिष्य होनेसे भाई भगिनीवत् हैं, जो अपने सम्बन्धी हैं चाहे सहस्र कोश क्यों न हो धोरे और अपने कहलाते हैं जिनसे संबन्ध नहीं वह धोरे भी दूर ही है स्वामीजीने तो यहां यवनोंको भी छेक दिया, जो आप गोत्र और मातृकुलका अर्थ धोरेका करते हैं आपको तो विवाहकी भी आवश्यकता नहीं और जाति कर्मसे मानते हो फिर क्यों ऐसा अंड बंड कथनकर दिया फिर जो आपने लिखा कि (निकट और दूरके विवाहके यह गुण हैं) यह भ्रांतिसे ही कहा है क्यों कि गुण तो आपने दूरके ही लिखे धोरेके तो दोष बताये दोनोंमें आपका गुणशब्द नहीं घट सका दूसरे जो बाल्यावस्थासे एकसाथ रहते हैं उनमें तो प्रीति अधिक देखी जातीहै, और बाल्यावस्थाके साथी एक दूसरेका मर्म भी जानते और परस्पर नमते रहते हैं और लडके लडकी ऐसे कम देखनेमें आते हैं जो साथ बालकपनमें खेले हों, और फिर उनका विवाह हुआ हो, क्यों कि लडकोंके साथ लडकियोंके खेलनेकी रीति नहीं है और फिर भी कन्या शीघ्र युवावस्थाको प्राप्त होती हैं, और बालक अधिक कालमें युवा होते हैं इस कारण बराबरकी अवस्थाका भी व्याह कम होताहै जहां होता है उसका कारण लोभ है ॥

तीसरे मातृकुलमें विवाह होनेसे धातुओंका अदलबदल न होनेसे उन्नति नहीं होती यह भी आपका कथन भ्रममात्र है, क्यों कि धातुओंके तो अदलबदलसे रोग उत्पन्न होता है उन्नति कैसी. उससे तो हानि होती है, आपके कथनसे भी सब कुलोंमें बडी भारी उन्नति होती सो भी सबमें देखनेमें नहीं आती और यदि दूसरे कुलका धातु निकम्मी हुई तो हानि ही हुई, उन्नति कहां इस कारण मातृकुल धातुकी उन्नतिके अर्थ त्यागन किया है यह आपका महाभ्रम है ४ (चौथे रोगी दूर देशमें जानेसे जैसे नीरोग होजाता है वैसे ही विवाह उत्तम है)

धन्य है अच्छा कथन किया सुनिये तो यदि रोगी उस देशमें जाय जहांकी वायु जल शुद्ध हो तो आराम हो जायगा परन्तु जहांकी वायु और जल शुद्ध न हो वहां तो मर ही जायगा क्योंकि अच्छा हृष्ट पुष्ट भी मनुष्य कहीं दूर जाय तो पानी खराब होनेसे वह बीमार होजाता है, विवाहमें तो कन्या ही अपने घरसे जाती है क्या वह बीमार होजाती है, जो दूर देशोंमें जानेसे आराम होजाता है या दूलह और बराती जो बीमार होते हैं वह बरातमें जाते हैं दूर देशसे शायद आपका मतलब इंग्लिस्तानका होगा या और किसी विलायतका, क्योंकि समुद्रकी यात्रासे ही दीर्घ कालका रोगी आरोग्य होता है, धन्य है अच्छी फजूल खर्ची बताई, और यदि पश्चिमोत्तर देशकी कन्या: गंगापार जायँ तो पानी खारी मिलनेसे बहुत दिनोंतक दुःख उठाना पडता है, बहुधा बीमार होजाती हैं और बहुत दिनोंमें उनका स्वभाव समतपर आता है और बीस पचीस कोशतक तो वायु भी नहीं बदलती आपको यह लिख देना उचित था कि इतनी दूर और अमुक देशमें विवाह करना चाहिये, यदि वहां न हो तो रहो ब्रह्मचारी क्यों कि आपके मतमें विवाह वायुके अदलबदलके अर्थ हैं तो रोगी हो वह विवाह करे, जो विषय करनेसे और भी दुर्बल होकर शीघ्र ही जीवनसे हाथ धो बैठे यह आपने क्यों झगडा उठाया वायुकी शुद्धि तो हवनसे ही होजाती ५ पांचवें निकट व्याह होनेसे दुःख सुखका भान विरोध होना भी संभव है यह भी कहना मिथ्या ही है क्या यहां आप तारविद्या भूलगये पांच मिनटमें तारद्वारा चाहे जहां सुखदुःखकी खबर भेज दी जाती है सुखदुःखका भान तो परदेशमें भी होसक्ताहै किन्तु जो निकट विवाह होगा तो सुखदुःखमें सहायता शीघ्र हो सकी है, दूरमें खर्च भी पडता है और समयपर सहायता भी नहीं प्राप्त होती और विरोध क्या दूर देशके विवाहमें नहीं होता है जो कुनाम होगा वह घोर दूर देशोंमें विरोध करेगा, किन्तु जो दूर विवाह होता है उसमें बहुधा विरोध रहता है और कारण यह है यह तो कहते हैं कि हम अभी लेजायँगे लडकीके माता पिता कहते हैं तोंगा बीते भेजेंगे, कन्या भी दूर घर होनेसे दो चार वर्षका माता पिताके दर्शनसे वंचित रहती है, इस कारण मातापिताका ही ध्यान लगाये रहती है यदि थोर घर हुआ तो तकरार ही नहीं चाहे जब बुलालो चाहे जब लेजालो। दूर देशमें कन्याको चाहे जितना दुःख हो कोई पूछनेवाला ही नहीं, निकट होनेसे अपने नगरवासियों तथा लडकीके पिता आदिके संकोचसे अधिकदुःख नहीं देसके तथा वायु जल अपने अनुसार होनेसे शरीरमें विषमता भी नहीं आती ६ छठे दूर देशमें विवाह होनेसे पदार्थोंकी प्राप्ति सहजमें

हो सक्ती है, यह भी दयानंदजीका कथन मिथ्या ही है क्या विना पैसे कोई वस्तु प्राप्त हो सक्ती है जिसका ब्याह हुआ है उसको भी विना दाम कुछ वस्तु प्राप्त नहीं हो सक्ती यदि एक दो वार मुफ्तमें आगई तो वारवार कौन भेज सक्ता है. कन्याका पिता मुफ्तमें कुछ मँगा ही नहीं सक्ता और संबंधियोंका सौदा देरमें भी आता है और यदि एक पैसेका पोस्टकार्ड भेज दीजिये छठे दिन कलकत्ते बंबई आदिसे चाहे जो कुछ मंगा लीजिये, अथवा वेल्यूपेबिल मँगाकर रुपया भी यहीं जमाकर वस्तुग्रहण कर लीजिये, और दूर ब्याहनेसे ही कन्याको दुहिता नहीं कहते किन्तु यह अर्थ है कि कन्या दूर रहकर भी हित ही करती है पराये घरका ही धन होती है इसी कारण इसे दुहिता कहते हैं अथवा अपने पाससे जो दूर अर्थात् पृथक् कर दी जाय चाहे धोरे हो या दूर, दूरही है ७ सप्तम पितृकुलमें कन्या आवेगी तो दरिद्रय करेगी क्यों कि कुछ न कुछ देना ही होगा, यह भी भ्रममात्र है और इसका आशय भी कुछ अस्तव्यस्तसा विदित होता है कन्याको तो जहां जायगी वहीं कुछ न कुछ देना ही पडेगा कोई कन्याको घर तो देही नहीं देगा आपका आशय ऐसा विदित होता है कन्याको बहुत कुछ देना, परन्तु फिर पितृकुलवालोंपर दया आगई और कुलोंको कोई लूट ले तो भी जी न दुखे कन्याको तो पिता माता दूर धोरे क्या शक्ति अनुसार सब ही अवस्थामें देते रहते हैं ८ आठवें घमंड हो जायगा लडाई होगी कन्या माके घर चली जायगी स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण मृदु होता है इत्यादि यह भी विरुद्ध ही लेख है भला यह तो कहिये कि सहायता पाकर घमंड किसे नहीं होता और जिससे सहायता मिले उससे तो कोई लडता नहीं फिर वे परस्पर सहायक रिश्तेदार क्यों लडेंगे सहायता बडी चीज है यदि आपको सहायता न मिलती तो सत्यार्थप्रकाश ही क्यों बनाते और जो मनमें आता वो ही अंडबंड लिख डालते और लडाई वालोंको धोरे दूर सब जगह क्लेशही अच्छा लगता है और जब छोटी उमरकी स्त्री घरसे निकलती है तो जिनके मातापिताके घर १०० या २०० मीलपर हैं वे रेलमें बैठकर चलदेती हैं और मार्गमें भ्रष्ट होती हुई घर पहुँचती हैं और उनके दुष्कर्मोंकी ओर कोई नहीं ध्यान करता यह बात देखी हुई है और एक नगरमें विवाह होनेसे व्यग्रचित्त हो यदि पिताके घर जायँ तो थोडी ही देरमें पहुँचनेके कारण दुष्कर्मसे बच सक्ती हैं, तथा अधिक संकोचसे अनिष्टसे बची रहती हैं और स्वभाव तो जिसका जैसा है वोह बदलता ही नहीं चाहे धोरे ब्याह हो या दूर मेरा इस कहनेसे यह प्रयोजन नहीं कि परदेशमें विवाह ही मत करो चाहे जहाँ करो किन्तु मातृ पितृ कुल सपिंड होनेके कारण धर्मशास्त्रमें वर्जित किये हैं, क्यों कि जो सपिंड हैं उनमें विवाह नहीं हो

सक्ता (जिनका एक पिंड हो अर्थात् एक कुल हो उसे सपिंड कहते हैं) अ
पितृ कर्ममें भी इसका वर्णन होगा, इसमें हम स्वामीजीको भी दोष नहीं
क्यों कि वे विचार संन्यासी थे इन बातोंको क्या समझें पर तो भी चेलों
बहकानेको यही बहुत है स्वामीजीके तो कोई बेटाबेटी भी नहीं था फिर
विषयमें क्यों हस्ताक्षेप किया ?

और (परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः) इसके अर्थमें तो आपने वो
मसल की है कि कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनबा जोडा कहांका प्रसंग क
लिख बैठे यह देवताप्रकरणकी बात है कि देवता परोक्षप्रिय हैं प्रत्यक्षसे द्वे
करते हैं इसी कारण ।

"तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते" 'तं वा एतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते' तंवाएतमंगरसंसन्तमंगिराइत्याचक्षते' गोपथे ' अग्निर्ह वैतमग्निरित्याचक्षते' शतपथे ' तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वै तं मघवानित्याक्षते परोक्षं परोक्षकामाहि देवाः श० १४ । १ । १ । १३ ॥

गोपथ ब्राह्मणके प्र० प्रपा० कारि० ७ में लिखा है कि देवता परोक्षप्रिय हैं
प्रत्यक्षसे द्वेष करते हैं इस कारण वरण शब्दको वरुण मुच्युको मृत्यु और
अंगरसको अंगिरा कहते हैं शतपथमें लिखा है देवता परोक्षकाम हैं इस कारण
परोक्षमें अग्रिको अग्नि अश्रुको अश्व और मखवान्को मघवान् कहतेहैं इत्यादि,
दयानंदजीने विवाहमें प्रसंग लगा दिया ॥

स० पृ० ८१ पं० ६ सोलहवें वर्षसे लेकर चौबीस वर्षतक कन्या और पचीस
वर्षसे लेकर ४८ वर्षतक पुरुषका विवाह उत्तम है सोलहवें और पचीसमें विवाह
करे तो निकृष्ट अठारह बीसकी स्त्री तीस पैंतीस चालीस वर्षके पुरुषका विवाह
मध्यम है इसमें विद्याभ्यास अधिक हो जाता है (प्रश्न) ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

यह श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोधमें लिखे हैं अर्थ यह कि कन्याकी आठवें
वर्ष गौरी, नवमें वर्ष रोहिणी, दशमें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा
होजाती है १ दशवें वर्षतक विवाह न करके रजस्वला कन्याको माता पिता और

उसका बडा भाइ देखे तो यह तीनों नरकमें गिरते हैं पृ० ८२ पं० १४ आठवें नौमें वर्षमें विवाह करना निष्फल है जैसे आठवें वर्षकी कन्यामें पुत्र होना असम्भव है वैसेही गौरी रोहिणी आदि नाम देना भी असंभव है गौरी आदि नाम पार्वती रोहिणी वसुदेवकी स्त्रीका है उसे तुम माताकी तरह मानते हो फिर विवाह कैसे संभव है इसलिये इसका प्रमाण छोड वेदोंका प्रमाण किया करो ८० । २३ फिर पृ० ८३ पं०८ में लिखते हैं ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती॥ऊर्ध्वं तु काला-
देतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम्॥ अ०९ श्लो० ९०

अर्थ–कन्या रजोदर्शन हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिकी खोज करके अपने पतिको प्राप्त होवे जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षमें छत्तीस वार रजस्वला हुई पश्चात् विवाह करना योग्य है गुणहीनके साथ न करै चाहे कौंरी ही रहै ८२ । ८

स० पृ० ८२ । पं० २१ सुश्रुतमें भी लिखा है ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् अ० १०।४७।४८

सोलह वर्षसे न्यून अवस्थावाली स्त्रीमें २५ वर्षसे न्यून पुरुष जो गर्भको स्थापन करे तो वह कुक्षिमें प्राप्त हुआ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता है जो उत्पन्न हो तो चिरकालतक न जीवे और जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इसकारण अति बाल्यावस्थामें गर्भस्थापन न करै (८१ । २७) पुनः पृ० ८३ पं० १९ लडका लडकीके अधीन विवाह होना उत्तम है यदि माता पिता करैं तो लडका लडकीसे सम्मति करलें उनकी प्रसन्नताके विना न होना चाहिये ॥ ८९ । ४

पृ० ८९ पं० २२ जबतक ऋषि मुनि राजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्यसे विद्या पढके स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देशकी उन्नती थी जबसे बाल्यावस्थामें पराधीन विवाह अर्थात् माता पिताके अधीन होने लगा तबसे देशकी हानि हुई (८९ । ७) पृ० ९२ पं० २९ कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेल न होना चाहिये क्योंकि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका एकान्त वास दूषणकारक है परन्तु जब एक वर्ष वा छः महीने विद्या पूर्ण वा ब्रह्मचर्याश्रमके रह जायँ तो उन कन्या और कुमारोंके फोटोग्राफ उतारके दोनोंके अध्यापक अध्यापिकाओंके पास भेज देवें जिस २ का रूप मिलजाय उस उसके इतिहास अर्थात् जन्मसे लेके उस

सक्ता (जिनका एक पिंड हो अर्थात् एक कुल हो उसे सपिंड कहते हैं) आ पितृ कर्ममें भी इसका वर्णन होगा, इसमें हम स्वामीजीको भी दोष नहीं देते क्यों कि वे विचारे संन्यासी थे इन बातोंको क्या समझें पर तौ भी चेलोंके बहकानेको यही बहुत है स्वामीजीके तौ कोई बेटाबेटी भी नहीं था फिर इस विषयमें क्यों हस्ताक्षेप किया ?

और (परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः) इसके अर्थमें तौ आपने वो ही मसल की है कि कहींकी ईट कहींका रोडा भानमतीने कुनबा जोडा कहांका प्रसंग कहां लिख बैठे यह देवताप्रकरणकी बात है कि देवता परोक्षप्रिय हैं प्रत्यक्षसे द्वेष करते हैं इसी कारण ।

"तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते" 'तं वा एतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते' तंवाएतमंगरसंसन्तमंगिराइत्याचक्षते' गोपथे ' अग्निर्ह वैतमग्निरित्याचक्षते' शतपथे 'तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वै तं मघवानित्याक्षते परोक्षं परोक्षकामाहि देवाः श० १४ । १ । १ । १३ ॥

गोपथ ब्राह्मणके प्र० प्रपा० कारि० ७ में लिखा है कि देवता परोक्षप्रिय हैं प्रत्यक्षसे द्वेष करते हैं इस कारण वरण शब्दको वरुण मुच्युको मृत्यु और अंगरसको अंगिरा कहते हैं शतपथमें लिखा है देवता परोक्षकाम हैं इस कारण परोक्षमें अग्निको अग्नि अश्रुको अश्व और मखवान्को मघवान् कहतेहैं इत्यादि, दयानंदजीने विवाहमें प्रसंग लगा दिया ॥

स० पृ० ८१ पं० ६ सोलहवें वर्षसे लेकर चौबीस वर्षतक कन्या और पचीस वर्षसे लेकर ४८ वर्षतक पुरुषका विवाह उत्तम है सोलहवें और पचीसमें विवाह करे तो निकृष्ट अठारह बीसकी स्त्री तीस पैंतीस चालीस वर्षके पुरुषका विवाह मध्यम है इसमें विद्याभ्यास अधिक हो जाता है (प्रश्न) ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

यह श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोधमें लिखे हैं अर्थ यह कि कन्याकी आठवें वर्ष गौरी, नवमें वर्ष रोहिणी, दशमें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होजाती है १ दशवें वर्षतक विवाह न करके रजस्वला कन्याको माता पिता और

उसका बडा भाइ देखे तो यह तीनों नरकमें गिरते हैं पृ० ८२ पं० १४ आठवें नौमें वर्षमें विवाह करना निष्फल है जैसे आठवें वर्षकी कन्यामें पुत्र होना असम्भव है वैसेही गौरी रोहिणी आदि नाम देना भी असंभव है गौरी आदि नाम पार्वती रोहिणी वसुदेवकी स्त्रीका है उसे तुम माताकी तरह मानते हो फिर विवाह कैसे संभव है इसलिये इसका प्रमाण छोड वेदोंका प्रमाण किया करो ८० । २३ फिर पृ० ८३ पं०८ में लिखते हैं ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती॥ऊर्ध्वं तु काला-
देतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम्॥ अ०९ श्लो० ९०

अर्थ–कन्या रजोदर्शन हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिकी खोज करके अपने पतिको प्राप्त होवे जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षमें छत्तीस बार रजस्वला हुई पश्चात् विवाह करना योग्य है गुणहीनके साथ न करे चाहे कॉरी ही रहै ८२ । ८

स० पृ० ८२ । पं० २१ सुश्रुतमें भी लिखा है ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् अ० १०।४७।४८

सोलह वर्षसे न्यून अवस्थावाली स्त्रीमें २५ वर्षसे न्यून पुरुष जो गर्भको स्थापन करे तो वह कुक्षिमें प्राप्त हुआ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता है जो उत्पन्न हो तो चिरकालतक न जीवे और जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इसकारण अति बाल्यावस्थामें गर्भस्थापन न करै (८१ । २७) पुनः पृ० ८३ पं० १९ लडका लडकीके अधीन विवाह होना उत्तम है यदि माता पिता करैं तो लडका लडकीसे सम्मति करलें उनकी प्रसन्नताके विना न होना चाहिये ॥ ८५ । ४

पृ० ८५ पं० २२ जबतक ऋषि मुनि राजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्यसे विद्या पढके स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देशकी उन्नती थी जबसे बाल्यावस्थामें पराधीन विवाह अर्थात् माता पिताके अधीन होने लगा तबसे देशकी हानि हुई (८५ । ७) पृ० ९२ पं० २५ कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेल न होना चाहिये क्योंकि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका एकान्त वास दूषणकारक है परन्तु जब एक वर्ष वा छः महीने विद्या पूर्ण वा ब्रह्मचर्याश्रमके रह जायें तो उन कन्या और कुमारोंके फोटोग्राफ उतारके दोनोंके अध्यापक अध्यापिकाओंके पास भेज देवें जिस २ का रूप मिलजाय उस उसके इतिहास अर्थात् जन्मसे लेके उस

दिनपर्यंत जन्मचरित्रका पुस्तक हो उसको मँगाकर अध्यापक लोग देखें जब दोनोंके गुण कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस जिसका विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष और कन्याका प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथमें दें और उनकी भी सम्मति लें दोनों अध्यापकोंके सामने विवाह करना चाहे तो वहीं, नहीं तो कन्याके माता पिताके घरमें हो । जब वे सम्मत हों तब उनका अध्यापकों वा माता पितादि भद्र पुरुषोंके सामने उन दोनोंकी आपसमें बातचीत करना शास्त्रार्थ करना और जो कुछ वे गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभामें लिखके एक दूसरेके हाथमें देकर प्रश्नोत्तर करलेवें तथा खानपानका उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये जिससे उनका शरीर जो विद्याध्ययनादिसे दुर्बल हो रहाहै पुष्ट होजाय पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी मंडप रचे, अनेक सुगंधित द्रव्य घृतादिका होम, विद्वान् पुरुष और स्त्रीका यथायोग्य सत्कार करें, फिर जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन संस्कारविधि पुस्तकस्थ विधिके अनुसार सब कर्म करके मध्यरात्रि वा दशबजे अति प्रसन्नतासे सबके सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाहकी विधिको पूरी कर एकान्त सेवन करें, पुरुषवीर्य स्थापन* और स्त्री वीर्याकर्षणकी जो विधि है उसीके अनुसार दोनों करें पुनः पृ० ९३ पं० २९ जब वीर्यका गर्भाशयमें गिरनेका समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिकाके सामने नासिका नेत्रके सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं पुरुष अपने शरीरको ढीला छोडे और स्त्री वीर्य प्राप्तिके समय अपान वायुको ऊपर खींचे, योनिको ऊपर संकोचकर वीर्यको ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थित करे, पश्चात् दोनों शुद्ध जलसे स्नान करें सोंठ केशर असगंध छोटी इलायची सालम मिश्री मिला दूध पीकर अलग २ सो रहें यह बात रहस्यकी है इतनेहीमें समग्र बातें समझ लेनी चाहिये, विशेष लिखना उचित नहीं जब गर्भ स्थित होजाय तब पृ० ९४ पं० १७ गर्भमें दो संस्कार एक चौथे महीनेमें पुंसवन आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन करे पृ० ९४ पं० २९ ॥ संतानके कानमें पिता (वेदोसीति) अर्थात् तेरा नाम वेद हैसुनाकर घृत और शहदको लेकर सोनेकी शलाकासे जीभपर ओ३म् अक्षर लिखकर मधु और घृतको उसी शलाकासे चटवावे पुनः पृ० ९९ पं० २ पुष्टिके अर्थ स्त्री अनेक प्रकारके उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे संतानके दूध पानेके

* बाबाजी तो ब्याहके घण्टेभर बाद ही गर्भाधान लिखते हैं येगडी लगानेवाले मेरठके स्वामी भा० प्र० पृ० १०८ में एक वर्ष १२ वा ३ दिनतक व्रत रखाकर इस कामको मने करते हैं (न मिथुनमुपेयाताम्) अब चेले किसे सत्य समझेंगे वर्षदिनतक तरसते रहें या आपकी बात न मानकर बाबाजीकी शरण रहें ।

लिये कोई धाय रक्खे जो बालकको दूध पिलाया करे स्त्री दूध बंद करनेके अर्थ स्तनके अग्रभागपर ऐसा लेप करै जिससे दूध स्रवित न हो और नामकरणादि संस्कृत विधिकी रीतिसे यथाकाल करता जाय ॥ पृ० ९२ पं० २१ से ९३ पृ० के अन्ततक ।

समीक्षा—ऊपर लिखी हुइ सत्यार्थप्रकाशकी वार्ताओंका सिद्धान्त यह है कि २५ वर्षमें कन्या और अडतालीस वर्षमें पति विवाह करें सो विवाह क्या वस्तु है इस वार्ताको लिखकर पश्चात् इसके, स्वामीजीके सब वाक्योंका खंडन करेंगे प्रथम विवाहकी परिभाषा कहते हैं ॥

(भार्यात्वसंपादकग्रहणम्) जिसके भरण पोषणका भार सदवको शिरपर लिया जाय उसका जो भाव उसका भार्यात्व कहते हैं और, संपादन अर्थात् उक्त भावका उत्पन्न करनेवाला ऐसे जो ग्रहण अर्थात् ज्ञान व भार्याका भाव जिस ज्ञानसे उत्पन्न होवे उसका नाम विवाह है (तस्य स्वीकाररूपं ज्ञानं विशेषस्य समवायविषयः तयोर्भेदात् वरकन्ययोः विवाहकर्तृत्वकर्मत्वेति) अर्थात् भार्याका स्वीकार रूप जो विशेष ज्ञान है तिसमें समवाय और विषय दो प्रकारके भेद होनेसे विवाहमें वरका कर्तृत्व और कन्याका कर्मत्व स्पष्ट प्रतीत होता है इससे विवाह शब्दके कहनेसे यह बात आती है कि वर और कन्याके विशेष संयोगका भाव मनमें उदय होता है, विशेष संयोग कहनेका भाव यह है कि पुरुष स्त्रीका आत्मा मन शरीरके भरणपोषण रक्षा आदिका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार करता है, इस प्रकारके संयोगको अविच्छेद संबन्ध होताहै अब वह विवाह कितनी अवस्थामें होना चाहिये सो निर्णय किया जाताहै अंगिरा ऋषिने भी (:अष्टवर्षाभवेद्गौरीति) यही श्लोक लिखा है. जो पराशरजीने लिखा है. यह केवल संज्ञामात्र बांधी है कि आठ वर्षकी जो कन्या हो उसे गौरी, जो नव वर्षकी बालिका हो उसकी संज्ञा रोहिणी, जो दश वर्षकी हो उसका नाम कन्या होता है इससे आगे रजस्वलाका समय है जो बहुधा द्वादश वर्षके अवस्थातक हो जाता है जो स्वामीजीने यह लिखा है कि गौरी पार्वतीका नाम है सो क्या पार्वती सदा आठ ही वर्षकी रहती है और रोहिणी नौही वर्षकी रहती है, और जो नामके अनुसार ही अर्थ करते हो तो चंपा भागवती आदि नामानुसार ही कर्म भी होने चाहिये, तुम्हारा नाम दयानंद था, तुम्हें सदा आनंद रहना चाहिये था, फिर जब मुरादाबादमें आये थे तो मेरे सामने कहा था, कि आजकल शरीर दुःखी है दस्त होते हैं फिर नामानुसार अर्थ माने तो व्याकरणमें जिन शब्दोंकी नदी संज्ञा मानी है तो क्या वे शब्द पानी होकर बहते हैं इससे यह उच्चारणमात्र संज्ञा बांधी

हैं वे बालिका पार्वती वा रोहिणी नहीं होजातीं जब हम कहें कि यह बालिका रोहिणी है तो जानलेना कि इसकी अवस्था नौ वर्षकी है कन्या कहनेसे दश वर्षकी अवस्था प्रतीत होती है और इसी समयमें विवाह भी कर देना योग्य है जबतक रजस्वला न हो क्योंकि रजस्वला होने उपरान्त वह नारी सन्तानोत्पत्तिके योग्य होजाती है इसीसे आठ वर्षसे लेकर १२ वर्ष पर्यंत कन्याका विवाह काल है जैसा मनुजी लिखते हैं ॥

त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ मनु० अ० ९ श्लोक ९४

तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्यासे विवाह करे जो मनोहर हो और चौबीस वर्षवाला आठ वर्षकी अवस्थावाली बालिकाके संग विवाह करले इससे शीघ्र करनेमें धर्म पीडा होती है यही मनुजीकी विवाह करनेमें आज्ञा है इसीका आशय ले पराशरजीने श्लोक बनाये हैं जब कि शास्त्रोंमें ऋतुमती स्त्रीके पास न जानेसे महादोष कथन किया है उसका कारण यह है कि यह समय सन्तानोत्पत्तिका होता है और ऋतुदान बिना विवाहके कहां यदि विवाह हो जाय तो ऋतुसमयमें संयोग होनेसे कदाचित् संतानकी उत्पत्ति हो जाती है इसी कारण ऋतुधर्म जिसे होने लगा हो तो उसका विवाह नहीं करनेसे माता पिता पापभागी होते हैं इसीसे पराशरजीने ' माता चैवेति ' यह श्लोक लिखा है कि ऋतुमती होनेसे पहले विवाह कर देना नहीं तो पापभागी होना पडेगा और सुश्रुतमें भी लिखा है अध्याय १० ॥

अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् ॥

विद्यासम्पन्न पुरुषको जिसकी अवस्था २५ वर्षकी हो उसको बारह वर्षवालीसे व्याह करना योग्य है इससे यह सिद्ध होता है कि पुरुषकी अवस्था २५ वर्षसे कम न हो जब विवाह करे और कन्याकी १० अथवा बारह वर्षसे कम न हो उस समय विवाह कर दे तो उसमें बहुत गुण प्राप्त होते हैं क्यों कि विवाहका अभिप्राय वर वधूके अच्छेद्य संयोगसे कामोपभोगपूर्वक सृष्टिप्रवाह चलानेका है संयोगमें वियोग न होनेके कारण सहवास लम्बा भय अनुराग और स्नेह यह सब बाल्यावस्थाम्यस्त होने चाहिये यह बात सब कोई जानते हैं कि जिसका जितना अधिक सहवास होता है उसके दुःख और सुखका उसे उतना ही अधिक दुःख सुख भागी होना पडता है और स्त्रियोंको तो अधिक ही होता है, जैसे कि माता पिताकी अपेक्षा पुत्रकी अधिक सहभागिनी होती है, इस प्रकार बाल्या-

थाभ्यस्त सहवास स्त्रियोंके अच्छेद्य संयोगका मुख्य कारण है इसी प्रकार
ना और भयका जितना अभ्यास बालकपनसे हो उतना ही अच्छा है, विवा-
ता लडकी विवाहके दिनसे ही घूँघट काढने लगती है, और कई प्रकारकी सुस-
रकी रीति पालन करने लगती है और सास ससुरका भय उसी दिनसे चित्त-
आजाताहै, कई प्रकारके पतिसम्बन्धी व्रत नियम पालन करने लगती है,
सुरालके देशके मनुष्योंसे अधिक लज्जा करती है उनसे भाषणतक नहीं करती
र गृहस्थीके कामकाज रसोई, सीना, गोटा, किनारी आदि जो कुछ गृहस्थ
बन्धी कर्म हैं जो स्त्रीको अति आवश्यक हैं मन लगाकर सीखती है, जिससे
द्विरागमन पर्यन्त गृहकार्योंमें चतुर हो जाती है, यदि सोलह वर्ष वा
स वर्षकी अवस्थामें विवाह करै तो इसमें स्त्रियोंमें दुश्चरित्र होनेकी बडी
ा है क्यों कि-

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेह
वासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥ मनु० अ० ९ श्लोक १३

मद्यपान, खोटे पुरुषोंका संग, पतिका वियोग, घूमना, पराये घरका वास,
अधिक सोना यह स्त्रियोंके छः दूषण हैं सो सुसरालमें रहने अथवा कन्या
स्थामें विवाह होनेसे यह सब दोष बचतेहैं, विवाहिता बालिका बहुत नहीं
ती सवेरे उठना पडताहै तथा सुसरालियोंके भयसे लज्जादिक सब बनी रहती
तिसे भी बहुत वियोग नहीं रहता. अब बडी अवस्थाका विवाह सुनिये वे
पिताकी प्यारी होनेसे भय नहीं करतीं, परदा किसीसे नहीं करतीं, यदि
माता आदि शिक्षा करैं तो ध्यान नहीं देतीं, और विना ब्याहे बहुधा तमासे
ी गुडियें खेलती इधर उधर भ्रमण करती रहती, हैं और दुर्जनोंकी गोष्ठीमें
उनेका संभव है मद्य नहीं तो भंग चाखती ही हैं, यदि बहुत सोना देख
ाता कहती है बेटी उठ बहुत मत सोवै तो यही कहती हैं कि मा तू तो हमें
भी नहीं देती है, यदि मा घरमें बैठनेको कहे तो वह कहती हैं कल हमारे
सन्ती और हिरिया भी तो आईथीं, उनकी माने उन्हें नहीं बर्जा, तू हमारे
छे पडी रहै है, बस यह कह चल दी और मनुजीके उक्त दोषोंको सार्थ करने
फिर उनका पतिके साथ अच्छेद्य संयोग किस प्रकारसे हो, इसी प्रकार
ौर अनुराग जितने बालपनसे अधिक अभ्यस्त होंगे उतने ही अधिक बल-
होंगे, फिर त्रयोदश वर्ष प्रारंभमें कामका संचार होजाताहै किसीपर दृष्टि
डी या किसी धूर्त पुरुषने वशमें करलिया तो बस सभी कह गया [illegible]

गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवंनवम् ॥

जैसे गायें वनमें नवीन तृण चाहती हैं इसी प्रकार स्त्री नवीन नवीन पुरुषोंकी चाहना करती हैं यह दशा उनकी होती है, जिनका पतिसे अभ्यस्त अनुराग नहीं है इस कारण थोडी अवस्था १० वा बारहवर्षमें कन्याका विवाह करना यदि यह कहो कि युवा अवस्थामें स्त्री रुचिअनुसार वर ढूंढ लेगी तो व्यभिचारिणी न होंगी, तो इसका उत्तर यह है प्रायशः स्त्री जाति पुरुषोंमें पतिको अन्यान्यगुणोंकी अपेक्षा सुन्दरतायुक्त होना अधिक चाहती हैं, जैसे कि पुरुष सुंदर स्त्री ढूंढते हैं और यह भी एक बात है कि पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष तबतक अच्छा लगता है कि जबतक भोगा न हो, भोग उपरान्त सुन्दर भी रूपरहित लगतेहैं, और पतिका प्रेम बालकपनसे अभ्यस्त न होनेस वे दूसरे उससे अधिक सुन्दर पुरुषसे प्रीति करसक्ती हैं औ अभ्यस्त प्रेममें यह बात नहीं होती यह तो सर्वांगमें बस जाताहै, और बाल विवाह मत करो, यह कहना ठीक नहीं किन्तु बाल लडकेका विवाह करना किसी प्रकार उचित नहीं यदि दशवर्षकी लडकीसे विवाह किया तो बीस वर्षका पति होना योग्य है वा १९ वर्षका इससे कमती किसी प्रकार नहीं यहांतक महात्माओंने मर्यादा कर दी है, कि इससे कमती अवस्थाका विवाह न होना चाहिये तो इस समयकी प्रथाके अनुसार पांच व तीन वर्षमें डिरागमन होताहै फिर एक या दो वर्षमें आवाजाई खुलतीहै जिसको (रौना) कहतेहैं इस समयतक स्त्रीकी अवस्था पन्द्रह वा सोलह वर्षकी होजाती है और वरभी २५ वर्ष वा २६ वर्षकी अवस्थाका होजाताहै और १९ वर्षमें विवाह हुआ तो २१ वर्षका होजाताहै, इसी पांच वर्षमें स्त्री घरके सब कार्योंमें चतुर होजातीहैं और कार्यमात्र विद्या भी पढसक्ती हैं जिससे अपना और बालक जो हों उसका पालन यथावत् कर सकें, और यही सुश्रुतकार भी कहते है कि १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्षका पुरुष यह संयोगके और गर्भधारण स्थापनके योग्य होते हैं कुछ यह इस श्लोकका अर्थ नहीं है कि इतनी अवस्थामें विवाह करें यह तो संयोगका समय लिखा है विवाहका नहीं है वाग्भटने १६ और २० वर्षकी आयुमें स्त्री पुरुषोंका संयोग माना है पर विवाह नहीं, और इसी प्रकार होता ही है, लडका लडकीके अधीन विवाह होनेमें यह दोष है कि स्त्री रूपकी प्यासी होती है जाने कौनसे जातिके पुरुषको पसन्द करे क्यों कि "भिन्नरुचिर्हिलोकः" मनकी रुचि सबकी भिन्न होती है तो ऊंच नीच संयोग होनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है और यह भी देखा जाता है कि बडी अवस्थावाली अनब्याही बहुतायतसे रूप ... ही मोहित होती हैं और हुई भी हैं यह इतिहासोंमें श्रवण किया है, यह

स्वयंवर क्षत्रियोंमें बहुत होता था, जिसमें क्षत्रिय जातिके राजा एकत्र होते थे, स्वामीजीने जाति वर्ण सब भेद सबके ही वास्ते लिख दिया मानो वर्णसंकरकी उत्पत्तिका द्वार खोल दिया ॥

और जब कि कन्यादान शब्द विवाहमें कहा जाता है तो कन्या बिना पिताकी अनुमति स्वयं कैसे पतिवरण कर सक्ती है, जब कि दान दिया जाता है तो देनेवालेको अधिकार है चाहे जिसे दे दे, परन्तु दाताको पात्रापात्रका विचार अवश्य कर्तव्य है, आपने तो कन्यादानकी प्रथा ही मेटनी विचारी है मनुजी स्त्रीकी स्वाधीनता नहीं अंगीकार करते हैं सुनिये ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् ॥ १४८ ॥ अ० ५ मनु०
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः ॥
तं शुश्रूषेत जीवंतं संस्थितं च न लंघयेत् ॥ १५१ ॥

बाल्यावस्थामें पिताके वशमें यौवनमें पतिके वशमें भर्ताके मरनेपर पुत्रोंके वशमें स्त्री रहै परन्तु स्वतंत्र कभी न रहै १ १४८ ॥ जिसे इसको पिता दे वा पिताकी अनुमतिसे भ्राता दद उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहे और मरनेपर भी श्राद्धादि करे कुलके वशीभूत रहै मर्यादाका न लंघन करे, इत्यादि प्रमाणोंसे स्त्री स्वयं पतिवरण नहीं करसक्ती स्वयंवर राजोंमें होता है ॥

और आर्य लोगभी थोडी अवस्थामें विवाह करते थे, रामचन्द्र महाराजका १९ वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ था यह वाल्मीकिसे सिद्ध है सोई हम पीछे लिख चुके हैं दशरथजी विश्वामित्रजीसे क्या कहते हैं ॥

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ बाल०स०२०श्लो०२ ॥

हे विश्वामित्रजी अभी रामचन्द्र सोलह वर्षसे भी कम हैं यह राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सक्ते इसी समय रामचन्द्र उनके संग गये और यज्ञकी रक्षा कर धनुष तोड जानकी विवाही कहिये यह विवाह कैसा हुआ और अभिमन्युका भी थोडी ही अर्थात् १४ वर्षकी अवस्थामें हुआ था और विवाहसे थोडे ही दिन पीछे भारतके युद्धमें मृतक हुए उस समय उसकी स्त्री उत्तरा गर्भवती थी, और उससे राजा परीक्षित् उत्पन्न हुए कहिये जो २५, ३०, ४८ वर्षतक बैठे रहते तो पाण्ड-

१ भा० प्र० कहता है बाल्कपनमें पिताका कहा माने, धन्यबुद्धि तो क्या वृद्धा अवस्थामें पतिका कहना न माने पुत्रोंकी ही बातें माने धन्य पक्षपात ।

गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवंनवम् ॥

जैसे गायें वनमें नवीन तृण चाहती हैं इसी प्रकार स्त्री नवीन नवीन पुरुषोंकी चाहना करती हैं यह दशा उनकी होती है, जिनका पतिसे अभ्यस्त अनुराग नहीं है इस कारण थोडी अवस्था १० वा बारहवर्षमें कन्याका विवाह करना यदि यह कहो कि युवा अवस्थामें स्त्री रुचिअनुसार वर ढूंढ लेगी तो व्यभिचारिणी न होगी, तो इसका उत्तर यह है प्रायशः स्त्री जाति पुरुषोंमें पतिको अन्यान्यगुणोंकी अपेक्षा सुन्दरतायुक्त होना अधिक चाहती हैं, जैसे कि पुरुष सुंदर स्त्री ढूंढते हैं और यह भी एक बात है कि पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष तबतक अच्छा लगता है कि जबतक भोगा न हो, भोग उपरान्त सुन्दर भी रूपरहित लगतेहैं, और पतिका प्रेम बालकपनसे अभ्यस्त न होनेसे वे दूसरे उससे अधिक सुन्दर पुरुषसे प्रीति करसक्ती हैं औ अभ्यस्त प्रेममें यह बात नहीं होती वह तो सर्वांगमें बस जाताहै, और बाल विवाह मत करो, यह कहना ठीक नहीं किन्तु बाल लडकेका विवाह करना किसी प्रकार उचित नहीं यदि दशवर्षकी लडकीसे विवाह किया तो बीस वर्षका पति होना योग्य है वा १९ वर्षका इससे कमती किसी प्रकार नहीं यहांतक महात्माओंने मर्यादा कर दी है, कि इससे कमती अवस्थाका विवाह न होना चाहिये तो इस समयकी प्रथाके अनुसार पांच व तीन वर्षमें द्विरागमन होताहै फिर एक या दो वर्षमें आवाजाई खुलतीहै जिसको (रौना) कहतेहैं इस समयतक स्त्रीकी अवस्था पन्द्रह वा सोलह वर्षकी होजाती है और वरभी २५ वर्ष वा २६ वर्षकी अवस्थाका होजाताहै और १९ वर्षमें विवाह हुआ तो २१ वर्षका होजाताहै, इसी पांच वर्षमें स्त्री घरके सब कार्योंमें चतुर होजातीहै और कार्यमात्र विद्या भी पढसक्ती हैं जिससे अपना और बालक जो हों उसका पालन यथावत् कर सके, और यही सुश्रुतकार भी कहते है कि १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्षका पुरुष यह संयोगके और गर्भधारण स्थापनके योग्य होते हैं कुछ यह इस श्लोकका अर्थ नहीं है कि इतनी अवस्थामें विवाह करें यह तो संयोगका समय लिखा है विवाहका नहीं है वाग्भटने १६ और २० वर्षकी आयुमें स्त्री पुरुषोंका संयोग माना है पर विवाह नहीं, औरइसी प्रकार होता ही है, लडका लडकीके अधीन विवाह होनेमें यह दोष है कि स्त्री रूपकी प्यासी होती है जाने कौनसे जातिके पुरुषको पसन्द करै क्यों कि "भिन्नरुचिर्हिलोकः" , मनकी रुचि सबकी भिन्न होती है तो ऊंच नीच संयोग होनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है और यह भी देखा जाता है कि बडी अवस्थावाली अनब्याही बहुतायतसे रूप देखकर ही मोहित होती हैं और हुई भी हैं यह इतिहासोंमें श्रवण किया है, यह

स्वयंवर क्षत्रियोंमें बहुत होता था, जिसमें क्षत्रिय जातिके राजा एकत्र होते थे, स्वामीजीने जाति वर्ण सब भेद सबके ही वास्ते लिख दिया मानो वर्णसंकरकी उत्पत्तिका द्वार खोल दिया ॥

और जब कि कन्यादान शब्द विवाहमें कहा जाता है तो कन्या बिना पिताकी अनुमति स्वयं कैसे पतिवरण कर सक्ती है, जब कि दान दिया जाता है तो देनेवालेको अधिकार है चाहे जिसे दे दे, परन्तु दाताको पात्रापात्रका विचार अवश्य कर्तव्य है, आपने तो कन्यादानकी प्रथा ही मेटनी विचारी है मनुजी स्त्रीकी स्वाधीनता नहीं अंगीकार करते हैं सुनिये ॥

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् ॥ १४८ ॥ अ० ५ मनु०
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥
तं शुश्रूषेत जीवंतं संस्थितं च न लंघयेत् ॥ १५१ ॥

बाल्यावस्थामें पिताके वशमें यौवनमें पतिके वशमें भर्ताके मरनेपर पुत्रोंके वशमें स्त्री रहे परन्तु स्वतंत्र कभी न रहे १ १४८ ॥ जिसे इसको पिता दे वा पिताकी अनुमतिसे भ्राता दद उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहे और मरनेपर भी श्राद्धादि करै कुलके वशीभूत रहे मर्यादाका न लंघन करै, इत्यादि प्रमाणोंसे स्त्री स्वयं पतिवरण नहीं करसक्ती स्वयंवर राजोंमें होता है ॥

और आर्य लोगभी थोडी अवस्थामें विवाह करते थे, रामचन्द्र महाराजका १५ वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ था यह वाल्मीकिसे सिद्ध है सोई हम पीछे लिख चुके हैं दशरथजी विश्वामित्रजीसे क्या कहते हैं ॥

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ बाल० स० २० श्लो० २ ॥

हे विश्वामित्रजी अभी रामचन्द्र सोलह वर्षसे भी कम हैं यह राक्षसोंसे युद्ध नहीं कर सक्ते इसी समय रामचन्द्र उनके संग गये और यज्ञकी रक्षा कर धनुष तोड जानकी विवाही कहिये यह विवाह कैसा हुआ और अभिमन्युका भी थोडी ही अर्थात् १४ वर्षकी अवस्थामें हुआ था और विवाहसे थोडे ही दिन पीछे भारतके युद्धमें मृतक हुए उस समय उसकी स्त्री उत्तरा गर्भवती थी, और उससे राजा परीक्षित् उत्पन्न हुए कहिये जो २५, ३०, ४८ वर्षतक बैठे रहते तो पाण्ड-

१ भा० प्र० कहता है बाल्कपनमें पिताका कहा माने, धन्यबुद्धि तो क्या वृद्धा अवस्थामें पतिका कहना न माने पुत्रोंकी ही बातें माने धन्य पक्षपात ।

योंका वंश समाप्त ही हो चुका था तथा और भी पंचदश वर्षकी अवस्थामें विवाहक प्रमाण हैं और इस समय तो पन्द्रह बीस वर्षकी अवस्थातक विवाह करही देना चाहिये क्यों कि इस समय सब लोग जो चारों वर्णके हैं बहुधा बालकोंको फारसी पढाते हैं और इस फारसीने ऐसी दुर्दशा कर दी है कि थोडी अवस्थामें ही बालक फारसीके शेर ...गजल दीवान आदि पढकर कामचेष्टामें अधिक मन लगातेहैं और अनुचित् प्रीति करके तेल फुलेल सुरमा डाटे चिकनिया बने फिरतेहैं जिनके स्त्री हुई यह तो कथंचित् ठीक रहते हैं, जिनके न हुई ये बाजारमें जाकर अथवा शून्य मंदिरमें बैठकर वीर्यको स्वाहा करने लगे उपदंश, मूत्रकृच्छ्र होगया बस तीस वर्षतक खातमा प्रगटके ब्रह्मचारीबडे भारी भीतर मसाला कुछ भी नहीं यदि, स्त्री हो तो २०, पच्चीस वर्षमें एक या दो सन्तान होजाती है, जो पिताकी तीस चालीस वर्षकी अवस्थातक पुत्र समर्थ होकर पिताकी सहायताके योग्य होजाताहै क्यों कि इस समय ५० अथवा ६० वर्षकी अवस्थामें ही बहुधा मृत्यु होजातीहै, जब ४८ वर्षमें (जो क्षीण अवस्था होतीहै)जैसा लिखा है कि, " चतस्रोवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किंचित्परिहाणिश्चेति आषोडशाद् वृद्धिः आपंचविंशतेर्यौवनं, आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता, ततः किंचित्परिहाणिश्चेति " अर्थ इस शरीरकी चार अवस्था हैं, वृद्धि यौवन सम्पूर्णता और किंचित्परिहाणि जन्मसे लेकर १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहातीहै अर्थात् बढतीहै और सोलहसे २५ वर्षतक युवावस्था रहतीहै २५ से लेकर ४० वर्ष पर्यंत सम्पूर्णता अवस्था कहातीहै पुनः ४० वर्षसे उपरांत कुछ कुछ घटने लगतीहै ४८ में ब्याह किया तो दो तीन वर्ष उपरान्तही पूर्ण जराग्रस्त पुरुष और पूर्ण युवावस्थायुक्त स्त्री होती है तो बस "वृद्धस्य तरुणी विषम् " बुड्ढेको तरुणी विष है उनको तो बहुत प्रसंग भाता ही नहीं, बस वे किसी और नव युवाकी खोज करके धर्मच्युत होतीहैं, और जो यह कहो कि ब्रह्मचर्यसे आयु बढतीहै सो यह भी नहीं देखा जाता क्यों कि स्वामीजीने तो पूर्णतासे ब्रह्मचर्य धारण किया था परन्तु अट्ठावन ५८ वर्षकी अवस्थाहीमें शरीर छूट गया यदि स्वामीजीका ४८ वर्षमें किसी बीस वर्षकी अवस्था युक्त स्त्रीसे विवाह होता तो वह बिचारी अब शिर पटकती या नहीं हां प्राणायाम सदाचार तपादि करनेसे निश्चय आयु वृद्धिको प्राप्त होती है केवल वेद वेद वाणीसे कहने तथा श्रुतियें पढनेहीसे धर्मात्मा नहीं होता क्यों कि ॥

शुश्राव जपतां तत्र मंत्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ वा० सुन्दर० ३।४

राक्षसोंका घरोंमें मंत्रजपते महावीरजीने सुना तथा कितने ही राक्षसोंको स्वाध्याय (वेद) में निरत देखा दुष्कर्मसे राक्षसत्व न छूटा यदि ब्रह्मचर्य ही आयुकी वृद्धि करनेवाला होता तो स्वामीकी आयु ४०० वर्षकी होती क्योंकि वे अपनेको योगीभी तो मानते थे, अथवा पूरे सौ ही वर्षकी होती जो ब्रह्मचर्यसे ही आयु बढती है तो आपका ब्रह्मचर्य ठीक नहीं, और जो ब्रह्मचर्य ठीक था तो आयु क्यों नहीं बढी ब्रह्मचर्यसे तो वीर्यकी अधिकता होती है जिससे शरीरमें पूर्ण बल होता है जैसा योगशास्त्रमें लिखा है (ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः पा० २ सू० ३८) अर्थात् ब्रह्मचर्यसे वीर्यका लाभ होता है हां योगाभ्यास प्राणायाम समाधिसे आयुकी वृद्धि होती है अन्यथा आयु पूर्वकर्मानुसार निर्णीत होती है जैसे नीतिमें लिखा है कि ॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पंचैतानीह सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥

आयु कर्म धन विद्या मरण यह पांच वस्तु देहीके गर्भमें ही नियत होजाती हैं, सब ही बात कर्मानुसार होती हैं इसी प्रकार जिसके कर्ममें वैधव्य है क्या उसे कोई मेटनेको समर्थ है यदि कर्म मिथ्या होजाय तो जगत्की व्यवस्था ही मिटजाय यह मरण जीवन सब ही कर्मानुसार है यदि बडेहुए विवाह हो तो क्या बडी उमरमें कोई विधवा नहीं होती क्या बडी उमरमें विवाह करके कोई कर्मको मेटसकता है इस समयके विवाह और संयोगकी रीति वाग्भटके अनुसार होनी चाहिये क्योंकि कलियुगके वास्ते यही अधिकांशमें प्रमाण है ॥

अत्रिः कृतयुगे चैव त्रेतायां चरको मतः ।
द्वापरे सुश्रुतः प्रोक्तः कलौ वाग्भटसंहिता ॥

सतयुगमें अत्रिसंहिता त्रेतामें चरकसंहिता द्वापरमें सुश्रुत और कलियुगके लिये वाग्भटसंहिता है अब देखना चाहिये कि वाग्भट किस समयमें स्त्रीपुरुषका संयोग कथन करता है ॥

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता ।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥ १ ॥
वीर्यवंतं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दतः पुनः ।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥ २ ॥

पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री बीस वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संग करनेसे शुद्धगर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथा रुधिर वीर्य और पवन हृदयमें होनेसे

स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्रको प्रगट करती है इससे न्यून अवस्थावाले पुरुष और स्त्रीके संयोग होनेसे रोगी और अल्पायु और दुष्टबालक होता है वा गर्भ ही नहीं रहता और–

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाः स्त्रियाः ॥
मासि मासि भगद्वारात्प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत् ॥

बारह वर्षसे लेकर ५० वर्षकी अवस्थापर्यन्त महीने २ स्त्री रजोवती होती है अब इस सब कथनका तात्पर्य यह है कि, दशवर्षसे ऊपर तो कन्याका विवाह करे और सोलह या बीसवर्षकी अवस्थामें पुरुषका विवाह करना इससे कमती कभी न करे यह सिद्धान्त है इसमें भी १६ वर्ष मध्यम और बीस वर्षका विवाह उत्तम है इसमें विद्याभी पूर्ण होजायगी और कठिन रोग जो बालावस्थाके हैं उनसे भी बचजायगा आगे प्रारब्ध तो बलवान् हेही पुनः तीन अथवा पांच वर्षमें द्विरागमनके होनेतक दोनोंकी अवस्था वैद्यकके अनुसार पूर्ण हो जायगी और जो १६ । २० में विवाह हो तो द्विरागमनकी आवश्यकता नहीं अब वर कन्याके फोटोग्राफ (अर्थात् तसवीर वा प्रतिबिंब) की लीला सुनिये भला इसमें कौनसी श्रुति प्रमाण है कि वरकी तसवीर कन्याके और कन्याकी वरके अध्यापकोंके पास जाय जब वरकी तसवीर कन्याके पास गई तो वोह सूरतके सिवाय और क्या देख सक्ती है और जीवनचरित्र कहांसे आवे जबकि दोनों ही अध्यापकोंके पास पढते हैं और उस समय चरित्रकी आवश्यकता क्या है क्यों कि केवल विद्या अध्ययनके सिवाय और उनका जीवन जीवनचरित्र क्या होगा यही कि अमुक २ ग्रन्थ पढे हैं वा और कुछ यदि और कुछ हो तो वोह क्या हो और उसमें कौनसे चरित्र लिखेजायंगे यही प्रयोजन होगा कि जिस दिनसे जन्म लिया आठ वर्षतक खेला फिर पढने लगा इसके सिवाय और क्या होगा, और उस जीवन- चरित्रका लेखक और साक्षी कौन होगा आप या आपके चेले और यदि अध्या- पक लिखे तो एक २ अध्यापकके पास ५० शिष्य हों और वोह एक २ का २५ वर्षका जीवन चरित्र बनावे तो विद्यार्थियोंको कौन पढावे, और फिर विना लाभ २५ वर्षका इतिहास लिखने कौन बैठेगा और एक पुस्तक हो तो लिख भी दे जहाँ पचास या साठ हों वहांकी क्या ठीक क्यों कि जब अध्यापकोंके पास विद्यार्थी रहे तो उनकी व्यवस्था वेही ठीक जानते हैं जब वे धन लेकर पुस्तकें बनावेंगे तो यह भी हो सका है कि अधिक धन देने वालेके अवगुणोंको छिपाकर गुण ही लिखेंगे क्यों कि वे तो यह जानतेही हैं कि यदि अवगुण लिखेंगे तो विवाह नहीं होनेका और इसी प्रकार लडकीभी करसक्ती है कि कुछ पापं गर्भ

आप कुछ जीवनचरित्र लिखनेवालेकी भी भेंट करेगी क्यों कि जब ४० रुपयेतकके नोकर भी बहुधा घूँस खातेहैं तो जीवनचरित्र लिखनेवालेकी क्या कथा है "जेहि मारुत गिरि मेरु उडाहीं। कहो तूल केहि लेखेमाहीं।" यदि कहो कि सब ऐसे नहीं होतेहैं तो और सुनिये यदि उन्होंने लडके लडकीके अवगुणका जीवनचरित्र लिखा तो अब उनसे कौन विवाह करे व किसकी जानको रोवे विधवाका तो आपने नियोग भी लिखा और ग्यारह भर्ता करने लिखे परन्तु वे कारी क्या करें व पति करें या नहीं, वा कुछ ग्यारहसे अधिक करें यह कुछ स्वामीजीने लिखा नहीं क्यों कि जो अवगुणयुक्त हैं उनसे विवाह कौन करे और तसवीर देखकर पसन्द करने उपरान्त उससे अधिक रूपगुण मिलनेसे वे स्त्री दूसरेके संग करनेकी इच्छा कर सक्तीहैं, इससे तसवीर मिलाना ठीक नहीं, शोककी बात है कि जन्मपत्र जिससे रूप रंग स्वभाव विद्या आयु आदि सब कुछ विदित होजाय यह तो निकम्मा और यह तसवीर मिलाना ठीक धन्य है इस बुद्धिपर इस कारण यही उत्तम है कि माता पिताको पुत्रका अधिक स्नेह होनेसे वे चितलगाकर कुलगुणसम्पन्न पुरुषको आप ही देखें तथा उसके व्यवहारकी परीक्षा स्वयं अपने संबंधियोंके द्वारा करावें जैसा कि अब भी होताहै हां नाई आदिके भरोसे सम्बन्ध कर देना महामूर्खता, है, स्वयं देखना चाहिये और बालकपनसे आठवें या दशवें वर्षतकका इतिहास क्या कार्य देगा, क्या धूलिमें लोटना पडे २ मूत्रादि करना भोजनको हप्पा पानीको मम्मा कहना यह भी उसमें लिखाजायगा, जब कि यज्ञोपवीत होकर गुरुके विद्यापढने गये तो सिवाय पढनेके,और क्या जीवनचरित्र होगा यह जीवनवृत्तान्त आपने जन्मपत्रके स्थानमें चलानेका विचार कियाहै (जिस जन्म पत्रसे कुलगोत्र जन्मदिन आदि सबकुछ विदित होजाताहै ,) अब स्वामीजीको यह पूछते हैं कि तुम्हारे माता पिता और तुम्हारा जीवनचरित्र ४० वर्षतकका कहां है यदि कोई चेला कहे कि दयानंददिग्विजयार्क दयानंदजीका जीवनचरित्र है सो यह तो किसी बालपरिश्रमीने उनकी मृत्युके उपरान्त रचा है और सो कहीं स्वामीजी बनाकर रखगयेहैं तो विनासाक्षी स्वयंलिखित प्रमाण नहीं क्यों कि अपना चरित्र आप ही कोई लिखे तो योह अवगुण नहीं लिखता बडाईकी इच्छासे इसकारण यह जीवनचरित्र प्रमाण नहीं और पढानेवालोंके सामने विवाह करनेको कहते हो पर थोडीसी ओलटसे कहतेहो, स्पष्ट ही क्यों नहीं कहदेते कि ईसाई होजाओ, क्यों कि ईसाइयोंमें यह प्रथा प्रचलित है कि पादरी साहब स्कूलोंमें विवाह करादेतेहैं, जिसे गिरजाघर कहते हैं प्राचीनसमयमें तो आजतक पिता माता भाई सम्बन्धियोंके सन्मुख कन्याके ही घर विवाह होता चलाआयाहै, फिर आपने यह भी खूब ही लिखाहै (कि कन्या और वरकी सम्मति लेकर पश्चात् पितासे

जैसि ग रा दौ ड़ स्प ट तां न सि

अध्यापकलोग कहें) वाह मुलाकात कराकर पितासे खबर करना यही रीति संशोधनकी उच्चश्रेणीका नियम है, जब कन्याके सामने बीस पुरुषोंका फोटो आया तो सबमें कोई न कोई लटक अन्दाज निराली होगी पसन्द किसे करे लोकानुसार-एकको स्वीकार करना पडेगा परन्तु चित्तमें वोह और पुरुषोंका भी कटाक्ष समाया रहेगा और यही व्यभिचारका लक्षण है क्यों कि सब अपनेसे उत्तम हीको चाहतेहैं स्वामीजीने गुण कर्म मिलाने लिखा कन्याकी ईच्छा, विशेषमें हुई वे अध्यापक गुण मिलाने लगे और कहने, लगे कि इसमेंसे कोई पसन्द करलो तो अब चाहे लाचारीसे वे अंगीकार करलें पर मनमें तौ और ही पुरुष रहा, और यही दशा पुरुषोंकी है तो अब कहिये यह पतिकी और परस्परकी सम्मति कहां रही यह तो बडी पराधीनी होगई और गुण कर्म क्या मिलावें कर्म तो सबका पढना ही ठहरा फिर मिलावें क्या यही कि जो पुस्तक लडका पढता हो वही लडकी, और आपने अध्ययनके सिवाय सीना रसोई आदि सिखाना तो लिखा ही नहीं बस व्याह होनेपर दोनों पुस्तकें आदि पढे गृहस्थीका कार्य आपके शिष्य वर्ग कर आया करेंगे और कदाचित् कोई कन्या रूमाल काढना जान्ती हो तो उसका पति भी रूमाल काढनेवाला होना चाहिये नहीं तो कर्म कैसे मिलेगा और गुण कौनसे मिलाये जायँ यदि किसीमें तमोगुण हो तो दूसरा भी तमोगुणी होना चाहिये जो रातदिन लडाई हो और यह कैसी वात कही गुण कर्म न मिलें तौ क्वाँरी रहो विधवाकी तौ कामाग्नि बुझानेको यह दया करी कि ११ पति तक करनेमें दोष नहीं और कुमारीपर यह कोप कि व्याह ही न करो भला उसकी सन्तान उत्पत्तिकी इच्छा और कामबाधाको कौन पूर्ण करैगा खूब ही भंग पीकर लिखा है और निर्धनसे तौ आपकी रीतिसे विवाह बन ही नहीं सक्ते क्यों कि जब पूर्ण विदुषी स्त्री आई तब रसोई कौन करे लाचार किसीको नौकर रखना पडेगा उनके पास इतना द्रव्य है नहीं अब लगा क्लेश होने सब पढें अब रसोई कौन करे शायद शूद्र मिलजाय तौ आश्चर्य नहीं मेरे कहनेका यह आशय नहीं कि कन्याको मत पढाओ पढाना वेशक चाहिये परन्तु गृहस्थके कार्य भी प्रबलतासे सिखाने चाहिये जिनका प्रतिक्षण प्रयोजन पडता है जिसके जाने विना भी क्लेश होता और स्त्री फूहर कहाती है॥

और-स्वामीजीने यह गुप्त वात न लिखी कि क्या पूछें यही कि उपदंश नपुंसकतादि रोग तौ नहीं है वा आकर्षण स्थापन आता है या नहीं सो यह वात विना परीक्षा किये कैसे विदित हो सक्ती है, जो गुप्तवात है उसे अध्यापक कैसे देखें क्या वे भी किसी प्रकार उनसे निर्लज्जतायुक्त भाषण करैं शोक ! गुप्त वातको खोल ही कर लिखदेते कि विवाहसे प्रथम एकवार संयोग भी हो

जाय तो सब भेद खुलजाय यदि पुष्टता आदिक हो तो वरण करैं नहीं तो
फिक्र करें, अन्यथा निज दोष देखने कहनेवाले बहुत थोडे हैं पर कन्याकी
कि यह बन्ध्या तो नहीं है किसी अच्छे डाक्टरसे करानी चाहिये क
बांझ हुई तो सन्तान कहां अथवा दो चार मास विवाहसे प्रथम संयोग
रहे जो गर्भ स्थिति हो जाय तो विवाह कर ले नहीं तो त्यागन कर
प्रकार करनेसे कोई विवाहित पुरुष निर्वंश न होगा और स्वामीजीक
सिद्धि भी होगी और जिनके पास धन आदिका प्रबन्ध न होवे
बैठे हुए आपको आशीर्वाद दें. बहुत ऐसे हैं जो रोज लाते और गुजरान
हैं वे भला खानपानका प्रबन्ध (इकरारनामा) कैसे लिख सक्ते हैं बस
थोडे निर्धन बहुत विवाहित थोडे कौरे कौरी अधिक होनेसे कामाग्निसे
हो कुमार्गमें ही पदार्पण करैंगे और अडतालीस वर्षका कृश शरीर
दिन उत्तम भोजन करनेसे कैसे यथेष्ट पुष्ट हो जायगा वाह स्वामीजीकी
तो पूर्ण है और इस जराग्रस्त अवस्थाका फोटो भी मनोहर होगा वि
समय भी कैसा अद्भुत रक्खा है जब रजस्वलासे शुद्ध हो उस दिन
करे और आपकी बनाई संस्कारविधिके अनुसार व्याह करावे, यह तो बडी ह
किक बात कही जब आपकी संस्कारविधि नहीं थी, तो काहेके अनुसार
होता था, भला अब तो आप कहते हो ब्राह्मणोंने ग्रंथ कल्पना कर लिये पूर्व ऋ
विवाह किया कौनसे ग्रंथके अनुसार करतेथे क्यों कि यह आपका पुस्त
जबतक बनी ही नहीं थी, तो उनके विवाहादिक भी अशुद्ध ही हुए और
जीने इसमें बनाया ही क्या है वेद मंत्र तो पूर्वकालसे ही थे आपने उसमें
लिख दी है और पठनपाठन विधिमें सब भाषा ग्रंथ त्याज्य माननेसे यह भी
मिश्रित होनेसे त्याज्य ही है कार्य मंत्रोंद्वारा होता है भाषासे कुछ प्रयोज
नहीं फिर दयानंदजीने उसमें क्या बनाया मंत्र उलट पुलट कर दिये हैं औ
अब भी यह संस्कारविधि नहीं है वहांके लडका लडकी क्या कौरे ही रहैं
संस्कारविधिकी शिक्षा कैसी उत्तम है " पुरुष स्त्रीकी छातीपर हाथ धरे
पुरुषके हृदयपर हाथ धरके कहै तुम मेरे मनमें सदा वस्ते रहो " जहां
वृद्ध बैठे हों वहां नारियोंकी यह ढीठता, यह आपका कन्याको अधिक अवस्
विवाह और नियोग यह दो लज्जानाशक व्यभिचारके खंभ हैं, फिर विवाह
ही दोनों स्त्री पुरुष एकान्त सेवन करने चले जायँ यह कौन धर्म है कि
स्त्रीपुरुष विवाहमें उपस्थित हों और वे दोनों स्त्री पुरुष लाज शील छोड
ग्यारह ही बजे एकान्त सेवन करने चले जायं और वीर्यस्थापन और वी

कर्षण दोनों स्त्रीपुरुष करैं भला आपने इसकी क्रिया भी तो नहीं लिखी शायद गुप्त किसीको बताई हो जब स्त्रीने वीर्याकर्षणका पहलेसे अभ्यास किया होगा जब ही तो आकर्षण करसक्ती है नहीं. तो नहीं और पुरुषने स्थापनका अभ्यास किया होगा तभी तो आता होगा नहीं तो क्यों कर आसक्ता है और आकर्षण विना आसन योगक्रियाके आ नहीं सक्ता यह क्रियामें कन्या और पुरुषोंको कौन सिखावे तो यह भी अध्यापक वा अध्यापिकाओंके शिर मढेंगे क्यों इसमें लिखते लाज आती है कि स्त्रीका जबतक पुरुषसे संयोग न हो तबतक उन्हें स्वयं आकर्षणका अभ्यास कैसे हो सक्ताहै इसी प्रकार पुरुषको भी अभ्या- समें स्त्रीकी आवश्यकता है तो उनके अभ्यासके अर्थ स्त्रीपुरुष भी नोकर रखने चा- हिये यह विधि स्वामीजीने न जाने कहां सीखी जब यह विधि आती होगी तभी तो लिखा और सास ससुरभी प्रसन्न होते होंगे कि हमारी पुत्री वीर्याकर्षण कर रही है और जामाता स्थापन कररहेहैं "पति स्त्रीसे कहे कि मैं अब वीर्य स्थापन कर- ताहूं वह कहती जाय हाँ छोडो मैं आकर्षण करतीहूं" यह रीति तो वेश्याओंको भी लज्जित करती है यह बात आपने किस देशकी रीतिके अनुसार लिखी है शायद यह आपके त्रिविष्टप अर्थात् कल्पित तिब्बत नामक स्वर्गकी होगी और विना कहे स्त्री जान नहीं सक्ती कि कब वीर्यपात होगा तो जब पति कहेगा मैं छोडताहूं तो वह बाला निर्लज्ज हो क्यों कर कहसक्ती है कि छोडो मैं ग्रहण करनेको उपस्थित हूं इधर लडकीके माता पिता भी प्रसन्न होते हैं कि पुत्री गर्भधारण कररही है खाक पडे ऐसी रीतिपर जो जंगलियोंमें भी नहीं होती होगी, यद्यपि स्वामीजीका कामशास्त्रमें अधिक अभ्यास प्रतीत होता है परन्तु मैंने वृद्ध लोगोंसे यह बात सुनी है और वैद्यकके ग्रंथोंमें देखा भी है कि जबतक स्त्रीका रज और पुरुषका वीर्य नहीं मिलता तबतक गर्भकी स्थिति नहीं होती सो जबतक रजवीर्य न मिलें तो चाहे अपानवायुसे स्त्री खींचे संकोचन करे वा सब अंग सीधे कर आक- र्षण करे तो भी गर्भकी स्थिति कठिन है और जो स्वामीजीका ही कथन सत्य होता तो सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधिके पूर्व सृष्टि ही न होती बहुत क्या यदि यह झगडे होते तो दयानंदजीका भी जन्म असंभव था यदि गर्भका तत्काल धारण करना स्त्रियोंके अधीन होता तो क्यों कोई स्त्री वंध्या होती और पुत्रा- दिकोंके हेतु जपतपका क्यों विधान होता, यह आपकी बात रहस्यकी तो नहीं किन्तु निर्लज्जतासे भरी और वर्णव्यवस्थाका सत्यानाश करनेहारी है, यह स्वामीजीके ही लेखका उत्तर है जितने दोष उस असभ्य लेखमें भरे हैं उन्हें खोलकर दिखा दियाहै जिससे कि मनुष्य इस सभ्यतानाशक अन्धकूपसे बचें

अपनी ओरसे एक अक्षर भी नहीं लिखा खबरदार दयानंदजीके पंथमें आनेसे यह अनर्थ करने पडेंगे इससे विचार कर इधर पैर रखना. चौथे आठवें महीनेके संस्कारसे क्या फायदा विचाराहै " प्राचीन लोगोंमें तो संस्कारोंसे निर्मल बुद्धि आरोग्यता शुभ कर्म युक्त सन्तान संस्कार करनेसे होताहै ऐसा मानते हैं" और स्वामीजीने हवनमें तो वेद मंत्र कंठ रहनेका लाभ बतायाहै यहां संस्कारसे क्या सिद्धि है और क्या जाने कि वह शूद्र ही होजाय तो यह गर्भाधानके दो संस्कार मिथ्या ही होजायंगे और संस्कारकी स्वामीजीने आवश्यकता काहेको लिखी वे तो लिखचुके हैं कि 'अनुपनीतमध्यापयेत्' विना यज्ञोपवीत हुए शूद्रको मंत्र सं० छोड सब शास्त्र पढावे तो संस्कारकी क्या आवश्यकताहै जब ४८ वर्ष उपरान्त ब्रह्मचर्य हो चुकेगा तब वर्णोंमें योग्यतासे कर दियाजायगा बालको सुवर्णकी शलाकासे घी शहद चटाना ओम् जीभपर लिखना बालकके कानमें तेरा नाम वेद है ऐसा कहना इससे क्या प्रयोजनहै तथा संस्कार विधिके अनुसार बालकसे ऐसी बातें करना जैसे कोई बडोंसे कहै" हे बालक ! मैं तुझे मधु घृतका भोजन देता हूं तुझे मैं वेदका दान देता हूं हे बालक ! भूर्लोक अन्तरिक्षलोक स्वर्गलोकका ऐश्वर्य तुझमें मैं धारण करता हूं " विचारनेकी बात है क्या यह स्वामीजीका तंत्र नहीं है आप ऐसे कहांके परमेश्वरके दारोगा हैं कि तीनों लोकका ऐश्वर्य चाहैं जिसे हाथ उठाय दे दिया, अब और बालक क्या भूख मरेंगे, और जिसे त्रिलोकीका ऐश्वर्य मिलगया तो वह दारिद्र होना चाहिये और जब सबके संस्कारकी यही विधि है तो कोई भी दरिद्री न न होना चाहिये, और तेरा नाम वेद है यह कानमें कहैं भला यह दस दिनका बालक क्या समझैगा कि वेद किसे कहतेहैं आठ दश वर्षकी लडकी तो वेद मंत्रोंको नहीं समझती यह तत्कालका बालक वेदतक समझताहै क्या खूब और जो कहो कि यह कथनमात्र है तो जन्मते ही बालकको क्यों झूठमें फँसाना इत्यादि. दयानन्दजीने ऐसे मिथ्या संस्कार लिखे हैं जो प्राचीन प्रथाके विरुद्ध हैं ॥

अब (त्रीणि वर्षाणि) इस श्लोकका आशय सुनिये (यदि स्वामीजीका अर्थ मानें कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिको खोजकर अपने तुल्य पतिको प्राप्त होवे) यह साक्षात् स्त्रीके व्यभिचारिणी बनानेकी विधि महात्माजीने लिखी है माता पिता चैन करें और स्त्री पति खोजती फिरे और आप ही विवाह भी करले गुणकर्ममें पुष्टि आदि भी देखले खूब इस श्लोकका अर्थ बिगाडा है इसका अर्थ यह है कि जिस कन्याके पितामातादि विशेषगुणवाले वरको न दे सकें तो वह ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक (उदीक्षेत) अपने पिता आदि कुटुम्बियोंकी प्रतीक्षा करै कि यह विवाह करदें जब यह समय भी बीत जाय तो अपनी जातिके पुरुष-

को जो अपने कुलगोत्रके सदृश हो उसे ही वरण करे यह आपद्धर्म है अन्यथ स्त्रीको स्वयंवरण करनेका नृपकुल छोडकर अधिकार नहीं है और फिर पीछेसे आपने लिखा कि योनिसंकोचन करे स्वामीको इसका बडा ध्यान रहता है छिः छिः ऐसी घिनोनी बातोंसे सत्यार्थप्रकाश पूर्ण है आपने औषधी संकोचनकी नहीं लिखी याद होती तो लिखते और बालकको धायका दूध पिलाना लिखाहै यह सर्व साधारणसे नहीं निभ सक्ता जिनके पास इतना द्रव्य नहीं है वे क्यों कर दूध पिलानेवाली स्त्री नौकर रख सक्ते हैं इस कारण एकसा सबको कथन करना वृथाहै, फिर यह धाय कौन वर्णकी हो यह आपने नहीं लिखा उसका दूधपान करते २ बालकके स्वभावमें कुछ न्यूनाधिकता तो नहीं होजायगी धायके लक्षण भी तो लिखे होते ॥

अब इन सबका सिद्धान्त यही है कि वेदशास्त्रानुसार कन्यासे वर दूना होना उत्तम है ड्योढा मध्यम है और जो आठसात वर्षके कन्या वरका विवाह करते हैं वेदशास्त्रविरुद्ध करतेहैं और इसी कारण वे पछताते और दुःखभागी होते हैंइस अवस्थामें विवाह कभी न करें कभी न करें ॥

एक बात और लिखनी है कि जो ब्रह्मचर्य धारण करना चाहे और बलबुद्धियुक्त संतान होनेकी इच्छा करे वह अपनी संतानको संस्कृत विद्याहीका उपदेश करावे पढावे उसीसे ब्रह्मचर्य निभ सक्ता है और प्रथम ही फारसी भूलकर भी न पढावे, कि फारसी पढते ही स्वभावमें कामचेष्टा आजाती है थोडी अवस्थामें इधर उधर विषय करनेसे गरमी आदिरोगोंसे पीडित हो जाते हैं जिनका फिर जन्मभर ठीक नहीं लगता, और यह रोग प्राणोंके संगही बहिर्गत होते हैं इस कारण प्रथम संस्कृत पढाना जिसमें धर्मनिरूपण है विषयकी निवृत्ति है और जिन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं धारण किया वे हकीमजीको हाथ दिखलाते और पुष्टिकी दवा पूछते फिरते हैं, स्त्रियें संतानोंके हेतु बाबाजीकी अलग ही सेवा करती हैं यह आचरण बडा ही निषिद्ध हैइसीसे देश अधोगतिको प्राप्त होरहा है इसके आगे वर्णव्यवस्थामें लिखा जायगा × ॥

वर्णव्यवस्थाप्रकरणम् ।

स० पृ० ८९ पं० २१ (प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मणहों वही ब्राह्मणी ब्राह्मण होताहै और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण होसक्ता है (उत्तर) हां बहुत होगयेहैं होते हैं और होंगे जैसे छान्दोग्य उपनिषद्में जाबालि ऋषि अज्ञातकुल महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और

×भा० प्र० २ इस प्रकरणपर कुछ नहीं कहा गया केवल हाथ पैर पीटे हैं।

मातंग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण होगये थे पृ० ८६ पं० ३ अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है वहीं ब्राह्मणके योग्य होताहै और मूर्ख शूद्रके योग्य होताहै रजोवीर्यके योगसे ब्राह्मण शरीर नहीं होता ॥ ८९ । १३

समीक्षा—अब यहांसे स्वामीजी जन्मसे वर्ण छोड गुणसे जाति माननेलगे और यहींसे वर्णसंकर करनेकी नीव डाली कि बहुत शूद्र ब्राह्मण होगये पहले कथा छान्दोग्यकी सुनिये जिसमें जाबालिजीका वर्णन है जिसमें उनको विद्याध्ययन कराई है यह प्रसंग नहीं है कि वह ब्राह्मण होगये वह तो थेही ब्राह्मण जब वह गौतमजीके पास पढने गये तौ गौतमजीने पूछा ॥

किंगोत्रोनुसौम्यासीति सहोवाचनाहमेतद्वेदभोयद्गोत्रोहमस्म्यपृच्छंमातरꣳसामाप्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरंतीपारिचारिणीयौवने त्वामलभेसाहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबालातुनामाहमस्मिसत्यकामोनामत्वमसीतिसोहꣳसत्यकामोजाबालोस्मि भोइति तꣳहो वाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हतिसामधꣳसौम्याहरेति ॥ छान्दोग्ये० प्र० ४ खण्ड ४

कि हे सौम्य! तेरा क्या गोत्र है जाबालि बोले यह मैं नहीं जानता मैंने मातासे यह पूछाथा उसने कहा मैं घरके कामकाजमें फंसीरहीथी युवावस्थामें तेरा जन्म हुआ पिता परलोक सिधारे मुझे गोत्रकी खबर नहीं तुम्हारा नाम सत्यकाम मेरा नाम जबाला है यह बात सुन गौतमजीने जाना कि ब्राह्मण विना सत्ययुक्त छलरहित ऐसे वाक्य और कोई नहीं कहसक्ता क्योंकि "ऋजवो हि ब्राह्मणाः" ब्राह्मण स्वभावसे सरल होते हैं, इससे उसे निश्चय ब्राह्मण जानकर कहा कि समिधा लेआ और विधिद्वारा उपनयन कराकर विद्या पढाई, केवल जाबालिका गोत्र नहीं विदित था उस हीं माको उसकी याद नहीं थी यदि वह क्षत्रियादि वर्ण होता तौ उसकी माता उसे अवश्य बतादेती. उसे तौ विद्या अध्ययन करनेमें ऋषिने ब्राह्मण निश्चय विचार अध्ययन कराया स्वामीजीने यह विवादप्रकरणमें झगडा उठाया है जाबालिके इतिहाससे ब्राह्मण होना सिद्ध है अब भी बडे एल एल बी द्विजातियोंसे गोत्र प्रवर पूछिये तौ वे आपका दम भरनेवाले, मुख देखते रहजायँगे तौ क्या वे शूद्र हैं ॥

अब विश्वामित्रका चरित्र सुनिये जिनको आजतक कौशिक अर्थात् कुशिकके वंशमें उत्पन्न और गाधिपुत्र सब कोई जानते और कहते हैं, इनकी कथा प्रसिद्ध बहुत है वाल्मीकिसे सार लेकर लिखते हैं कि वशिष्ठजीसे कामधेनुके मांगनेपर न

मिलनेसे क्रोधित हो युद्ध कर हार गये तो ब्रह्म तेजको क्षत्रबलसे अधिक समझ तप करनेको चलेगये और कई सहस्र वर्ष तप करके भी ब्रह्मबलकी प्राप्ति न हुई पश्चात् पुनः अत्युग्रतपस्या कर ब्रह्माजीके वर देने और वशिष्ठके अंगीकार करनेसे ब्रह्म तेजयुक्त हुए यह बात नहीं कि वह ब्राह्मण अपनेको कथन करें, आज तक उन्हें कौशिक कहते हैं और उनकी संतानको क्षत्री कहते हैं ब्रह्मतेजकी उनको प्राप्ति हुई सो इस कारणसे नहीं यत्न किया कि उच्च गोत्र ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करें, किन्तु उन्हें केवल यही इच्छा थी कि जैसे वसिष्ठके ब्रह्मदंडने सब मेरे अस्त्र निष्फल करदिये ऐसे ही मेरे अस्त्रका प्रभाव हो जाय सो भी बहुत तपसे और ब्रह्माजीके वरसे तथा वसिष्ठ ऐसे त्रिकालदर्शीके ब्रह्मर्षि कहनेसे विश्वामित्रने अपनेको कृतार्थ माना और ब्रह्मर्षि कहाये और यह जो स्वामीजीने लिखा कि (उत्तम विद्यावाला ब्राह्मणके योग्य होसक्ताहै मूर्ख शूद्र होता है) तो क्या विश्वामित्रमें उत्तम विद्या न थी क्या वे वेद नहीं पढे थे वे तो बडे विद्वान् थे क्यों बहुतसे मंत्रोंके संग उनका नाम उच्चारण किया जाताहै, यदि पढनेहीसे ब्राह्मण होता तो विश्वामित्रजीको इतना परिश्रम क्यों करना पडता, और सभी विद्यावान ब्राह्मण कहलाते हजारों वर्ष तप करके ब्रह्मांके वरसे एक राजऋषि ब्रह्मर्षि कहलाया, देखिये कलियुगकी महिमा अब सत्यार्थप्रकाशके चार अक्षर पढके नाई गडरिये भी ब्राह्मण बनते हैं, इनको दयानंदका वरदान है और स्वामीजीने दो ही वर्ण प्रधान रक्खे हैं दो वर्ण गडप गये क्षत्रिय वैश्य इनको कुछ न लिखा इनमें भी विद्यावान् और मूर्ख होताहै जब विद्यावान् ब्राह्मण और मूर्ख शूद्र कहाते हैं तो दो ही वर्णोंकी आवश्यकता है यह चार वर्ण मानने वृथा ही हुए परन्तु विश्वामित्रकी उत्पत्ति भी ब्रह्म तेजसे है जब विश्वामित्रकी बडी भगिनी सत्यवती ऋचीक ऋषिने विवाही उस सत्यवती और उसकी माताकी प्रार्थनासे उन्होंने दो चरु बनाकर कहा एक इसे तुम भक्षण करना और यह अपनी माताको देना दोनोंके पुत्र होंगे, जब पुत्रीने मातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब उसने चरु बदल कर खालिया पश्चात् ऋषिने अपनी स्त्रीमें क्षत्र तेज देखकर कहा यह क्या कारण है जो तुम्हारा गर्भ क्षत्रतेजयुक्त है तब उसने वृत्तान्त कहा कि चरु बदल गया ऋषिने कहा कि तुम्हारे पुत्र क्षत्र धर्मयुक्त होगा और उसके ब्रह्मज्ञानी, स्त्रीने कहा ऐसा न हो, चाहे पोता होजाय ऋषिने कहा मेरे पोते बेटेमें भेद नहीं, पोता ही होगा उससे परशुराम हुए सत्यवतीकी माताके ब्रह्मतेज युक्त विश्वामित्र हुए जब कि असलमें ही ब्रह्म तेजसे युक्त हैं तब उनके ब्रह्मर्षि हो जानेमें क्या आश्चर्य है, जो स्वयं ब्रह्मतेजसे युक्त और तप भी महा कर चुके हैं इससे कुछ आश्चर्य नहीं, यह

वाल्मीकि बालकाण्डका सार है और महाभारत अनुशासन पर्वमें भी यह कथा इसी प्रकारहै चरु बदलनेपर ऋषि कहतेहैं अ० ४ ॥

मया हि विश्वं यद्ब्रह्म त्वच्चरौ संनिवेशितम् ।
क्षत्रवीर्यं च सकलं चरौ तस्या निवेशितम् ॥

मैंने तुम्हारे चरुमें पूरा ब्राह्मणपन रक्खाथा और तुम्हारी माताके चरुमें पूरा क्षत्रियपन स्थापन कियाथा जिससे तुम्हारे उत्तम ब्राह्मण और तुम्हारी माताके क्षत्रिय सन्तान हो सो तुमने उलटा किया ॥

तस्मात्सा ब्राह्मणश्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ।
क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ॥

इससे तुम्हारी माताके ब्राह्मण श्रेष्ठ होगा और तुम्हारे उग्रकर्मा क्षत्रिय जन्मेगा ॥

विश्वामित्रं च जनयद्गाधिभार्या यशस्विनी ।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम् ॥
ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर ।

गाधिकी यशस्विनी भार्याने हे राजन् ! ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि ब्रह्मवादी विश्वामित्रको प्रकट किया उनके गर्भमें ही ऋचीक ऋषिने ब्रह्मत्व स्थापन कियाथा यह जन्मसे ही ब्रह्मर्षि ब्रह्मवादी थे और मातासे आये क्षत्रियपनको १६००० वर्ष तप करके निवृत्त किया, विश्वामित्र उत्पत्तिसे ही ब्राह्मण थे इनका कटाक्ष वृथा है. देवसृष्टि और ऋषिसृष्टि अलौकिक होती है देवर्षिसृष्टिमें मनुष्योंकी मर्य्यादाका नियम नहीं है मानुषी शास्त्रकी मर्यादा देवताओंपर ऐसा अधिकार नहीं कर सकती जैसा मनुष्योंपर, भारतमें देव दैत्योंका जन्म अलौकिक हुआ है जैसा यज्ञकुण्डसे द्रौपदीका होना इन्द्रादि देवताओंके पांचों पुत्रोंसे विवाह करना, यह सब कुछ मनुष्योंपर नहीं लगता जब ऐसी सृष्टि होती है तभी कोई घोर संग्राम होताहै पृथ्वीका भार उतारा जाता है यह विचित्र बात मनुष्योंमें नहीं लगती जो शापादिक कारण कभी २ ऐसा हुआ करता है यह शास्त्रका विधान नहीं है ॥

विश्वामित्रने परिश्रम तपका क्यों किया यह तो विद्यावान थे-इससे प्रत्यक्ष यह बात सिद्ध होती है कि केवल विद्या पढनेसे ब्राह्मण नहीं होता (विश्वामित्रने जब त्रिशंकुको यज्ञ कराया था तो ऋषियोंने कहा था कि, जहां क्षत्रिय

याजक, चांडाल यजमान, वहां हम नहीं जायेंगे) इससे जन्मसे जाति सिद्ध है यदि कहो कि यह अधिक आयु और सहस्रों वर्ष तप करनेकी बात मिथ्या है किसीने मिला दी है तो इसमें प्रमाण क्या है दोनों बातें एक ही पुस्तकमें हैं यदि यह किसीने मिला दिया है तो यह उत्तर हो सक्ता है कि यह ब्रह्मर्षि होनेकी बात किसीनें मिला दी हो तो क्या आश्चर्य इसीप्रकार मातंगका भी चाण्डालसे ब्राह्मण होना मिथ्या ही लिखा इस झूँठका भी कहीं ठिकाना है उसने जब ब्राह्मण होनेके निमित्त तप किया तब उससे इन्द्रने कहा-

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः ।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारममाचिरम् ॥ १ ॥
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम् ।
चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथञ्चन ॥ २ ॥
तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ।
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोयं हि ते वरः ॥ ३ ॥

महा० अनु० प० अ० २७

जब +मतंगने ब्राह्मण होनेके निमित्त तप किया तब इन्द्रने उसके वर मांगनेपर कहा हे दुर्बुद्धि ! तू ब्राह्मण होना चाहताहै जो साधारण मनुष्योंको प्राप्त नहीं हो सकता तू नष्ट होजायगा इसकारण इस विचारसे उपराम कर ? देवता असुर मनुष्योंमें ब्राह्मणपन परमपवित्र माना गयाहै उस ब्राह्मणपनको चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ कभी प्राप्त नहीं होसकता २ फिर भी जब उसने तप किया तो अन्तमें इन्द्रने कहा अशुद्ध शरीरवालोंको जो प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे ब्राह्मणपनके वरको छोडकर तुम अन्यवर मांगो यह वर दुर्लभ है तुम ब्राह्मण नहीं होसकते ॥ ३ ॥

बावाजी कहते हैं ऋषि था ब्राह्मण हुआ इस झूँठका कहीं ठिकानाहै ॥ मनुजी भी जन्मसे जाति मानते हैं यदि पढे हुएका ही नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण होते ही नहीं, परन्तु मनुजी बेपढे भी ब्राह्मणमें ब्राह्मण शब्दप्रयोग करतेहैं.

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः॥यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ अ० २ श्लो० १५७

---

१ वाल्मीकीरामायण बा० कां० स० ५९ श्लो० १३ क्षत्रियो याजको यस्येति । मतंग ऋषिकी बात तो तुलसीदास साफ उडागये मानो आंखही नहीं थीं ।

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति॥तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ॥ अ० ३ श्लो० १६८

जैसे काठका हाथी चमडेका मृग नाममात्रके होतेहैं, इसी प्रकार बेपढा ब्राह्मण केवल नामका ब्राह्मण है १५७ बेपढा ब्राह्मण तुनकोंकी अग्निकी तरहसे शान्त होजाताहै, उसे हव्य कव्य न देनी चाहिये उसे देना राखमें होम करनाहै १६८ अब विचारिये यदि बेपढे शूद्र ही होते तो ब्राह्मणको विद्या रहित होनेसे मनुजीने कैसे ब्राह्मण माना यदि ब्राह्मणकी कोई पदवी होती तो बेपढेका नामही ब्राह्मण न होता जैसे कि वकील तो वही कहावेगा जो पासकर चुका होगा और यदि बेपढेका नाम वकील कह दें तो भ्रान्ति नहीं तो और क्या है इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती या विद्वानहीका नाम होता तो मनुजी यह न लिखते कि वह नामका ब्राह्मण है ब्राह्मण तो है चाहे पढा नहीं है अपने कर्म नहीं करता इससे मूर्ख है इससे सिद्ध है कि वर्ण जन्मसे है कर्मसे अधिकार होताहै, वर्ण नहीं और स्वामीजी, जन्मसे जाति नहीं मानोगे तो यह सामवेदका ब्राह्मण क्या कहता है इसे भी न मानोगे क्या ॥

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ॥ आत्मासि पुत्र माम्रुथाःसजीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ सामवेदस्य ब्राह्मण भागे । किञ्च–आत्मा वै जायते पुत्रः । ब्राह्मणम् ॥२॥

यह दयानंदजीने हीः सत्यार्थप्रकाश पृ० १२० पं० ४ में लिखाहै । अर्थ–हे पुत्र ! तू अंग २ से उत्पन्न हुए वीर्यसे और हृदयसे उत्पन्न होताहै तू मेरा आत्मा है मुझसे पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्षतक जी १ आपही पुत्ररूपसे उत्पन्न होताहै यह ब्राह्मणवाक्य हुआ, अब विचारनेकी बात है कि, जब संतान अंगअंगसे उत्पन्न हुए वीर्यसे उत्पन्न होता है और पिताका आत्मा है तो यह असंभव है कि पिताके गुण उसमें न आवें और जिसमें पिताके गुण व माताके गुण न आवें वह संदिग्ध पुत्र है, जो कि पिताका आत्मा है और जो पिताके प्रत्येक अंग और वीर्यसे उत्पन्न होताहै उसे दयानंदजी झट दूसरेका बनाये देतेहैं भला कभी वीर्यका प्रभाव छूटता है कभी नहीं आमकी गुठलीसे आम ही उत्पन्न होताहै चाहे आम खट्टे हों बबूरसे बबूर ही उत्पन्न होताहै इसी प्रकार ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण ही होता है चाहे वह विद्याहीन मूर्ख हो, हाँ इतना तो ठीक है कि, मूर्ख

१ सन्१८९७ सत्यार्थप्रकाश पृ० १२४ यह मंत्र निरु० ३।४ के पतेका लिखाहै जिसमें 'आत्मा वै पुत्रनामासि' ऐसा पाठ लिखाहै पहलेमें उपरका वचन सामवेदका लिखाहै अब कैसे पता लगावें स्वामीको झुठलावें ।

ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा नहीं होती अब इस मंत्रसे ही बुद्धिमान् जान लेंगे कि, जिस वर्णका पिता है उसी वर्णका पुत्र होगा क्योंकि वह पिताके प्रत्येक अंगसे उत्पन्न होताहै अब सृष्टि उत्पत्ति विषयमें भी जाति जन्मसे ही सिद्ध होतीहै यह लिखा जाताहै दयानन्दजी अङ्गादङ्गादिति यह सामवेदका मंत्र लिखा है परन्तु यह ब्राह्मण है मंत्र नहीं तीसरी स० ५० में बदला है ॥

पृ० ८७ पं० २१ ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः । ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रोऽअजायत । यजु० अ० ३१ मं० ११

इसका अर्थ स्वामीजी स० पृ० ८८ पं० ३ में लिखते हैं (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्माकी सृष्टिमें मुखके सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो वह ब्राह्मण, बलवीर्यका नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो वह क्षत्रिय, ऊरु कटिके अधः और जानुके ऊपर भागका नाम है, जो सब पदार्थों और सब देशोंमें ऊरुके बलसे आवे जावे वह वैश्य, और जो पद्भ्यां पगके अर्थात् नीचे अंगके सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है ॥ ८७ । ८

पृ० ८८ पं० १०. । यस्मादेतेमुख्यास्तस्मान्मुखतोह्यसृज्यन्त इत्यादि० श०

जैसा मुख अब अंगोंमें श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त होनेसे मनुष्य जातिमें उत्तम ब्राह्मण कहाता है, जब परमेश्वरके निराकार होनेसे मुखादि अंग नहीं हैं, तो मुखसे उत्पन्न होना असम्भव है और जो मुखादि अंगोंसे ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादि आकृति अवश्य होती, जैसा मुखका शरीर गोलमाल है वैसे ही उनके शरीरका भी गोलमाल मुखाकृतिके समान होना चाहिये, क्षत्री वैश्य शूद्रोंका शरीर बाहु ऊरु चरणके समान आकारका होना चाहिये, और जो कोई तुममें प्रश्न करेगा जो जो मुखादिसे उत्पन्न हुएथे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो तुम्हारी नहीं क्यों कि जैसा सब लोग गर्भाशयमें उत्पन्न होते हैं वैसे ही तुम भी हो तुम मुखादिसे उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञाका अभिमान करतेहो इसलिये मुखादिसे उत्पन्न होनेका अर्थ अशुद्ध और हमारा अर्थ सच्चा है । ८८ । १

समीक्षा—स्वामीजी कहीं तो बुद्धिके पीछे लाठी लेकर दौड़तेहैं, पुरुषसूक्तके मंत्रमें सृष्टि उत्पन्न होनेका वर्णन है आप गुणकर्मके गीतगाने लगे सुनिये इससे पूर्व यह मंत्र है ॥

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् । मुखङ्किमस्यासी-
त्किम्बाहू किमूरूपादाऽउच्येते यजु० अ० ३१ मं० १०

(प्रश्न) जिस परमेश्वरका यजन किया उसकी कितने प्रकारोंसे कल्पना हुई उसका मुख भुजा ऊरु कौन हुए और कौन पाद कहे जाते हैं, इसके उत्तरमें (ब्राह्मणोस्येति) यह मंत्र है जिसका भाष्य दयानंदजी अशुद्ध करते हैं इसका अर्थ यह कि (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इस परमेश्वरका (मुखम्) मुख (आसीत्) हुआ (राजन्यः) क्षत्री (बाहुः कृतः) बाहुरूपसे निष्पादित हुआ (अस्य यत् ऊरू तत् वैश्यः) इसकी जो ऊरू हैं तद्रूप वैश्य हुआ (पद्भ्यां) चरणोंसे (शूद्रः) शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ. इस प्रकारसे इस मंत्रका अर्थ है इस मंत्रमें कोई ब्राह्मण क्षत्रीके लक्षण नहीं पूछताहै किन्तु यह ईश्वरके विषय प्रश्न है इसमें कल्पना और उत्पत्ति दोनों प्रकरण हैं तीसवें अध्यायमें पुरुष मेधका वर्णन है उसमें सब वर्णोंके पुरुष वर्तनेसे विराटरूपसे उनकी कल्पना करनेमें यह ब्राह्मण क्षत्रियरूप यही है ऐसे कल्पना की है सृष्टिमें सब उससे उत्पन्न हैं इस कारण अन्तमें अजायत पद दियाहै कल्पना शब्दके अर्थमें भी बनानेके हैं जैसे "सूर्याचन्द्रमसौधातायथापूर्वमकल्पयत्" अर्थात् विधाताने पूर्वकी समान सूर्य और चन्द्रमाको बनाया । उसके मन श्रोत्रादि सबका उल्लेख किया है यदि यह अर्थ करें कि, जो ऊरुके बलसे आवे जावे वह वैश्य है तो यह जितने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि परदेशमें आते जाते तथा यात्रा करतेहैं तथा राजाकी सेना आदि यह ऊरुके ही बलसे परदेशमें जातेहैं तो यह सब ही वैश्य होने चाहियें और जो रेलके बलसे परदेश जावें उनका क्या नाम है यह आपने नहीं लिखा वेदमें तो आपने रेल तारका वर्णन निकाला है, धन्य है यवन म्लेच्छ सब ही परदेश आने जाने वालोंको आपने वैश्य बनादिया, परन्तु ये अपने नगरमें काहेके बलसे चलते हैं जो और कुछ बल होय तो जाने दीजिये और यदि घरमें जांघोंहीके बलसे आनाजाना है तो सब जगत् ही वैश्य होगया, खूब निचटे ऊपर आपने ब्राह्मण और शूद्र दो ही वर्ण रक्खे इस तीसरेमें सबको मेट एक ही रक्खा (और पद्भ्यां पगके सदृश मूर्खत्वादि गुण होनेसे शूद्र हैं) यह स्वामीजीने एक ही विचित्र बात कही है क्या चरण भी मूर्ख होते हैं क्या चरणोंके भी ज्ञानेन्द्रिय होती हैं पैरने कौनसी मूर्खता है किसीका माल मारा या किसीको दुर्वाक्य कहा पैरको मूर्ख कहना ऐसा है जैसे ईंट पत्थरसे बात करनी और (पद्भ्यां) चरणोंसे यह पंचमी विभक्ति कहां खोगई, और जनीप्रादुर्भावे अजायत बनता

है, जिसके अर्थ उत्पन्न होनेके हैं तब यह अर्थ होताहै कि, चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए, और यही शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि, जिस कारणसे पूर्व सृष्टिकालसे ब्राह्मण और वर्णोंमें मुख्य और उत्तम हैं इसी कारण यह मुखसे ही उत्पन्न किये गये आगे श्रुतिमें भी उत्पन्न होनेका वर्णन है कि (चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत) अर्थात् मनसे चंद्रमा और नेत्रोंमे सूर्य उत्पन्न हुआ है आगे इस सूक्तमें सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति लिखी है इससे सब उत्पन्न होनेका प्रकरण है कहिये क्या इसका भी अर्थ आप कुछ बदलेंगे यदि कहदो कि चन्द्रमाका नाम मन है, चक्षुका सूर्य है, कोई कहे कि, अमुक पुरुषसे दयानंदकी उत्पत्ति हुई तौ क्या स्वामीजी उसका यही अर्थ करेंगे कि, वेदमें रलतार निकालने, नियोग ठहराने, ग्यारह पति कराने, मूर्तिखंडन करने, विधवाकी कामाग्नि बुझाने, वर्णसंकरकी रीति चलानेवालेको दयानंद कहते हैं तौ बस फिर क्या है १०८ श्री लिखकर परमहंस सभी बन जायँगे और यह जो लिखा कि (परमेश्वरके निराकार होनेसे मुखादि अंग नहीं हैं उसके मुखसे उत्पन्न होना असंभव है) जब परमेश्वरका आकार ही नहीं है तौ यह साकार सृष्टि क्या स्वामीजीके घरमेंसे आगई निराकारसे तौ निराकार ही होना चाहिये था परन्तु उससे संसार मूर्तिमान् उत्पन्न हुआ है यथा–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऽऋचः सामानिजज्ञिरे । छन्दांꣳसिजज्ञिरेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत १ यजु० अ० ३१ मं० ७
तस्मादश्वाऽअजायन्त यजु० अ० ३१ मं० ८
गावोहजज्ञिरे तस्मात् यजु० अ० ३१ मं० ८
चन्द्रमामनसो जातः अ० ३१ मं १२
मुखादग्निरजायत अ० ३१ मं० १२

यदि वह निराकार है कोई अंग उसके नहीं हैं तो उससे (ऋग्वेद यजुर्वेद साम वेद) उत्पन्न हुए १ उससे घोडे उत्पन्न हुए २ उससे गायें उत्पन्न हुईहैं मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ, यह निराकारसे साकार कैसे उत्पन्न हो गये, यदि कहो कि वेदका अंगिरादिके हृदयमें प्रकाश हुआ तो वे अंगिरा आदि कहांसे आगये, और जो कहो कि आप होगये तो स्वयंभू होनेसे वह ईश्वर हैं और जो कहो कि, ईश्वरने बनाये हैं तो क्या ईश्वर मनुष्याकृतिका है और गाय घोडे बकरी कहांसे उत्पन्न होगये, क्या इनका भी किसीके हृदयमें प्रकाश कर दिया था और जिनके

हृदयमें किया था वे कहांसे आये, इसीपर स्वामीजी अपनेको तत्त्वज्ञानी मानते हैं, ईश्वरकी शक्तिकी कुछ भी खबर नहीं वह जो चाहे सो कर सक्ता है, धन्य है स्वामीजी परमेश्वरके अंगादि होना असम्भव हैं तो सृष्टि होना भी असंभव है यह भी याद है जो सत्यार्थप्रकाश १८८ पृष्ठमें लिखा है (अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः) विना हाथ सब कुछ ग्रहण करता विना पग चलता, विना नेत्र देखता, विना कान सुनता है तो इस आपके ही अर्थानुसार वह मुखादि न होनेसे भी मुखके कार्य करता हुआ मुखसे ब्राह्मणको उत्पन्न करसक्ता है क्यों कि सर्वशक्तिमान् है और " स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च " उसमें सर्वोत्तम शक्ति जिसमें अनन्त बल ज्ञान और अनन्त क्रिया हैं यह उसमें स्वाभाविकी अर्थात् सहजमें सुनी जाती हैं इसी प्रकार इस श्रुतिका अर्थ मनुजीने लिखा है ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् । मनु० अ० १ श्लो० ३१

लोकोंकी वृद्धिके अर्थ ईश्वरने मुख बाहु ऊरु चरणसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको बनाया, इससे स्वामीजीका अर्थ मिथ्या ही है (और यह जो लिखा कि उपादान कारणके सदृश उत्पत्ति होनी चाहिये, तो मुखसे मुखकेसे उत्पन्न होते) धन्य है इस बुद्धिको, जब उपादान कारणसे उत्पन्न होते हैं तो जो योनिसे होते हैं वे सब योनिके आकारवाले होने चाहिये निराकारसे निराकार होना चाहिये, धन्य है यह गपोडा तो गहरी भंगमें लिखा होगा, यही बुद्धि वेदभाष्य रचना करती है अब आगे सुनिये ॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ॥
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥
मंत्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥
नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ॥
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥ ३० ॥

मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥मनु० अ० २
शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य–आश्व०

वैदिक जो पुण्य कर्म हैं उनसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गर्भाधानादि संस्कार करना सर्वथा विधि है, क्यों कि वैदिक संस्कार पवित्र और पापनाशक हैं और लोक परलोकमें सुखका हेतु हैं २६ गर्भाधान संस्कार जातकर्म चूडाकरण मौंजी बन्धन इनसे वीर्यादि दोषके पाप और गर्भसंबंधी पाप दूर होते हैं २७ अध्ययन व्रत हवन त्रैविद्या ऋगादि वेद, यज्ञ, पुत्रोत्पादन पंचमहायज्ञ इनके सम्यक् अनुष्ठान करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति (मुक्ति) के योग्य होता है (दयानन्दजी ब्राह्मी शब्दका अर्थ यह करतेहैं कि, " ब्राह्मणका " अर्थात् यह शरीर ब्राह्मणका किया जाता है और व्रतके:स्थानमें 'जपहोमैः' पाठ लिखा है व्रतसे घबराते हैं यह अशुद्ध है, क्यों कि ब्राह्मणका शरीर तो माता पितासे बनता है) २८ नाभि छेदनके पूर्व पुरुष जातकर्म संस्कार करै और गृह्योक्त मंत्रोंसे सुवर्णकी शलाकासे मधु घृत चटावे इससे स्वभावमें मधुरता होगी २९ दशवें या बारहवें दिन पुण्य तिथि मुहूर्त्तमें अच्छे नक्षत्रमें नाम धरे ३० ब्राह्मणका शुभ वाचक, क्षत्रियको बल युक्त, वैश्यका धन पुष्टि युक्त, शूद्रका जुगुप्सित नाम धरे ३१ ब्राह्मणके नामान्तमें शर्मा क्षत्रियके वर्मा वैश्यके गुप्त शूद्रके नामके अन्तमें दास पद रक्खे ॥ ६२ ॥ अब विचारनेकी बात है जब शर्मा वर्मा आदि चिह्न लगाकर तीन वर्णोंके नामकरण किये तथा पुंसवनादि किये तो जब स्वामीजी गुण कर्मके अनुसार जाति मान्ते हैं तो अभी जन्मसे तो सन्तानोंकी दशा विदित ही नहीं कि बड़े हुए ये चारों वर्णोंमें कौन वर्णके होजायँ, फिर यह ब्राह्मणादिका नाम शर्मादि शब्द लगाकर रखना वृथा ही हुआ, यदि वह शूद्र होगया तो कई संस्कार वृथा होगये और शूद्र यदि ब्राह्मण होजाय तो उसमें कई संस्कारोंकी न्यूनता रह गई, यदि गुण कर्मसे जाति होती तो जन्मसे संस्कार नहीं होते, परीक्षाके समय हुआ करते क्यों कि उत्पन्न होते ही पुत्रका नाम 'बी ए' रखना वृथा है, जब पढ़जाय तभी 'बी ए' होता है अन्यथा नहीं इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती तो परीक्षाके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्रादिकी पदवी दीजाती, जन्मसे संस्कार नहीं होते इससे स्वामीजीका गुण कर्मसे जाति मान्ना कथन सर्वथा मिथ्या है, और भी प्रमाण हैं सुनिये ॥

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् गर्भाष्टमे वा, एकादशे क्षत्रियं द्वादशे वैश्यम् आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतःकालः,आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति आश्व० ॥

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः । मनु० अ० २ श्लो० ३६

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ॥ मनु०

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्षमें वा पांचवें वर्षमें १६ वर्ष पर्यंत करदे क्षत्रियका ग्यारह वर्षमें वा छःमें २२ वर्षतक होजाना चाहिये, वैश्यका बारहवें वर्षमें वा आठवें वा वर्ष २४ तक होजाना चाहिये, इसके उपरान्त तीनों वर्ण गायत्रीपतित होते हैं, छोटी उमरमें यज्ञोपवीत विधि विशेष विद्या आनेके कारण मनुजीने लिखी है ॥

यहाँतक भी सब कृत्य जन्मानुसार ही होते चले आये हैं क्यों कि अभीतक वेदविद्यारहित तीनों वर्ण हैं, क्यों कि उपनयन बिना वेदारम्भ नहीं होता और फिर तीनोंके यज्ञोपवीतका काल भी तो पृथक् २ है यथाहि ॥

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम् शतपथे०

वसन्त ऋतुमें ब्राह्मणका गरमीमें क्षत्रियका शरद् ऋतुमें वैश्यका यज्ञोपवीत करना और यज्ञोपवीतके समय भोजन भी व्रतमें तीनों वर्णका पृथक् २ है यथा-

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥

व्रती ब्राह्मणका पुत्र दुग्ध, क्षत्रियको यवागू अर्थात् यवका मोटा आटा दलके गुडके साथ पतला घोलकर पीना, वैश्य आमिक्षा अर्थात् दहीसे चौगुना दूध एकगुनी खांड केशर डालकर पिये और व्रत रहे यहां भी जन्मसे ही जाति चली आती है और सुनो ॥

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्य तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ ४२ ॥ अ०२
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ।

पैलवोदुम्बरो वैश्यो दंडानर्हति धर्मतः ॥ ४५ ॥
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ।
ललाटसंमितो राज्ञः स्याच्च नासांतको विशः ॥ ४६ ॥
भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥४७॥मनु०अ०

ब्राह्मणकी मेखला त्रिगुण सुख स्पर्शवाली मुंजकी करे क्षत्रियकी मूर्वासे धनुषके गुणकी समान करे वैश्यकी मेखला सनके डोरेकी करे ४२ ब्राह्मणका कपासका यज्ञोपवीत ऊर्ध्ववृत और त्रिगुण होवे, सनके¹ डोरेका क्षत्रियका, और वैश्यका मेषलोमानिर्मित बनावे ४४ ब्राह्मणोंका दंड बेल पलाशका, क्षत्रियका बड खदिरका, वैश्यका पीलू वा उदुंबरका करे ४५ ब्राह्मणका दंड शिरके बालतक लम्बायमान, क्षत्रियका ललाटतक और वैश्यका नासिकांतक लम्बायमान दंड होवे ४६ ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा मांगते समय भवत् शब्दको प्रथम उच्चारण करे, जैसे भवति भिक्षां देहि, क्षत्रिय मध्यमें भिक्षां भवति देहि, वैश्य अन्तमें भिक्षां देहि भवति ॥ ४७ ॥

यहांतक भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी मौंजी, यज्ञोपवीत, दंड, भिक्षामांगनेकी विधि पृथक् २ वर्णन करी है, जिससे कि देखते ही चीन्ह लिये जायँ कि यह ब्रह्मचारी कौन वर्णका है, अब गुरुके यहां पढनेसे वह कौनसी बात उनमें प्रवेश करगई कि, वर्ण बदल गये वे मौंजी आदि तो पूर्ण विद्या धारण करने तक धारण करेंगे और इनमें शूद्र पढने गया नहीं है वह कैसे उच्च वर्ण होगा अच्छा अब और सुनो * ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानंप्रतिग्रहंचैवब्राह्मणानामकल्पयत् ॥मनु०अ० १श्लो०८८से

वेद पढना पढाना यज्ञ करना कराना दान लेना देना यह छः कर्म ब्राह्मणोंके वास्ते नियत किये गये और–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४ ॥भ० गीता

मनसे किसीका अनिष्ट चिन्तन न करना इन्द्रियोंका रोकना पवित्रता शान्ति

---

१ गूलर। *भा० प० के कर्ता यह सब प्रमाण हजम करगये मानों एकप्रकारसे जाति क्रमसे मानली।

सहना आर्जव सीधापन कोमलता ज्ञान विज्ञान आस्तिकता ईश्वरका मानना यह ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ १ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० १
शौर्य्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्त्रं कर्म स्वभावजम् ॥ भ०गी०२

प्रजाका रक्षण दान देना यज्ञ करना विषयोंमें नहीं फँसना वेद पढना यह कर्म क्षत्रियके हेतु बनाये १ और शूरता तेज (धृति) धैर्य चतुरता युद्धसे नहीं भागना दान देना ईश्वरमें भाव करना यह क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं २ इसके अर्थ स्वामीजीने पृ० ९१ पं० १ (इज्या) अग्निहोत्रादि करना कराना (अध्ययन) वेद पढना पढाना यह क्षत्रियोंके कर्म लिखे हैं सो हठ धर्मी हैं क्षत्रिय पढावें यह आज्ञा मनुजी नहीं देते यथा हि ॥

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ अ० १० श्लो० १

तीनों वर्ण अपने कर्ममें स्थित होके वेदोंको पढें इनको ब्राह्मण पढावें क्षत्रिय वैश्य न पढावें यह निश्चय है क्यों कि ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥ २ ॥

जातिकी उत्कर्षता उत्तम अंगसे उत्पन्न होने वेदके धारण करने तथा संस्कारकी अधिकतासे वर्णोका ब्राह्मण ही गुरु वा प्रभु है. इस कारण वही पढानेका अधिकारी होताहै ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनु०९०
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥ भ० गी०

पशुओंकी रक्षा करनी दान करना वेद पढना व्यापार करना व्याज लेना खेती करना यह कर्म वैश्योंके अर्थ बनाये १ खेती गोपालन व व्यापार यह वैश्योंमें स्वभावसे रहता है ॥

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १ ॥ मनु० ९१

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्। भ० गी०

शूद्रका एक ही कर्म है निन्दाको छोडकर तीनो वर्णोंकी सेवा करना यह म
र्षीने ठहरा दिया है गीतामें लिखाहै शूद्रका सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म
इससे यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मणको ऐसे, क्षत्रियको ऐसे कर्म क
चाहिये, यह अर्थ नहीं है कि इस कर्मके करनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होता
किन्तु चारों वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सौंपे गये, जैसा कोई क
कि यज्ञदत्त तुम यह काम किया करो तो क्या इसके यह अर्थ होंगे कि अ
अमुक २ कार्य करे वो ही यज्ञदत्त होताहै, इससे विदित हुआ कि यज्ञदत्त किस
पुरुषका नाम पूर्वकालसे है अब उसको कार्य सौंपे गये हैं, यदि कर्म करनेसे
ब्राह्मणादि होते तो ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादि करै वह ब्राह्मण होता है सं
यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सौंपे हैं, जैसे कि पहले तो चारों वर्णोंके
नाम पीछेसे उनके काम और फिर —

अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।

स्वभाव सबसे अधिक बलवान् है, जिसके स्वभावमें जो बात है वह कभी नहीं
जाती, गुणीसे गुण अलग नहीं होता, और यह भी तो सोचनेकी बात है कि बडा
होना कौन नहीं चाहते यदि उपरोक्त षट् कर्मोंहीसे ब्राह्मण होता तो वेद तो तीनों
वर्ण पढे होतेथे क्या जो पढे हैं सो पढा नहीं सक्ते, जिसने यज्ञ किया है वह करा
नहीं सक्ता, फिर तो ब्राह्मणके षट्कर्मों सब ही कोई करसक्ते थे, और सब ही
ब्राह्मण होजाते, सो मनुजीने निषेध कर दिया कि और वर्ण वेद विद्या नहीं पढा
सक्ते, इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणजाति जन्मसे ही होती है नहीं तो विश्वामित्र तप
न करते, यदि पढेका नाम ब्राह्मण होता तो मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानवधर्म
शास्त्रमें नहीं होता, और कर्म करनेसे जाति नहीं बदलती परशुरामने इक्कीसवार
पृथ्वी भरके क्षत्रिय मारडाले, वे भी ब्राह्मण थे उन्हें आजतक कोई क्षत्रिय नहीं
कहता, द्रोणाचार्य अस्त्रविद्या सिखाते थे उन्हें आजतक कोई क्षत्रिय नहीं कहते,
यह महाभारतमें युद्ध भी करतेथे, यह भी क्षत्रिय नहीं कहलाये, ब्राह्मण ही कह-
लाये, फिर कर्ण × जब परशुरामके पास विद्या पढने गया तो झूंठ बोला कि मैं
ब्राह्मण हूं पीछे परशुरामने क्षत्रिय जान शाप दिया यदि पढनेहीसे ब्राह्मण होता तो
उसे क्या छिपाना पडता और गुणकर्मसे ही उच्च वर्ण होता तो कर्णमें कौनसे गुण
क्षत्रियके नहीं थे सब ही थे था भी असल क्षत्रिय पर अपनी जातिकी खबर

× भा० प्र० कर्त्ताको एक आंख महाभारतपर डालकर यह प्रकरण देखना चाहिये औ
सन्देह मिटजाय।

न होनेसे सूतपुत्र नामसे ख्यात था जिस समय द्रौपदीके स्वयंवरमें धनुष कर्णने उठा लिया उस समय द्रौपदीने कहा हम सूतपुत्रको वरण नहीं करेंगी, क्यों कि यह क्षत्रिय जाति नहीं, यह सुन कर्णने लज्जित हो धनुष रखदिया कहिये यदि गुण कर्मसे जाति होती तो कर्ण धनुष क्यों धरता और द्रौपदी क्यों आग्रह करती कर्णमें कौन बातकी कमताई थी परन्तु सूतके पालन करनेसे सूतजाति प्रसिद्ध होगई, द्रोणाचार्यने भीलको शूद्र जानकर ही धनुर्वेद न दिया फिर आदि पर्वकी कथा सुनिये जब गरुडजी अमृत लेनेको चले क्षुधार्त हो मातासे पूछने लगे कि, हम क्या खांय, माता वा कश्यपजी बोले कि समुद्रतटमें निषादगण ो धर्मभ्रष्ट हैं उनका भक्षण करो, परन्तु उनमें जो ब्राह्मण होय उसका भक्षण नहीं ना क्यों कि ब्राह्मण जगद्गुरु हैं गरुड बोले जब सब ही धर्मभ्रष्ट हैं तो मैं ो जानूंगा कि यह ब्राह्मण है ? उन्होंने कहा जिसके कण्ठमें जानेसे अग्नि बलने ो उसे जानना कि यह ब्राह्मण है ॥

यस्ते कंठमनुप्राप्तो निगीर्णं बडिशं यथा ।
दहेदंगारवत्पुत्र तं विद्याद्ब्राह्मणर्षभम् ॥
आदि० अ० २८ श्लोक १०

जब गरुडजी वहां जाकर भक्षण करने लगे तब एक ब्राह्मण स्त्रीसहित मुखमें ागया, और कण्ठमें दाह होने लगा गरुडजीने उसे ब्राह्मण जान स्त्रीसहित तत्काल गल दिया ॥

ततः स विप्रो निष्क्रान्तो निषादीसहितस्तदा ॥ ५ ॥ अ० २९
(तब वह ब्राह्मण निषादीसहित निकला)

इससे प्रत्यक्ष होगया कि ब्राह्मण जाति जन्मसे है कर्मसे नहीं क्यों कि भील ाके ब्राह्मणका कर्म न करनेसे भी ब्राह्मणत्व लोप नहीं हुआ होजाता तो गरु- के कण्ठमें क्यों आग प्रज्वलित होती, और स्वामीजी तो तीनों वर्णका अडता ास वर्षकी अवस्थामें विवाह करना कहते हैं शूद्रका तो यज्ञोपवीत ही नहीं लि ह वेद कैसे पढ सक्ता है और शेष तीनो वर्ण अपनी जाति अनुसार विद्या ढते ही रहेंगे उधर कन्या भी अपने कुलानुरूप विद्या पढती रहेंगी, तो जब ये ढ चुकेंगी तो इस समयतक तो कुछ न्यूनाधिक हुआ ही नहीं वैश्य वैश्य, ब्राह्मण ाह्मण, क्षत्रिय क्षत्रिय बने हैं, जब ब्याहकी इच्छा होगी तो अपने ही जातिमें ागा जब विवाह ही हो गया तो सारा झगडा ही मिटगया तो विवाहमें भी ामान जन्म व्यवस्था हुई ऊंच नीच जाती रही, यहां तो विवाह जन्म जातिसे

नहीं होती यदि शूद्र महामूर्खको कहते हैं जिसपर पढनेसे कुछ न आवे ज
था तो शूद्रको पढनेका उपदेश देना वा उसको उच्च जाति बनाना स्वयं मू
इससे शूद्र मूर्खको कहते हैं यह कहना मिथ्या ही है ॥

स० पृ० ८८ पं० २९

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ मनु०

शूद्रकुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके समान गुणकर्म स्वभाववाल
तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होजाय, और जो ब्राह्मणक्षत्रियऔर
कुलमें उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्रके सदृश हों तो वह
होजाय चारों वर्णमें जिस जिस वर्णके सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २
वर्णमें गिना जावै ॥ ८८ । १९

स० पृ० ८९ पं० ४

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वंपूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ १
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यंजघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्त

यह आपस्तंबके सूत्र हैं धर्माचरणसे निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम २ वर्णको प्र
होता है और वह उसी वर्णमें गिनाजावे जिस जिसके योग्य होवै १ वैसे अध
चरणसे पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला पुरुष अपनेसे नीचे नीचे वर्णको प्राप्त हो
है और वह उसीमें गिना जावै ॥ ८८ । २३

पृ० ८९ पं० १९ इससे वर्णसंकरता प्राप्त न होगी पुनः पं० १६ (प्रश्न)
किसीका एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट होजाय तो उसके
बापकी सेवा कौन करेगा और वंशोच्छेदन भी हो जायगा इसकी क्या व्यवस
होना चाहिये (उत्तर)न किसीकी सेवाका भंग न वंशच्छेदन होगा क्यों
उनको अपने लडके लडकियोंके बदले स्ववर्णके योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभ
और राजकी व्यवस्थासे मिलेंगे (७९ । ६) पुनः पृ० ९१ पं० २८ क्यों कि
उत्तम वर्णोंको भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शू
हो जायंगे, और नीच वर्णोंका उत्तम वर्ण होनेके लिये उत्साह बढैगा पृ० ९
पं० ७ शूद्रको सेवाका अधिकार इसकारण है कि, वह विद्यासे रहित मूर्ख होनेसे
विज्ञानसंबंधी काम कुछ भी नहीं करसक्ता ॥ ९१ । २४ से ॥

स० पृ० ८६ पं० २७

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ मनु० ४ । १७८

जिस मार्गसे इसके पिता पितामह चले हों उस मार्गमें संतान भी चलै परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हींके मार्गमें चलें और जो पिता पितामह दुष्ट हों तो उनके मार्गमें कभी न चलै तथा पृ० ८७ पं० ८ जिसका पिता निर्धन हो क्या उसका पुत्र धनी हो तो धन फेंक दे, और जिसका पिता अन्धा हो तो क्या उसका पुत्र भी अपनी आंखें फोडलेवै जिसका पिता कुकर्मी हो तो उसका पुत्र भी कुकर्म ही करै? पं० १४ अथवा कोई क्रिश्चियन या मुसल्मान होगया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते. (८६ । २९ से)

समीक्षा-बस इतनी ही स्वामीजीकी दलील है कि शूद्र ब्राह्मण होजाता है (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) इसका प्रसंग स्वामीजीने चालाकीसे विगाडकर लिखा है इस प्रकरणका पहला श्लोक यह है ॥

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ अ० १० श्लो० ६४

शूद्रामें ब्राह्मणसे पारशवाख्य वर्ण उत्पन्न होता है, जो स्त्री उत्पन्न हो और वह ब्राह्मणसे विवाही जाय और उससे कन्या हो वह ब्राह्मणको विवाही जाय तो वह पारशवाख्य वर्ण सातवें जन्ममें ब्राह्मणताको प्राप्त होता है, इसीप्रकार ब्राह्मणीमें शूद्रसे बालक उत्पन्न हो और वह शूद्रासे विवाहा जाय उससे पुत्र हो वह भी शूद्रासे विवाहा जाय तो सातवें जन्ममें वह पारशवर्ण शूद्रताको प्राप्त होता है ६४ इसीके आगेका यह श्लोक है कि (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) इसी प्रकारसे सातवें जन्ममें ब्राह्मणकुलमें शूद्रका विवाह होता रहै तो उसको ब्राह्मणता और ब्राह्मणका शूद्रासे विवाह होता रहे तो वह सातवें जन्ममें : शूद्रताको प्राप्त होजाता है यह पारशवाख्यके विषयमें ही जानना ६९ परन्तु यह भी विचारना योग्य है कि यहाँ (ता) प्रत्यय सदृश भाव अर्थमें है जैसे जो गुड बहुत खरा होता है तो उसको कहदेते हैं कि, पेडेकी जात मिठाई है अथवा खरबूजा मिश्रीसा है यह पुरुष यज्ञदत्तसा है कहिये इससे क्या सिद्ध हुआ यही सिद्ध है गुड पेडा नहीं किन्तु खरा अधिक है अपनी जातिमें वह खरा अधिक है किन्तु है ; गुड ही, इसी प्रकार और भी दृष्टान्त समझ लीजिये इससे शूद्रताका यह अर्थ है कि (शूद्रसा) परन्तु रहता अपनी जातिहीमें है इसी प्रकार वह शूद्र भी ब्राह्मणसा सातवें जन्ममें होजाता है किन्तु रहता अपनी जातिहीमें है स्वामीजी थोडेसे पढनेहीसे शूद्रको ब्राह्मण बनाये हैं, भाष्यभूमिकामें आपने लिखा है कि कुचर्या, अधर्माचरण, निर्बुद्धि, मूर्खता, पराधीनता, परसेवादि दोष दूषित विद्या ग्रहण

धारणमें असमर्थ हो वही शूद्र है यथा हि (यत्र शूद्रो नाध्यापनीयो न श्रावणीयश्चेत्युक्तं तत्रायमभिप्रायः॥शूद्रस्यप्रज्ञाविरहितत्वाद् विद्यापठनं धारणविचारासमर्थत्वात्तस्याध्यापनं श्रावणं व्यर्थमेवास्ति निष्फलत्वाच्च) यह स्वामीजीकी संस्कृत है कि शूद्रमें प्रज्ञा (बुद्धि) न होनेसे विद्यापठन धारण विचारमें असमर्थ होनेसे पढाना सुनाना निष्फल ही है ॥

इस लेखसे स्पष्ट है कि, शूद्र उसको कहते हैं जिसपर पढायेसे कुछ न आवे और उसका पढाना भी मिथ्या ही है फिर आप ही वेद पढनेकी आज्ञा देते हो जैसा लिखा है कि (शूद्रायावदानि-शूद्रकोभी यह वेद पढावे) तो भला जो अध्ययनके योग्य ही नहीं वह कैसे वेद पढे अब यह मंत्र (यथेमां वाचं) इसमें शूद्रपद कर्मानुसार है, या जन्मसे जाति मानी है यदि कर्मसे जाति मान्ते हो तो शूद्र कैसे वेद पढ सक्ताहै, जन्मसे जाति मान्ते ही नहीं अब आपके लेखमें कौन बात सत्य मानी जावे, जो शूद्रको पढाना मानें तो जाति जन्मसे हुई जाती है जो कर्मसे मानें तो शूद्रका वेद पढना बनता नहीं (प्रज्ञाविरहितत्वात्) क्यों कि जो पढनेके योग्य न हो उसको पढनेकी आज्ञा देनेवाला मूर्ख ही गिना जायगा और शूद्र महामूर्खको मान्ते हो तो (शूद्रो ब्राह्मण०) और (अधर्मचर्यादि) मनु और आपस्तंबके वचनोंके आपहीके किये अर्थ मिथ्या हुए जाते हैं क्यों कि जब शूद्रमें धारणा ही नहीं तो पढेगा कैसे, और उत्तम वर्णको विना पढे कैसे प्राप्त होगा, इससे शूद्रपद सदा जन्मसे है, आपके आपस्तम्ब सूत्रोंकी बात कहते हैं कि आपस्तम्बीय गृह्य और श्रौतसूत्र तथा यज्ञपरिभाषा इनमें तो यह सूत्र हमको कहीं नहीं मिले जब यह सूत्र वहां हैं नहीं तब उत्तर देना निरर्थक है तथापि उत्तर देतेहैं, 'वह उसी २ वर्णमें गिना जावे जिस जिसके योग्य हो, यह इन सूत्रोंके किनपदोंका अर्थ है, यदि (जातिपरिवृत्तौ) का अर्थ गोलमालसे किया हो सो भी नहीं होसक्ता क्यों कि, (जातेर्जायमानस्य शरीरस्या परिवर्तनेर्जाति परिवृत्तिस्तस्यां जातिपरिवृत्तौ) जाति नाम उत्पन्न हुए शरीरका परिवर्तन होने बदल जाने पर अर्थात् मरकर द्वितीय शरीर धारण करनेपर नीचवर्ण धर्माचरणद्वारा अपने २ से पूर्व २ वर्णको प्राप्त होजाताहै अर्थात् क्षत्रियादि जन्मान्तरमें हो जाताहै,जाति और जन्म दोनों शब्द एक ही जन धातुसे बनते हैं इसलिये एकार्थ हैं जैसे, गति गमनका एक अर्थ है वैसे ही परिवृत्ति और परिवर्तनका एक अर्थ है, अब टीका अर्थ होनेसे गुण कर्मसे वर्ण व्यवस्था वाला बाबाजीका अर्थ कट गया तथा सूत्रोंका अर्थ संक्षेपसे यह हुआ कि जाति शरीरका परिवर्तन होने पर धर्माचरण द्वारा नीच वर्ण पूर्व २ ऊंचे वर्णस्थ माता पिताके घरमें जन्म लेता है ऐसे ही उच्च वर्ण नीच कर्मसे दूसरे जन्ममें नीच हो जाते हैं ॥

यथा हि रमणीयाचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनि मापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ यइह कपूयाचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा छान्दो० वा० उप० प्र० ५ खण्ड १० ॥

अर्थात् अच्छे आचरणवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी योनि (शरीर) पाते हैं निकृष्ट आचरणवाले कुत्ते सूकर और चाण्डालयोनिको प्राप्त होते हैं कहिये अब शंका मिटी या नहीं और सुनो ॥

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ मनु० अ०८ श्लो० २७२

जो शूद्र अहंकारसे ब्राह्मणको धर्मोपदेश करे तो राजा उसके कानमें और मुखमें तप्त तेल डलवादे (शूद्रको वेदविद्या छोडकर और ग्रंथोंमें अधिकार है) कि शूद्र ब्राह्मणको घमंड करके उपदेश देनेमें दंडनीय है तो इससे शूद्र वेदका अधिकारी नहीं इससे चारों वर्ण जन्मसे ही होते हैं, कर्मसे नहीं और कर्मसे जाति होती तो चार वर्ण ही होते पारशवादि संकर जाति न होती जिनका वर्णन मनुजीने १० अध्यायमें किया है समझनेको यही बात बहुत है ॥

"आचारास्तूत्कर्षापकर्षविधायका एव भिन्नस्थानीया भित्ताविति सिद्धान्तः" अत एव शतपथे मवें न सर्वेण संवदेत देवान्वा एष उपावर्त्तते यो दीक्षते स देवानामेको भवति न वै देवाः सर्वेण संवदन्ते ब्राह्मणेन वै राजन्येन वा वैश्येन वा ते हि यज्ञियास्तस्माद्यद्येन शूद्रेण संवादो विन्देदेतेषामेवैकं ब्रूयादिमम् ॥

इसका यह आशय है वह यज्ञ कर्ता सबसे संवाद न करे जो दीक्षित होकर करता है वह देवतोंके काममें होता है देवता सबसे संवाद नहीं करते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यसे ही करते हैं कारण कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ही यज्ञके अधिकारी हैं शूद्र संस्काररहित होनेसे अधिकारी नहीं है शूद्रसे संवाद न करे इन्हीं में एकसे बोले,यदी कहो कि, गर्भाधानसे लेकर शूद्रके माता पिता इसका संस्कार

करलें तो यह उत्तर है कि जब अपना ही संस्कार नहीं है तो यह दूसरेका संस्कार कैसे कर सक्ते हैं जब सृष्टिके समयसे ही शूद्र संस्काररहित हैं तौ इस मन्वन्तरके २८ वें कलियुगमें उसका संस्कार संभव नहीं है और यह आचार तो निज जातिमें उत्कर्षता (उच्चपन) अपकर्षता (नीचपन) का विधायक है यह नहीं कि जाति बदलदे जैसे दिवाल तस्वीरों सहित दिवाल ही रहती है परन्तु यह अच्छी कही जाती है ॥

त्रयाणांस्यादग्न्याधेयेह्यसंबन्धः क्रतुपुत्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः ।

यज्ञकर्ममें तीन ही वर्णोंका अधिकार श्रुतिमें देखनेमें आता है यह आत्रेयका मत है ब्राह्मणादि तीन ही वर्णोंका अधिकार यज्ञादि प्रकरणमें वर्णन किया है, यथा॥

बार्हद्गिरंब्राह्मणस्यब्रह्मसामकुर्यात् पार्थुरस्यंराजन्यस्य रायो वाजीयं वैश्यस्य "शूद्रस्य तु सामन आमनन्ति"

यह सामवेदके स्थल हैं जो द्विजोंके अर्थ हैं शूद्रोंके लिये सामका कोई अधिकार नहीं है इस प्रकार शूद्रका अधिकार नहीं है (संस्कारे च तत्प्रधानत्वात्) मीमांसायाम्, व्रताख्यसंस्कार शूद्रके सुननेमें नहीं आता इस कारण शूद्र किसी अवस्थामें वेद पढनेका अधिकारी नहीं होता संस्कार पुरुषोंमें प्रधान है (वेदे निर्देशात्) वेदमें तीन ही वर्णोंका निर्देश है (वसन्ते ब्राह्मणादि) सो पूर्व कह आये हैं और ॥

पद्युह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रंनाध्येतव्यम् तैत्तिरीय०

शूद्र एक जंगम श्मशान सदृश है इस कारण शूद्रके निकट वेदको उच्चारण नहीं करना जब कि, शूद्रके सामने उच्चारण भी मना है तो पढाना कैसा, पाणिनिजीके मतमें भी जन्मसे ही जाति मानी है और शूद्रको अनधिकारता प्रगट है यथा ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् २ । ४ । १०

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ८ । २ । ८३

शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः (वार्त्तिकम्) ३

इसपर पतञ्जलि महाराज भाष्यमें वर्णन करते हैं कि (भाष्यम्) ॥

यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यति तेऽनिरवसिताः । यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति ते निरवसिताः (बहिष्कृताः) इति व्याचख्यौ ॥

जिनके भोजन किये पश्चात् पात्र अग्नि आदिमें डालनेसे शुद्ध हो जाता है उन शूद्रोंको अनिरवसित कहते हैं और जिनका भोजन किया पात्र संस्कारसे शुद्ध नहीं होता वह निरवसित शूद्र अर्थात् त्याज्य शूद्र कहाते हैं इनमें अपना पात्र भी न

छुवावे कंजरादि १ शूद्रको छोडके प्रत्यभिवाद (प्रणामका उत्तर) जो है उसके टीको प्लुत होजाय और वह उदात्त हो २ इससे मूर्खका नाम शूद्र नहीं है, किन्तु जातिसे शूद्रपना है, क्यों कि वार्तिककार लिखते हैं कि (अमहत्पूर्वाजातिः) इसमें जाति ग्रहणसे जाना जाता है कि, मूर्ख नाम शूद्रका नहीं है किन्तु जन्ममें पूर्वजोंसे जाति है पुनः पाणिनिके इस सूत्रपर भाष्यकार लिखते हैं ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५ । १ । ११५

सर्वे एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति अतश्च गुणसमुदाये एवं ह्याह ॥

तपः श्रुतं च योनिश्च एतद्ब्राह्मणकारकम् ।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥ १ ॥.
तथा गौरःशुच्याचारः,पिंगलः कपिलकेश इति ॥

सब यह शब्द गुण समुदायोंमें वर्तते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इति, तप करना वेद पढना श्रेष्ठ कुल यह ब्राह्मणका (कारकम्) लक्षण है जो ब्राह्मण इन करके हीन है केवल (योनिः) ब्राह्मण कुलमें जन्म मात्र है वह जातिसे ब्राह्मण है, लक्षण उसमें नहीं हैं, क्यों कि गौर, वर्ण पवित्राचरण पिंगल (कपिल) केश यह भी ब्राह्मणके लक्षण हैं, यदि यह न हों और वह ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न है तो वह जातिसे ब्राह्मण है यह भाष्यकार मानतेहैं"जातिहीने सन्देहाद्गुरुपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दो वर्तते" और जातिहीन गुणहीनमेंभी संदेहसे ब्राह्मण शब्द वर्तता है गुणहीने यथा-"अब्राह्मणोयं यत्तिष्ठन्मूत्रयति" यह अब्राह्मण है जो खडा होकर मूत रहाहै सन्देहमें ऐसे कि गौरवर्ण पवित्राचार पिंगल (कपिल) केश पुरुष देख कर बोध होता है कि, यह क्या ब्राह्मण है पीछे जाननेसे यदि वह जातिसे ब्राह्मण हो तौ अब्राह्मणोयमिति ऐसा कहाजाता है यदि भाष्यकारको जातिसे शूद्रका मानना इष्ट न होता तो शुचि आचारादि युक्त पुरुषको यह ब्राह्मण है या नहीं ऐसा क्यों लिखते और सन्देह करते और फिर क्षत्रिय वैश्यादिक भी कोई न होते सब विद्यायुक्त तो ब्राह्मण होते और मूर्ख शूद्र कहलाते हैं अपनी उन्नति सबही चाहते हैं बस सब ही ब्राह्मण बन बैठते यदि स्वामीजीकी बात मानी जाय तो संपूर्ण वर्णसंकरता फैलजाय ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ अ० २ श्लो० १६

निषेकादि जन्म संस्कारसे मरणपर्यन्त जिसका मंत्रोंसे संस्कार करना कहा

गया है उसी कुलके संस्कृत पुरुषका इस यज्ञमें अधिकार है अन्यका नहीं शूद्रका किस प्रकार संस्कार होसक्ता है, जब उसको अधिकार ही नहीं है ॥

पुनः गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे ३३ ब्राह्मणम् ॥

सान्तपनाइदंहविरित्येष हवै सान्तपनोऽग्निर्यद्ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनिकृतानिभवन्तिससान्तपनोऽथ योयमनग्निकःसकुम्भेलोष्टः (तद्यथा) कुम्भे लोष्टः प्रक्षिप्तो नैवशौचार्थायकल्पते नैवशस्यंनिवर्तयाति एवमेवायंब्राह्मणोऽनग्निकस्तस्यब्राह्मणस्यानग्निकस्य नैवदैवं दद्यान्न पित्र्यं न चास्य स्वाध्यायाऽशिषोनयज्ञआशिषः स्वर्गङ्गमाभवन्ति ॥

अर्थ-जिस ब्राह्मणके जन्मसे गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म नामकरण, निष्क्रमण (बाहर निकलना) अन्नप्राशन, गोदान, चूडाकरण, उपवीत, अग्निहोत्र, व्रतचर्यादि संस्कार हुए हैं वह ब्राह्मण जाति और गुण कर्मसे यथार्थ है उसीको सान्तपन कहते हैं जिस ब्राह्मणके यह संस्कार नहीं हुए वह ऐसा है जैसे घडेमें मट्टीका डेला, क्योंकि वह फेंका हुआ डेला पवित्रता नहीं करता न कुछ शस्य (खेती) का कार्य बनाताहै इसी प्रकारसे अग्निरहित और संस्कार रहित ब्राह्मण है ऐसे ब्राह्मणको देवता और पितृसंबंधमें कुछ भी न देना न वेद आशिष न यज्ञ आशिष इसको स्वर्ग लेजानेवाली होती हैं ॥ ×

यदि सूर्य ही नाम शूद्रका होता तो यहां संस्काररहित ब्राह्मणको कुछ न देना यह क्यों कहा क्यों कि वह तो शूद्र होजाता, इससे यह प्रत्यक्ष है कि संस्कार रहित भी ब्राह्मण जातिमात्र रहता है शूद्र नहीं होजाता और यह भी इससे विदित है कि, शूद्र किसी प्रकारसे ब्राह्मण नहीं होसक्ता क्यों कि जब इसके जन्ममें संस्कार ही नहीं तो वह ब्राह्मण कैसे हो सक्ता है, और यदि शूद्र अच्छे कर्मसे ब्राह्मण होजाता और कर्मानुसार वर्णव्यवस्था होती तो रामचंद्र महाराज तपस्या करते हुए शम्बूक शूद्रको क्यों मारते, तथा शूद्रके तप करनेके कारण वह ब्राह्मणका पुत्र क्यों मरता, जिसको श्रीमहाराज रामचंद्रने उस शूद्रको मारकर जिवाया ॥

× मा० प्र० के कर्ता वर्णव्यवस्थामें बहुत व्याकुल होगयेहैं कुछ कहते न बना ।

शूद्रयोन्यां प्रजातोस्मि तप उग्रं समास्थितः ।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशाः ॥ २ ॥
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥ ४ ॥
वाल्मी० उत्तर०सर्ग७६

हे महाराज ! मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ उग्रतप करनेमें लगाहूं मैं शरीरसहित ही देवत्वकी प्रार्थना करताहूं यह सुन रामचंद्रने उसका शिर काट डाला ॥

शूद्रको तप करनेका अधिकार ही नहीं है, यह वाल्मीकिके उत्तर काण्डमें लेख है इससे शूद्र ब्राह्मण नहीं होसक्ता तथा विदुरजीने शूद्र होनेके कारण धृतराष्ट्रसे ब्रह्मज्ञान न कहा देखो प्रजागर ॥

और यह तौ एक बडी बुद्धिमानीकी बात लिखी कि (जिनके बालक उच्च वा नीच वर्णमें चले जांय उनको विद्यासभा और राजनियमसे उनके वर्णानुसार और लडके लडकी मिलेंगे) धन्य है खूब सबका वर्णसंकर किया और (अङ्गादङ्गात्संभवसि) इस मंत्रको भूल गये, जब कि पुत्र पिताके अंग अंगसे उत्पन्न होता है और इसी कारण पिताके जल देनेका अधिकारी होता है, उसको तौ आप दूसरेका पुत्र बनादो और जो कुम्हारका लडका पढा हो तौ ब्राह्मणके यहाँ उसे राजनियमसे दिलवाते हो (इस विद्यासभा और राजनियमकी कोई श्रुति भी लिखदी होती) यह कौनसे शास्त्रकी व्यवस्था है दायभागमें इसको किस प्रकार हिस्सा होना चाहिये, ऋषि बनने चले और अपने लिखका भी खबर न हुई कोई गरीब चाण्डालका पुत्र विद्या पढा हो और सेठ धनीका पुत्र विद्यावान न हो तौ धनवान् तो चाण्डालके यहां भेजे गये, और चाण्डाल धनीके आ पडे, जिसके अनुसार न मिला वह तडफते ही रहे, वह अंग अंगसे उत्पत्ति वह स्वाभाविक कर्म सब सत्यार्थप्रकाशमें प्रवेश कर गये (इस समय पूर्व पश्चिम देशीय अधिक विद्यावान् हैं आपके अनुयायी अपने कम पढे मूर्ख पुत्रोंको निकालकर अपना मालमत्ता उन्हें सौंपदे बडी कीर्ति यश बढेगा) धनीके पुत्र भेंड चरावें, चरवाहे ब्राह्मणादि कहलावें, कैसा अनर्थ है कोई नया धर्मशास्त्र दयानन्दजी बनाते तो कभी जंगलियोंमें यह रीति चलजाती तो चलजाती यदि कहो कि, हम जलदान मानतेही नहीं तो आगे नियोगविषयमें और पुत्रोंकी पुत्र संज्ञा नहीं है इस प्रकरणको यहीं लिखेंगे और निरुक्तसे सिद्ध करेंगे पर यह दायभागकी व्यवस्था आप कैसे बदल सक्ते हैं इसका तो वृत्तान्त सुनिये ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५॥ अ० ९
ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति॥ १०६॥

पिताके सम्पूर्ण धनको ज्येष्ठ ही ग्रहण करै और शेष छोटे भाई जैसे पिताके सामने खाते पहरते खर्च करते थे उसी प्रकार रहैं १०५ ज्येष्ठके उत्पन्न मात्रमें पिता पुत्रवाला कहलाता है और पितृऋणसे छूटजाता है इसकारण ज्येष्ठपुत्र सब धन लेनेके योग्य होता है और भाइयोंका भाग इससे न्यून है जब इस प्रकारकी शास्त्रकी मर्यादा है दयानन्दजी उसका नाश ही किये डालते हैं, बडे बडे घर जो धनवान हैं उन्हें कंगाल बनाना चाहते हैं कमाई करैं वैश्य, भोगैं चमार, इत्यादि कहांतक कहैं यह सत्यार्थप्रकाश असंभव बातोंसे पूर्ण है आगे लिखा है कि (उत्तम वर्णोंको नीचे गिरनेका भय होगा) यह भी लिखना निर्मूल है नीचे गिरना क्या वैसे ही बहुतेरा भय है जब कि विद्वान् ब्राह्मणोंका ही आदर भेंट दान पूजा यज्ञादिमें वरण दक्षिणादिका विधान किया है और मूर्ख ब्राह्मणोंको दानादि देनेका निषेध किया है तो उनके लिये स्वयं ही भय है, तिरस्कार तो मरणसे भी अधिक है अब तिरस्कार भी कौन करै दूसरेको तो वह बुरा कहसक्ता है जब आप अच्छा हो, जब यजमान विद्यावान् होगा तो पुरोहित उपाध्याय भी भय मान शीघ्रतासे विद्या सीखेंगे और जब दोनों ही एकसे हैं तो तिरस्कार कैसा; हां सब वर्णोंको उचित है कि उनके यहांके जितने पुरोहित हैं सबसे कह दिया जाय कि यदि तुम नहीं पढोगे तो तुम्हें हम विभाग नहीं देंगे और जो कुछ उनके निमित्तका हो वह उनके नामसे किसी मान्य पुरुषके यहां स्थापनकर दिया जाय अथवा पुरोहितोंके बालकोंको विद्याध्ययन करानेमें यह व्यय कियाजाय तो देखिये लाखों क्या करोडों ही विद्यायुक्त दीखने लगें सब कार्य इसीमें बन जायँगे उन्हें यही भय बहुत है कि, हम मूर्ख रहैंगे तो हमें कोई छदाम न देगा, और सर्वत्र निरादर होगा यह नहीं कि, वह शूद्र होजाँय, और स्वाध्यायेन० इस श्लोकका जो अर्थ स्वामीजीने कियाहै कि, वेद पढने जप करने व्रत करने होम करने पुत्रोत्पादन पंच महायज्ञ करनेसे यह ब्राह्मणका शरीर बनता है, यह भी मिथ्या ही है यद्यपि हम इसका अर्थ पूर्व कर चुके हैं और इस अर्थका खण्डन भी कर चुके हैं, परन्तु इतना यहां औरभी कहना है कि जिन कर्मोंसे आप ब्राह्मणोंका शरीर बनना मानते हैं उतने कर्मोंके करनेकी मनुजीने तीनों वर्णोंको आज्ञा दी है, फिर तो इन कर्मोंके करनेवाले सभी ब्राह्मण हो जाने चाहिये, शेष शूद्र, बस दो ही

वर्ण रहें ब्राह्मण और शूद्र, इस कारण इसका यही अर्थ ठीक है कि इन कर्मोंके करनेसे यह शरीर मुक्ति प्राप्तिके योग्य वा ब्रह्मविद्या प्राप्तिके योग्य होता है फिर स्वामीजीने लिखा है कि (जिसका पिता निर्धन हो क्या उसका पुत्र धन फेंकदे) यह बात आपकी इस स्थानमें प्रसंगसे विरुद्ध है भला वर्णव्यवस्थासे और इस बातसे क्या सम्बन्ध इसी प्रकार नेत्रहीन होनाभी कर्मानुसार है जो आप लिखते हैं कि (पिता अन्धा हो तो क्या आप भी आंख फोड डाले) यह बातें आपने इस श्लोककी भूमिकामें लिखी हैं कि ॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ मनु० ४ । १७८

अर्थात् तात्पर्य स्वामीजीका यह है कि, यदि वृद्ध अपने कुलवालोंका दुष्टाचरण हो तो उनके आचरण ग्रहण न करें किन्तु जो सत्पुरुषोंका मार्ग है उसमें चलें, जो काम वे करें सो आप करें तो औरोंका तो आपने दुष्टाचरण बताया, अपने बडोंको निर्धन और नेत्रविकारी ठहरानेसे पूर्व धर्म और धर्मवालोंपर आक्षेप किया है, अर्थात् इस समय आपके आचरणोंपर आपके अनुयायियोंको चलना चाहिये कि, सब घर छोड चलदें संन्यासी हो जायँ संस्कृत ही पढें सो कोई भी नहीं हुए इस प्रकारसे इसका अर्थ होना नहीं बनता इस श्लोकका यह आशय है कि, जिस मार्गमें अर्थात् जिस मतमें पिता और दादा सदासे चले आते हैं वही श्रेष्ठमत अर्थात् सत्पुरुषोंका अनुष्ठान किया हुआहै क्योंकि वे वेदके जाननेवालेथे इसी कारण संध्या अग्निहोत्र श्राद्ध मूर्तिपूजनादि सिद्धान्तोंको निर्भ्रान्त करतेथे, यह नहीं कि पिता तो सनातन धर्म प्रतिपालन करें बेटे मूर्ति पूजन श्राद्धखंडन करते फिरें, पिता पतिव्रताधर्म प्रचार करें बेटे स्त्रीको एकादश पति करावें, पिता विधवाको व्रतकरावे, बेटे नियोग करके चारपुत्र ग्यारह पुत्र करावें, इत्यादि इन आधुनिक मतोंका ही निषेध करते हुए मनुजी कहते हैं कि, बाप दादा जिस मार्गमें चले हों उसी मार्गमें आप चले कर्म और वस्तु है, मत और वस्तु है, इससे यहां मतका ग्रहण है फिर आप लिखते हैं कि (यदि कोई मुसलमान या ईसाई हो जाय तो उसे भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते) महात्माजी अब क्या आजकलकी नवीन सभ्यमंडली ईसाइयोंके आचरणोंसे कम है, क्या वेदमें कोट पतलून बूट होटल चुरट जेबमें घडी हाथमें छडी सोडावाटर रम मिटिंगका भी वर्णनहै यह सब ही कुछ देखनेमें आताहै, फिर चुटियातकः नदारद, संस्कृतका एक अक्षर नहीं जानते, वेदका आशय कंठगत है, अब अपने प्रश्नका उत्तर सुनिये. कि जो कोई ईसाई या मुसलमान होगये और उनके संग भोजन

करलिया तौ वह भ्रष्टहोने और ईसाको माननेसे ईसाई, महम्मदको माननेसे मुसल्मान कहलाने लगे, परन्तु यह बात सदैव जीमें वनी रहेगी कि मैं जातिका ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य हूं, जैसे कि संन्यासी होनेपर भी शिष्यगण आपको ब्राह्मण कहकर पुकारते हैं, परन्तु बुद्धिमानोंको तौ आप ब्राह्मण प्रतीत नहीं होते क्यों कि जहां देखो वहां ब्राह्मणसे शूद्र और शूद्रसे ब्राह्मण यही दो बातें देखनेमें आती हैं और शूद्रकी अधिक रिआयत जहाँ तहाँ की है, इससे सन्देह होताहै, ईसाई मुसल्मान होनेकी व्यवस्था सुनिये कि जो कोई ईसाई या मुसल्मान हो जाताहै वह उन पुरुषोंके संग भोजन पानादि करनेसे सज्जनगोष्ठी बहिष्कृत हो जाताहै उसको हम ब्राह्मणादि वर्ण इसकारण नहीं कहते कि, यह ईसा शब्द कोई जातिवाचक नहीं है किन्तु जैसे कबीरके माननेहारे कबीरपंथी दादूके दादूपंथी नानकके नानकपंथी तुम्हारे मतके दयानंदी कहलाते हैं तौ उनको कोई ब्राह्मणादि नहीं उच्चारण करते चाहे किसी वर्णके हों परन्तु जब अपनी बिरादरीमें आते हैं इनके साथ भोजन खानपानादि करतेहैं और आनन्द करते हैं और जब मुसल्मानादि कुधीनोंके साथ भोजन करलेते हैं तब बिरादरीवाले उनके साथमें भोजन पान व्यवहार विवाहादि छोड देते हैं, परन्तु उसकी ब्राह्मण जाति तौ भी नहीं जाती जब कोई उसकी सूरत देखते हैं तुरत कहते हैं कि, यह यहीं ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य है अब ईसाई हो गयाहै, यह मतसे नामसंज्ञा सब जातिमें आरूढ हो जाती है, परन्तु यह जाति तौ जबतक पंचत्वको प्राप्त न हो, तबतक उसके साथसे नहीं छुटती, उसको भी यह सदा ध्यान रहताहै कि मैं अमुक जातिका हूँ, अब ईसाई या मुसल्मान हो रहाहूं परन्तु बेटोंतकके भी यह पीछे रहती है कि, यह उनके बेटे हैं जो क्षत्रियसे या वैश्यसे ईसाई होगयाथा इनका पिता अमुक वर्ण था इस कारण यही सिद्ध होता है कि, शूद्र ब्राह्मण नहीं, ब्राह्मण शूद्र नहीं होसक्ता इस सारी वर्णव्यवस्थाका प्रयोजन यह है कि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्) ब्राह्मण क्षत्रियादि उसके मुख भुजा जंघा चरण हैं तौ जिस प्रकारसे मुख चरण कभी नहीं हो सके चरण मुख नहीं होसक्ता इसी प्रकार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र नहीं हो सक्ता वैश्य इस शरीरसे क्षत्रिय नहीं हो: सक्ता यही इस श्रुतिका अभिप्राय है इसमें और भी जो कोई जाति कर्मसे ही मानते हैं उनका भी खंडन इसीसे होगया ॥

निन्दास्तुतिप्रकरणम् ।

—मु० पृ० ९७ पं० २३ कभी किसीकी निन्दा न करे (गुणेषु दोषारोपणमसूया) अर्थात् (दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया) (गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः) जो गुणोंमें दोष दोषोंमें गुण लगाना वह निन्दा और गुणोंमें गुण

दोषोंमें दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्या भाषणका नाम निन्दा और सत्यभाषणका नाम स्तुति है ॥ ९८ । १२)

समीक्षा– यह कैसी विचित्र लीला है कि पहले तो लिखते हैं कि, गुणोंमें दोष लगाना निन्दा कहाती है और फिर अर्थात् लिखकर उसका मतलब लिखते हैं कि दोषोंमें गुणका लगाना भी निन्दा है गुणोंमें गुण दोषोंमें दोषों लगानेका नाम स्तुति है यह निन्दा स्तुतिका लक्षण अर्थात् लगाकर जो किया है सो निरर्थक है यदि सत्य वा मिथ्याका विषय होता तो किंचित् संघटित भी होता आप सत्यदोषोंका कथन स्तुति कहते हो सो स्तुति सत्यदोषयुक्त कथन करनी कहीं नहीं लिखी जब कि मनुजी यों लिखते हैं कि–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ मनु० अ० ४।१३८

मनुष्यको चाहिये कि सदा सत्य बोले और वह ऐसा सत्य हो कि, दूसरेको प्रिय लगे और ऐसा सत्य न बोले जो दूसरेको बुरा लगे और वह प्रिय बात झूंठ भी न हो यही सनातन धर्म है.जब कि अप्रिय सत्य बोलना भी बुरा है, और दोष सबको ही अपना बुरा लगता है आप उसीको स्तुति कहते हैं सो अशुद्ध है "अर्थवादो हि स्तुतिः" केवल सत्ययशका वर्णन करना ही स्तुति कहाती है यह नहीं कि, सत्य दोष भी स्तुति कहावे यह भी नहीं कि, मूर्ख हो और उससे कहा जाय कि तू बडा मूर्ख है निरक्षरभट्टाचार्य है कानेसे काना कहना क्या इससे वह प्रसन्न होगा कभी नहीं वह तो बडा बुरा मानेगा इससे स्तुति नाम उसीका है जिसमें केवल गुणोंका वर्णन हो और वह सुननेवाला प्रसन्न हो जाय जैसा कि, स्तोत्रोंमें देखा जाताहै और किसीके दोषोंका कहना बुराई या निन्दा है क्यों कि उससे बुरा फल मिलता है मनुजी यह कहते हैं ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोन्यतः।मनु०अ०२श्लो२००

जहां गुरुका परीवाद (विद्यमानदोषाभिधानं परीवादः) जो दोष हो उसका कथन करना परीवाद कहाता है (अविद्यमानदोषाभिधानं निन्दा)जो दोष नहीं हैं उनका कथन करना निन्दा कहाती है यदि इन दोनों बातोंको कोई करता हो तो शिष्य कानोंपर हाथ धरके चलाजाय इसमें सत्यदोष कथन करनेका नाम परीवाद लिखा है आप उसे स्तुति बताते हैं इस परीवादरूपी स्तुतिका दयानंदजी फल तो सुनें ॥

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ॥
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ २०१ ॥

झूंठा दोष कहनेसे (सुननेसे) गदहा होता है निन्दासे कुत्ता होता है दूसरे जन्ममें गुरुके अनुचित द्रव्यका भोक्ता शिष्य कृमि होता है, गुरुसे मत्सर करनेहारा कीट होता है जिसको आप सत्य दोष कथन करनेसे स्तुति नाममें पुकारते हैं उस स्तुति लक्षण स्तुति करनेवाले मनुजीके वचनानुसार दूसरे जन्ममें गर्दभराज होंगे इसी कारणसे मनुष्यको उचित है कि, अप्रिय सत्य. कभी न बोले, यह दयानंदजीने अपने अनुयायियोंकी गति खराब करनेको ऐसा लिख दिया है न जाने इससे क्या लाभ है तुम्हारी जो दशा हुई होगी सो हुई होगी परन्तु अब चेलोंके हेतु वहाँसे कोई चिट्ठी भेज देनी चाहिये थी कि यह निन्दा स्तुति लक्षण छापनेवालोंकी भूलसे लिखा गया है तुम इसे सत्य न मानना और खबरदार कभी किसीका सत्य दोष भी न कहना गुणोंका कथन स्तुति अवगुणोंका कथन निन्दा जानना ॥

अब इसके आगे देवता और श्राद्धप्रकरण लिखा जायगा.

अथ देवतापितृश्राद्धप्रकरणम् ।

स० पृ० ९८ पं० ९

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥१॥अ०४श्लो० २१
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥२॥अ०४श्लो०७०
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा॥३॥मनु०अ०३श्लो०८१

पंक्ति १९ में इस प्रकार लिखते हैं,अर्थ-दो यज्ञ ब्रह्मचर्यमें लिख आये हैं अर्थात् एक वेदादि शास्त्रका पढना पढाना संध्योपासन योगाभ्यास दूसरा देवयज्ञ विद्वानोंका संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्नति यह दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं ॥ ९८ । २९

पृ० ९९ पं० १६ तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देवयज्ञ जो विद्वान् ऋषि जो पढने पढानेहारे पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियोंकी सेवा करनी ॥ १०० । ९

समीक्षा—अब यहाँसे स्वामीजी पोप लीला चलाते हैं यहाँ पितर देवता ऋषि सब एक ही प्रकार और एक ही अर्थमें घटाते हैं इन श्लोकोंमें यह सब पृथक् पृथक् हैं इसलिये देव ऋषि पितरोंको एक ही कहना युक्त नहीं है क्योंकि, ऋषियज्ञ देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ इनको यथाशक्ति न जाने दे, पढना पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण श्राद्ध पितृयज्ञ होमादिक देवयज्ञ और भूतबलि भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ अतिथिभोजनादिक यह पांच हैं, वेदाध्ययनसे ऋषियोंका पूजन करे, होमसे देवताओंका श्राद्धसे पितरोंका अन्नसे मनुष्योंका और भूतोंको बलि कर्म कर पूजन करे ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ८२
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ।

पितरोंसे प्रीति चाहनेवाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इनसे श्राद्ध करे पितरके अर्थ एक ब्राह्मण भोजन करावे जब कि वेदाध्ययनसे ऋषि, होमसे देवता, श्राद्धसे पितर, अन्नसे मनुष्योंका पूजन करे, यदि यह सब एक ही होते तो पृथक् पृथक् वस्तुओंसे पृथक् प्रसन्न होनेवाले कैसे होते, यदि देवता विद्वानोंको ही कहते हैं तो क्या वह हवनसे प्रसन्न होते हैं, तौ उनकी प्रसन्नताके वास्ते हवन करदेना चाहिये यदि विद्वान् भूखे आवें तौ थोडासा होम कर देना वे झट प्रसन्न होजायँगे, इससे विद्वान् तृप्त होते देखे नहीं जाते, इस कारण विद्वानोंका ही देवता नाम और कोई पृथक् देव जाति नहीं है यह कहना स्वामीजीका झूठ है, वेदोंमें देवजाति पृथक् लिखी है यथाहि ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥१॥ य० अ०—१४ मं-२०

यह अर्थ प्रत्यक्ष ही है इसमें देवताओंके अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा आदि पृथक् पृथक् नाम लिखे हैं इससे देवता मनुष्योंसे पृथक् ही हैं और भी ॥

त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवै देवा देवैरवन्तु मा ११ मं० अ० २०

श्रेष्ठ धनवाले ब्रह्मको ही आगे किये तीनों देवता ग्यारह रुद्र तेंतीस देवता नारायणकी आज्ञामें वर्तमान होते सत्य आदिके साथ मेरी रक्षा करो अथवा तीन

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ॥
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ २०१ ॥

झूंठा दोष कहनेसे (सुननेसे) गदहा होता है निन्दासे कुत्ता होता है दूसरे जन्ममें गुरुके अनुचित द्रव्यका भोक्ता शिष्य कृमि होता है, गुरुसे मत्सर करनेहारा कीट होता है जिसको आप सत्य दोष कथन करनेसे स्तुति नामसे पुकारते हैं उस स्तुति लक्षण स्तुति करनेवाले मनुजीके वचनानुसार दूसरे जन्ममें गर्दभराज होंगे इसी कारणसे मनुष्यको उचित है कि, अप्रिय सत्य कभी न बोलें, यह दयानंदजीने अपने अनुयायियोंकी गति खराब करनेको ऐसा लिख दिया है न जाने इससे क्या लाभ है तुम्हारी जो दशा हुई होगी सो हुई होगी परन्तु अब चेलोंके हेतु वहाँसे कोई चिट्ठी भेज देनी चाहियें थी कि यह निन्दा स्तुति लक्षण छापनेवालोंकी भूलसे लिखा गया है तुम इसे सत्य न मानना और खबरदार कभी किसीका सत्य दोष भी न कहना गुणोंका कथन स्तुति अवगुणोंका कथन निन्दा जानना ॥

अब इसके आगे देवता और श्राद्धप्रकरण लिखा जायगा.

अथ देवतापितृश्राद्धप्रकरणम् ।

स० पृ० ९८ पं० ९

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ १ ॥ अ० ४ श्लो० २१
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ २ ॥ अ० ४ श्लो० ७०
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा ॥ ३ ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ८१

पंक्ति १९ में इस प्रकार लिखते हैं, अर्थ–दो यज्ञ ब्रह्मचर्यमें लिख आये हैं अर्थात् एक वेदादि शास्त्रका पढना पढाना संध्योपासन योगाभ्यास दूसरा देवयज्ञ विद्वानोंका संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्नति यह दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं ॥ ९८ । २५

पृ० ९९ पं० १६ तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देवयज्ञ जो विद्वान् ऋषि जो पढने पढानेहारे पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियोंकी सेवा करनी ॥ १०० । ९

समीक्षा—अब यहाँसे स्वामीजी पोप लीला चलाते हैं यहाँ पितर देवता ऋषि सब एक ही प्रकार और एक ही अर्थमें घटाते हैं इन श्लोकोंमें यह सब पृथक् पृथक् हैं इसलिये देव ऋषि पितरोंको एक ही कहना युक्त नहीं है क्योंकि, ऋषियज्ञ देवयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ इनको यथाशक्ति न जाने दें, पढना पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण श्राद्ध पितृयज्ञ होमादिक देवयज्ञ और भूतबलि भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ अतिथिभोजनादिक यह पांच हैं, वेदाध्ययनसे ऋषियोंका पूजन करे, होमसे देवताओंका श्राद्धसे पितरोंका अन्नसे मनुष्योंका और भूतोंको बलि कर्म कर पूजन करे ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ मनु० अ० ३ श्लो० ८२
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ।

पितरोंसे प्रीति चाहनेवाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इनसे श्राद्ध करे पितरके अर्थ एक ब्राह्मण भोजन करावे जब कि वेदाध्ययनसे ऋषि, होमसे देवता, श्राद्धसे पितर, अन्नसे मनुष्योंका पूजन करे, यदि यह सब एक ही होते तो पृथक् पृथक् वस्तुओंसे पृथक् प्रसन्न होनेवाले कैसे होते, यदि देवता विद्वानोंको ही कहते हैं तो क्या वह हवनसे प्रसन्न होते हैं, तो उनकी प्रसन्नताके वास्ते हवन करदेना चाहिये यदि विद्वान् भूखे आवें तो थोडासा होम कर देना वे झट प्रसन्न होजायँगे, इससे विद्वान् तृप्त होते देखे नहीं जाते, इस कारण विद्वानोंका ही देवता नाम और कोई पृथक् देव जाति नहीं है यह कहना स्वामीजीका झूठ है, वेदोंमें देवजाति पृथक् लिखी है यथाहि ॥

अग्निर्देवता वातोदेवतासूर्योदेवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रोदेवताऽऽदित्यादेवतामरुतोदेवताविश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवतावरुणोदेवता ॥१॥ य० अ०—१४ मं-२०

यह अर्थ प्रत्यक्ष ही है इसमें देवताओंके अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा आदि पृथक् पृथक् नाम लिखे हैं इससे देवता मनुष्योंसे पृथक् ही हैं और भी ॥

त्रयो देवा एकादशत्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः बृहस्पतिपुरोहिता देवस्यसवितुः सवे देवा देवैरवन्तुमा ११ मं० अ० २०

श्रेष्ठ धनवाले ब्रह्मकी ही आगे किये तीनों देवता ग्यारह रुद्र तेंतीस देवता नारायणकी आज्ञामें वर्तमान होते सत्य आदिके साथ मेरी रक्षा करो अथवा तीन

देवता एकादश देवता या ग्यारह तेंतीस देवता सुन्दर धनवाले पुरोहित बृहस्पतिको आगे किये सविता देवताकी आभ्यन्तर प्रेरणासे इस महदनुष्ठानमें प्रवृत्त हुए हमको अपने देवत्व प्रभावसे रक्षा करो ॥

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः त्रिभि-र्देवैस्त्रि९ँशतावज्रबाहुर्जघानवृत्रंविदुरोववार। य० अ० २० मंत्र ३६

सम्यक् प्रकारसे दीप्त प्रातःकालपर आगे चलनेवाले प्रकाश सूर्यरूप द्वारा पूर्व दिशाको प्रकाश करनेवाले (त्रिंशता) तेंतीस देवताओंके साथ वृद्धि पानेवाले वज्रधारी इन्द्रने मेघरूपी दैत्यको ताडन किया मेघके सोतों वा दैत्यपुरके द्वारोंको शून्य किया वा खोला १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र १ इन्द्र १ प्रजापति यह तेंतीस देवता हैं ॥

त्रीणिशतानित्रीणिसहस्राण्यग्निन्त्रि९ँशच्चदेवानवचासपर्यन्। औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारन्यसादयन्त ७ मं० अ० ३३

अथ (त्रीणि शतानि त्रीणि सहस्राणि त्रिंशत च नव देवाः) तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं उन्होंने घृतसे अग्निको सींचा और इस अग्निके लिये कुशाको आच्छादन करते हुए होताको होतृकर्ममें नियुक्त किया ॥

अथवा (त्रीणि शतानि) ३०० तीन सौ (त्रीणि सहस्राणि) ३००० तीन सहस्र गुणित अर्थात् ९००००० (त्रिंशत नव च) और उन्तालीस ९०००३९ देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं अथवा "नवैवाङ्कास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदतः ॥" इस आगम प्रमाणसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी शक्तिरूपसे ३३३ ३३३ ३३३ इतने देवता होते हैं चाहे तेंतीस कोटियों देवता मानो तौ भी देवताओंकी संख्या अधिक ही आवैगी कारण कि एक कोटिमें बहुत होंगे इस प्रकार दयानन्दजी और भास्करप्रकाशके कर्ता दोनों परास्त होते हैं ॥ *

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति ॥ नि० दैवतकां० अ० ७ खं० ५

* ३ + ३० + ३०० + ३००० + ३०००० ऐसे नौ जगह जोडनेसे ऊपर लिखे तेंतीस कोटिकी संख्या पूरी होजायगी ।

यह तीन देवता हैं अग्नि पृथ्वीस्थानमें, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानमें, और सूर्य द्युस्थानमें इन महाभाग्योंके बहुत नाम होते हैं, तीन स्थानमें देवताओंकी स्थिति कहने और इनको महाभाग्य और एक २ के बहुत नाम कहनेसे यहां विद्वान् देव शब्दार्थ नहीं और जब एक २ के बहुत नाम हैं तौ तेंतीस करोड भी कह सक्ते हैं और यह जो स्वामीजीने लिखाहै (विद्वांसो हि देवाः) यह शतपथ ३।७।३।१० की श्रुति है इसमें स्वामीजोने बडा प्रपंच रचाहै इसका यह अर्थ नहीं कि विद्वानोंका नाम देवता है किन्तु यजु० अध्या० ६ मन्त्र ७ में ' देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्' इसके अर्थमें (दैवीर्विशः) दिव्य गुणयुक्त यह प्रजा (देवान्) अग्नीषोमादि देवताओंके (उपप्रागुः) समीप गमन करें, जो देवता (उशिजः) विद्वान् (वह्नितमान्) अग्निद्वारा हविकी इच्छावाले हैं इसपर ही शतपथकी श्रुति है "विद्वा॑ᳲसो हि देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति "३।७।३।१० देवता विद्वान् हैं इस कारण उनको उशिज और वह्नितमान् कहा है, विद्वानोंका नाम देवता है इसका यहां कोई प्रसंग नहीं है ॥

: और दयानन्दजीके अभिप्रायसे देवताओंका निषेध करें तो, वाग्वै ब्रह्म बृह० अ० ६ ब्रा० १

यह श्रुति भी शतपथमें पठित है तो ब्रह्मका निषेध कर देना चाहिये क्यों कि वाणी ही ब्रह्म है ब्रह्म तो इस श्रुतिसे वाक् सिद्ध होगई इससे यहां भी ब्रह्मको वाक्यान्तरमें प्रसिद्ध होनेसे निषेधका असंभव है इससे इस श्रुतिका यह अर्थ होना चाहिये कि ब्रह्म बुद्धि करके वाक् उपासनीय है जब देवता वाक्यान्तरसे प्रसिद्ध हैं तौ उनका निषेध नहीं होसक्ता और यही देवता ॥

इतीमादेवताअनुक्रांताः सूक्तभाजो हविर्भाजऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः-निरु० ७। १३

यह जो देवता कहे हैं इनमें कोई सूक्तोंको भजते हैं कोई हविको कोई ऋचाको कोई दोनोंको ॥

देवताओंको सर्वशक्तिसंपन्नत्व भी निरुक्तमें बोधन कियाहै ॥

आत्मैवैषांरथोभवत्यात्माश्व आत्मायुध आत्मेषव आत्मा सर्वं देवस्यदेवस्य ॥ नि० अ०७ खं० ४ दैव० कां० १९

देवताओंका प्रभाव यह है आत्मा ही देवताओंका अश्व रथ आयुध इषुरूप होताहै और सब ही उपकरण देव देवका आत्मरूप है क्यों कि देवता सत्यसंकल्प रूप हैं और भी मंत्र देवताओंका महत्वबोधक है ॥

रूपंरूपंमघवाबोभवीतिमायाः कृण्वानस्तन्वंपरिस्वाम् त्रि-
र्यद्दिवः परिमुहूर्तमागात् स्वैर्मंत्रैरनृतुपाऋतावा
ऋ० मं० ३ अ० ४ सूक्त ५३ मं० ८

इस मंत्रके व्याख्यानमें निरुक्ति–

यद्यद्रूपंकामयतेतत्तद्देवता भवति रूपंरूपंमघवाबोभवीतित्य-
पिनिगमोभवति ॥ नि० अ० १० खं० १७

(मघवा) इन्द्र (रूपंरूपम्) जिस जिस रूपकी इच्छा करताहै उस उ रूपका (बोभवीति) होता है (मायाः) अनेक रुप ग्रहणकी सामर्थ्य (कुर्वाणः) करते हुए (स्वांतन्वम्) अपने शरीरको (परि) अपने शरीरसे नाना विधि शरीर निर्माण करता अथवा अपने शरीरको नानाविधि करता यथा "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ऋ०" (स्वैः मंत्रैः) अपने स्तुतिलक्षणवाले वाक्योंसे आह्वा किया हुआ (अनृतुपा) सोमका निरन्तर पानकर्ता (ऋतावा) सत्यवान् (यत्) जिस कारण (दिवः) स्वर्गलोकसे (परि मुहूर्तम्) एक ही मुहूर्तमें अनेकदेशी यज्ञोंमें (त्रिः) तीनों सवनोंमें (आगात्) आता है ॥

इस मंत्रमें अनुक्रमणिका आदिके अनुसार इन्द्रका ही वर्णन है इससे स्पष्ट विदित है कि देवता मनुष्योंसे पृथक् हैं मुहूर्तमात्रमें स्वर्गसे आ मनुष्यों वा विद्वानोंमें संभव नहीं होता इसीसे विदित है कि देवता म विद्वानोंसे पृथक् हैं ॥

पुनः केन उपनिषद्में देवताओंका परस्पर संवाद है ॥

ब्रह्महदेवेभ्योविजिग्येतस्यह ब्रह्मणोविजयेदेवाअमहीयन्तत ऐ-
न्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायंमहिमेति ॥ केनउ० ॥

ईश्वरने देवताओंको जय दी उसकी कृपाकटाक्षसे सब देवता महिमाको प्र होते हुए और फिर यह जाना कि यह सब जगत् हमारा ही जय किया है औ हमारी ही महिमा है तब ईश्वर यज्ञरूप अवतार ले प्रगट हुए और ये देवता प स्पर उनका वृत्तान्त पूछने लगे (तेमिमब्रुवन्) इत्यादि वाक्य हैं कि उन्हों अग्नि वायु आदिसे पूछा तुम इनको जानते हो उन्होंने कहा नहीं इसी प्रकार देव अनेकविधि सूचित होते हैं और देवताओंका लोक पृथक् प्रतीत होताहै मैं इन्द्रका स्वर्गसे आना लिखा है ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु० अ० २० मं० २५

जहां ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति संग मिले रहते हैं और जहां देवता —— साथ वास करते हैं उस पवित्र लोकको मैं देखूं यह यजमानका वाक्य है ॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ य० अ० २० मं० २६

जिस लोकमें इन्द्र वायु देवता मिले हुए विचरते हैं, जिस लोकमें दुःख नहीं है उस लोकको मैं प्राप्त करूं ॥

इन दोनों मंत्रोंसे यह बात प्रगट है कि, देवतालोक दुःखरहित हैं वहां यजमान जाना चाहता है, यदि देवता विद्वानोंका नाम होता तौ ब्राह्मणक्षत्रिय जाति क्यों कही, यह जो देवलोकमें विचरते हैं क्या विद्वान् न होंगे और फिर देवता अग्निके साथ रहते हैं. ऐसा पृथक् क्यों लिखा और (यत्र) नाम जिस लोकमें यह शब्द लिखनेसे जाना जाता है कि वह कोई दूसरा लोक है यह लोक होता तौ अत्र लिखते, इस कारण देवता विद्वानोंका ही नाम है यह असत्य है, देवता पृथक् हैं और सुनिये ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥ मनु०

नित्य स्नान कर पवित्र हो देवता ऋषि पितरोंका तर्पण करै देवताओंका पूजन और हवन करै तथा ॥

पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ १५२ ॥

देवताओंका पूजन दुपहरसे पहले करै ॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ मनु० अ० ४ श्लो० १५३

अपनी रक्षाके वास्ते देवताओंके दर्शन धर्मात्मा ब्राह्मणोंके दर्शन करनेको प्रत्येक पर्वमें जाय और गुरुजनोंके भी दर्शन करै ईश्वरका ध्यान करै ॥

* (देवाः दीव्यतिर्दानार्थो दीप्त्यर्थो वा पचाद्यच् दातारोऽभिमता भक्तेभ्यः

भा० प्र० के कर्ताने मनुष्योंसे देवता पृथक् मान लिये हैं नहीं क्या करते ।

तेजसत्वाद्दीप्ता वा दिवः सम्बंधिनो वा देवाः) जो भक्तोंकी कामना इच्छित सुफल करैं जो स्वर्गमें रहें वे देवता कहाते हैं,और ऋषिर्दर्शनात् पश्यत्यसौ सूक्ष्मानर्थान्-जिनको तपके प्रभावसे ही विना अध्ययन वेदादिकोंके अर्थ प्राप्त हुए हैं वे ऋषि कहाते हैं॥
इस स्थानमें देवता ऋषि गुरु आदि सब पृथक कहे, और देवता स्वर्गके रहनेवाले वर्णन किये गये हैं ॥

स्वामीजीने जो सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ पं० २९ में विद्वांसो हि देवाः यह लिखा है कि जो साङ्गोपांग चारों वेदोंको जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून हों उनका भी नाम देव विद्वान है ऐसा लिखा है, यह लेख बुद्धिमान् विचारेंगे कितना निर्मूल है देवता शब्द और वे किस प्रकारके होके रहते हैं, यह सब कुछ हम पूर्व कथन कर चुके हैं पर यह लक्षण देवताका कहीं नहीं देखा कि चारों वेदोंको उपांगसहित जाननेसे ब्रह्मा होताहै, यह तो कहिये कि आप वेदोंके उपांग ऋषिकृत और वेदके पश्चात् बने बताते हो जिस समयतक कि वेदांग नहीं बनेथे संहिता मात्र वेद था तो उस समय ब्रह्मा संज्ञा ही न होनी चाहिये थी फिर अथर्ववेदमें लिखा है (भूतानांप्रथमः ब्रह्महजज्ञे) सृष्टिमें सबसे पहले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए विना उपांग इन्हें ब्रह्मा किसने बना दिया जो आपका ही नियम होता तो वेदांग बनानेवालोंका नाम महाब्रह्मा होता, क्यों कि पढनेवालोंसे ग्रंथ कर्ता बडे होते हैं और जो सांग वेद जाननेसे ही ब्रह्मा कहावे तौ रावणको ब्रह्मा वा देवता क्यों नहीं कहते, मालूम तौ ऐसा होताहै कि आपने यह ढंग अपनेको ब्रह्मा और देवता कहलानेका निकाला था, परन्तु सिद्ध न हुआ कोई भी ऐसा भक्त चेला न हुआ जो आपको ब्रह्मा नामसे पुकारता, यदि वेदांग जाननेसे ब्रह्मा होते तौ वसिष्ठ गौतम नारदादि सब ही ब्रह्मा हो जाते, परन्तु आजतक एक ही ब्रह्मा सुने हैं ऋषि अध्ययनसे, देवता हवनसे, पितर श्राद्ध और हवनसे, प्रसन्न होते हैं यह तीनों पृथक् हैं देवता आहुतिसे तृप्त होते हैं, विद्वान् भोजनसे, देवताओंके आकार और मूर्ति तथा निवासस्थानका वर्णन ग्यारहवें समुल्लासमें सिद्ध करेंगे यहां तौ केवल उनका होना ही सिद्ध किया है. अब श्राद्धविषय लिखते हैं ॥

स० प्र० पृ० ९९ पं० १८ पितृयज्ञके दो भेद हैं एक श्राद्ध दूसरा तर्पण, श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्यका नाम है—श्रत् सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्॰जिस क्रियासे सत्यका ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा औरजो श्रद्धासे कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है और—तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्-जिस २ कर्मसे तृप्त अर्थात् विद्यमान मातापितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जांय उसका नाम तर्पण परन्तु वह जीवितोंके लिये हैं मृतकोंके लिये नहीं ॥ १०० । १०

ॐब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ॥

इति तर्पणम् ।

जो सांगोपांग चारों वेदोंको जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उन भी न्यून हों उनका नाम देव अर्थात् विद्वान् हैं उनके सदृश विदुषी स्त्री उनकी ब्राह्मणी और देवी उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके ग अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है ॥

स० पृ० १०० पं० ३ अथर्षितर्पणम्–

ॐमरीच्यादयऋषयस्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्

इति ऋषितर्पणम् ।

जो ब्रह्माके प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होके पढावें और जो उनके सदृश विद्या युक्त उनकी स्त्रियां कन्याओंको विद्या दान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य त उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन करना सत्कार करना ऋषितर्पण है

अथ पितृतर्पणम् ।

ॐसोमसदःपितरस्तृप्यन्ताम् अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि मात्रे स्वधा नमः मातरं तर्पयामि पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि संबन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बान्धिनस्तर्पयामि सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि

इति पितृतर्पणम् ।

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण होवें वे सोमसद "यैरग्नीर्विद्युतो विद्या गृहीता अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थोंके जाननेवाले हों वे अग्निष्वात्त

"ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्या वृद्धियुक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित हों वे बर्हिषद "ये सोममैश्वर्यमौषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्यके रक्षक और महौषधिका पान करनेसे रोगरहित और अन्यके ऐश्वर्यरक्षक औषधोंको देके रोगनाशक होवें वे सोमपाः "ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोडके भोजन करते हैं वे हविर्भुज " य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति ते आज्यपाः" जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे होवें वे आज्यपा " शोभनः कालो विद्यते येषां ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय होवे वे सुकालिन् "ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः " जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम "यः पाति स पिता" जो सन्तानोंका अन्न और सत्कारसे रक्षक वा जनक हो वह पिता "पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका मान्य करे वह माता "या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्रके तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न वस्त्र सुन्दर पान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्मसे उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्मसे प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है ॥ १०० । २६ से ।

समीक्षा—पहले सत्यार्थप्रकाशमें मरोंका श्राद्ध तर्पण लिखा था इसमें आप किसी पादरीसे हारकर जीतोंका श्राद्ध तर्पण लिखते हैं, इससे पहले हम यह निर्णय किया चाहतेहैं कि श्राद्ध मृतक पुरुषोंका होताहै वा जीवितोंका, देखो यजुर्वेद ॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यमरा॒ज्ये । तेषाँ॑ल्लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् अ० १९ मं० ४५

अर्थ—अपसव्य और दक्षिणमुख होकर यजमान एकवार लिये हुए घृतके जुहूसे दक्षिणाग्निमें होमता है उसका मन्त्र । प्रजापति ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । पितरो देवता ॥

भा०—(ये) जो (समानाः) जातिरूपादिसे समान मर्यादावाले (समनसः) एकान्तःकरण वा तुल्य मनवाले हमारे (पितरः) पितर (यमराज्ये) यमलोकमें वर्तमान हैं (तेषाम्) उन पितरोंके (लोकः) लोकमें (स्वधा) स्वधा नाम

(नमः) अन्न दृष्टिगोचर हो (यज्ञः) यज्ञ तो (देवेषु) देवताओंके तृप्त करनेमें (कल्पताम्) समर्थ हों। पितॄनेव यमे परिददात्यथो पितृलोकमेव जयति श० १२।८।१।१९॥४५॥

ये सं॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः ।
तेषा॒ᳩ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳪ समाः॑ ४६

(ये) जो (जीवेषु) प्राणियोंमें (समानाः) समदृशा (समनसः) मनस्वी (मामकाः) मेरे सपिण्ड (जीवाः) पितर हैं इस लोकमें रहते हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (अस्मिन्) इस (लोके) भूलोकमें (शतम्) सौ (समाः) वर्षों तक (मयि) मुझमें (कल्पताम्) आश्रय करे॥ ४६॥

द्वे सृ॒ती अ॑शृणवम्पितॄ॒णाम॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।
ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ४७

प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः देवयानपितृयानमार्गौ देवते

(अहम्) मैंने श्रुतिसे (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा प्राणियोंके (देवानाम्) देवताओंके गमनयोग्य (उत) और (पितॄणाम्) पितरोंके गमनयोग्य (द्वे) दो (सृती) मार्ग (अशृणवम्) सुने हैं (यत्) जो (पितरम्) द्युलोकके (च) और (मातरम्) भूलोकके (अन्तरा) मध्यमें वर्तमान हैं (इदम्) यह (एजत्) क्रियावान् (विश्वम्) जगत् (ताभ्याम्) उन देवयान पितृयान मार्गोंसे (समेति) प्राप्त होता है॥ ४७॥

उदी॑रता॒मव॑र॒ उत्परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑ ।
असुं॒ य ई॒युर॑वृ॒का ऋ॑त॒ज्ञास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० १। यजु अ० १९ मं० ४९

उदीरतामवर उदीरतां परउदीरतां मध्यमः पितरः सोम्याः सोमसम्पादिनस्तेऽसुं ये प्राणमन्वीयुरवृका अनमित्राः सत्यज्ञा वा यज्ञज्ञा वा तेन आगच्छन्तु पितरो ह्वानेषु माध्यमिको यम इत्याहुस्तस्मान्माध्यमिकान् पितॄन्मन्यन्ते—नि० अ० ११ खं० १८ का दैवतम्॥

शंखऋषिः पितृमेधे विनियोगः।

भाष्यम्—ये तावत् अवरे पितरः पृथिवीमाश्रिताः ते तावद् उदीरताम् ऊर्ध्वं

गच्छन्तु अथ पुनय (परासः) परेद्युलोकमाश्रिताः तेप्युदीरताम् तेषामप्यमच्युतिरस्तु मुच्यन्ताम् वा तदधिकारमक्षये (उन्मध्यमाः) पितरो येऽपि मध्यमाः मध्यस्थानाश्रयाः तेप्युदीरताम् उत्तमं लोकमाश्रयताम् (सोम्यासः) सोमसम्पादिनः कर्मण्यङ्गभावमुपगच्छन्तो ये सोमं सम्पादयन्ति किं प्रकाराः "असुंयईयुः" प्राणमात्रमूर्तयः अस्थूलविग्रहाः "अवृकाः" अनमित्राः परंसाम्यमुपगताः "ऋतज्ञाः" यथावत् सत्यवेदितारः यज्ञस्य वा य एवमादिगुणयुक्ताः पितरः" ते नः " अस्माकम् नित्यम् "अवन्तु" आगच्छन्तु "हवेषु" आह्वानेषु इत्येतदाशास्महे माध्यमिको यम इत्याहुः नैरुक्ताः तस्मात् पितॄन् माध्यमिकान् मन्यन्ते स हि तेषां राजेति ॥

वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषादुवस्य

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

इति मंत्रप्रमाणात् यमस्य पितृराजत्वं भवति दुवस्य परिचरेत्यर्थः ॥

भाषार्थ–जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वीमें स्थित हैं ये ऊपर गमन करो और जो स्वर्लोकमें स्थित हैं वे मच्युतिरहित होवें, अथवा अधिकारकी क्षीणतासे मुक्त होवें और जो मध्यस्थानमें स्थित हैं वे उत्तम लोकका आश्रय करो, ये पितर सौम्य हैं, अर्थात् कर्ममें अंगभावको प्राप्त होकर सोमका सम्पादन करते हैं, और स्थूलशरीरको त्यागकर प्राणमात्र मूर्तिवाले हैं (अवृकाः) अर्थात् शत्रुभावरहित यथावत् सत्य वा यज्ञके ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थानोंमें आगमन करो, माध्यमिक यम है इस कारण पितरोंको माध्यमिक ही मानते हैं, क्यों कि यमराज मध्यस्थानमें स्थित हैं और तदनुवर्ती पितर भी मध्यस्थानमें स्थित हैं, यमको पितृराज होनेमें (वैवस्वतं०) यह मंत्र प्रमाण है इसका अर्थ यह है कि प्राणिमात्रका यमके प्रति गमन होताहै, तिस यमराजको हविसे परिचरणकर " दयानंदी इन मंत्रोंको विचारें" ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकामम त्तु

यजु० अ० १९ मं० ५१

(शंख ऋषिः पितरो देवता) (ये) जो (सोम्यासः) सोमसम्पादक (वसिष्ठाः) वसिष्ठ वंशी (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व (पितरः) पितरोंने (सोमपीथम्) सोमपानको (अनूहिरे) देवगणोंको बुलाया (उशन्) सोमकी इच्छावाले (यमः) पितृपति (तेभिः) उन (उशद्भिः) सोमकी इच्छावाले पितरों सहित (सरराणः) प्रसन्न होते (प्रतिकामम्) इच्छानुसार हमारी दी हुई (हवींषि) हवियोंको (अत्तु) भोगो ॥ ५१ ॥

त्वयाहिनः पितरः सोमपूर्वेकर्माणिचक्रुः पवमानधीराः
वन्वन्नवातःपरिधीऽ२॥रपोर्णुवीरेभिरश्वैर्मघवांभवानः ॥५३

(शंख ऋषिः सोमो देवता) हे (पवमान) हे शोधक (सोम) सोम (नः हमारे (धीराः) धीर (पितरः) पितरोंने (त्वया) तुम्हारे द्वारा (कर्माणि यज्ञादि कर्मोंको (चक्रुः) किया इसकारण (वन्वन्) इस कर्ममें युक्त (अवात वातादिके उपद्रवरहित तुम (परिधीन्) उपद्रवकारियोंको (अपोर्णुहि) दूर क (वीरेभिः) वीर (अश्वैः) अश्वों द्वारा (मघवा) इन्द्र (नः) हमको धन देनेवा (आभव) सब ओरसे हो ॥ ५३ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमवोहव्याचकृमाजुषध्वम्
तऽआगताऽवसाशन्तमेनाथानः शंयोररपोदधात ५५

(शंख ऋषिः पितरो देवताः) (बर्हिषदः) कुशासन पर बैठनेवाले (पितर हे पितरो (ते) वे तुम (ऊत्या) रक्षाके निमित्त (अर्वाक्) समीप (आग आओ (वः) तुम्हारी (इमाः) यह (हव्या) हवि (चकृम) हमने संस्व किये हैं, इसको (आजुषध्वम्) तुम सेवन करो (अथ) फिर (शन्तमेन) सुखदाता (अवसा) अन्नसे तृप्त होकर (नः) हममें (शम्) सुख (यो भयका पृथक् करना (अरपः) पापका अभाव (दधात) स्थापन करो ॥ ५५

आयन्तुनः पितरस्सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः
अस्मिन्यज्ञेस्वधयामदन्तोधिब्रुवन्तुतेवन्त्वस्मान् ५८

(शंख ऋषिः पितरो देवताः) (सोम्यासः) सोमके योग्य (अग्निष्वात्ताः) ग्निद्वारा स्वदिता वा स्मार्त (नः) हमारे (पितरः) पितर (देवयानैः) देवताओं गमन योग्य (पथिभिः) मार्गोसे (आयन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञ यज्ञमें (स्वधया) अन्नसे (मदन्तः) प्रसन्न होते (अधिब्रुवन्तु) मानसिक उपदेश (ते) वे (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५८ ॥

ये अग्निष्वात्तायेअनग्निष्वात्तामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतांयथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ६०

(ये) जो पितर (अग्निष्वात्ताः) विधिपूर्वक अग्निदाहसे और्ध्वदैहिक क प्राप्त हैं (ये) जो पितर (अनग्निष्वात्ताः) श्मशानकर्मको प्राप्त न हुए और (

द्युलोकके (मध्ये) मध्यमें (स्वधया) अपने उपार्जित कर्मके भोगरूप अन्नसे (मादयन्ते) प्रसन्न रहते हैं (स्वराट्) राजा यम (तेभ्यः) उन पितरोंके निमित्त (यथावशम्) इच्छानुसार (एतान्) इन मनुष्य सम्बन्धवाले (असुनीतिम्) प्राणयुक्त (तन्वम्) शरीरको (कल्पयति) देता है। यानग्निरेव दहन्‌ः स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः २ । ६ । ६ । ७ श० जिनको अग्नि जलाती है वे पितर अग्निष्वात्त हैं ॥ ६० ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६२

(पितरः) हे पितरो ! (विश्व) तुम सब (जानु) वाम जांघको (आ) सब प्रकार (आच्य) झुकाकर (दक्षिणतः) दक्षिणको मुखकर (निषद्य) बैठकर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञको (अभिगृणीत) अभिनन्दन करो (केनचित्) किसी अपराध होनेसे (नः) हमपर (मा) मत (हिंसिष्ट) क्रोध करो (यत्) कारण कि (पुरुषता) चलचित्त होनेसे (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध (वयम्) हम (कराम) भूलसे कर जाते हैं ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ६३

हे पितरो (अरुणीनाम्) अरुणवर्ण ऊनके आसनो अथवा सूर्यकी किरणोंके (उपस्थे) ऊपर वा गोदमें (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) हविके दाता (मर्त्याय) यजमानमें (रयिम्) धनको (धत्त) धारण करो (पुत्रेभ्यः) (तस्य) उसके पुत्रोंके लिये (वस्वः) धनको (प्रयच्छत) दो (ते) वे तुम (इह) इस यज्ञमें (ऊर्ज) रसको (दधात) स्थापन करो ॥ ६३ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै अ० १९ मं० ३७

सामके योग्य पितर पूर्णायुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो पितामह मुझको पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्ण आयुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्ण आयुको प्राप्त करो ॥

आधत्तपितरोगर्भंकुमारम्पुष्करस्रजम् ॥ यथेहपुरुपोसत् ।

यजु० अ० २ मं० ३३

पुत्रकी कामनावाली स्त्री बीचके पिण्डको भोजन करै का० ४ । १ । २ (पितरः) हे पितरो ! (यथा) जैसे (इह) इस ऋतुमें (पुरुषः) देव पितर मनुष्योंके अर्थका पूर्ण करनेवाला (असत्) होवे वैसे (पुष्करस्रजम्) पुष्पमालाधारी गुणवान् (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) सम्पादन करो ३३ पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्री मध्य पिंडको भोजन करै उस समय इस मंत्रको पढै यह आश्वलायनमें लेख है ॥

येचजीवायेचमृतायेजातायेच यज्ञियाः ॥

तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुमधुधाराव्युंदती अथर्व० १८ । ४ ५७

(च) और (ये) जो (जीवाः) जीवित हैं (च) और (ये) जो (मृताः) मृतक होगये (ये) जो (जाताः) जन्मे हैं (ये च) और जो (यज्ञियाः) यज्ञके करानेवाले हैं (तेभ्यः) उन सबके निमित्त (घृतस्य) घृतकी (व्युन्दती) टपकती (मधुधारा) मधुरधार (कुल्या) सरित् (एतु) प्राप्त हो । इसमें मृतकके निमित्त भी घृत मधु कहाहै ॥

प्रेहिप्रेहिपथिभिः पूर्याणेर्येनातेपूर्वेपितरःपरेताः ॥

उभाराजानौस्वधयामदन्तौयमंपश्यासिवरुणंचदेवम् ।

अथर्व० १८ । १ । ५४

(येन) जिसमार्गसे (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पूर्वपितर (परेताः) मरकर गये उन २ (पूर्याणैः) यमनिर्मित शरीर यानरूप (पथिभिः) मार्गोंसे प्रेहि २) जाओ वहां (स्वधया मदन्तौ) स्वधानाम अन्नसे प्रसन्न होते (उभा राजानौ) दोनों प्रकाशमान राजा (देवम्) देव (यमम) यमको (च) और (वरुणम्) वरुणको (पश्यासि) देखेगा ॥ *

येनिखातायेपरोप्तायेदग्धायेचोद्धिताः ॥

सर्वांस्तानग्नआवहपितॄन्हविषेअत्तवे अथर्व का० १८ । २ मं ३४

* तु० रा० यमके अर्थ वायुके करते हैं पर प्रमाण कुछ नहीं. देते और यहां प्रत्यक्ष यमराजा पद है और देखना लिखा है इससे मेरठी स्वामीका अर्थ अशुद्ध है ।

पुलोकके (मध्ये) मध्यमें (स्वधया) अपने उपार्जित कर्मके भोगरूप अन्नसे (मादयन्ते) प्रसन्न रहते हैं (स्वराट्) राजा यम (तेभ्यः) उन पितरोंके निमित्त (यथावशम्) इच्छानुसार (एतान्) इन मनुष्य सम्बन्धवाले (असुनीतिम्) प्राणयुक्त (तन्वम्) शरीरको (कल्पयति) देता है। यानग्निरेव दहनः स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः २ । ६ । ६ । ७ श० जिनको अग्नि जलाती है वे पितर अग्निष्वात्त हैं ॥ ६० ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे मा हिᳬसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६२

(पितरः) हे पितरो ! (विश्व) तुम सब (जानु) वाम जांघको (आ) सब प्रकार (आच्य) झुकाकर (दक्षिणतः) दक्षिणको मुखकर (निषद्य) बैठकर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञको (अभिगृणीत) अभिनन्दन करो (केनचित्) किसी अपराध होनेसे (नः) हमपर (मा) मत (हिंसिष्ट) क्रोध करो (यत्) कारण कि (पुरुषता) चलचित्त होनेसे (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध (वयम्) हम (कराम) भूलसे कर जाते हैं ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ६३

हे पितरो (अरुणीनाम्) अरुणवर्ण ऊनके आसनो अथवा सूर्यकी किरणोंके (उपस्थे) ऊपर या गोदमें (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) हविके दाता (मर्त्याय) यजमानमें (रयिम्) धनको (धत्त) धारण करो (पुत्रेभ्यः) (तस्य) इसके पुत्रोंके लिये (वस्वः) धनको (प्रयच्छत) दो (ते) वे तुम (इह) इस यज्ञमें (ऊर्ज) रसको (दधात) स्थापन करो ॥ ६३ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै अ० १९ मं० ३७

मानके योग्य पितर पूर्णायुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो पितामह मुझको पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्ण आयुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्ण आयुको प्राप्त करो ॥

आधत्तपितरोगर्भंकुमारम्पुष्करस्रजम् ॥ यथेहपुरुपोसत् ।

यजु० अ० २ मं० ३३

पुत्रकी कामनावाली स्त्री बीचके पिण्डको भोजन करै का० ४ । १ । २ (पितरः) हे पितरो ! (यथा) जैसे (इह) इस ऋतुमें (पुरुषः) देव पितर मनुष्योंके अर्थका पूर्ण करनेवाला (असत्) होवे वैसे (पुष्करस्रजम्) पुष्पमालाधारी गुणवान् (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) सम्पादन करो ३३ पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्री मध्य पिंडको भोजन करै इस समय इस मंत्रको पढै यह आश्वलायनमें लेख है ॥

येचजीवायेचमृतायेजातायेच यज्ञियाः ॥

तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुमधुधाराव्युंदती अथर्व० १८ । ४ ५७

(च) और (ये) जो (जीवाः) जीवित हैं (च) और (ये) जो (मृताः) मृतक होगये (ये) जो (जाताः) जन्मे हैं (ये च) और जो (यज्ञियाः) यज्ञके करानेवाले हैं (तेभ्यः) उन सबके निमित्त (घृतस्य) घृतकी (व्युन्दती) टपकती (मधुधारा) मधुरधार (कुल्या) सरित् (एतु) प्राप्त हो । इसमें मृतकके निमित्त भी घृत मधु कहाहै ॥

प्रेहिप्रेहिपथिभिः पूर्याणेर्येनातेपूर्वेपितरःपरेताः ॥

उभाराजानोस्वधयामदन्तोयमंपश्यासिवरुणंचदेवम् ।

अथर्व० १८ । १ । ५४

(येन) जिसमार्गसे (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पूर्वपितर (परेताः) मरकर गये उन २ (पूर्याणैः) यमनिर्मित शरीर यानरूप (पथिभिः) मार्गोंसे प्रेहि २) जाओ वहां (स्वधया मदन्तौ) स्वधानाम अन्नसे प्रसन्न होते (उभा राजानौ) दोनों प्रकाशमान राजा (देवम्) देव (यमम) यमको (च) और (वरुणम्) वरुणको (पश्यासि) देखैगा ॥ *

येनिखातायेपरोप्तायेदग्धायेचोद्धिताः ॥

सर्वांस्तानग्नआवहपितॄन्हविषेअत्तवे अथर्व का०१८।२मं ३४

* द० रा० यमके अर्थ वायुके करते हैं पर प्रमाण कुछ नहीं देते और यहां प्रत्यक्ष यमराजा पद है और देखना लिखा है इससे मेरठी स्वामीका अर्थ अशुद्ध है ।

(ये) जो (निखाता) गाडे गये (ये) जो (परोप्ताः) वनमें छोड दिये गये (ये) जो (दग्धाः) जलादिये गये (ये च) और जो (उद्धताः) शरीर सहित स्वर्गको गये (अग्ने) हे अग्नि ! (तान् सर्वान्) उन सबको (हविषे) हवि (अत्तवे) भोजन करनेको (आवह) पितृकर्ममें बुलाओ ॥

इसके अर्थमें भा० प्र० कर्ता खूब परास्त हुआ है ॥

येअग्निदग्धायेअनग्निदग्धामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते । त्वंतान्वेत्थयदितेजातवेदः स्वधयायज्ञंस्वधितिंजुषन्ताम् । अथर्व ३९

(ये) जो (अग्निदग्धाः) अग्निमें दग्ध हुए हैं (ये) जो (अनग्निदग्धाः) अग्निमें दग्ध नहीं हुए (दिवः) द्युलोकके (मध्ये) मध्यमें (स्वधया) अमृतरूप अन्नसे (मादयन्ते) प्रसन्न हैं (जातवेदः) हे अग्ने ! (त्वम्) तू (यदि) जो (तान्) तिनको (वेत्थ) जानता है तो वे तेरे द्वारा (स्वधया) स्वधासे (स्वधितिम्) पितृसम्बधि (यज्ञम्) यज्ञको (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ॥ य आक्षियन्तिपृथिवीमुतद्यांतेभ्यः पितृभ्योनमसाविधेम अथर्व०४९

(ये) जो (नः) हमारे (पितुः) पिताके (पितरः) पितर हैं (ये) जो हमारे (पितामहाः) बाबा हैं (ये) जो (उरु) बडे (अन्तरिक्षम्) पितृलोकमें (आविविशुः) प्रवेश कर गये हैं (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोकको (आक्षियन्ति) व्याप्तकर रहे हैं (तेभ्यः) उन (पितृभ्यः) पितरोंके निमित्त (नमसा) अन्न वा नमस्कार (विधेम) विधान करते हैं ॥

योममारप्रथमोमर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमोलोकमेतम् ।
वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषासपर्यत अ०१८।३।१

(यः) जो (मर्त्यानाम्) प्राणियोंमें (प्रथमः) पहले (ममार) मरता है (यः) जो (एतम्) इस (लोकम्) लोकको (प्रथमः) पहले (प्रेयाय) ले जाता है उस सुखके लिये (जनानाम्) जनोंके (संगमनम्) संयमन करनेवाले (वैवस्वतम्) सूर्यपुत्र (यमम्) यम (राजानम्) राजाको (हविषा) हविसे, (सपर्यत) सत्कार किया जाता है ॥

...कुम्भान् यांस्तेदेवा अधारयन् ते ते सन्तु
मधुमन्तो घृतश्च्युताः १७ । ३ । ६८

हे प्रेत ! (ते) तेरे निमित्त (अपपापिहितान्) पूओंसे आच्छादित (यान्) जिन (कुम्भान्) घी मधु आदिसे पूर्ण घडोंके (देवाः) देवता (अधारयन्) तेरे भोगके लिये धरते हुए (ते) वे घडे (स्वधावन्तः) अन्नवाले (मधुमन्तः) मधुसे युक्त (घृतश्चुताः) घीके टपकानेवाले (ते) तेरे निमित्त (सन्तु) हों यही सायनका आशय है ॥

यास्तेधाना अनुकिरामितिलमिश्राःस्वधावतीः
तास्तेसन्तुविभ्वीःप्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम्
अ० १८ । ३ । ६९

हे प्रेत ! (तिलमिश्राः) तिलमिश्रित (स्वधावतीः) स्वधायुक्त (याः) जो धाना धान (ते) तेरे निमित्त (अनुकिरामि) छोडता हूं (ताः) वे (विभ्वीः) अधिकाईसे युक्त (प्रभ्वीः) प्रभावयुक्त (ते) तेरे निमित्त (सन्तु) हों (ताः ते) उन्हें तेरे निमित्त (यमः) यम (राजा) राजा (अनुमन्यताम्) स्वीकार करें ॥

भास्कर प्रकाशकी इन अर्थोमें मिट्टी खराब होगई है अग्नि आदिके सम्बोधन कर बैठे हैं मानना पडा है ॥

आरभस्वजातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तुते ।
शरीरमस्यसंदहाथैनंधेहिसुकृतामुलोके अथर्व० ७१

(जातवेदः) हे अग्ने ! (आरभस्व) आरंभ कर (तेहरः) तेरी ज्वाला (तेजस्वत्) तेजस्वी (अस्तु) हो (अस्य) इस जीवके (शरीरम्) शरीरको (सदह) भस्म कर (अथ) और (एनम्) इसको (सुकृताम् उ) पुण्यात्माओंके ही (लोके) लोकमें (धेहि) धारण कर ॥

हे अग्ने ! प्रचण्ड तेज युक्त अपनी ज्वालासे इस मृतकके शरीरको जला और पुनः पुण्यवानोंके लोकमें लेजा ॥

ये अग्नवः शशमानाः परेयुर्हित्वाद्वेषांस्यनपत्यवन्त्यः तेद्यामुदे त्याविदन्तलोकं नाकस्यपृष्ठे अधिदीध्यानाः १८।२।४७।अथर्व०

अर्थ—जो दोषके त्यागनेवाले निस्सन्तान श्मशान कर्मको प्राप्त हो स्वर्गादि लोकमें प्राप्त हैं उनको हवि देते हैं यहां पूर्णरूपसे विदित है कि मृतक श्राद्ध होता है ॥

येतेपूर्वेंपरांगताअपरेपितरश्चये
तेभ्यो घृतस्य कुल्यै तुशतधाराव्युंदती अथर्व० १८।२।

हे जीव ! (ये) जो (ते) तेरे (पूर्व) पूर्वले (पितरः) पितर (च) (अपरे) अन्य बांधवादि (ये) जो (परागताः) मृतक होगये (तेभ्यः) उ निमित्त (घृतस्य) घृतकी (कुल्या) सरिता (व्युन्दती) क्षरण होती हुई (शत सौ धारा (एतु) प्राप्त हो ॥

सायनाचार्यने " परापुरः " इसका अर्थ पराप्रणन्ति पिण्डान् ददतीति परा पिण्ड देनेवाले पुत्रादि ऐसा अर्थ किया है ॥

भा० प्र० वालेको इतना भी ज्ञान नहीं जो मृतकके पूर्वजोंको जो उससे प ही मरचुके उनके दाहके लिये घृत दिवाते हैं और उपस्थितकी उपेक्षा करते हैं पर यहां अच्छा करनेवालोंके लोकमें जाना मान लिया है ॥

स्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यः स्वधापितृभ्योअन्तरिक्षसद्भ्यः
अथर्व० १८ । ४ । ८० । ७९ *

स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्त हो अन्तरिक्षमें रहनेवाले पि रोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्त हो ॥

अङ्गिरसोनःपितरोनवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यास ते
वयꣳसुमतौयज्ञियानामपिभद्रेसौमनसेस्याम य०अ१९मं५

जो नवीन गतिवाले सोम योग्य अंगिरावंशी अथर्ववंशी भृगुवंशी हमारे पित हैं उन यज्ञ योग्य पितरोंकी श्रेष्ठ बुद्धि और कल्याण करनेवाली सुन्दर मनोवृत्ति भी हम स्थित होवें ५० " दूतौ यमस्य मानुगा अधि जीव पुरा इह अथर्व ५ । प्र ३०।६ " इसमें यमराजके दूत वर्णन किये हैं ॥

यौतेश्वानौयमरक्षितारौ चतुरक्षौपथिरक्षीनृचक्षसौ
ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्स्वस्तिचास्माअनमीवंचधेहि
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १९ मं० ११

---

*मेरठके स्वामीको अथर्वमें यह मंत्र नहीं मिलते हमने पता लिख दिया है न सूझे तो अपना क्या दोष है। पर आकाशमें पितृशरीर तो आप मानतेही हैं । देखो समाप्य अथर्व पृ० २४२ कां० १८

(यम) हे यम (यौ) जो दो (ते) तेरे (श्वानौ) सारमेय (रक्षितारौ) तुम्हारे घरकी रक्षा करनेवाले (चतुरक्षौ) चार नेत्रवाले (पथिरक्षी) तुम्हारे मार्गके रक्षक (नृचक्षसौ) मनुष्योंसे ख्याति पाये हुए हैं (राजन्) हे राजन् ! (ताभ्याम्) उन दोनों कुत्तोंसे (एनम्) इस प्रेतको (परिधेहि) रक्षामें नियुक्त कीजिये (च) और (अस्मै) इसके निमित्त (अनमीवम्) आरोग्यता (च) और (स्वस्ति) कल्याण (धेहि) धारण करो ॥*

इत्यादि मंत्रोंसे विदित होता है कि, श्राद्ध मृतक पितरोंका ही करना चाहिये यदि कोई यह शंका करे कि, क्या यहां डाक जाती है कि जो उन पितरोंके पास अन्न पहुंचाताहै तो इसमें भी वेदका ही प्रमाण है (उदीरताम्) इस मंत्रमें प्राणमात्र मूर्ति पितरोंकी कथन करी है तथा (पितरो यमराज्ये) जो पितर यमलोकमें हैं इस कथनसे यह विदित होता है कि, प्राणमात्र तथा सूक्ष्म शरीरधारी पितर लोकान्तरमें वास करते हैं उन सबको मंत्र संस्कृत अग्नि हवि पहुंचाता है यथा हि ॥

यमग्नेकव्यवाहन त्वञ्चिन्मन्यसेरयिम् ।

तन्नोगीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्रापनयायुजम् ६४ मं० अ० १९यजु० ॥

(शङ्ख ऋषिः अग्निर्देवता) (कव्यवाहन) पितरोंके अन्न प्राप्त करनेवाले ! (अग्ने) हे अग्नि (त्वम्) तुम (चित्) भी (यम्) जिस (रयिम्) हविरूप धनको (मन्यसे) उत्तम जानते हो (नः) हमारे (तम्) उस (गीर्भिः) वचनोंसे (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य (युजं) हविरूप धनको (देवत्रा) देवताओंके मध्य (आपनय) सब ओरसे दो ॥ ६४ ॥

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ॥

प्रेदुहव्यानिवोचतिदेवेभ्यश्चपितृभ्यआ ॥ ६५ ॥

(यः) जिस (कव्यवाहनः) कव्यवाहन नाम (अग्निः) अग्निने (ऋतावृधः) सत्य वा यज्ञके, वृद्धि देनेवाले (पितॄन्) पितरोंको (यक्षत्) यजन किया (उ इत्) वही अग्नि (देवेभ्यः) देवताओं (च) और (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (हव्यानि) हवियोंको (आ) सब ओरसे (प्रवोचति) जतलाताहै ॥ ६५ ॥

---

* छोटे स्वामीने (श्वानौ) का अर्थ सकाम निष्काम कर्म कियाहै जिसमें कोई प्रमाण नहीं है, ऐसे ही अर्थोंसे सामवेद भरा होगा ।

त्वमग्नईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानिसुरभीणिकृत्वी॥
प्रादाः पितृभ्यः स्वधयाते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयताहवीꣳषि ६६

(कव्यवाहन) हे कव्य, हव्य वहन करनेवाले (अग्ने) अग्निदेवता (ईडितः) ऋत्विजोंसे स्तुति किये (त्वम्) तुम (हव्यानि) हवियोंको (सुरभीणि) सुगंधियुक्त (कृत्वी) करके (अवाट्) वहन करते हो (स्वधया:) पितृमंत्रद्वारा (पितृभ्यः) पितरोंके निमित्त (प्रादाः) दो (ते) उन पितरोंने (अक्षन्) भक्षण करो (देव) अग्निदेव (त्वम्) तुम भी (प्रयता) शुद्ध (हवींषि) हवियोंको (अद्धि) भक्षण करो पितरोंने भक्षण किया है अग्नि देवता तुम भी शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

येचेहपितरोयेचनेहयाँश्चविद्मयाँ॥उचनप्रविद्म ।
त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ꣳसुकृतञ्जुषस्व ॥ ६७ ॥

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोकमें देहको धारण करके वर्तमान हैं (च ये) और जो (इह) इस लोकमें (न) नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (विद्म) हम जानते हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (न) नहीं (प्रविद्म) जानते हैं स्मरण न होनेसे (जात वेदः) हे सर्वज्ञ अग्ने ! (ते) वे पितर (यति) जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जानते हो (स्वधाभिः) पितरोंके अन्नोंसे (सुकृतं) शुभ यज्ञको (जुषस्व) सेवन करो ॥ ६७ ॥

यहां इह शब्दसे जीते पितरोंका ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्होंने मरकर कर्म-वश इस लोकमें देह धारण किया है अन्यथा न प्रविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घट सकता विद्मका अर्थ यह है कि, जिनको मैं अपना पितर जानता हूं, परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अथवा जिनको जानता हूं (बाप दादे परदादेकों) जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढ़ीतक ॥ यह तात्पर्य है ॥

इदम्पितृभ्योनमो अस्त्वद्ययेपूर्वासोयउपरासईयुः ।
येपार्थिवेरजस्यानिषत्तायेवानूनꣳसुवृजनासुविक्षु ॥ ६८ ॥

(अद्य) अब (इदम्) यह (नमः) मंत्र (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (अस्तु) हो (ये) जो (पूर्वासः) पूर्व ऋषि हैं (ये) जो (उपरासः) कृतकृत्य (ईयुः) ईश्वरको प्राप्त हुए (ये) जो (पार्थिवेरजसि) स्वर्गादिलोकमें (निषत्ताः) स्थित

मान हैं (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय (सुवृजनासु) धर्म बल-रूप चलते युक्त (विक्षु) प्रजाओं अर्थात् मनुष्य लोकमें देहधारण करके वर्तमान हैं ॥ ६८ ॥

अधायथानः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्नऋतमाशुषाणाः ॥
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन्६९

(अग्ने) हे अग्ने ! (नः) हमारे (परासः) उत्कृष्ट (प्रत्नासः) सनातन (ऋतं) यज्ञको (आशुषाणाः) प्राप्त करनेवाले (पितरः) पितरोंने (यथा) जैसे (अधा) अधोलोकसे (शुचि) पवित्र (दीधितिं) सूर्यमंडलको (इत्) ही (अयन्) प्राप्त किया उसी प्रकार (उक्थशासः) उक्थशास नाम स्तोत्रोंको पढते (क्षामाः) वेदीआदि खोदनेसे भूमिको (भिन्दन्तः) भेदते हम, (अरुणीः) सूर्यज्योतिको (अपव्रन्) प्राप्त होवें ॥ ६९ ॥

उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशतआ वह पितॄन्हविषेअत्तवे ॥ ७० ॥

हे अग्ने ! (उशन्तः) कामार्थी हम (त्वा) तुझे (निधीमहि) स्थापन करते हैं (उशन्तः) कामार्थी हम तुझे (समिधीमहि) प्रज्वलित करते हैं (उशन्) हवि चाहनेवाले तुम (उशतः) हवि चाहनेवाले (पितॄन्) पितरोंको (हविषे अत्तवे) हवि भक्षणके लिये (आवह) लाओ ॥

यमायसोमः पवते यमायक्रियतेहविः ।
यमंह यज्ञोगच्छत्यग्निदूतोअरंकृतः अथर्व० १८–२–१

यमके अर्थ सोम किया जाता यमके वास्ते हवि किया जाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूत ही यज्ञसे यमके प्रति हवि ले जाता है ॥

इत्यादि मंत्रोंसे अग्निका श्राद्धमें हवि लेजाना सिद्ध है अब मनुजीका वाक्य देखिये ॥

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ अ० ३ श्लो० २१४

अपसव्य होकर अग्नौकरणादिहोम और अनुष्ठान कर्मको करके पश्चात् दक्षिण हाथसे भूमिपर पानी डाले ॥ २१४ ॥

त्वमग्नईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानिसुरभीणिकृत्वी ॥
प्रादाः पितृभ्यः स्वधयाते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयताहवीᳪषि ६६

(कव्यवाहन) हे कव्य, हव्य वहन करनेवाले (अग्ने) अग्निदेवता (ईडितः) ऋत्विजोंसे स्तुति किये (त्वम्) तुम (हव्यानि) हवियोंको (सुरभीणि) सुगंधियुक्त (कृत्वी) करके (अवाट्) वहन करते हो (स्वधया) पितृमंत्रद्वारा (पितृभ्यः) पितरोंके निमित्त (प्रादाः) दो (ते) उन पितरोंने (अक्षन्) भक्षण करो (देव) अग्निदेव (त्वम्) तुम भी (प्रयता) शुद्ध (हवींषि) हवियोंको (अद्धि) भक्षण करो पितरोंने भक्षण किया है अग्नि देवता तुम भी शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

येचेहपितरोयेचनेहयांश्चविद्मयाँ२॥उँचनप्रविद्म ।
त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञᳪसुकृतञ्जुषस्व ॥ ६७ ॥

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोकमें देहको धारण करके वर्तमान हैं (च ये) और जो (इह) इस लोकमें (न) नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (विद्म) हम जानते हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (न) नहीं (प्रविद्म) जानते हैं स्मरण न होनेसे (जातवेदः) हे सर्वज्ञ अग्ने ! (ते) वे पितर (यति) जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जानते हो (स्वधाभिः) पितरोंके अन्नोंसे (सुकृतं) शुभ यज्ञको (जुषस्व) सेवन करो ॥ ६७ ॥

यहां इह शब्दसे जीते पितरोंका ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्होंने मरकर कर्मवश इस लोकमें देह धारण किया है अन्यथा न प्रविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घट सक्ता विद्मका अर्थ यह है कि, जिनको मैं अपना पितर जानता हूं, परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अथवा जिनको जानता हूं (बाप दादे परदादेकी) जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढीतक ॥ यह तात्पर्य है ॥

इदम्पितृभ्योनमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो यउपरासईयुः ।
येपार्थिवेरजस्यानिषत्ताये वानूनᳪसुवृजनासुविक्षु ॥ ८६ ॥

(अद्य) अब (इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (अस्तु) हो (ये) जो (पूर्वासः) पूर्व ऋषि हैं (ये) जो (उपरासः) कृतहाय (ईयुः) ईश्वरको प्राप्त हुए (ये) जो (पार्थिवेरजासि) स्वर्गादिलोकमें (निषत्ताः) स्थित

-मान हैं (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय (सुवृजनासु) धर्म बल-रूप बलसे युक्त (विक्षु) प्रजाओं अर्थात् मनुष्य लोकमें देहधारण करके वर्त्तमान हैं ॥ ६८ ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ॥
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ६९

(अग्ने) हे अग्ने ! (नः) हमारे (परासः) उत्कृष्ट (प्रत्नासः) सनातन (ऋतं) यज्ञको (आशुषाणाः) प्राप्त करनेवाले (पितरः) पितरोंने (यथा) जैसे (अधा) अधोलोकसे (शुचि) पवित्र (दीधितिं) सूर्यमंडलको (इत्) ही (अयन्) प्राप्त किया इसी प्रकार (उक्थशासः) उक्थशास नाम स्तोत्रोंको पढते (क्षामाः) वेदीआदि खोदनेसे भूमिको (भिन्दन्तः) भेदते हम, (अरुणीः) सूर्यज्योतिको (अपव्रन्) प्राप्त होवें ॥ ६९ ॥

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

हे अग्ने ! (उशन्तः) कामार्थी हम (त्वा) तुझे (निधीमहि) स्थापन करते हैं (उशन्तः) कामार्थी हम तुझे (समिधीमहि) प्रज्वलित करते हैं (उशन्) हवि चाहनेवाले तुम (उशतः) हवि चाहनेवाले (पितॄन्) पितरोंको (हविषे अत्तवे) हवि भक्षणके लिये (आवह) लाओ ॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः अथर्व० १८-२-१

यमके अर्थ सोम किया जाता यमके वास्ते हवि किया जाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूत ही यज्ञसे यमके प्रति हवि ले जाता है ॥

इत्यादि मंत्रोंसे अग्निका श्राद्धमें हवि लेजाना सिद्ध है अब मनुजीका वाक्य देखिये ॥

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ अ० ३ श्लो० २१४

अपसव्य होकर अग्नौकरणादिहोम और अनुष्ठान कर्मको करके पश्चात् दक्षिण हाथसे भूमिपर पानी डाले ॥ २१४ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥ २७९ ॥

दहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखके आलस्यरहित होकर दर्भ हाथमें ले अपसव्य यथाशास्त्र सब कर्म पितृसम्बन्धी समाप्ति पर्यन्त करै ॥ २७९ ॥

इन बातोंके विचारनेसे विदित होताहै कि, जीवित विद्वान् पुरुषोंका नाम पितर नहीं है किन्तु जो मृतक होगयेहैं श्राद्धतर्पण उन्हींका होताहै यदि देवता और पितर यह दोनों नाम विद्वानोंके होते तौ पितृकर्म अपसव्य और देवकर्म सव्य हो. करने क्यों लिखे जाते तथा जो सपिंड पितर यमलोकमें हैं उनको यह अन्न प्राप्त हो इस वेदवाक्यसे यमलोकमें स्थित पितरोंको अन्न मिलना कहाहै यदि विद्वानोंका अर्थ करैं तो विद्वान् तौ इसी लोकमें हैं (उनको यह अन्न दृष्टिगोचर हो) ऐसा कहना नहीं बनसक्ता क्यों कि वे तौ इसी लोकमें हैं और सामने बुलाकर अन्न दे सक्ते हैं फिर (समानासमनसः) सपिंड और मनस्वी पितर सपिंड पितर कहनेसे तौ पितामहादिकोंका ही बोध होता है यदि विद्वान् अपने सम्बन्धके न हों तौ उनके लिये सपिंड शब्दका प्रयोग नहीं होसक्ता ॥

फिर सपिंड मनस्वी पितरोंकी धन सम्पत्ति हमारे पास १०० वर्षतक वास करै यह बात तौ पितामहादिकोंमें ही बनसकैगी क्यों कि पुत्र पिता पितामहादिकोंके ही धनका अधिकारी होताहै, और जो विद्वानोंहीका नाम पितर कहते हो तौ इस मंत्रके अनुसार जैसे उनको सत्कार पूर्वक बुलावे सो झट उनका मालमत्ता छीनलें और कहदे कि स्वामीजी कहगये हैं तुम्हारा धन हमारे यहां सौवर्षतक रहै बस ऐसे अर्थोंसे बहुतसे विद्वान् स्वामीजीकी जानको रोवैंगे, क्यों कि मंत्रके अर्थ कर आज्ञा दे दी है पुनः मनुष्य देवता पितरोंके दो मार्ग कैसे बनैंगे वे मार्ग स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें वर्तमान हैं यह क्रियावान् विश्व इन्हीं दो मार्गोंसे जाताहै यह जो पूर्व मंत्रका अर्थ कर आये हैं यदि विद्वानोंका नाम पितर मानलें तो यह दो मार्ग कैसे बनेंगे और क्या विद्वान् पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें लटकतेहैं यह हो नहीं सक्ता केवल पितर ही जो प्राणमात्र मूर्ति हैं वायुके आधार मध्यमें स्थित रहसक्ते हैं क्यों कि (असुंयईयुः) इसका यही अर्थ है कि पितर प्राणमात्रमूर्तिवाले और सूक्ष्मशरीर हैं और इस लोक मध्यलोक परलोकमें स्थित जो पितर हैं वे ऊर्ध्वलोकको जाओ तौ क्या इस मंत्रसे आपके विद्वान्नामके पितर मध्य लोकमें और परलोकमें कैसे स्थित होसक्ते हैं कभी स्वामीजी ऐसी करामात दिखाते कि दोचार घंटेको आकाशमें प्रवेश करजाते तौ लाखों ही चेले होजाते और महायोगिराजोंमें गिनती होती यदि विद्वानोंकाही नाम पितर है तौ जीवित

हैं तो जिस समयमें वे घरमें आवें तो उन्हें ऊर्द्धलोक कैसे भेजें, स्थूलशरीर होनेसे देहसे तो जा नहीं सक्ते यदि उन जीवतोंका प्राण बहिर्गत किया जाय तो ऊर्द्ध लोक जासक्ते हैं तो वही दशा होय कि जैसे एक नाई किसी बावाजीको मार आपत्तमें पडाथा यह दृष्टान्त इस प्रकार है कि एक मनुष्यने तप कर यह वरदान पाया कि हजामत बनवाते समय जो मंगता आवे तू उसे मारडालियो सोना हो जायगा एक समय हजामत बनवाते समय कोई मंगता आया और उस पुरुषने झट मार गिराया कि वह सोना होगया नाई देखते ही कहने लगा कि यह तो खूबलुखसा हाथलगा सोना सहजमें होताहै बस वहभी घर जाकर इसी फिकमें बैठा और मांगनेको आयेहुए किसी साधुको मार गिराया और उसमें कुछ न पाया अन्तमें राजदर्बारमें पकडा जाकर दंडभागी हुआ इससे जीवित विद्वानोंका ऊर्ध्वगमन सर्वथा असंभव होनेसे मृतकोंका ही श्राद्ध करना और (पूर्वे पितरः) इस वाक्यमें जो पूर्वशब्द है यह पहले पितामहादिका ही सूचक है और वही हविग्रहण कर सक्ते हैं, यदि विद्वानोंका अर्थ लगावें तो बस उन्हें बैठालदें उनके सामने हवन करदें उनका पेट भरजायगा सो यह बात देखनेमें नहीं आती इसकारण पितर वेही हैं जो शरीर त्यागन करगयेहैं बर्हिषदः)कुशासनपर "बैठनेवाले पितर आवें हमारे शोक और भयको हटावें और हमें सुख दें जो हमारे पूर्व पितर हैं वोह पापका अभाव स्थापन करें देवयान मार्ग होकर आवें जो अग्निमें जलाये हुए हैं जो अग्निसंस्कारसे रहित हैं प्राणमात्रमूर्ति स्वर्गमें रहनेवाले पितर मेरा कल्याण करें" यदि स्वामीजी विद्वानोंकाही अर्थ करें तो ऊपरके वाक्यानुसार जलायेहुए विद्वानोंको कहांसे लाया जायगा जलना तो मृतककाही है हां एक बातसे दयानंदजीका इष्ट सिद्ध होसक्ताहै परन्तु वे इसको मानते नहीं हैं आचारी मतवाले श्रीरामानुजकी सम्प्रदायवाले दग्ध और अदग्ध होतेहैं तप्त और ठंढी मुद्राके भेदसे यदि इनको दयानंदजी अपना पितर मानतेहों तो कुछ थोडीसी ठीक लगजाय परन्तु आगे चलकर फिर वही दुर्दशा क्योंकि " स्वर्गमें वर्तमान पितर और प्राणमात्रमूर्तिवाले यह बात जीवित विद्वानोंमें नहीं घट सकती इससे भी जीवित पुरुषोंका श्राद्ध और विद्वानोंकाही नाम पितर है यह नहीं सिद्ध होता फिर दक्षिणकी ओर दक्षिण जांघ झुकाकर पितर बैठे" यह बात भी मृतकपुरुषोंको बताती है श्राद्धादिकार्य दक्षिणदिशामें मुख करके करने लिखे हैं * और " देवकार्य पूर्वकी तरफ मुख करके इस कारण इन दोनों कार्योंमें महान् अन्तर है

* थोडा उपयोगे विचार और भी करते हैं।

प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन् देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदंस्तातानब्रवियज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्ग्वः सूर्यो वो ज्योतिः श० २ । ४ । २ । १-

यदि विद्वान् ही देवता पितर हों तो फिर अन्तर क्या, दक्षिण पूर्व मुख करना क्या फिर उनके आसनपर बैठना यजमानको धन दो यह बात भी जीवित विद्वान् नहीं करते यजमानको अपना धन नहीं देते पुनः पिता पितामह प्रपितामह मुझे पूर्ण आयु दो पवित्र करो यह बात भी जीवितोंमें नहीं, कोई आयु नहीं देसक्ता ये स्वर्गके पितर ही भला करनेमें समर्थ है और पितरोंसे पुत्रकी कामना करना स्त्रीका पिण्ड भक्षण करना यदि स्वामीजी जीवित विद्वानोंको पितर मानते हैं तो भला यह विद्वान् विना संग किये कैसे पुत्र दे सकेंगे और स्त्री क्या पिण्डके स्थानमें भक्षण करे कदाचित् यह नियोग आपने इसी कारण चलाया होगा फिर अथर्ववेदके यह वाक्य कि जो मर गये हैं जो अन्तरिक्षमें हैं उन पूर्व पितरोंको यह घृतमधु धारा प्राप्त हो तथा जो गाड़ दिये गये जो फेंके गये जिनको हम जानते जिनको नहीं जानते हैं हे अग्ने उन्हें बुलाला उनके अर्थ हवि लेजा तथा (पूर्वे पितरः) और

—अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाचोपासीदंस्तानब्रवीन्मासि मासि वो शनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति श० २।४।२।२

अथैनं मनुष्य प्रावृत्ता उपस्थं कृत्वोपासीदंस्तानब्रवीत्सायं प्रातर्वोशनं प्रजा वो मृत्यु र्वोऽग्निर्ज्योति श० २।४।२।३

पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणां तस्मादपराह्णे ददाति २।४।२।८ तिर इव हि पितरो मनुष्येभ्यः श० २।३।४।२।१

अर्थ–प्रजापतिके पास प्राणी गये देवता यज्ञोपवीती होकर दक्षिण जांघ झुकाकर बैठे प्रजापतिने कहा यज्ञ तुम्हारा अन्न अमृत तेज और सूर्य ज्योति होगी १ पितर अपसव्य हो बाई जांघ झुकाकर बैठे प्रजापतिने कहा महीने २ यज्ञ तुम्हारा अन्न मनकी समानवेग और चन्द्रमा ज्योति होगी ॥ २ ॥

मनुष्य उपस्थ करके बैठे प्रजापति बोले सायं प्रातः तुम्हारा अन्न प्रजा प्रगल्भता मृत्यु माही और अग्निज्योति होगी पूर्वाह्ण देवताओंका दुपहर मनुष्योंका और तीसरा पहर पितरोंको भोजनका है ॥

मनुष्योंसे पितर अन्तर्हित रहतेहैं इन प्रमाणोंसे प्रगट है कि देवता मनुष्य पितर अलग हैं पितर मनुष्योंसे अन्तर्हित रहते तथा महीनेमें एकबार भोजन करतेहैं इससे पितर देवता मनुष्योंसे पृथक् हैं और पितरोंका स्थान ॥

तृतीया ह प्रद्योरिति यस्यां पितर आसते
अथर्व १८।२।४८

ये शतंमनुष्याणामानन्दाः स एकः पितॄणां जितलोकानामानन्दः
[illegible] उप० ४।३।३३

अर्थ–सबसे ऊपर अन्तरिक्षका तीसरा भाग सूर्यादिके प्रखर प्रकाशवाला होनेसे प्रद्यौ कहाता है यहां पितरोंका लोक है जिसमें पितर रहते हैं १ । जो सौ मनुष्योंका आनन्द है वह एक पितृलोकजितका आनन्द है इन मंत्र ब्राह्मणोंके प्रमाणोंसे पितरोंके रहनेके लोक भी प्रगट होगये इतना ही बुद्धिमानोंको बहुत है विशेष देखना हो तो हमारा दृश्य. यजुर्वेद भाष्यका १९. अध्याय देखो ॥

(परेताः) जिसके अर्थ पहले पितामहादि मृतक हुए यह शब्द बहुधा वेदोंमें आता है जलेहुओंको स्वर्गमें अग्नि हवि पहुँचावे यह बात जीवितोंमें कदापि नहीं होसक्ती और वेदमें लिखा है जो सन्तानरहित पितर स्वर्गमें गये हैं (हित्वावद्येपास्य मपत्यवन्तः अथर्व) और जो पितामहादिक अन्तरिक्षमें प्रवेश कर गये हैं उनका अन्नद्वारा सत्कार करते हैं स्वामीजीसे पूछना था कि क्या पितामहादिक जीवित ही अन्तरिक्षमें प्रवेशकर जाते हैं या वे जीवित विद्वान् ही पितामहादिक हैं क्या वे भी जीवित अन्तरिक्षमें प्रवेश करगये हैं सो तो नहीं हुआ परन्तु स्वामीजी मृतक हो अन्तरिक्षमें प्रवेश करगये, यदि स्वामीजी अथर्ववेदका पाठमात्र भी करते तो ऐसी भूल न होती तथा जो मृत्युद्वारा प्राणियोंका वध करता है जो पितरोंका राजा है जिसे यम कहतेहैं उनके अर्थ हम यह तिलमिश्रित धान देतेहैं वे हमसे प्रसन्न हों (यमराजाके अधीन पितर हैं इस कारण उन्हें भी भाग देते हैं) और फिर अग्निकी प्रार्थना कि हे अग्नि ! इसके शरीरको जलाकर इसकी आत्माको पुण्यलोकको लेजा जो पूर्वपितर हैं जिन्हें हम नहीं जानते हे अग्नि ! तू जानता है जो स्वर्ग अन्तरिक्ष लोकमें है उनको हवि अग्निद्वारा पहुँचे स्वामीजीको यह न सूझी जीवित अन्तरिक्षमें कैसे ठहरसक्ते हैं अथवा यह युक्ति करते कि दो बड़ी गाड़ एक ऊपर हिंडोलेकी तरह बांध देते उसमें किसी विद्वान्के मातापिताको टांगदेते तो (दिविषदः) आकाशमें रहनेवाले पितर हैं यह शब्द सिद्ध होजाता अर्थ बदलनेकी आवश्यकता न रहती पर स्वामीजीने तो यह वाक्य ही हजम कर लिये लिखे ही नहीं पर यह न सोचा कि पुस्तकें तो कहीं लोप नहीं हो गई और (या ते श्वानौ) देखिये आजतक श्राद्धमें कुत्तेको भाग दियाजाता है यह यमके दूत हैं प्रथम इनको भाग देतेहैं जो कि यह पितरोंके भागमेंसे न लें और अंगिरा-वंशी पितर नवीन गतिवाले (अथर्वाणः) अथर्वशीर्ष मन्द चलनेवाले और भृगुवंशी ही पितर (यह पितृगण हैं) हमारा कल्याण करें इत्यादि बहुतसे वचन चारों संहिताओंमें पूर्ण हैं जो विस्तारभयसे नहीं लिखे न्यायी महात्मा जो पक्षपातरहित हैं उन्हें तो यही बहुत है श्राद्ध मृतकोंका ही प्राचीन समयसे होता आताहै जो वेदमें सिद्ध है और यह जो कहीं दयानन्दजीने आक्षेप किया है कि, क्या यहां डाक जाती है डाकखाना है जो उनके पास अन्न पहुँचता है सो सुनिये यह मन्त्रसंस्कृत अग्नि ही वहां ले जाता है इसमें यजु और अथर्वका प्रमाण है, पूर्व मन्त्र लिख दिये हैं (यमग्ने) इस मन्त्रमें अग्निसे प्रार्थना की है कि हविको लेजा और पितरोंको दे तथा (योदमाग्नि) इस मंत्रमें भी पितरोंको अग्निका हवि ले जाना कहकर अगले मन्त्रमें यह कहा है कि हे अग्नि ! तेरे दिये हुए हविको पितरोंने भक्षण किया, और जो पितर परलोकमें हैं जिनको हम नहीं

जानते उन सबको हविसे तृप्त कर, तू ही सब पितरोंको जानता है, हे अग्ने! हम तुझे मन्त्रलित करते हैं पितरोंको हवि भक्षणको ला, अग्नि दूत होकर यमलोकमें पितरोंके पास जाता है हवि देनेको इत्यादि मन्त्रोंसे अग्निका पितरोंके पास हवि लेजाना सिद्ध है और यही अग्नि मृतकके आत्माको संस्कृत होनेसे पितृलोकको ले जाताहै जैसा कि (येहि) इस मन्त्रसे सिद्ध है, जब कि पिता दादा परदादा इन तीनोंका श्राद्ध करना यह वेदकी प्रबल आज्ञा है जब किसीके पितामह मृतक हो जायंतो यह आपके मतमें श्राद्ध ही न करे क्योंकि जीवितमें ही श्राद्ध करना कहते हो बस सारा झगडा ही समाप्त कर दिया, दादा परदादा तो बहुतोंके देखनेमें नहीं आते, पोतेके जन्मतक वृद्ध होनेके कारण मृत हो जाते हैं बस आपने उनका चुल्लू भर जल भी उडादिया (इस अपराध करनेवालेका जन्म मारवाड देशके कठिन जंगलमें हुआ होगा जहां पानीका नाम न हो) जलदानका वर्णन. नियोग प्रकरणमें करेंगे कि किस प्रकार पहुँचता है इन मंत्रोंसे यह सिद्ध होगया कि श्राद्ध मृतक दादा परदादा आदिकोंका होना चाहिये अब स्वामीजीके कल्पित वाक्योंका उत्तर लिखते हैं " जो सांगोपांग चारों वेदोंको पढा हो यह ब्रह्मा उससे न्यून देवता उनकी सदृश स्त्री आदिकोंकी सेवा करनी श्राद्ध और तर्पण कहाता है यह दयानंदजीकी महाभ्रांति है ब्रह्मा नाम उसी स्वयंभूका है जिसे चतुर्मुख कहते हैं, जैसे पूर्व लिख आये हैं कि प्राणियोंमें प्रथम ब्रह्मा हुए तथा (यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं) यह उपनिषद् वाक्य है कि जो ब्रह्माको सबसे प्रथम उत्पन्न करताहै तथा च मनु (तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः) उसमें सर्व लोकके पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे) ब्रह्मा सबसे पहले थे यह यजुर्वेदमें लिखाहै तर्पणमें इन्हीं ब्रह्माजीका नाम है इन्हींके अर्थ जलदान होताहै, न कि जो चार वेद पढा हो वह ब्रह्मा कहावे क्यों कि (उदीरतां) इस मंत्रमें जो (ऋतज्ञा) शब्द पडा है उसका यह अर्थ है कि जो यथावत् सत्यको जानता (विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ॥ तेअङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे ऋग्वे० ८ । २ । १) इसमें (विरूपासः) नाना रूपा अनेक प्रकारके रूप रचनेवाले (ऋषयः अवितथस्य ब्रह्मणो द्रष्टारः न केवलं पश्यन्ति अपि च गम्भीरवेपसः अप्रमेयकर्माणः अप्रमेयबुद्धयो वा ते आङ्गिरसः सूनवः ते अग्नेः परिजज्ञिरेत्यादि *) ऋषिलोग जो अंगिराके पुत्र अग्निसे उत्पन्न हुए, वे सम्यक् प्रकार ब्रह्मके देखनेवाले थे, और अप्रमेय बुद्धिमान् थे, जिनकी बुद्धि यथावत् वेद शास्त्रमें प्रवृत्त होतीथी जब कि

* बहुरूपा ऋषयस्ते गम्भीरकर्माणो वा गम्भीरप्रज्ञा वाङ्गिरसः पुत्रास्तेऽग्नेरधिजज्ञिरे इत्यग्निजन्मापितरो व्याख्याता निरु० ११ । १७ ।

ऋषि योगी आदि यथावत् वेदको साङ्ग जानतेथे, उनका नाम कहीं ब्रह्मा किसान नहीं कहा, तौ यह बात कैसे प्रमाण होसक्ती है, कि जो साङ्ग चारों वेदोंको जाने वही ब्रह्मा, दयानंदजी तुम भी तौ सृष्टिक्रम और साङ्ग वेदोंके जाननेका अभिमान रखते हो अपना नाम ब्रह्मा रख लिया होता और व्यास वसिष्ठादि जो यथावत् वेदको जाननेवाले थे कहीं ब्रह्मा न कहलाये इससे वेद पढनेवालेको यहां ब्रह्मा कहना सर्वथा झूंठ है और "जो ब्रह्माके पोते मरीचिवत् विद्वान् होकर पढावें उनके सदृश विदुषी स्त्री उनको सेवा करनी ऋषितर्पण है (ॐमरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्) स्वामीजी इसमेंसे यह आपने कहांसे निकाला ब्रह्माके पोते मरीचिवत् विद्वान् होकर पढावें, उसकी सेवा ऋषि तर्पण है ऊपर तौ आप वेद जाननेवालेका नाम ब्रह्मा लिख आये हैं, अब किसी निश्चित पुरुषका नाम कहकर उनके पोतेका नाम मरीचि बताते हो, धन्य है इस बुद्धिको कि बालकोंको भी हँसी आती है यह न लिखा मरीचिमें कितनी विद्या थी, यह कहना आपका सर्वथा असत्य है अथर्व वेदमें ऋषियोंके नाम लिखे हैं, सो आगे लिखेंगे उनको जल देना ऋषितर्पण है अब सोमसदादि शब्दोंकी जो दयानंदजीने व्युत्पत्ति लिखी है उससे जिन २ का बोध होता है सो सुनिये जो परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हों वे सोमसद कहाते हैं, इससे यह जाना जाताहै कि, जितने मनुष्य पदार्थविद्या जानते हों चाहे वे शूद्र यवन कुश्चीन अंगरेजादि क्यों न हों सब पदार्थविद्या जाननेवाले सोमसद हो गये, साफ ही लिखदिया होता कि जिस शालामें Physics फिजिक्स पढाई जातीहै यहकि अंगरेज अध्यापक और विद्यार्थियोंको बुलाकर सत्कार करना वे ही सोमसद पितर हैं धन्य है अच्छे २ पितर सत्यार्थप्रकाशमें लिखे हैं, लाखों सोमसद मिलजायँगे, पर अंग्रेज अधिक होंगे और आपको उन्हें पितर कहना युक्त ही है (जो अग्नि और विद्युदादि पदार्थोंको जाननेवाले हों व अग्निष्वात्त) यह विद्या तौ तारबाबू और रेलके गार्ड इंजीनियर आदि महाशयोंको ही आतीहै सो हजारों क्या लाखों अग्निष्वात्त स्टेशन २ पर मिल जांयगे, दयानंदजीने खूब सोचा कि एक दिन ड्राइवर इंजीनियर और तारबाबुओंका भी सत्कार करना चाहिये शायद कभी विना टिकटके प्लेटफार्म पर तौ घूम सकेंगे, सिपाही लोगोंके धक्के तो न सहने पडेंगे धन्य है रेलवाले भी पितर हैं और सिपाही लोगोंको कौनसे पितरोंमें रक्खा इन्हें भी तौ कुछ देना चाहिये था कोई पितरोंमें मिलादिया होता (जो उत्तम विद्यावृद्धिव्यवहारमें स्थित हों वे बर्हिषद्) उत्तम विद्यावृद्धि व्यवहारोंमें आजदिन गौराङ्गोंसे उत्तम कौन है जहाँ सौमें८८पढे हुएहैं भारतवर्षमें सौमेंसे १२ ही हैं कैसी २ उत्तम विद्या निकाली हैं, बस बर्हिषद् पितर गौरांग ही हुए आपने सोचा होगा कि इन महाशयोंके भोज्यमें भी अधिक लाभ होगा कृपादृष्टि

होते ही दारिद्र पार हो जायगा, वाह गौरांग भी पितर बनाये सब कुछ आपकी धारः इन्हींसे मिलताहै (जो ऐश्वर्यके रक्षक महौषधिपानसे रोगरहित अन्यके ऐश्वर्यके रक्षक तथा रोगको औषधी देकर नाश करनेवाले हैं वे सोमपाः) धन्य है डाक्टर भी आगये अब हकीमजी भी पितर होगये और वह महौषधी कौनसी उसका नाम न लिखा हकीमोंको जरूर श्राद्धमें जिमाना कदाचित् यजमान बीमार होजाय तौ औषधी तौ अच्छी प्रकार करैगा परन्तु डाक्टर और हकीमजी ऐश्वर्य रक्षक तौ नहीं किन्तु भक्षक हैं यह शब्द कैसे घटैगा क्यों कि १६ रुपये ४) प्रति दिन भेंट चाहिये इन्हें निर्धन कैसे पितर बना सके हैं और मनुजी ऐसे पितरोंका निषेध करते हैं ॥

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः अ० ३ श्लो० १५२

वैद्य, पुजारी, मांस बेचनेवाला, वाणिज्य करनेवाला यह सब श्राद्धकर्म और देवकर्ममें वर्जित हैं इस कारण सोमपाका अर्थ ठीक नहीं सोम एक औषधि है देवता पितरोंको प्रिय है उसके पानसे वे सोमपा कहातेहैं जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोडके भोजन करते हैं वे हविर्भुज अबके आर्य्यावर्तवासी पितर बनाये सरावगी आचारी वैष्णव शैव सब ही पितर होगये परन्तु मादकद्रव्य भंग तमाखु सुलफे अफीम आदि द्रव्यका सेवन तौ बहुत ही करते होंगे अन्य देशवासी हिंसा और पान दोनोंसे नहीं बचें इस कारण दयानंदजीको हविर्भुज पितर मिलने कठिन हैं (जो जानने योग्य वस्तुके रक्षक और घृतदुग्धादिक खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपाः) इसमें तौ सब ही पितर होगये दूध पीनेवाले भी पितर हैं बालक जन्महीसे दूध पीते हैं हलवाई घोसी और इनके यहांके सब दूधके ग्राहक पहलवान मुसल्मान आदि चारों वर्ण सब जातें एवं संसार ही दूध पीताहै तौ यह संवके सब आपके पितर हैं अपना नाम न लिखा कि स्वयं कौनसे पितरोंमें हो (जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे सुकालिन्) यह तौ अमीर और भक्त पितर बनाये क्यों कि अमीरोंका रुपयेसे भक्तोंका ज्ञानसे अच्छा समय कटताहै (जो दुष्टोंको दंड और श्रेष्ठोंके पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम) बस इतनी ही कसर थी हाकिमोंको जरूर भोज्य देना चाहिये क्यों दंड यही देते हैं श्रेष्ठोंको यही पालते इस कारण इनको बुलाकर जरूर जिमाना चाहिये किसी मुकदमेमें सहायता करदेंगे परन्तु इनका भोजन अन्य प्रकारका है और अथर्ववेदमें (यासेताधाना) यमराजको तिलधान देना लिखाहै और आपके यम इसे स्वीकार करेंगे नहीं तौ कैसे ठीक होगी और शतपथ ब्राह्मणमें यह लेख है कि ॥

अथ परस्तादुल्मुकं निदधाति सयदानिधायोल्मु-
कमथैतत् पितृभ्यो दद्यात् असुर रक्षसानिह्येषामे-
तद्विमथीरंस्तथोहितात्पितृणामसुररक्षसानिनविमथते
तस्मात्परस्तादुल्मुकं विदधाति २ । ४ । २ । १४ श०

अर्थ-पितरोंके पिंडदान करनेकी वेदीके आगे उल्मुक धरै, यदि जलती लकडी न धरकर पितरोंको दे तौ असुर राक्षस इनके भागको गडबड कर देते हैं इस लिये जलती लकडी धरदे यह वैदिक विधि है तौ जब पंडित हाकिम विद्वान् इनको महाभोज करावै तौ मेजपर एक जलता बबूरका लक्कड भी ला रक्खा करै. क्योंकि पितृयज्ञकी विधि ही ऐसी है और मनुजीने लिखाहै कि ॥

पित्र्येरात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥ अ० १ श्लो० ६६

(पितरोंका रातदिन एक मासका है जिसका विभाग दो पक्षोंमें है कृष्ण पक्षका दिन शुक्लपक्षकी रात्रि है तौ क्या दयानंदियोंके पंडित और यम पंद्रह दिन सोतेहैं) इसमें तौ सारा संसार ही पितृरूप बना दिया अच्छा जीवित श्राद्ध निकाला जब आप वृद्धोंकी सेवाका नाम श्राद्ध बताते हो तो वे वृद्ध जिनके पितामहादि नहीं हैं वे किनकी सेवा करैं बस बैठ रहैं आपके लेखसे यह सूचित है कि दादा जीवित हो तौ पोता श्राद्ध करै पिता दादा कुछ न करैं और यदि जीवित पितरोंका, श्राद्ध मानते हो तौ ("श्राद्धे शरदः ४-३-१२) यह अष्टाध्यायीका सूत्र है कि, शरद् ऋतुमें श्राद्ध करै (तथा अमावसको करे यह मनुजी कहतेहैं) तौ ग्यारह महीने तक पिता, मातादिकोंको उपवास करावे, और माता पिता बालकोंको जन्मसे पालतेहैं, तौ क्या यह भी श्राद्ध ही हुआ और जिसके पिता दादापै लाखोंकी सम्पत्ति हो उसका पुत्र क्या सेवा करैगा, तौ बस श्राद्ध ही उडगया इससे आपका कथन ठीक नहीं श्राद्धका समय नियत है. अब तुम्हारे कल्पित अर्थोंकी पोल खोल सोमसदादि अर्थोंकी व्याख्या लिखते हैं ॥

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः॥१९४॥ अ० ३
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥ १९५ ॥
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृताबर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ १९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥
सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मंतोंगिरःसुताः ।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥
अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत् ॥ १९९ ॥
य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः ।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनंतकम् ॥ २०० ॥
राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २०१ ॥

कण्वः कक्षीवान्पुरुमीढोअगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः । विश्वामित्रोयंजनदग्निरत्रिरवन्तुनः कश्यपोवामदेवः १५ विश्वामित्रजमदग्नेवसिष्ठभरद्वाजगोतमवामदेव, शर्दिनोअत्रिरग्रभीन्नमोभिःसुसंशासः पितरोमृडतानः १६ काण्ड १८ अनुवाक २ मंत्र १५ । १६ अथर्व०

इन्हींकि वंशाके पितर हैं यह प्रगट है ॥ यह वैदिक ऋषि हैं ।

स्वायंभू मनुके जो मरीचि आदि, उन ऋषियोंके पुत्रः पितृगणोंको मनुजीने कहाहै, १९४ विराट्के पुत्र सोमसदनामवाले ये साध्योंके पितर ऐसे कहेहैं अग्निष्वात्तादि मरीचिके पुत्र ह ये लोगोंमें विख्यात हैं और देवताओंके पितर कहाते १९५ दैत्योंके पितर बर्हिषद् नामवाले अत्रिके पुत्र हैं, दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर इन भेदोंके हैं १९६ सोमपा ब्राह्मणोंके हविर्भुग क्षत्रियोंके आज्यपा वैश्योंके सुकालिन् शूद्रोंके पितर हैं १९७ भृगुके पुत्र सोमपादि अंगिराके पुत्र हविष्मंत, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपादि और वसिष्ठके पुत्र सुकालिन् हैं, यह पितर इन ऋषियोंसे हुए १९८ अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध और काव्य तथा बर्हिषद भी और अग्निष्वात्त तथा सौम्य यह सब ब्राह्मणोंके पितर जानने १९९ यह इतने पितरोंके गण मुख्य कहेहैं इनके इस जगत्में पुत्र पौत्र अनन्त हैं, सो जानना २०० चांदीके पात्र करके या चांदीके लगे पात्रमें पितरोंके श्रद्धाकरके दिया पानी अक्षय सुखका हेतु होताहै २०१ इस प्रकारसे यह पितरोंके गण हैं जो विराट् पितर हैं पितामहादिक जो मृतक होगए हैं इन्हीं मुख्य पितरोंके द्वारा जो

कुछ दिया जाता है सो पहुंचताहै दयानंदजीने व्याकरण खर्च कर सारे जगत्को ही पितर बना दिया, यह नाम इन्हीं पितरोंमें रूढि है और इनके पास जिनका गमन होता है वह भी इसी नामके होजातेहैं और स्वामीजीने वह बात करी कि, जैसे गंगा शब्द केवल भागीरथी नदीमें ही रूढि है यदि कोई कहै कि, गच्छतीति गंगा यह नदी नहीं, तौ बस हवा आदमी कीट पतंगादि सब गंगा होगये ठीक गंगा खो दी, सोई दयानंदजीने पितरोंको हटाय इंजीनियर सरावगी हाकिमादि पधरा दिये, इसी प्रकार वेदोंमें जिस पदको अपने विरुद्ध पाया झट अर्थ बदल दिये, यही श्राद्धमें गडबडी मचाई, मनुजी विराट्के पुत्र सोमसद् लिखतेहैं, दयानंदजी उत्तम व्यवहारमें बैठनेवालोंको सोमसद् कहतेहैं, ऐसा महान् अंतर स्वामीजीके अर्थ और प्राचीन वाक्योंमें है इस कारण स्वामीजीका अर्थ मिथ्या है और सुनिये ॥

ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ।
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥
ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ।
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥ मनु० अ० ३

कोई ब्राह्मण आत्मज्ञानपरायण होतेहैं और दूसरे प्राजापत्यादि तपमें तत्पर होतेहैं और कोई तप अध्ययनरत होतेहैं और कोई यज्ञादि कर्ममें तत्पर रहतेहैं ॥ १३४ ॥ इनमें ज्ञाननिष्ठोंको श्राद्धमें यत्नपूर्वक भोजन देना, और यज्ञोंमें क्रमसे सबको भोजन देना ॥ १३५ ॥

निमंत्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ अ० ३ श्लो० १८९

पितर श्रेष्ठ गुणवाले निमंत्रित ब्राह्मणोंके पास आजातेहैं, वायुकी समान उनके पाछे चलतेहैं, बैठने पर बैठतेहैं इस कारण निमंत्रित ब्राह्मण नियमपूर्वक रहैं ॥ १८९ ॥ जब कि पितर वायुवत् पीछे चलतेहैं तौ निश्चय है कि, पितरोंकी प्राणमात्र मूर्ति है, इसी कारण मृतक पुरुषोंकाही श्राद्ध होताहै, नहीं तौ निमंत्रित ब्राह्मणोंके संग कौन चलतेहैं, उन्हींके अर्थ जल देतेहैं, तथा वाल्मीकि रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग १४ श्लोक १६ से ॥

रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम् ॥ १६ ॥

पुनः ७७ सर्गे

ततो दशाहेतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।
द्वादशेहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः ।
अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेव कृतोदकौ ॥ ७ ॥
प्रियेण किल दत्तं हि पितृलोकेषु राघव ।
अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुःप्रियः॥८सर्ग१०२अयो०
शीघ्रं स्रोतः समासाद्य तीर्थं शिवमकर्दमम् ।
सिषिचुस्तूदकं राज्ञे तत एतद्भवत्त्विति ॥ २५ ॥
प्रगृह्य तु महीपालो जलपूरितमंजलिम् ।
दिशं याम्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
एतत्ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् ।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥ २७ ॥
ततो मंदाकिनीतीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः ॥
पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ॥ २८ ॥
ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे ।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
इदं भुंक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम् ।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ३०सर्ग१०२अ०

अर्थ—महाराज दशरथने कहा यह जो रामचन्द्रके अभिषेकके कारण सामग्री आईहै सो रामको अभिषेक न होगा किन्तु जब मैं मरजाऊंगा तो रामचंद्रसे इसी जलादिकसे मेरी जलक्रिया करानी १६ जब राजाका शरीर छूट गया तो दशाह होनेकेपश्चात् बारहवें दिन भरतजीने श्राद्ध किया १ जब भरतजी चित्रकूटमें गये तो रामचंद्रसे कहा हे पुरुषोत्तम ! उठो और पिताकी जलक्रिया करो मैं और शत्रुघ्न पूर्व कर चुके हैं ७ जो प्यारे जन कुछ देते हैं वह पितृलोकमें अक्षय होताहै तुम तो पिताके प्यारे हो ८ फिर रामचंद्र मंदाकिनीके किनारे सुन्दर निर्मल स्थानमें बैठ जलदान कर कहने लगे कि, यह पिताको पहुंचे २५ हाथमें जल ले

दक्षिण दिशाको मुख कर रोते हुए यह वचन बोले २६ हे राजशार्दूल ! यह निर्मल जल आपके हेतु अक्षय होय यह मेरा दिया जल पितृलोकमें प्राप्त हुआ तुमको मिले २७ फिर मंदाकिनीके किनारे आकर तेजस्वी भाइयों सहित राजाकी पिंडक्रिया करते हुए २८ इंगुदी और बेरमिश्रित पिण्याकके पिंड कुशाओंपर रख रामचंद्र दुःखसे रोते यह वचन बोले २९ महाराज जो वस्तु हम भोजन करते हैं उसका ही आप प्रसन्न हो भोग लगाइये क्यों कि जो अन्न पुरुष खाते हैं वही अन्न उनके देवता खाते हैं इन वाल्मीकिरामायणके वाक्योंसे भी मृतकके अर्थ पिंडजलदानादि सिद्ध होता है इस प्रकार महाभारतमें युद्ध हो चुकने पश्चात् जलदानपर्वाध्याय स्त्रीपर्वमें है जो मृतकोंको जल दिया गया है सो विस्तार भयसे नहीं लिखते बुद्धिमानोंको यही बहुत है ॥

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्॥
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः॥ अ० ३ श्लो० २७६
युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ २७७ ॥

कृष्णपक्षमें दशमीसे लेकर केवल चतुर्दशी छोड यह तिथि श्राद्धमें जैसी प्रशस्त है वैसी और नहीं २७६ युग्मतिथि और युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेवाला पुत्रादि संतति और यथेष्ट द्रव्यको पाता है २७७ ॥

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ॥
तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानंतमक्षयम् ॥ २७५ ॥

विधिपूर्वक श्राद्धमें जो पितरोंको दिया जाता है वह पितरोंकी अक्षय तृप्तिके अर्थ होता है ॥

वसून्वदन्ति तु पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान् ।
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी॥ अ० ३ श्लो० २८४

पितरोंको वसु पितामहोंको रुद्र प्रपितामहोंको आदित्यरूपसे ध्यान करके श्राद्ध कर्म कर्तव्य है, यह सनातन श्रुति कहती है इन सब वाक्योंका तात्पर्य यही है कि मृतक पुरुषोंका श्राद्ध होता है श्राद्धकर्ताको भी महाफलकी प्राप्ति होती है ॥

आविरभून्महिमापोनमेषां विश्वंजीवंतमसोनिरमोचि ॥
महिज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पंथा दक्षिणाया अदर्शि ॥
ऋ० मं० १० अ० ९ सू० १०७ मं० १

एषां श्राद्धादिकर्मकारिणां मघवत इदं माघोनं महिमाहिमा आविरभूत् प्रादुर्भूतः किञ्च विश्वंजीवं विश्वसंज्ञकं जीवं तमसो जन्ममरणप्रबंधरूपतमसोनिरमोचि कृतवंतः पितृभिः पितृभ्योदत्तमेव महिज्योति अगात् प्राप्तं परिणतमित्यर्थः किञ्च दक्षिणायादिशोमार्ग उरुर्विस्तृतः अदर्शि दर्शितः पितृदत्तश्राद्धादिभिः ॥

अर्थ–श्राद्धादि कर्म करनेवालोंको इन्द्रतुल्य विभूतिकी प्राप्ति होती है व श्राद्धादि कर्म करनेवाले अपने जीवात्माका उद्धार करते हैं और यह पितृदत्त श्राद्धादि दक्षिणायन मार्गको दिखायकर स्वर्गमें कर्ताका भी कल्याण करते हैं, ब्राह्मणोंको तपादि होनेसे अग्निमुख कहते हैं, इस कारण इनका भोजन किया भी पितरोंको पहुँचता है, जैसे कि कर्मोंका फल सूक्ष्म रीतिसे कर्ताको प्राप्त होता है. जो ब्राह्मणादिको भोजन कराया जाता है उसके दानका फल पितरोंको पहुँचता है जिस प्रकार दूसरी वस्तु दानका फल कर्ताको पहुँचता है वही संकटसे उद्धार करताहै अब इसके आगे हवन विषयमें लिखा जायगा ॥

सत्या०.पृ० १०१ पं० २९

धन्वन्तरये स्वाहा अनुमत्यै स्वाहा सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा पृ० १०२ ओंसानुगायेन्द्राय नमः ओंसानुगाय यमाय नमः सानुगाय वरुणाय नमः सानुगाय सोमाय नमः मरुद्भ्यो नमः अद्भ्यो नमः वनस्पतिभ्यो नमः श्रियै नमः भद्रकाल्यै नमः ब्रह्मपतये नमः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः इन मन्त्रोंसे भागोंको रखकर जो कोई अतिथि हो उसको जिमा देवे वा अग्निमें छोड देवे फिर लवणान्न दालभात शाक रोटी आदि लेकर छः भाग पृथ्वीमें धरे ॥ १०२ । २३ से ॥

समीक्षा–इन हवन करनेके मन्त्रोंमें जो धन्वतरि वैद्य तथा पूर्णिमा द्यावापृथिवी इनके वास्ते होम हो इससे स्वामीजीने क्या प्रयोजन निकाला तुम तो विद्वानोंका नाम देवता बताते हो फिर यह भाग किसके और क्या वनस्पति और लक्ष्मी भी रोटी खाती हैं या पृथ्वी भी जीमने आतीहै भगवन्मूर्तिके आगे भोग निवेदन करनेमें आप यह गडबडी करतेहैं और आप जडपदार्थोंको भाग दिये जातेहैं और अनुचरोंसहित इन्द्र वरुण यम मरुत् जल वनस्पति भद्रकाली लक्ष्मी ब्रह्मपति विश्वेदेव दिनके फिरनेवाले प्राणी रात्रिके फिरनेवाले प्राणी इनके नामसे अन्न रखना यह क्या बात है यह तो आप फिर पुरानी ही कथा ले बैठे या यमका

नाम यहां भी न्यायकारी हाकिम ही मानोगे तो जब वे अपने अनुचर अर्थात् अमलेवालोंसहित आवैंगे तो बस यह काम ठहरा: नित्यका गरीब आदमीका तो एक ही दिनमें दिवाला निकल जायगा और भद्रकाली वनस्पति जल मरुत् यह भी कोई आपके चेले विद्वान् घरघर फिरते होंगे जो इन्हें आपने पृथक् २ भाग देना लिखा है पन्द्रह सोलहको कहांतक भोजन करावे और फिर इनके गणोंकी क्या ठीक–"तीन बुलाये तेरह आये देखो गांवकी रीत, बाहरवाले खागये घरके गावैं गीत" बस इनका रोज न्योता करनेसे जिमानेवालेका पटरा ही होजायगा और जो यह कहो कि एक एक ग्रास निकालें तो यह कब एक २ ग्राससे मानेंगे उलटा दंड देंगे कि हमारी इज्जत हतक हुई यदि कहो कि, यह ईश्वरके नाम हैं तो एक भाग निकालना चाहिये फिर (सानुगाय) गणों सहित ऐसे क्यों लिखा यदि कहो ईश्वरके अनन्त नाम हैं तो अनन्त भाग निकालने चाहिये, इतने ही क्यों और आगे सत्यार्थप्रकाशमें आपने यम नाम वायुका लिखा है ('यमेन वायुना सत्य राजन्' कहीं कुछ कहीं कुछ आपके लेखकी क्या ठीक है) इससे यह सिद्ध है कि यह नाम न तो ईश्वरके हैं न विद्वानोंके हैं इन्द्रादिक देवता हैं भद्रकाली आदि देवी हैं इसी कारण स्वामीजीने इनके नाम मात्र लिखे और कुछ अर्थ न लिखा लिखते तो गडबडी मचती मनुजी तो यों लिखते हैं ॥

> मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि ।
> वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥
> उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
> ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत्॥८९॥म० अ० ३

मरुद्भ्यो नमः ऐसा कहकर द्वारमें बलि देवे और जलमें अद्भ्यः ऐसा कहकर बलि दे वनस्पतिभ्यो नमः ऐसा कहकर ऊखलमें मुसलमें डाले इस प्रकार बलि हरण करे ८८ वास्तु पुरुषके शिरप्रदेशमें अर्थात् पूर्व उत्तरदिशामें श्रीके अर्थ बलि देवे उसीके पैरकी और पश्चिम दक्षिण दिशामें भद्रकालीके अर्थ बलि देवे और ब्रह्मा वास्तोष्पतिके अर्थ घरके बीचमें बलि हरण करे ८९ स्वामीजीनें मनुस्मृतिमेंसे यह नमः तो निकाला, परन्तु यह क्रिया न लिखी कि जलमें डाले पूर्व दक्षिण पश्चिमादिमें इस प्रकार बलि दे, पर बात छिपती नहीं देखिये कलई खुलगई ॥

स० पृ० १०२ पं० २१ हवन करनेसे अज्ञात अदृष्ट जीवोंकी जो हत्या होती है उसका प्रत्युपकार करना ॥ १०२ । १९ ॥

समीक्षा–जब कि एक चीजका बदला देदिया जाताहै तो उस ऋणसे व मुक्त होताहै, जब कि कोई पाप करै तो उसका धर्मसे प्रत्युपकार करसक्ते हैं, औ फिर यह उसका अनिष्ट फल नहीं भोगसक्ता जैसे कोई १० रुपयेका कर्जदार हो और उसकी एवजमें कपड़ा बर्तन गहना आदि देदे तो वह कर्जसे च्युत होजाता (प्रत्युपकार) के अर्थ बदलेके हैं जब कि जिसका बदला देदिया फिर उसका क्या अहसान जब कि प्रत्युपकार करदिया तब पापका फल भोगना नहीं पड़ेगा, तो पापक्षय हो गया फिर तुम पापक्षय नहीं मानते जैसे आपने १८२ पृ० में लिखा है और यहां पापक्षय अच्छीतरहसे मान लिया, जब प्रत्युपकार करदिया तो फिर फल भोगना नहीं पड़ेगा ॥ *

स० पृ० १०३ पं० २९ विना अतिथियोंके संदेहकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १०५ । ३ ॥

समीक्षा–यह भी कहना मिथ्या ही है अतिथिसे संदेह क्यों कर निवृत्त हो सक्ताहै और जिन्हें अतिथि जिमानेकी समाई न होवे, वे सन्देहमें ही पड़ेरहें और अतिथिके अर्थ पाहुनेके हैं, जिसके आनेकी कोई तिथि नियत न हो, यदि कोई अतिथि आजाय तो उसे यदि होसकै तो भोजन दे देना, इसमें पुण्य होताहै प यह नहीं कि, यह तो हारा थका भूखा आया आप उसे पावभर अन्न देकर छ घंटेतक मगज मारते बैठ गये, और अतिथि तो भोजनमात्र लेकर चला जायगा यह ठहरता नहीं यदि संदेह हो तो विद्वान् बहुत मौजूद हैं उनसे ही पूछलेना अतिथियोंके शिरपर संदेह निवृत्त करनेका भार नहीं है, अथवा यदि उससे संदेह निवृत्त न हो तो क्या उसे जो कुछ दिया है यह छीन ले और यह नियम नहीं कि सब ही अतिथि पढ़े हों, जो किसी योग्य होगा यह घरसे कुछ लेकर ही चलेगा, तो बस निरक्षर ही अतिथि ठहरे, वे संदेह निवृत्त क्या करेंगे, यह बात भी लिख दी होती कि बेपढ़ा अतिथि नहीं होसक्ता, वह चाहे भूंखों मरता हो पर उसे कुछ न देना, कारण कि वह संदेह तो दूर कर ही नहीं सक्ता और विद्वानोंको तथा जिन्हें संदेह न हो उन्हें भी अतिथियोंको कुछ देना न चाहिये; क्यों कि उन्हें कुछ संदेह तो है ही नहीं, जिसे संदेह हो वह उन्हें जिमावै धन्य है अच्छा अतिथि बताया मनुजी अतिथिके लक्षण लिखते हैं ॥

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ १ ॥

एक रात्रिमें रहनेवाला ब्राह्मण अतिथि होताहै, क्यों कि नित्य रहना नहीं इस

*यहां और श्राद्ध प्रकरणमें भास्कर प्रकाशवाले घबराकर रहगये ।

कारण अतिथि कहाता है ? बस जब संध्या समय अतिथि आया उसकी इच्छा टिकनेकी हुई टिकादिया भोजन देदिया सोरहा सबेरे ही उठकर चल दिया इसी प्रकार सब वर्णोंमें अतिथि होते हैं उन्हें भोजन निश्चय देना ॥

स० पृ० १०६ पं० १७

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ मनु ४ । २३९

परलोकमें न माता न पिता न पुत्र न ज्ञाति सहाय करसके हैं किन्तु एक धर्म ही सहाय रहताहै ॥ १०७।२०

समीक्षा–दयानंदजी तौ इससे यह बात सिद्ध करतेहैं, कि परलोकमें जब कोई सहायकारी नहीं होता, तौ दूसरेका दिया हुआ भी कुछ प्राप्त नहीं हो सक्ता, परन्तु इससे यही विदित होताहै कि, सब सहाय कर सक्ते हैं, और कैसे कर सक्ते हैं, सो लिखाहै कि (धर्मस्तिष्ठति केवलः) केवल धर्म ही स्थित रहताहै, धर्म सहाय करताहै तौ धर्मसे जिसको जो सहाय करैगा वह धर्ममें स्थित होगा वैसे माता पिता शरीरसे सहाय नहीं करसक्ते, धर्मानुष्ठानसे कर सक्तेहैं, धर्मसे पिता पुत्र क पुत्र पिताका उद्धार करताहै विश्वामित्रने अपना तप दे त्रिशंकुको स्वर्ग भेज दिया और भी मनुजीने लिखाहै ॥

दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥ मनु० १

ब्राह्मविवाहसे जो पुत्र उत्पन्न होता है वह सत्कर्मोंको कर्ता है सो दश पुरुष पूर्वके और दश आगे इक्कीसवां अपनेको पापसे छुड़ाताहै, यहांतक एक पुरुषका धर्मानुष्ठान सहायक होताहै ॥

स० पृ० १०९ पं० १८

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ॥
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ भा०

जिसकी प्रज्ञा सुनेहुए सत्य धर्मके अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धिके अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंकी मर्यादाका छेदन नकरै वह पंडित संज्ञाको प्राप्त होवै ॥ १११ । ११

समीक्षा–इस श्लोकके अनुसार तो दयानंदजीमें पंडित शब्द भी नहीं घटसक्ता सुने हुए सत्यधर्मके अनुकूल महात्माजीकी बुद्धि ठीक नहीं स्मृति भी ठीक नहीं, कहीं कुछ कहीं कुछ लिख दियाहै, पहले सत्यार्थप्रकाशमें मृतकश्राद्ध मांसवि-

धान किया फिर कहा मुझे स्मृति नहीं रही भूलसे लिखा गया, जो भूले यह कैसे पंडित और श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरण भी आपमें नहीं पाये जाते, क्यों कि आपने प्राचीन मूर्तिपूजन श्राद्धादि खंडन करके महाभ्रष्ट नियोग पंथ चलायाहै, इससे आप पंडित नहीं अब नियोगके विषयमें लिखा जायगा ॥

नियोगप्रकरणम् ।

स० पृ० ११२ पं० १६

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥मनु०९ । १७६॥*

जिस स्त्री या पुरुषका पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री या पुरुषके साथ पुनर्विवाह न होना चाहिये, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णोंमें क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुषका पुनर्विवाह न होना चाहिये ॥ ११४ । ११

समीक्षा–जब स्वामीजी इस श्लोकका अर्थ करने बैठे थे तो बड़ी भंगकी तरंगमें होंगे इसके अर्थमें दोनों जगह यही लिखाहै कि, विवाह न होना चाहिये परन्तु इतना तो माना ही कि ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका पुनर्विवाह न होना चाहिये परन्तु इस श्लोकमें यह बात नहीं आती और इस श्लोकको स्वामीजीने उड़ा दियाहै सो लिखते हैं यह यहांका श्लोक है कि, जहां मनुजीने बारह प्रकारके पुत्र गिनायेहैं ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति १७६॥अ० ९

जो स्त्री पतिने त्यागन कर दी हो या विधवा हो या अपनी इच्छासे दूसरेकी स्त्री होकर पुत्र उत्पन्न करे, तो उस पुत्रको पौनर्भव कहते हैं । यह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र कहलाता है १७५ वह स्त्री यदि अक्षतयोनि होय तो यदि जाते हुए घरसे निकल गई और या पतिने त्यागन करदीहै फिर आने पतिके पास चली आवे तो कुमार भर्ताको उसको पुनः संस्कार करके ग्रहण करना यदि हुए होय तो, यह परिपाटी सर्वसम्मत नहीं है अथवा वह [illegible]

* १८७८ के छपे [illegible] पृ० ११६ । ८ और इसकी [illegible]
[illegible]

ति फिर स्त्रीका संस्कार कर ग्रहण करे, परन्तु इसके जो सन्तान होगी वह ौनर्भव कहलावैगी, जो प्रशंसित नहीं है स्वामीजीने (वा चेत्) के स्थानमें (या) लिखा है जो प्रसंग विरुद्ध है और यह कैसी बात लिखी कि अक्षतवीर्य पुरुष विवाह न करे क्या विवाह उस समय करे जिस समय सर्व वीर्य क्षत होजाय धन्य है स्वामीजी * ११६ । ७ पृ० ११२ पं० २१ (प्रश्न) पुनर्विवाहमें क्या ोष है (उत्तर) स्त्री पुरुषोंमें प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहें तब पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष छोड़कर दूसरेके साथ सम्बन्ध करलें, दूसरे जब स्त्री वा पुरुष पति स्त्री मरनेके पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तो प्रथम स्त्रीके पूर्व पतिके पदार्थोंको उडा ले जाना और उनके कुटुम्बवालोंका उनसे झगड़ा करना, तीसरे बहुतसे भद्र-कुलका नाम वा चिह्न भी न रहना और उनके पदार्थोंका छिन्नभिन्न होजाना चौथा पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषोंके अर्थ द्विजोंमें पुनर्विवाह कभी न होना चाहिये ११७।१७ (देखिये इसके विरुद्ध लेख) स०पृ० ११३ पं० ९ जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें. ११९।२

समीक्षा–यदि सन्तानकेही अर्थ नियोग है तो जो स्त्री विधवा हो और वंध्या भी हो तो यह कैसे सन्तान उत्पन्न कर सक्ती है, जो कहो कि, यह गोद लडका लेकर कार्य कर सक्ती है तो (जो कि आपने पृ० ११३ पं०४ में गोद लेना लिखाहै) फिर इस महा अनर्थ व्यभिचार नियोगकी आवश्यकता क्या है, जिसे इच्छा होगी गोद लेलेगी, नियुक्त पुरुषका उत्पन्न किया पुत्र जैसे दूसरेका है, उसी प्रकार गोद लिया है, परन्तु गोदका उससे शुद्ध है क्यों कि संस्कारयुक्त है, नियुक्त पुत्र वैसा शुद्ध नहीं क्यों कि उसमें परपतिसे भोग करना पडताहै, इस कारण गोद ही क्यों न लिया जाय, यदि पुत्रके निमित्त नियोग करते हो तो कुछ लाभ नहीं, यदि कामाग्नि मिटानेके लिये यह वेश्याधर्म प्रवृत्त किया है तो दूसरी बात है ॥

स० पृ० ११३ पं० ९ पुनर्विवाह और नियोगमें क्या भेद है (उत्तर)

१ जैसे विवाह करनेमें कन्या अपने पिताका घर छोड पतिके घरको प्राप्त होतीहै और पितासे विशेष संबंध नहीं रहता, विधवा स्त्री उसी विवाहित पतिके घरमें रहतीहै ॥

२ उसी विवाहिता स्त्रीके लडके उसी विवाहित स्त्रीके पतिके दायभागी होते हैं और विधवा स्त्रीके लडके वीर्यदाताके न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका स्वत्व उन लडकों पर रहता किन्तु वे मृतपतिके पुत्र बजते उसीका गोत्र रहता, और उसीके पदार्थोंके दायभागी होकर उसी घरमें रहतेहैं ॥

---

* भा० म० दयानन्दकी अशुद्धि छिपा गये हैं क्यों न हों दोनों स्वामी ठहरे ।

३ विवाहित स्त्रीपुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है, और नियुक्त स्त्रीपुरुषका सम्बन्ध कुछ भी नहीं रहता ॥

४ विवाहित स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध मरणपर्य्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री पुरुषका कार्य पश्चात् छूट जाताहै ॥

५ विवाहित स्त्रीपुरुष आपसमें गृहकार्योंकी सिद्धि करनेमें यत्न किया करते हैं और नियुक्त स्त्रीपुरुष अपने २ गृहका काम किया करते हैं ॥ ११९।३

समीक्षा—दयानंदजीने यह नियोगके पांच नियम कौनसी संहितासे निकाले हैं, क्या यह स्वामीजीकी मिथ्या कल्पना नहीं है, पीछे जो पुनर्विवाहमें चार दोष दिखलाये हैं क्या वे इन पांच नियमोंसे नहीं टूटतेहैं ॥

१ जब कि स्त्री पतिके घर ही रहती है तो सास ससुरकी लाज अधिक होती है और पर पुरुषसे भाषणमें भी संकोच लगताहै, दयानंदजी यह आज्ञा करते हैं कि पतिके घरमेंही परपुरुषको बुलाकर नियोग करें, जब कि स्त्रियोंको पुत्रकी अधिक इच्छा होतीहै, तो उनका पतिसे भी प्रेम न्यून हो जायगा क्यों कि यह तौ उनको विदित ही है कि यदि पति मरजायगा तौ नियोग दूसरेसे कर पुत्र उत्पन्न करलेंगी फिर पुत्रेष्टि व्रत कर्म पुंसवन आदि भी कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं, एवं लज्जा आदि सब खो बैठेंगी परन्तु--

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ॥
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृतांगना॥मनु०९।४५

पुरुष और स्त्रीका आत्मा मिलके प्रजा होतीहै, इस कारण वेदके जाननेवाले विप्र कहते हैं, जो पति वह ही भार्या उससे जो भार्यामें उत्पन्न होताहै वह पतिका पुत्र कहाताहै, यह मनुजी कहते हैं, तौ नियुक्त पुरुषसे संतान उत्पन्न करी हुई चाहे किसीके घर क्यों न रहै, परंतु उस सन्तानमें नियुक्त पुरुषकेही गुण आवेंगे जैसा वेदमें लिखाहै (अङ्गादङ्गादिति) पुत्र पिताके अंग २ से उत्पन्न होता है तौ उस पुत्रमें नियुक्त पुरुषके लक्षण निश्चय ही आवेंगे, और वह पुत्र है भी उसीका क्यों कि आम बोनेसे आम ही होगा, नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न हुए बालकका मृत पुरुषसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं और दायभाग तौ गोदलिये पुत्रका होता है, जिसे सर्व सम्मतिसे स्त्री पुरुष गोद लेते हैं "प्रत्यक्षमें देखा जाता है कि कैसा ही गोत्र क्यों न हो परन्तु जाननेवाले तौ जो जिससे उत्पन्न होताहै उसी नामसे पुकारते हैं यथा वायुतनय भीम, इन्द्रतनय अर्जुन, धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि" और जब कि वह नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न पुत्र मृतके धनका अधिकारी हुआ तौ भी स्वामीजीका यह कहना कि (यदि पुनर्विवाह होगा तौ धन दूसरोंके हाथ लग

जायगा) मिथ्या ही हुआ क्यों कि अबभी उस मृतकका धन दूसरोंकेही हाथ लगा, अपना पुत्र तो जभी होगा जब अपनेसे उत्पन्न होगा, वह नियुक्त मृतकके गोत्रसे संबंधी नहीं होता, देखिये ऋग्वेदमें लिखा है जिसकी व्याख्या कलकत्तेके छपे हुए निरुक्तके २५४ पृष्ठमें की है ॥

परिषद्यंह्यरणस्यरेक्णो नित्यस्यरायः पतयः स्याम ॥
नशेषोअग्नेअन्यजातमस्त्यचेतानस्यमापथोविदुक्षः ॥
ऋ० ५ । २ । ६ । ७

(निरुक्तभाष्यम्) परिहर्तव्यं हि नोपसर्तव्यमरणस्य रेक्णोऽरणोऽपार्णो भवति रेक्ण इति धननाम रिच्यते प्रयतो नित्यस्य रायः पतयः स्याम पित्र्यस्येव धनस्य न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतोऽचेतयमानस्य तत्प्रमत्तस्य भवति मानः पथोविदूदुष इति तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय-३।२ निरु०

भावार्थ-एक समय हतपुत्र वसिष्ठने अग्निकी स्तुति याचना करी कि मुझे पुत्र दे तब अग्नि देव बोले कि क्रीतक दत्तक कृत्रिम आदि पुत्रोंमें कोई एक पुत्र बनालो, यह बात सुन वसिष्ठजी औरससे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी निन्दा करते हुए और निज वीर्यसे पुत्र चाहते हुए यह वेद मंत्र बोले ॥

(परिषद्यं) त्याग देने योग्य है वह पुत्ररूपी धन जो कि (अरणस्यरेक्णः) पर कुलमें उत्पन्न है, जिसमें उदकसम्बन्ध नहीं है, कि वह परकीय होनेसे पुत्रकार्यमें समर्थ नहीं होता, चाहे उसकी पुत्रकार्यमें कल्पना कर लो, इस कारण (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) (पित्र्यस्येव धनस्य) जैसे पिताका धन पुत्रत्वमें होता है इसीसे वह उसके धनका स्वामी होता है, क्यों कि वह स्वयं अपनेसे उत्पन्न होता है (अपत्य कहाता है) इसीसे मुख्य होता है क्षेत्रज क्रीतक ऐसे नहीं इसीसे कहते हैं कि जो नित्य आत्मीय अगौण अपनेसे उत्पन्न जो पुत्ररूपी (रायः) धन तिसीके हम (पतयः) मालिक पालनेवाले हों, परकीयके नहीं जिससे कि (नशेषोअग्नेअन्यजातमस्ति) औरससे उत्पन्न हुआ अपत्य नहीं होता है जो उत्पन्न करता है वह उसीका होता है दूसरेका नहीं जो (अचेतयमानस्य) अचेतयमान अर्थात् अविद्वान् प्रमादी जो शास्त्रसे रहित हो वह भी धर्मसे परितोष मात्र होता है कि यह मेरा पुत्र है इससे कहते हैं कि (मापथोविदुक्षः) कि हमको पितृ पितामह प्रपितामहकी अनुसन्तातिके (पथः) मार्गसे (विदूदुषः) तू औरस पुत्र दे यह आशय है जो अपने वीर्यसे अपनी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न हो वह औरस पुत्र कहाता है ॥

अपत्यं अकस्मात् अपततं भवति नानेन पततीति वा। नि०३।२-

अर्थ–" अपत्यं कस्मादुच्यते अपततं भवति पितुः सकाशादेत्य पृथगिवं ततं भवति अथवा अनेन जातेन संता पितरो नरके न पतन्ति ॥ " (भाषा) अपत्य नाम पुत्रका क्यों है पितासे उत्पन्न होकर पृथक्की नाई विस्तृत होता है वा जिसके उत्पन्न होनेसे पितर नरकमें नहीं पडते हैं इससे अपत्य कहते हैं ॥

"पुत्रः पुरु त्रायते बहुपि यत् पित्रा पापं कृतं भवति ततोयं त्रायतीति पुत्रः॥"

भाषा–जो कि पिताने पाप किया है उससे पिताकी रक्षा करनेसे इसका नाम पुत्र है " निपरणाद्वा निपृणाति निददाति ह्यसौ पिण्डान् पितृभ्यः इति पुत्रः " जो कि पितरोंके वास्ते पिण्डोंको देता है वह पुत्र कहाता है ॥

(अरणोऽपाणः) जिससे जलका सम्बन्ध नहीं है अर्थात् मृतक हुए पिताको जिसका दिया हुआ जल न पहुँचे उसे " अरणः कहते हैं इतो लोकादमुं लोकं प्रयतः म्रियमाणस्यत्यथः शेप इत्यपत्यनाम तद्धि शिष्यते " पिताके परलोकमें जानेसे यह यहीं रहता है इस कारण इसे शेप कहते हैं ॥ अण इत्युदकनामसु पठितम् निघ० १। १२

नहिग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्योमनसामन्तवाउ ॥
अधाचिदोकः पुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषालेतुनव्यः ॥
ऋ० मं० ५। २। ६। ८

भाष्यम्–नहि ग्रहीतव्यो रणः सुसुखतमोप्यन्योदर्यो मनसापि न मन्तव्यो ममायं पुत्रमित्यथ स ओकः पुनरेव तदेति यत आगतो भवत्योक इति निवासनामोच्यत एतु नोवाजीविजनवानभिषहमाणः सपत्नान्नवजातः स एव पुत्र इत्यथैता दुहितृदाया थ उदाहरन्ति पुत्रदायाद्य इत्येके ॥ नि० ३। ३ *

(नहि ग्रभायेति) नहीं अंगीकार करने योग्य है क्यों कि यह पुत्र नहीं है (अरणः)अपार्णः उदक सम्बन्ध अपगत होनेसे अन्य कुलमें उत्पन्न होनेसे यद्यपि (सुशेवः) सुखतमः अर्थात् सुख देनेवाला हो (अपि अन्योदर्यः) औरके वीर्यसे उत्पन्न हुआ वह अन्यके उदरसे (जो अपनी विवाहित सवर्णा स्त्री नहीं है) उत्पन्न हैं (अङ्गों हवा एप आत्मनो यज्जायते विज्ञायते) जो अपने वीर्यसे अपनी जायामें उत्पन्न हो वह उदर संभूत है इस कारण मुझे अन्य जायासे उत्पन्न पुरुष मनसे भी अंगीकार नहीं है क्योंकि (अधि) जिससे (ओकः) अपने वंशको यह बहुत कालमें प्राप्त होता है (अपने वीर्यसे अन्यमें उत्पन्न) (तद्द्य एव भवति) इस कारण यह अपुत्र है (ऐतु) आवै वा प्राप्त हों (नः वाजी)

* भा० प्र० इन मन्त्रोंके निरुक्त विरुद्ध अर्थ होनेसे त्याज्य हैं। तुलसीरामजी नियोगसे पुत्रमात्रा जो आप लिखते हो निरुक्तमें तो इसका कोई पद भी नहीं है फिर धींगा धींगी क्यों करते हो।

वेगवाला शत्रुओंको भयदाता (अभीपाट्) वैरियोंका तिरस्कार करनेवाला (नव्यः) नव जात पुत्र शिशु वह सवर्णासे उत्पन्न पुत्र प्राप्त हो अन्यजात नहीं. अब दयानंदजीको और उनके शिष्योंको निरुक्तकृत व्याख्यासहित इस मंत्रपर ध्यान देना चाहिये यह वसिष्ठजी क्या स्वामीजीसे कमती विद्वान्थे जो चाहते हैं कि अन्यजात पुत्र मैं नहीं चाहता और उससे उदक आदि संबंध कुछ नहीं हो सक्ता और आगे आपने नियोगसे दश सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दे दीहै तौ जब स्त्री नियोगसे १० सन्तान उत्पन्न करै तौ फिर उस पुरुषका सम्बन्ध छूट जावै इसका उत्तर यह है यदि दो दो वर्ष बाद भी एक २ सन्तान हो तो वीसवर्षतक जिसका सम्बन्ध रहै फिर वह क्यों कर छूट सक्ता है जो कि स्त्री एक बार परपुरुषगामिनी हो चुकी फिर क्या सन्तानके लालचसे यह प्रीति छूट सक्ती है २० वर्षका अभ्यास सहजमें छूट सक्ता है क्या बालक उससे उत्पन्न होंगे उसमें भी नियुक्त पुरुषका असर निश्चय ही आवैगा वीर्यका गुण अवश्य आवेगा जब कि पिताको उपदंशादिकी बीमारी हो तौ पुत्रमें आजातीहै फिर गुण स्वभाव तौ अधिक ही सूक्ष्म है वह भी अवश्य आवेंगे और दयानंदजी वह नियम (कि विवाह पुनः करनेमें भद्र कुलका नाम भी नहीं रहता पदार्थ छिन्न भिन्न हो जांयगे) बिगड जायगा क्या कि जब सन्तान दूसरेकी है तौ अपने पिताकी ही ओर झुकैंगी उस मृतकका मालमत्ता तौ औरोंके ही हाथ लगा इस कारण मृतक पुरुषके धनके उसके भ्राता आदि ही अधिकारी हो सके हैं फिर स्वामीजीने लिखा है कि पुनर्विवाहमें स्त्रीधर्म पतिव्रतधर्म नष्ट हो जाता है (और नियुक्त पुरुष भोगनेके पश्चात् अपने घरका काम करैं) वाहजी बुद्धिमान् पुनर्विवाहमें तौ पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाता है जो एक ही पतिके आश्रित रहै और नियोगमें ११ पुरुषों तक स्त्री संभोग करै तौ भी पतिव्रतधर्म नष्ट न हो देखिये इन परमहंसजीकी बुद्धिमानी वाह ग्यारह पुरुषोंके भोगवाली स्त्री पतिव्रता यह तो गृहस्थ स्त्रियोंको वेश्या ही बनाया सब थोडे ही इसे मानैंगे यह कर्म वह ही आपके अनसमझ अनुयायी करैंगे जो तुम्हारे वाक्योंको पत्थरकी लकीर मानते हैं जाने इन लोगोंकी मतिपर क्या पत्थर पडे हैं जो इस व्यभिचार भरी कथाको प्रीतिसे सुनते और उसकी रीति प्रचार करनेका यत्न करते हैं, और यह एक बात तो विषयी पुरुषोंको लाभकी लिख दीहैं, कि रातको नियुक्त स्त्री पुरुष अपने एक बिस्तरपर, सवेरे अपने २ कामकाज करैं (शायद विवाहित स्त्री पुरुष दिनको घरका काम काज नहीं करते होंगे दिनरात एक बिस्तरपर रहते होंगे) सो विषयी पुरुषोंका बहुत द्रव्य बचैगा क्यों कि वेश्याके यहां जानेसे तौ द्रव्य खर्च होताहै तुम्हारे

नियमानुसार ऐसे मत माननेवालोंकी विधवाओंके यहां रातको वे झटके प्रवेश कर गये, सवेरे ही चले आये, जबतक गर्भ न रहे यही कृत्य करते रहें, परन्तु स्वामीजी तो अमोघवीर्य थे, कुछ सन्तान तो उत्पन्न कर जाते जो वैदिक यंत्रालय और आपके दुशाले घड़ी चैनके मालिक होते, जब स्त्रीको सन्तानार्थ ग्यारह पुरुषोंकी आज्ञा है तो अच्छे वीर्यवाले पुरुष तो बहुत ही कम सौमें कोई पांच ही होंगे विना, संभोग परीक्षा नहीं होती तो लीजिये अब सैकडों पति बनाने पड़े और जो कोई मनोहर मिलगया तो ससुर और पतिकी कमाई और अपना सब गहना पाता ले उसके संग हुई जन्म पर्यन्त आपको दुआएं देती रही और पुरुष भी आपको गुण गाते रहे शोक है इस महा अनर्थपर ॥

स० पृ० ११३ पं० २१ जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाताहै उन्हींका नियोग होताहै प० २६ वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लडकोंका पालन करके नियुक्त पुरुषको दे दे; ऐसे एक २ विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषोंको सन्तान कर सक्ती और एक मृतस्त्री पुरुष भी दो अपने लिये दो दो अन्य चार विधवाओंके लिये पुत्र उत्पन्न कर सक्ता है, ऐसे सब मिलकर दश सन्तानोत्पत्तिकी आज्ञा वेदमें है ॥ ११९ । २३.

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ॥ दशास्यां पुत्राना-धेहि पतिमेकादशं कृधि ऋ० म० १० सू० ८५ म० ४५

(हे मीढ्व इन्द्र) वीर्य सींचनेमें समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहिता स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य युक्त कर, इस विवाहिता स्त्रीमें दशपुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्रीको मान, हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवां पतिको मान इस वेदकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश दश सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करें, क्यों कि अधिक करनेसे सन्तान निर्बल निर्बुद्धि और अल्पायु होतेहैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्थामें दुःख पाते हैं ॥ ११९ । २८.

समीक्षा-धन्य है ! स्वामीजी कलियुग धीरे २ आताथा, आपने उसे शीघ्र प्रवृत्त करनेका ढंग निकाला एक स्त्री चार नियुक्त पुरुषोंके अर्थ और दो अपने लिये उत्पन्न कर ले यह तो घरकी खेती समझ ली जब गये और पुत्र होगया, कन्याका नाम ही नहीं, सब पुत्र ही पुत्र होंय, यदि यह ईश्वरकी आज्ञा है तो सत्यसंकल्प है, सबके पुत्र ही होने चाहियेथे कन्या एक भी नहीं, बस सारा यहीं समाप्त हो जाता परन्तु यह देखा नहीं जाता इससे यह वेदमंत्रका

अर्थ नहीं है बहुतेरे निस्सन्तान रहते हैं, यह व्यभिचारका प्रचार भारतवासियोंको महाअंधकारमें डालनेहारा है; इसमें वेदमंत्रको क्यों सानलिया अपनी कोई मिथ्या संस्कृत बना ली होती, वेदमें ऐसी बातें कभी नहीं होतीं यह विवाहप्रकरणका मंत्र है,आशीर्वाद अर्थमें है इसके अर्थ इस प्रकार हैं ॥

विवाहमें प्रार्थना करते हैं (मीढ्वः) सब सुखकारी पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त देव इन्द्र (त्वम्) आप (इमाम्) इस विवाहिताको (सुपुत्राम्) अच्छे पुत्रवाली (सुभगाम्) सौभाग्यवती (कृणु) करो (दश) दश (अस्याम्) इसमें (पुत्रान्) पुत्रोंको (आधेहि) धारण कराओ (पतिम् एकादशम्) दश पुत्रोंके साथ ग्यारहवां पति चिरंजीव (कृधि) कीजिये मंत्रमें एकादशपद पूरण प्रत्ययान्त है उसका अर्थ ग्यारहवां पति ऐसा होगा दशपुत्र मंत्रमें स्पष्ट पढे हैं उसमें ग्यारहवीं संख्याको, पूर्ण करनेवाला पति है तब यह अर्थ हुआ हे देव ! आपकी कृपासे दश पुत्र और पति यह ग्यारह विद्यमान रहें सीधा अर्थ छोड स्वामीजीने व्यर्थ क्लिष्ट कल्पना की है यदि नियोगपर यह प्रार्थना है तौ प्रत्येक नियोगमें पढनेसे ग्यारह बारमें १२१ एक सौ इक्कीस पतिकी प्रार्थना होजायगी, इसके लिये ईश्वरसे नियोगियोंकी अवस्था बढानेका कानून पास करालो ॥

यह स्वामीजीने न सोचा कि, यदि एकादश पति पर्यन्त नियोग करनेकी ईश्वरकी आज्ञा है तो ईश्वर तो सत्यसंकल्प है तब तो सब स्त्रियोंके दश दश पुत्रसे कमती होने ही नहीं चाहिये, यदि दश दशसे कमती होंगे तो परमेश्वरका संकल्प निष्फल होगा, इससे स्वामीजीका किया अर्थ अशुद्ध है ॥ पुराने अर्थमें सौभाग्यवती होनेकी प्रार्थना, दयानन्दी मतमें ग्यारह खसम करानेकी प्रार्थना है । ×

अब विचारनेकी बात है कि इसमें नियोगप्रचारका कौनसा शब्द है, दयानंदजीने तो यह समझ लिया कि हमारे अनुयायी हमारे वाक्यको पत्थरकी लकीर मानते हैं वेदपर टीका भी हमाराही किया मानते हैं, जो चाहें सो बकवाद किये जांय, आपके, मतमें तो किसीके दशसे कमती पुत्र ही न होने चाहिये जिनके कमती हों वह आपके वाक्यानुसार कुछ फिक्र करें और दश सन्तानोंमें समय कितना लगेगा यह आपने न लिखा ॥

(पृ० ११४ से पृ० ११९ तक) यह वेश्याके सदृश कर्म दीखता है (उत्तर) नहीं क्यों कि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है

× मेरठके स्वामी यह 'ग्यारहवां पति कर' ऐसा अर्थ करतेहैं उनसे पूछनाहै कि ग्यारहवां तो पति करे और दशको क्या बनावे । यहां तो खूब गोलमोल कुडकाई है ।

और नियोगमें विवाहके समान नियम हैं जैसे दूसरेको विवाहमें लडकी देनेसे लज्जा नहीं आती वैसे ही नियोगमें भी लज्जा नहीं करनी चाहिये, जो नियोगकी बातमें पाप मानते हो तौ विवाहमें भी पाप मानो, नियोग रोकनेमें ईश्वरके सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुषका स्वाभाविक व्यवहार नहीं रुकसक्ता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण विद्वान् योगियोंके क्यों कि जवान स्त्री पुरुषोंको सन्तानोत्पत्ति विषयकी चाहना रुकनेसे महासन्ताप होता है और गुप्त २ वे करते ही हैं, जो जितेन्द्रिय रहें नियोग न करें तौ ठीक है, जो न रुकसकें तौ उनका विवाह और आपत्कालमें नियोग अवश्य होना चाहिये, ऊंचसे नीचका नीचसे ऊंचका व्यभिचाररूप कुकर्म होनेसे कुलमें कलंक वंशका उच्छेद स्त्रीपुरुषोंके सन्ताप नियोगसे निवृत्त होते हैं, जैसे प्रसिद्धिसे विवाह करे तैसे ही प्रसिद्धिसे नियोग, जब नियोग करें तब अपने कुटुम्बमें पुरुषस्त्रियोंके सामने कहें हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्तिके लिये करते हैं, जब नियोगका नियम पूरा हो जायगा तब संयोग न करेंगे इसमें भी कन्या और वरकी प्रसन्नता लेनी अपने वर्णमें वा अपनेसे उत्तम वर्णसे नियोग करना, वीर्य सम वा उत्तम वर्णका चाहिये अपनेसे नीचका नहीं स्त्री और पुरुषकी सृष्टिका यही प्रयोजन है कि वेदोक्त रीतिसे विवाह वा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करना, द्विजोंमें स्त्री वा पुरुषका एक वार ही विवाह होना, वेदादिशास्त्रोंमें लिखा है दूसरा नहीं जिसकी स्त्री मरजाय उसके साथ कुमारीका विवाह नहीं करना और विधवाका कुमारके साथ विवाह न करे तो पुरुष और स्त्रीको नियोगकी आवश्यकता होगी, यही धर्म है जैसेके साथ वैसेका ही संबंध होना चाहिये यह दोनों पृष्ठोंमेंसे संक्षेप कर सारांश ले लिया है ॥ पृ० ११६ से पृ० ११७ तक

समीक्षा—आप ही प्रश्न करतेहैं कि यह कर्म वेश्याके सदृश दीखता है आप ही उत्तर देते हैं कि नहीं, यदि यह कर्म वेश्याके सदृश न होता तो महात्माजीके मुखसे ऐसी बात क्यों निकलती जैसी बात होती है वैसी मुँहसे निकल ही जाती है, यह जो लिखा है कि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुषका नियम नहीं नियोगमें विवाहके समान नियम है, सो नियोगमें कोई नियम नहीं, ग्यारह पति बनानेतककी आज्ञा है, वस नियम कैसा "और जैसे विवाहमें लज्जा नहीं वैसे ही नियोगमें लज्जा नहीं करनी चाहिये" यहां तौ आपने लाजको भी तिलांजलि देदी, इस ग्रंथका नाम निर्लज्जप्रकाश क्यों न रख दिया, विवाह तौ आपने अक्षतयोनिका ठहराया, और विधवाका विवाहके समान नियोग, तौ पतिव्रता वेश्या एक ही बनाई, काँच कपूर एक ही भाव कर दिये, क्यों न हो आप तौ समदर्शी हैं, जब कि ईश्वरकी सृष्टिक्रमानुकूल मनुष्यका स्वभाव कामचेष्टामें रुक ही नहीं सकता तौ भला योगी कैसे रोक सकते हैं यदि योगी रोकलें तौ ईश्वरकी

सृष्टिका क्रम मिथ्या हो जाय, दोनोंमें एक बात लिखी होती या तो ईश्वरकी सृष्टिका क्रम वृथा था वह, और जो योगियोंने सृष्टिक्रम उल्लंघन करदिया तौ वे ईश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल हुए, जब योगियोंको सृष्टिक्रम नहीं व्यापता फिर तौ वे सब ही कुछ सृष्टिक्रम विरुद्ध करसक्ते हैं, यह स्वामीजीकी बात परस्पर विरुद्ध है इससे अप्रमाण है पीछे तौ नियोगसे सन्तानोत्पत्तिका प्रयोजन बताया और अब लिखा कि जवान स्त्रीपुरुष विषयकी चाहना होनेसे सन्तापित होते हैं, नियोगसे उसे शान्त करलेंगे यह बात स्वयं महात्माजीपर बीती है नहीं तौ "जाके पैर न फटै बिवाई, सो क्या जानै पीर पराई" यह सूझती कैसे फिर लिखा है कि, जितेन्द्रिय रहैं नियोग न करैं तौ ठीक है, यह आपने क्या कही, नियोग विषयको महाकष्ट उठाकर वेदसे सिद्ध कर सृष्टिके क्रम और प्रयोजनमें बताया ईश्वरेच्छा ठहराई तौ फिर यह सृष्टिक्रम विरुद्ध ईश्वरेच्छाके प्रतिकूल वेदका क्यों निरदार करते हो "नास्तिको वेदनिंदकः" वेदाज्ञा न माननेवाला नास्तिक होता है " जो न रुकसकैं उनका नियोग विवाह करदो" यह क्या ? अभीतक तो विधवाविवाहका निषेध और अब व्याह करनेकी आज्ञा सुना दी, यदि कहो विवाह कुमारकुमारीका कहा है सो यहां यह प्रसंग नहीं और उनका तौ होता ही है, लिखनेकी क्या आवश्यकता थी या वे भी जितेन्द्रिय रहैं, तौ ईश्वरकी सृष्टि क्यों कर बढैगी, यदि यह पशुधर्म भारतमें चलता तो यह देश रसातलको चला जाता, स्वामीजी चलानेको थे सो चलदिये " आप ही नीच ऊँच वर्णमें व्यभिचार होनेसे कुलमें कलंक और वंशोच्छेद होना लिखते हैं यहां स्पष्ट जन्मसे जाति मान ली कारण कि वीर्य शरीरसे होता है और आप ही अपनेसे उच्च वर्णका वीर्य नियोगमें ग्रहण करना लिखते हो " यह साक्षात् वर्णसंकरताका हेतु है ऊँच नीच तौ हो ही गया देखिये मनुस्मृति–

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥
क्षत्रशूद्रवपुर्जंतुरुग्रो नाम प्रजायते ॥
सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥
अ० १० श्लो० ८, ९, ५.

ब्राह्मणसे वैश्यकन्यामें अम्बष्ठ नाम जाति उत्पन्न होती है और ब्राह्मणसे

शूद्रकन्यामें निषाद जाति जिसे (पारशव) कहते हैं उत्पन्न होती है १ क्षत्रियसे शूद्रकन्यामें क्रूराचार विहारवाला और क्षत्रिय शूद्र स्वभाववाला उग्र जातिवाला उत्पन्न होता है २ इससे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको अपनी समान जाति और पुरुषसम्बन्धरहित ऐसी कन्यासे यथाशास्त्र विवाहादि व्यवहार करना चाहिये उस स्त्रीमें जो सन्तान उत्पन्न होवें उसे उसी जातिका जानना चाहिये शेष वर्णसंकर जानने ॥

स्वामीजीने तौ यहां मनुस्मृति भी न देखी इच्छा तौ भारतवर्षको वर्णसंकर बनानेकी थी परन्तु यमराजने पूर्ण नहीं होनेदी ":पुनः लेख है पृ० ११५।१ नियोगसे भी विवाहकी नाई प्रसिद्ध रीतिसे करै उस स्त्रीकीभी प्रसन्नता लेले " प्रसिद्ध करनेको कोई विज्ञापन देदे या ढंढोरा पिटवादे या मिठाई बँटवादे कि, मैं नियोग करूंगा, अब मुझसे रहा नहीं जाता इसी प्रकार यह स्त्री भी अपनी सम्मति प्रकाश करै कितनी निर्लज्जता भरी बात है क्या कहाजाय " नियोग और विवाहसे ईश्वरकी सृष्टिका प्रयोजन है:" यदि ईश्वरकी यही इच्छा थी कि सृष्टि बढै तौ उसने अग्नि वायु आदिकी नाई करोडों जीव एक संग ही क्यों न उत्पन्न करदिये, अथवा स्त्रियोंको विधवा क्यों किया, जो उनके स्वामी विद्यमान रहते तो विचारियोंको ऐसी कठिनाज्ञा क्यों दी जाती यदि कहो कि यह सुख दुःख कर्मानुसार ही होता है, कर्मानुसार ही विधवा होती हैं, तौ भी आप सृष्टिक्रम प्रतिकूल ही करते हैं, क्यों कि ईश्वर जब कर्मानुसार सुख दुःख देता है, तौ जो कर्मानुसार दुःख पानेको विधवा हुई तुम उसका कर्मानुकूल दुःख मेटनेका उपाय करके ईश्वरका नियम तोडना चाहते हो और यह भी ठीक नहीं कि सन्तान जानै कैसी हो ईश्वरकी कर्मानुकूल व्यवस्थामें हस्ताक्षेप करना वृथा है, नियोगसे सृष्टि नहीं बढ सक्ती उसकी सृष्टि अनन्त हैं, कौन पार पा सकताहै इस ब्रह्माण्डमें करोडों लोक उसने रचदिये हैं किसीके बढाये घटायेसे उसकी सृष्टि बढ घट नहीं सक्ती आप पुरुषका दूसरा विवाह नहीं बताते हो ॥ सुनिये–

वंध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ८२ मनु० अ० ९

रजस्वला होनेसे आठ वर्षतक कोई सन्तान नहीं हो तो दूसरा विवाह करै और पुत्र होके मर २ जाते हों तो दशवें वर्ष उपरान्त दूसरा विवाह करले और कन्या ही उत्पन्न हों तो ग्यारहवें वर्षमें विवाह करै और अप्रिय बोलनेवाली स्त्री हो तो

उसी समय दूसरा विवाह करै ८१ जो बीमार रहे और पतिके अनुकूल हो शील-वाली भी हो तो उसकी आज्ञा लेके दूसरा विवाह करै, उसका अपमान करना उचित नहीं है ॥ ८२ ॥

स० पृ० ११९ पं० ३१ जैसे विवाहमें वेदादि शास्त्रका प्रमाण है वैसा नियोगमें प्रमाण है या नहीं (उत्तर) इस विषयमें बहुतसे प्रमाण हैं सुनो ॥

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विनाकुहाभिपित्वंकरतःकुहोषतुः ॥
कोवांशयुत्राविधवेवदेवरंमर्य्यं न योषाकृणुतेसधस्थआ ॥
ऋ०-मं० १०सू० ४० मं० २

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो जैसे (देवरं विधवेव) देवरको विधवा (योषाम-र्य्यन्न) विवाहित स्त्री अपने पतिको (सधस्थे) समान स्थान शय्यामें एकत्र होकर सन्तानोत्पत्तिको (आकृणुते) सर्व प्रकारसे उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहाँ रात्रि और (कुहवस्तः) कहां दिनमें वसे थे (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थोंकी प्राप्ति (करतः) की और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करतेथे (कोवांशयुत्रा) तुम्हारा शयन स्थान कहां है, तथा कौन वा किस देशके रहनेवाले हो इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेशमें स्त्री पुरुष संग ही रहें और विवाहित पतिके समान नियुक्त पतिका ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति करले (प्रश्न) यदि किसीका छोटा भाई भी न हो तो विधवा स्त्री नियोग किसके साथ करै (उत्तर) देवरके साथ परन्तु देवर शब्दका अर्थ जैसा तुम समझे हो वैसा नहीं है देखो निरुक्तमें ॥

देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते । नि० अ० ३ खण्ड १५ ॥

देवर उसको कहते हैं जो विधवाका पति दूसरा होता है, छोटा भाई वा बडा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपनेसे उत्तम वर्णवाला हो जिससे नियोग करै उसीका नाम देवर है ॥ पृ० ११८।४ से।

समीक्षा-धन्य है स्वामीजी बडा भारी जाल डालाहै, इस मंत्रमें तो नियो-गका कुछ भी आशय नहीं निकलता यह कौन किससे पूछता है, क्या परदेशी लोग स्त्रियोंसे पूछें कि तुम रातमें कहांथी कहां सन्तानोत्पत्ति कर रहे थे, या ईश्वर स्त्री पुरुषोंसे पूछताहै कि तुम दोनों कहां थे क्या ईश्वर अज्ञान है, जो विधवासे रति करै वह देवर चाहे बडा हो या छोटा, शोक है ऐसी बुद्धिपर नियोग कर-नेमें बडा भी जो ज्येष्ठ हो तो स्त्रीका देवर होजाय, इस मंत्रमें अश्विना इस पदसे

स्त्री पुरुषका ग्रहण करके केवल जाल रचा है मिथ्या अर्थ किये हैं इस मंत्र अश्विनी यह शब्द देवताका वाचक है स्वामीजीने इसमें कुछ प्रमाण नहीं लिखा है निरुक्तमें यह लिखा है ॥

अथातोद्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ ॥
निरुक्तदैवतकाण्ड अ० १२ खं० १

अब द्युस्थान देवताओंका व्याख्यान करते हैं सर्व द्युस्थान देवताओंके मध्य अश्विनी यह दो देवता प्रथम यज्ञमें आगमन करते हैं यह निरुक्तकारका मत है अब इससे यह सिद्ध हुआ कि अश्विनी देवता हैं अब इस मंत्रका अर्थ लिखते हैं जो निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने लिखा है इसका अश्विनी कुमार देवता जगती छन्द है हे अश्विनौ " कुहस्वित् दोषा " " क युवां " (रात्रौ) " भवथः " (कुहवस्तोः) क वा (दिवा) भवथः युवाम्) येननापि रात्रौ अस्माकं दर्शनमुपगच्छथः (नापि दिवा) स्विदिति परिदेवनायाम् ईर्ष्यायां वा (कुह) क च (अभिपित्वम्) अभिप्राप्तिं स्नानभोजनाद्यर्थं (कुरुथः) कुह क वा (ऊषतुः) (वसथः) सर्वथा न विज्ञायते वामागमनप्रवृत्तिः किञ्च (कोवांशयुत्रा) कतमो युवां यजमानः शयुत्राशयने किं विधवा इव देवरम् यथा विधवा मृतभर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवरमुपचरति स हि प रकीयत्वात् नार्या दुराराध्यतरो भवति यत्नेनोपचर्यते न तथा निजो भर्ता तस्मात् तेनोपमिमीते अश्विनौ तथा मर्य मनुष्यं देवरं सैव मृतभर्तृका (योषा) आकुरुते आभिमुख्येन कुरुते को वामेवमाभिमुख्येन (सधस्थे) सहस्थाने समाने सह योगिना चात्मना कृत्वा परिचचार येनेह नोपगतवन्तौ स्थोऽस्मद्दर्शनमिति एवमस्यामृचि देवरेण कनीयसा ज्यायांसावश्विनावुपमीयेते विधवया च यजमानः ॥

भावार्थः--हे अश्विनौ तुम दोनों रात्रिमें कहांथे और (वस्तोः) नाम दिनमें कहांथे जिससे न रात्रिमें न दिनमें तुम्हारा दर्शन हमें मिला स्नान भोजना दिकी प्राप्ति कहां की कहां निवास किये सर्वथा तुम्हारी आगमन प्रवृत्ति नहीं जानी जाती (कोवांशयुत्रा विधवा इव देवरम्) शयनमें देवरको विधवावत कौन यजमान तुमको परिचरण करता हुआ क्यों कि परकीय पति होनेसे दुरारा देवरको मृतभर्तृका यत्नसे आराधन करती है (इस कर्मको निन्दित जान छिपक बडे यत्नसे उससे मिलती है) तद्वत् तुमको किस यजमानने आराधन किया, य एकान्तस्थानमें मृतभर्तृका नारी मनुष्यको अपने शरीरके साथ सम्बन्धकर परि रण करती है तद्वत् तुम्हारी किसने सेवा की, जो हमें दर्शन नहीं प्राप्त हुए इ मन्त्रमें अल्प देवर कर महान्त अश्विनीकुमार उपमेय होते हैं और विधवा शब्द

यजमान उपमेय होता है इस स्थलमें (॥ हि परकीयत्वात् नार्य्यां दुराराध्यतरो भवति) जब कि देवरको परकीयत्व कहा तो दूसरीका पतित्व हो गया, स्वामीजी स्त्रीरहितका नियोग मानते हैं तो इस मन्त्रमें नियोगका कुछ भी आशय नहीं प्रतीत होता, प्रत्युत मृतभर्तृकाका देवरके पास जाना भी शंकायुक्त इस दृष्टान्तसे विदित होता है, आपके नियोगमें निःशंक आज्ञा है जो विधवा कभी देवरसे व्यभिचारमें प्रवृत्त हो तो बड़ी छिपकर प्रवृत्त होती है क्यों कि अधर्म है इसमें, यह दृष्टान्त है आज्ञा नहीं है उस पुरुषको जिसके स्त्री न हो वोह बात इस मन्त्रसे तनकभी नहीं प्रतीत होती यह मन्त्र प्रातःकाल अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिका है, अग्निष्टोमादि यज्ञोंके प्रातरनुवाक और आश्विन शस्त्रमें इसका विनियोग है पदार्थः-(अश्विनौ) हे अश्विनीकुमार देवो (कुहस्वित्) तुम दोनों कहां (दोषा) रात्रिमें होते तथा (कुहवस्तोः) कहां दिनमें होते हो (कुहाभिपित्वं करतः) कहां इष्टकी प्राप्ति करते हो (कुह ऊषतुः) कहां वसते हो (कः) कौन यजमान (वाम्) तुम दोनोंको (सधस्थे) यज्ञवेदीरूप स्थानमें (आकृणुते) सेवा करनेको सन्मुख करताहै जैसे (शयुत्रा) शय्यापर (विधवेव देवरम्) वाग्दानके पश्चात् जिसका पति मरगया हो वह देवरके संग विवाही जाकर जैसे उसे प्रसन्न करती सेवामें तत्पर होतीहै अथवा (मर्य न योषा) सब स्त्री एकान्तमें जैसे अपने पतियोंको प्रसन्न करती हैं ऐसे यह यजमान यज्ञमें आपको प्रसन्न करनेको (आ) सब ओरसे तत्पर होताहै यहां विधवासे वह स्त्री लेनी जो (यस्या म्रियेतकन्यायाः) इसके अर्थमें मनु० अ० ९ श्लो० ६९ में आगे चलकर विधान कियागया है इसमें नियोगका नाम भी नहीं है ॥

और (देवरः कस्मा०) इसके अर्थ भी गडबड लिखेहैं और यह निरुक्तकारका वाक्य भी नहीं है * निरुक्तग्रन्थके छापनेवालेने लिखा है कि यह वाक्य प्राचीन तीन पुस्तकोंमें नहीं है इसी कारण इसको उन्होंने कोष्ठमें बन्द कर दिया है और दुर्गाचार्यने इस पर भाष्य भी नहीं किया इससे यह क्षेपक है यास्कजीने इसका अर्थ यों लिखा है कि देवरो दीव्यतिकर्मा भाव्ये सहि भर्तुर्भ्रातानित्यमेव तया भ्रातृभार्यया देवनार्थं वियत इति देवर इत्युच्यते यह इसका अर्थ है कि भाईकी स्त्रीकी शुश्रूषा करनेसे इसका नाम देवर है यदि वोह पाठ यास्कमुनिकृत होता तो पुनः देवर शब्दका क्यों अर्थ करते इससे वह प्रक्षिप्त ही है सारे ग्रंथोंमें स्वामीजीको प्रक्षिप्तता सूझी और यहां लिखी हुईभी न सूझी और प्रक्षिप्तभी नहीं सही इसे मान भी लें तोभी स्वामीजीका अर्थ नहीं बनसक्ता, मनुजीने इसका अर्थ लिखा है (यस्याम्रियेत०) श्लोक यह आगे लिखेंगे, अर्थ यह है कि वाग्दानके उपरान्त जिस कन्याका पति

* पर तुलसीरा० तथा दूसरे समाजी इसे प्रक्षिप्त क्यों मानेंगे ।

मरजाय उसे देवर अर्थात् उसके छोटे भाईसे व्याह दे, इसी कारण देवरको दूसरा घर कहते हैं परन्तु नियोग यहां भी सिद्ध नहीं होता और (विधावनात्) भर्ताके मरनेसे स्त्री रोकी जाती है कहीं आने जाने नहीं पाती इस कारण इसे विधवा कहते हैं स्वामीजी उसे ऐसा स्वतन्त्र करते हैं कि कुछ बूझिये मत, आपको बता ही चुके हैं आपने सबही जातवालोंको देवर बनादिया, जो नियोग करै वोह देवर और सुनो—

स० प्र० पृ० ११६ पं०६

उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेषएहि ॥ हस्तग्राभस्यादिधिषोस्तवेदंपत्युर्जनित्वमभिसंवभूथ ऋ० मं० १० सू० १८ मं० ८

(नारि) विधवे तू (एतं गतासुं) इस मरे हुए पतिकी आशा छोडके (शेषे बाकी पुरुषोंमेंसे (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पतिको (उपैहि) प्राप्त और (उदीर्ष्व) इस बातका विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवाको पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पतिके सम्बन्धके लि नियोग होगा तौ (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पतिका होगा और जो तू अपने लिये नियोग करैगी तौ यह संतान (तव) तेरा होगा ऐसे निश्चययुक्त (अभिसंवभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियमका पालन करै ॥ ११८।७ पं० २९ से टीका ।

समीक्षा—स्वामीजीकी बुद्धि कहां लोट गई, इधर तौ पति मरा पड़ा है, नारी जिसका वह पालक पोषक नाथ था, उसके शोकमें विलाप करती है, उसी समय उसको कहने लगे कि इसे छोड औरोंको पति बनाले, क्या उसका पतिसे कुछ भी प्रेम न था सोचनेका स्थान है बुद्धिमानोंको, और जब कि उसके पास बालक मौजूद हैं तौ अब उसे नियोगकी आवश्यकता ही क्या है और पूर्व पतिसे उत्पन्न हुआ बालक नियुक्त पुरुषका क्यों कर हो सक्ता है, यह स्वामीजीका महा प्रलाप है जो सायणाचार्यने इस मंत्रका यथार्थ व्याख्यान किया है, सो लिखते हैं ॥

हे नारिमृतस्यपत्निजीवलोकंजीवानांपुत्रपौत्रादीनांलोकं स्थानंगृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ ईरगतौ अदादिकःगतासुमपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेषे तस्य समीपे स्वपिषि तस्मात्त्वमेहि आगच्छ यस्मात्त्वं हस्ताग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वतो दिधिषोर्गर्भस्यनिधातुस्तवास्यपत्युः स-

म्बंधादागतमिदंजनित्वं जायात्वमभिलक्ष्यसंबभूथ संभूता-स्यसुसरणानिश्चयमकार्षीस्तस्मादागच्छ अत्रार्थे कल्पसूत्रम-प्यनुसंधेयम् । तामुत्थापयेद्देवरःपतिस्थानीयोऽन्तेवासी-जरद्दासोवोदीर्ष्वनार्य्यभिजीवलोकमिति ॥

इस मंत्रका अन्त्येष्टि कर्ममें विनियोग है जब पति मरगया तो श्मशानमें पतिके समीप कुशाओंपर लेटी हुई उसकी स्त्रीको देवर शिष्य वा बहुतकालसे सेवा करते हुए वृद्ध हुआ दास उठावे यदि वह गर्भवती हो तो पुंसवनादि संस्कार करनेसे देवर पतिस्थानीय कहा है उसके अभावमें शिष्य उसके अभावमें दास, है (कर्ता वृपले जपेत् आश्वलायन) यदि पत्नीको उठानेवाला दास है तो दाह करनेवाला ब्राह्मण वा क्षत्रिय मंत्र जपे कारण कि शूद्रको वेदपाठका अधिकार नहीं है ॥

(नारि) हे नारि मृतकी पत्नी ! (जीवलोकम्) जीवित विद्यमान पुत्रपौत्रादिके निवासस्थान घरको (अभि) देखकर (उदीर्ष्व) इस चितास्थानसे उठ तेरे विना पुत्रादिका पालन कौन करैगा (एतम्) इस (गतासुम्) मृतकके (उपशेषे) समीप लेटी है यहांसे (एहि) आओ कारण कि (हस्तग्राभस्य) विवाह समयमें हाथ ग्रहण करनेवाले (दिधिषोः) गर्भाधान करनेवाले (पत्युः) इस पतिके सम्बन्धसे प्राप्त हुए (तव) तुम्हारे (इदम्) इस (जनित्वम्) पत्नीपनको (अभि) देखकर (सम्बभूथ) पतिके साथ मरनेका निश्चय तैंने किया है सो निश्चय छोड़कर उठ ॥

इसमें नियोग या विधवाविवाहकी गंध भी नहीं है यहां यौगिकार्थसे धारक वा पोषक अर्थमें दिधिषु पाणिग्रहीता पतिका ही विशेषण है दिधिषोः यह ह्रस्वान्त पुँल्लिङ्ग षष्ठीका एकवचन है दीर्घ ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग नहीं है, पर दयानंदजीको तो क्रियाका भी ज्ञान नहीं हुआ 'उपशेषे पांसे सोती है' के स्थानमें 'शेषे' बाकी पुरुषोंसे ऐसा अर्थ करते हैं इस अशुद्धिका भी कहीं ठिकाना है धन्य विद्वत्ता ! भा० प्र० में और ही अर्थ लिखा यहां चेला शकर होगये हैं छोटे स्वामी ठीक हैं या बड़े ॥

इयंनारीपतिलोकं वृणानानिपद्यत उपत्वामर्त्यंप्रेतम् । धर्मं पुराणमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि १ अथर्व १८ । ३ । १ अयंतेगोपतिस्तंजुषस्वस्वर्गंलोकमधिरोहयैनम् २

दाहके समय देवरादिका मृतकको लक्ष्य कर कथन है कि (मर्त्य) हे मनुष्य !

(पतिलोकम्) जहां पति गया उस लोकको (वृणाना) इच्छा करती हुई (पुराणम्) दूसरे जन्ममें भी यही पति मिलै इस सनातन (: धर्मम्) धर्मको (अनुपालयन्ती) पालन करती हुई (इयम्) यह (नारी) स्त्री (प्रेतम् (मृतक हुए (त्वा) तुम्हारे (उपनिपद्यते) समीप निरन्तर प्राप्त होती है अर्थात् संगमें मरणका निश्चय कर चुकी है (तस्यै) उसके लिये तुम्हारे समयके विद्यमान (प्रजाम्) पुत्रादि और (द्रविणम्) धन (धेहि) धारण करो अर्थात् यह तुम्हारे धन पुत्रादि नष्ट न हों सदा विद्यमान रहैं जिससे यह जन्मान्तरमें फिर तुम्हारा दर्शन करसकै ॥ लोकान्तरमें भी पुत्रपौत्रादिधन इसको प्राप्त हो अनुमरणके प्रभावसे जन्मान्तरमें यही पति मिलैगा ॥

१ हे मृतनारि यह तेरा पति है इसको अब अच्छे संस्कारको सेवन करके इसको स्वर्गलोक पहुंचा ४ इस मन्त्रसे अब बुद्धिमान् विचारेंगे कि स्वामीजीने कितने मंत्रार्थ बदल दिये हैं ॥

स० पृ० ११७ पं० ४

आदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवापशुभ्यः सुयमासुवर्चाः प्रजावतीवीरसूर्देवृकामास्योनेममग्निंगार्हपत्यंसपर्य ॥ अथर्व० का० १४ अ० मं० १८

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवरको दुःख देनेवाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियमसे चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्रपौत्रादि सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रोंके जनने (देवृकामा) देवरकी कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवरको (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थसंबंधी (अग्निम्) अग्निहोत्रका (सपर्य) सेवन किया करे ॥ ११९।७

समीक्षा—प्रथम तो दयानंदजीने इसका पाठ ही अशुद्ध लिखा है (अदेवृघ्न्ये स्थानमें मंत्रमें आदेवृ) यह दीर्घ आकार लिखा है और पति और देवरको दुःख न देनेवालीके स्थानमें (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) इसका अर्थ पति देवरको दुःख देनेवाली लिखा है यह तो मंत्रोंमें उलट फेर है, भला जो दुःख देनेवाली होगी वह देवरकी कामना कैसे करसकैगी और देवृकामासे यह अर्थ नहीं सिद्ध होता कि यह देवरसे भोग किया चाहती हो पति मौजूद है तो कभी देवरके पास नहीं जायगी।

१ १८९८ वालेमें पाठ सुधारकर दुःख न देनेवाली अर्थ करोंने किया है अशुद्ध पाठ है।

और कामना विद्यमानतामें नहीं होती अविद्यमानतामें होती है यदि वह देव पति किया चाहती तो देवरि पतिकामा ऐसा प्रयोग होसक्ता है सो मंत्रमें वि नहीं इससे नियोग सिद्ध नहीं होता, किन्तु यह ऐसे स्थानका प्रयोग है, जि स्त्रीके देवर नहीं वह चाहती है कि मेरे श्वशुरके बालक हो तो मैं देवरवाल ऐसी स्त्रीको देवृकामा कहते हैं, जैसे भ्रातृरहितः कन्यामें भ्रातृकामा यह प्र बनताहै कि मेरे भाई हो तो मैं बहन कहाऊं, ऐसे ही यह देवृकामा शब्द नियोग नहीं सिद्ध होता, अब इसके यथार्थ अर्थ सुनिये (अदेवृघ्न्यपतिघ्नि वाले ! तू पति और देवरको सुख देनेवाली (एधि) वृद्धिको प्राप्त हो अर्थात् दे आदि कुटुम्बियोंसे विरुद्ध मत करना (इह) इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओं लिये (शिवा) कल्याणकारि (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियममें चलनेव (सुवर्चाः) रूपगुणयुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि सहित (वीरसूः) पुत्रोंकी उत्पन्न करनेवाली (देवृकामा) देवरके होनेकी प्रार्थना करनेवाली आनंद चाहनेहारी (स्योनः) सुखिनी (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्रको (सपर्य) सेवन कियाकर ॥

स्वामीजीने यह न जाना कि यह पुस्तकें और भी कोई देखैगा तो कैसी है यह विवाहके मंत्र नियोगमें लगाये हैं, धन्य है आपकी बुद्धि और सुनिये–

तदारोहतुसुप्रजाया कन्याविन्दतेपतिम् । अथ० १।१४२ मं०

स्योनाभवश्वशुरेभ्यः स्योनापत्येगृहेभ्यः ।

स्योनास्यैसर्वस्यै विशे स्योनापुष्टायैषांभव । १४ । २ । २७

हे नारि श्वशुरोंके वास्ते पतिके वास्ते और घरके कुटुम्बियोंके वास्ते स अर्थ सुख देनेवाली हो ॥

यदि आपका नियोग ही सत्य है तो यहां पति और श्वशुर दोनोंके (स्योना) पद आया है अर्थात् सुख देनेवाली हो एवं सब कुटुम्बियोंको देनेहारी कहा है तो क्या जो पतिके संग व्यवहार करै वह ही सबके साथ यह कभी नहीं होसक्ता पतिको और प्रकारका सुख, श्वशुरादिकोंको सेवा आ सुखदाता होती है. यह नहीं कि, सुख देनेसे सबके संग भोगके ही अर्थ हो ज इससे आपके सब अर्थ भ्रष्ट हैं मिथ्या है नियोग एकसे भी नहीं बनता, दयानंदजी मनुस्मृतिपर आते हैं ॥

पृ० ११७ पं० १४ तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ।

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पतिका निज छोटा भाई भी उ

समीक्षा-स्वामीजी यहां भी अर्थ बनानेसे न चूके, यदि इस श्लोकको पूरा लिखते तो आपकी कलई खुल जाती. यह आधा श्लोक आपने मतलब सिद्ध करनेको लिखा सो इससे मतलब कुछ भी सिद्ध नहीं होता सुनिये-

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ अ० ९श्लो० ६९ *

जिस कन्याका वाग्दान करनेके अनन्तर पति मरजाय उसका उसके छोटे भाईसे विवाह करदे यह इसका अर्थ है सो आजतक ऐसा सब कोई करते हैं वाग्दान विवाहसे पहले होता है ऐसा होनेपर यह पति मरजाताहै, तौ उसका विवाह औरके संग कर देते हैं स्वामीजीने अक्षत योनि और विवाह होगई दूई लिखा है यही महाकपट है ॥

पृ० ११७ पं० १६ (प्रश्न) एक स्त्री या पुरुष कितने नियोग करसक्ते हैं और विवाहित नियुक्त पतियोंका नाम क्या होताहै (उत्तर) ॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ऋ०मं१०सू०८५मं०४०

हे स्त्री ! जो (तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझको (विविदे) प्राप्त होता है उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होनेसे सोम, जो दूसरा नियोग होनेसे (विविदे) प्राप्त होता है वह (गंधर्वः) एक स्त्रीसे भोग करनेसे गंधर्व, जो तृतीय (उत्तरः) दोके पश्चात् तीसरा पति होताहै वह (अग्निः) अत्युष्णता होनेसे अग्नि संज्ञक और जो तेरे (तुरीयः) चौथेसे लेके ग्यारहतक नियोगसे पति होतेहैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्यनामसे कहाते हैं (इमांत्वमिन्द्र) इस मंत्रसे ग्यारहवें पुरुषतक स्त्री नियोग करसक्ती है और पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्रीतक नियोग करसक्ता है ॥ ११९।११९

समीक्षा-स्वामीजीने ऐसी हठ ठानी है कि अर्थोंका अनर्थ कर दिया है कि वेदार्थकी क्षुद्रता प्रतीत होती है, हम मंत्रार्थ दिखाते हैं इस मंत्रका विवाहमें विनियोग है ॥

हे कन्ये त्वमुच्यसे सोमः त्वां प्रथमो विविदे विन्नवान् प्राप्तवान् सौम्ये प्रथमकौमारके (गन्धर्वो विविद उत्तरः) उपजायमानचारुताङ्गप्रविभागस्वरसौष्ठवामीपदनंगाङ्गसमाहृतहृदयो गंधर्वो विश्वावसुस्त्वां विविदे विन्नवान् अथ पुनरिदानीं

* यापूर्वंपतिंवित्त्वाअथान्यंविन्दतेपरम् अथर्व ९।५।२७। भास्करप्रकाशी इस मंत्रको ... उनको ध्यान रहे कि यह पंचौदनके विधानमें है वाग्दान होनेपर पति विवाहपरक मंत्र है मनुका श्लोक इसीका टीका है ।

वैवाहिके उपगताया कर्मणि (तृतीयो अग्निष्टे पतिः) तृतीयस्तवाऽग्निः । अत ऊर्द्ध्वग्रहनात् परं तुरीयः चतुर्थः (ते) तवायं (मनुष्यजाः) पतिः । इत्येवमनेनाऽपि मंत्रेण समवैति जारत्वं पतित्वं चाग्नेः ॥

सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् ॥ पावकः सर्वभक्षित्वं तेन शुद्धा हि योषितः ॥ भावार्थः–हे कन्ये (प्रथमः) कौमार सौम्य अवस्थामें तेरेको प्रथम सोम देवताका अधिकार प्राप्त हुआ और जब सुन्दर अंग प्रत्यंग हुए तब (उत्तरः गन्धर्वः) गंधर्वका अधिकार प्राप्त हुआ तुझे लेता है, और विवाह कर्ममें (तृतीयः पतिः ते अग्निः) तृतीय पति तेरा अग्नि है, विवाहसे उत्तर (तुरीयः) चौथा (मनुष्यजाः) मनुष्य पति है, यहां विचार कर्तव्य है कि मनुष्यजाः यह शब्द तुरीयः इसके साथ समानविभक्तिक समान अर्थवाला विशेषणवत् एक वचनान्त है, इस वास्ते इससे बहुत पति बोधन करना असंगत है, और जब तुरीयको मनुष्यजात्य कहा तो, पूर्व तीनके अर्थ देवत्व प्राप्त हैं, अग्नि ही कन्याभावको जीर्णकर्ता होनेसे जार है, चंद्रमाने स्त्रियोंको पवित्रता, गन्धर्वने सुन्दर वाणी, अग्निने सर्व भक्षित्व दिया इस कारणसे स्त्री शुद्ध हुई और सुनिये॥

सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददग्नये रयिंचपुत्रांश्चादादग्निर्मह्य-मथो इमाम् ॥ ऋ० मं० १० अ० ७ सू० ८५ मं० ४१

विवाहमें इस मन्त्रका विनियोग है सोमः एतां प्रथमं कौमारादभ्युद्य गन्धर्वाय ददात् अदात् अथ गन्धर्वः अप्येनामभ्युद्य यौवनाधिकारात् अग्नये ददत् अथ अग्निः अपि एनाम् अस्मिन् विवाहे संस्कृत्य रयिं च धनं च पुत्रांश्च मह्यमदात् ददाति अथो, अपि च धनैश्च पुत्रैश्च सह इमाम् मह्यमदात् मह्यं ददाविति ॥

भावार्थ–(सोमः) सोमदेव इसको कौमारसे सर्वथा अवयवसंपत्ति करके (गंधर्वाय) गन्धर्वके अर्थ देता हुआ और वह गन्धर्व भी इसको यौवनाधिकारसे सर्वथा सम्पन्न कर (अग्नये) अग्निके अर्थ (अददत्) देता हुआ और अब अग्नि देव भी (इमाम्) इस विवाहकर्ममें इसको संस्कारयुक्त करके (मह्यम्) मेरे अर्थ (रयिं च) धनको (पुत्रांश्च) पुत्रोंको भी देता है, तथा इस स्त्रीको देता हुआ ॥ *

* आजकल एक और मंत्रकी चर्चा चलती है कि स्त्रीके दश पति वेदसे प्रतिपादित हैं वह मंत्र यह है हम अर्थ लिखते हैं इसीसे उत्तर होजायगा ।

उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः। ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा

अथर्व ५ । ४ । १७ । ८

(उत) और (स्त्रियाः) स्त्रीके (यत्) जो (पूर्वे) पहले (अब्राह्मणाः) ब्राह्मणसे भिन्न (दश पतयः) दश पति होते हैं वास्तवमें वे उसके पति नहीं किन्तु रक्षक हैं वे सोमादिदेवता शास्त्रमें पति-

अब विचारनेकी बात है यदि स्वामीजीका अर्थ माने तो सोमनाभ विवाहिताका पति जीते जी गन्धर्वसंज्ञक नियोगके पतिको कैसे देगा गन्धर्व अग्निको कैसे देगा और तृतीय चतुर्थको कैसे दे सक्ताहै, इस कारण यह अर्थ किसी प्रकार नहीं होसक्ता, ऐसा ही हो तो सब क्रिया फर्ह केवल देवता विवाह होनेतक वय क्रमसे रक्षा करते हैं, अपना अधिकार समाप्त होनेपर दूसरेको देते हैं क्यों कि जन्म लेकर ही स्त्रीसे नियोगमें कोई समर्थ नहीं होसक्ता इससे यह तीनों देवता विवाहतक रक्षा करते हैं यही अर्थ ठीक है और देखिये-

सम्राज्ञीश्वशुरेभवसम्राज्ञीश्वश्र्वांभव ॥ ननांदरिसम्राज्ञीभव सम्राज्ञीअधिदेवृषु ऋ० १० अ० ७ सू० ८५ मं० ४६

श्वशुर श्वश्रू ननन्द और देवरोंमें (सम्राज्ञी) अधीश्वरी हो भाव यह है कि ससुर सासन नन्द और देवर इन सबकी नियंत्री गृहमें हो, इन मंत्रोंमें केवल प्रार्थना है नियोगका प्रसंग ही कौन है, यदि नियोगका विषय हो तो इसमें ससुरमें भी सम्राज्ञी कहनेसे नियोग सिद्ध हो जायगा और महा अनर्थ होगा, इससे जितने यह दयानन्दजीने मंत्रोंके अर्थ लिखे हैं वे सबही अशुद्ध हैं ॥

स० पृ० ११८ पं० २ एकादश शब्दसे दश पुत्र और ग्यारहवें पतिको क्यों न गिने ((उत्तर) जो ऐसा अर्थ करोगे तो 'विधवेव देवरम्' और (देवरः कस्मा०) (अदेवृ०) और (गन्धर्वो०) इत्यादि वेद प्रमाणोंसे विरुद्धार्थ होगा, क्यों कि तुम्हारे अर्थसे दूसरा भी पति प्राप्त नहीं होसक्ता ॥ १२० । ६

समीक्षा-निश्चय हमारे मतमें क्या किसी प्राचीन आचार्यके मतमें दूसरा पति नहीं माना गया है, वेदके मन्त्रोंके अर्थ कर ही चुके हैं और (पतिमेकादशम्) यहां एकादशम् के अर्थ ग्यारहवां और पतिम् पतिको यह द्वितीयविभक्तिका एकवचन पड़ाहुआ है, ग्यारहपतितक करनेका अर्थ तो स्वामीजीके कपोलके भंडारसे निकला है ॥

-कह दिये हैं (चेत्) जब (ब्रह्मा) ब्राह्मण (हस्तमग्रहीत्) मंत्रपूर्वक पाणिग्रहण करै तो (स एव) वही (एकधा) एक (पतिः) पति होताहै यहां पतिशब्दसे सोमादि देवता रक्षक लिये हैं यथा ।

तेवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।। वीडुहरास्तपउग्रंमयोभूरापोदेवी- प्रथमजाऋतस्य १ सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुनःप्रायच्छदहृणीयमानः अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्यानिनाय २ अथर्व ५ । ४ अनु० ४

अर्थात् सोम अकूपार सलिल मातरिश्वा मयोभू आपः वरुण मित्र अग्नि और बृहस्पति यह दश देवता रक्षक पति हैं इसीसे विवाहसम्बन्धी मंत्रोंमें (मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः) ऐसा लिखा है चार देवताओंके अन्तरमें यह दशों आते हैं मेरठी स्वामी भी ध्यान दे ।

पृ० ११८ पं० ७

देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजास्त्रियम् ॥
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव–मनु० अ० ९ । १५९ ॥

इत्यादि मनुजीने लिखा है कि (सपिंड) अर्थात् पतिकी छः पीढियोंमें पतिका छोटा वा बडा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपनेसे उत्तम जातिस्थ पुरुषसे विधवा स्त्रीका नियोग होना चाहिये परन्तु जो वह मृतस्त्री और पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करती होवें तो नियोग होना उचित है, और जब सन्तानका सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे, जो आपत्काल अर्थात् सन्तानके होनेकी इच्छा होनेमें बडे भाईकी स्त्रीसे छोटेका, छोटे भाईकी स्त्रीसे बडे भाईका नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजानेपर भी पुनः वे नियुक्त आपसमें समागम करें तो पतित होजांय, अर्थात् एक नियोगमें दूसरे पुत्रके गर्भ रहनेतक नियोगकी अवधि है, इसके पश्चात् समागम न करें और जो दोनोंके लिये नियोग हुआ होय तो चौथे गर्भतक अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे दश सन्तानतक होसकेहैं, अर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानोंके ही लिये किये जाते हैं पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं, और जो विवाही स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भसे अधिक समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं, यह विवाह नियोग सन्तानोंके ही लिये हो जातेहैं पशुवत् कामक्रीडा करनेको नहीं ॥ भा० प्र० अतोनान्यस्मिन्० के अर्थमें अन्यजातिसे नियोग नहीं मानता ॥

समीक्षा–इन श्लोकोंके अर्थ भी मिथ्या ही लिखेहैं. अर्थ यह है कि सन्तानके सर्वथा न होनेपर गुरुजन वा पतिद्वारा नियुक्तकी हुई स्त्री देवर वा सपिण्ड पुरुषके पास सन्तानकी इच्छासे आगे लिखी हुई रीतिके अनुसार गमन करै ५९ आगे अट्ठावन श्लोकपर आगये बडा भाई छोटे भाईकी भार्यामें गमन करे तो वा बडे भाईकी स्त्रीमें छोटा भाई गमन करे तो सन्तानके अभावके विना नियुक्त होकर भी पतित होजातेहैं ५८ आगे औरस क्षेत्रजपर दौड गये हैं ॥

और–यह श्लोक भी दश सन्तान नियोगसे उत्पन्न होना नहीं कहते, क्यों कि इसके आगेके श्लोकमें लिखाहै ॥

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ॥
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥ अ० ९

विधवाके साथ नियुक्त पुरुष शरीरमें घृत लगाकर मौन धारण कर रात्रिमें भोग करै, इस प्रकार एक पुत्र उत्पन्न करै; दूसरा कभी न करै, अब यह मनुस्मृतिसे भी तुम्हारे ग्यारह पुत्रतक कराने तथा अन्य जातिसे नियोग करनेसे वाक्य मिथ्या होगये, क्यों कि (देवराद्वा) इस श्लोकसे अन्य जातिसे नियोग करना बुरा जानतेहैं, उन्होंने राजा वेनके समयका वृत्तान्त लिखाहै. कि ऐसा होताथा उसने यों विधि चलाई, अब वह अपनी सम्मति इसपर प्रकाश करते हैं ॥

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन्हि नियुंजाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥ ६४ ॥ *
नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुन ॥ ६५ ॥
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥
स महीमखिलां भुंजन्राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

अर्थ—ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंको विधवा स्त्री देवर आदिके संग नियोग करनेको नहीं प्रेरणा करनी, वे स्त्री दूसरे पतिके प्राप्त होनेसे सनातन एक पतिव्रत धर्मका नाश करतीहैं ६४ विवाहके मन्त्रोंमें कहीं भी नियोग नहीं दृष्टि पडता और न विवाहविधायक शास्त्रमें विधवाविवाह दीखताहै ६५ और यह विद्वान् ब्राह्मणोंने पशुधर्म (नियोग) निन्दित कियाहै, यह पशुधर्म राजा वेनने अपने राज्यमें मनुष्योंके वास्ते भी कहा ६६ वोह राजर्षि सब पृथ्वीको भोगता हुआ (चक्रवर्ती राजा होनेसे राजर्षि कहलाया धर्मसे नहीं) कामी होकर भाईके स्त्रीके साथ इस नियोगरूप वर्णसंकरताको प्रवृत्त करता हुआ ६७ उस वेनके समयसे यह रीति चली और जो उसकी मति माननेवाले लोग शास्त्रके न जाननेवाले विधवा स्त्रीका

---

* म० अ० ९ ६४ श्लोकके अर्थमें [illegible] मानते हैं [illegible] इनको [illegible] [illegible] भी [illegible] नहीं रहता ॥ [illegible] भी करतेहैं [illegible] और [illegible] भी [illegible] ।

देवरके साथ योजना करते हैं उस विधिको साधु पुरुष निन्दा करतेहैं ६८ तीन वर्णोंके सिवाय शूद्रमें अवतक कराव होताहै तीन वर्णोंको निषेध है ॥

स्वामीजी तुम तौ राजा वेनका अवतार मालूम पडते हो या वेनकेभी दादा गुरु कहूं तौ ठीक होय, क्यों कि उसने तौ अपनी जातिमें ही नियोग चलाया और एक ही सन्तान उत्पन्न करने कहा, परन्तु तुम तौ सब जातिमें नियोग करने और ग्यारहतक सन्तान-उत्पन्न होने कहते हो. यह पशुधर्म आपने चलाया जो कि, वेनसे प्रारम्भ हुआ है, आपने मनुस्मृतिके पूर्वापर पर भी ध्यान न दिया जिससे पशुधर्ममें प्रवृत्त न होना पडता मंत्रार्थ न बदलना पडता इससे सिद्ध है कि नियोग न करो ॥

स० पृ० ११८ पं २९ (प्रश्न) नियोग मरे पीछे होताहै वा जीते पतिके भी (उत्तर) जीते भी होता है (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्) ऋ० मं० १० सू० १० जब पति सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा दे कि हे सुभगे हे सौभाग्यकी इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझसे (अन्य) दूसरे पतिको (इच्छस्व) इच्छा कर क्यों कि अब मुझसे सन्तानोत्पत्तिकी आशा मत करै परन्तु उस विवाहित महाशय पतिकी सेवामें रहे इसी प्रकार जब स्त्री रोगादि दोषोंसे ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ हो तब अपने पतिको आज्ञा देवै कि हे स्वामिन् आप सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा मुझसे छोडके किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे सन्तानोत्पत्ति कीजिये जैसी पाण्डु राजाकी स्त्री कुन्ती और माद्री आदिने किया ॥ १२० । २८

समीक्षा–यदि स्वामीजी इस मंत्रको पूरा लिखते तौ कलई खुल जाती बस सारा नियोग उड जाता अब वह मंत्र लिखा जाताहै ॥

आघातागच्छानुत्तरायुगानियत्रजामयः कृणवन्नजामि उपबर्बृहिवृषभायबाहुमन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत् ।

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १० मं० १०

आगमिष्यन्तितान्युत्तराणि युगानि यत्र जामयः करिष्यन्त्यजामि कर्माणि जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्यवोपजन उपधेहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम् । निरु० अ० ४ ख० २० जामि, इति एतदनेकार्थम् भगिनी बालिशः पुनरुक्तं चास्याभिधेयानि प्रकरणादेवैतेषामन्यतमस्मिन्नवतिष्ठते यथानेन तावद्भगिन्युच्यते तथेदमुदाहरणम् आघाता मत् इति ॥

इयं यमी किल यमं भार्थयाञ्चकार, एहि मैथुनाय संगच्छावहा इति तामकामयमानोऽसावनपर्चा प्रत्युवाच आघाता गच्छान् वा इत्यनर्थक एव आगच्छान्

आगमिष्यन्तीत्यर्थः आह कानि उच्यते ताः तानि उत्तराणि युगानि आगमिष्यन्ति तेऽपि कालानतावत् साम्प्रतं वर्तन्ते इत्यभिप्रायः येषु किम् यत्र येषु जामयः भगिन्यः भ्रातृणाम् अजामि योग्यानि मैथुनसम्बन्धानि कर्माणि करिष्यन्ति कलियुगान्ते हि तादृशः संकरो भवति न चेदं कलियुगं वर्तते इत्यभिप्रायः यतो न तावदद्यापि संकीर्णो वर्णसंकरधर्मः स्वाचारा एव तावत् प्रजा अतो ब्रवीमि उपबर्हृहि उपधेहि कस्मै (वृषभाय) तवोपरि रेतः सेक्तुमन्यकुलजो योग्यः तस्मै किमुपबर्हृहि इति बाहुम शयनीये सर्वथा प्रार्थ्यमानोऽप्यहं तव पतिः न भविष्यामीति यतो ब्रवीमि अन्यमिच्छस्व अन्यमन्वेषयस्व हे सुभगे (पतिं) मत् मत्त इत्यर्थः ।

: यमयमीसंवादकी यह ऋचा है यमी कहती है यमसे जो कि हम दोनों समागम करें तो यम इस मंत्रसे उत्तर देता है हे यमि वे उत्तर युग आवेंगे जिन युगोंमें (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) भगिनीसे भिन्न सम्बन्धित कर्मको करेंगी भाव यह है कि, कलियुगान्तमें ही यह संकरता होगी जिस कालमें भगिनीसे भिन्न स्त्रीयोग्य कर्मोंको भगिनी करेंगी किन्तु अभी तो संकर धर्म, नहीं अपने २ धर्ममें सब वर्ण वर्त्तमान हैं इस वास्ते हे सुभगे ! मेरेसे अन्य योग्य पतिकी इच्छा कर और उस (वृषभाय) योग्य पतिके वास्ते (बाहुम् उपबर्हृहि) अपने पाणिको ग्रहण कराले यह यमी सगोत्रा है इससे सिद्ध है समान गोत्रमें विवाह नहीं होता ॥*

अब बुद्धिमान् यह विचारे कि, इसमें कौनसी बात नियोगकी है इसमें स्वामीजीने बडी बनावट की है मंत्रका आशय सम्पूर्णतः बदल दिया ॥

कुन्ती माद्रीका भी दृष्टान्त इसमें घट नहीं सक्ता पाण्डुको शाप था उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा तो वह कठिनतासे सन्तान उत्पन्न करनेमें सम्मत हुई मंत्रबलसे देवताओंको आवाहन किया, इन्द्र मरुत् धर्मसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो तत्काल ऋतुदान करते ही उत्पन्न होगये, अश्विनीकुमारसे नकुल सहदेव यह तत्काल ही उत्पन्न होगयेथे मैथुनादिकी बात नहीं है देवताओंकी दैवी शक्तिका प्रभाव है यदि इस प्रकार मंत्राकर्षणसे पतिकी आज्ञानुसार स्त्रीमें देवताओंके बुलानेकी सामर्थ्य हो तो वह कर सक्ती है, इस देवसम्बधी कार्यका यहाँ दृष्टान्त नहीं घट

* भा० प्र० ने यह दिनरातका रूपक चलाया पर दयानंदने तो रूपक नहीं माना यहां गुरु और चेले दोनों ही सिद्धान्तसे दूर होगये इस सूक्तभरमें यम यमी संवाद है दिनरातका पता नहीं और न बना तो दिनरातका ही लगा बैठे पर प्रमाण भी कुछ है ? यदि दिनरातका रूपक होता तो (पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ऋ० १० । १० । १२) इसी सूक्तमें बहनके साथ गमनमें पाप माना है तब दिनरातका रूपक कहां रहा । किंभ्रातासद्यदनाथम् ऋ० १०।१०।११ यह भ्राता पाठ है ।

सक्ता यदि यहो कि यह मन्त्रकी बात किसीने महाभारतमें मिलादी है तो हम कह सकते हैं कि इस प्रकार माद्री कुन्तीके पुत्र उत्पन्न होनेकी किसीने मिलादी है, इस कारण यह कहना नहीं बन सक्ता इसीसे यह नियोग तुम्हारा सिद्ध नहीं मानुषधर्मका दृष्टान्त देवतोंसे नहीं लगता और पृथ्वीका भार दूर करनेको देव दैत्योंने विचित्ररूपसे जन्म लिया जिससे जगत् क्षय हुआ यह शास्त्रका विधान नहीं है ॥

स० प्र० पृ० ११९ पं० ९

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षड्यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्मकार्य्यके लिये परदेश गया हो तो आठ व विद्या और कीर्तिके लिये गया होय तो छः और धनादि कामनाके लिये गया होय तीन वर्षतक बाट देखके पश्चात् नियोग * करके सन्तानोत्पत्ति करले, जब विव हित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे, वैसे ही पुरुषके लिये भी निय है ॥ १॥ वन्ध्या (जिसको विवाहसे आठ वर्षतक गर्भ न रहै) उसे आठवें, सन्त होकर मरजावें तो दशवें और कन्याही हो पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्षतक और अप्रिय बोलनेवाली हो तो सद्यः उस उस स्त्रीको छोडके सन्तानोत्पत्ति करले॥ वैसे ही पुरुष अत्यन्त दुःखदायक होय तो स्त्रीको उचित है कि, उसको छ दूसरे पतिसे नियोग कर उससे सन्तानोत्पत्ति कर उसी विवाहित पतिका दायभा सन्तोत्पत्ति कर लेवै ॥ १२१ ।१४

समीक्षा—यहां स्वामीजीने यह लीलाही रची है पहिला श्लोक ९ अध्याय ७६ वाँ है और दूसरा श्लोक ८१ वाँ है, इन दोनोंका महात्माजीने एक ही म लगादिया, मनुष्योंके परदेश जानेतकमें बाधा डालदी परन्तु आराम भी हैं प्राणी उधरके इधर इधरके उधर आते जाते हैं मनुष्योंको स्त्री और स्त्रिये परदेशी पुरुष बहुत मिल जायँगे परन्तु इतना और लिख देते कि जानेकी ता और कार्यकी तख्ती लिखी हुई बाहर टंगी रहती तख्ती देखकर शयनालयमें प्र कर मनोरथ पूर्ण होते अब इस श्लोकका आशय सुनिये कि, यह किस आश हैं इससे पहला श्लोक यह है ॥

* छोटे स्वामीजी तो बतावें कि इन श्लोकोंमें नियोग करले यह किन पदोंका अर्थ है

विधाय वृत्तिम्भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्शिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः॥७५॥प्रोषितोधर्म०७६

जब कोई पुरुष परदेशको जाय तौ प्रथम स्त्रीके खानपानका प्रबंध करता जाय क्यों कि विना प्रबन्ध क्षुधाके कारण कुलीन स्त्री भी दूसरे पुरुषकी इच्छा करैगी ७४ खान पान करके विदेश जानेके अनन्तर उस पुरुषकी स्त्री नियम अर्थात् पतिव्रतसे रहकर अपना समय व्यतीत करै और जब भोजनको न रहै वा पुरुष कुछ बंदोबस्त न करगया होय तौ पतिके परदेश होनेमें शिल्पकर्म जो निन्दित न हो अर्थात् सूत कातना हस्तसे काढना आदि कर्मोंसे गुजारा करै ७५ यदि वह धर्मकार्यको परदेश गयाहो तौ आठवर्ष विद्या पढने गया हो तौ छः वर्ष धन यशको वा काम भोगको गया हो तौ तीन वर्षतक वाट देखे पश्चात् पतिके पास जहां वह हो वहां चली जावै, जहां कोई क्रिया वा वाक्यपूर्ति रह जाती है उसको दूसरी स्मृति आदिसे पूरी करते हैं मनमाना अर्थ नहीं होसकता, दयानंदजीके अर्थमें एक बडी विचित्रता है उनसे पूछा जाय कि, आपके सिद्धान्तमें तो विद्या-पढनेके पीछे व्याह होताथा यह विद्या पढनेसे पहले व्याह कैसे होगया यही वसिष्ठजी कहते हैं ॥

प्रोषितपत्नी अष्टवर्षाण्युपासीत ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेदिति ।

आठ वर्षतक स्त्री पतिकी वाट देखे पीछे उसके पास चली जाय (सन्ध्याष्टमें) इसका अर्थ पूर्व ही करचुकेहैं, कि ऐसी दशामें पुरुष विवाह दूसरा करले एक स्वामीजीके लेखमें बडी हँसीकी बात है कि (पति दुःखदायक हो तौ स्त्री उसे छोड किसी दूसरेसे नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करले जो उससे दायभाग लेलें) धन्य है पहले तौ लिखा कि पति आज्ञा दे तो नियोग करै, अब स्त्री ही उसे छोड नियोग करै, जब वे दूसरे पुरुषसे नियोग करैंगी पतिसे लडेंगी तो वह उन्हें घरमें क्यों रहने देगा सास ससुर क्यों रहने देंगे एक नहीं वह चार नियोग करै, परन्तु वह काहेको उसे घरमें घुसने देगा यह बालक भी निर्बुद्धिकी बात मुखसे नहीं निकाल सक्ते जो स्त्री दूसरेसे सन्तान उत्पन्न करै पतिसे छोडी हुई फिर उसके ओरसे उत्पन्न हुए बालक कौनसे शास्त्रसे दायभागी होंगे सिवाय आपके व्यभिचारप्रकाशके और तौ किसी ग्रन्थमें स्वैरिणी स्त्रियोंके पुत्रोंका दाय-भाग नहीं मिलसक्ता ॥

स० प्र० पृ० ११९। पं० २९ जो कोई वीर्य रूप अमूल्य पदार्थ स्त्री वेश्या वा दुष्ट पुरुषोंके संगमें खोते हैं, वे महामूर्ख हैं क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिकाके विना बीज अन्यत्र नहीं बोते (आत्मा वै जायते पुत्रः) यह ब्राह्मण ग्रंथोंका वचन है और (अंगादंगा० *) यह सामवेद है॥ १२२।४

समीक्षा-स्वामीजीकी यह बात स्वामीपर ही पडती है जब कि माली किसान भी बीज अपनी भूमिमें बोते हैं तो वे पुरुष भी मूर्ख हैं जो अन्य स्त्रीसे नियोग करते और वृथा बीज खोते हैं, एक ही बार जानेसे गर्भ रह नहीं सक्ता और जब आत्मा ही पुत्र है तो मृत पुरुषके वे बालक कहा नहीं सके और अंगा० यह सामवेदका वचन नहीं अब एक और बात सुनिये जो कि कैसे है। बुद्धि भ्रष्ट क्यों न हो कैसा ही नशेमें चूर क्यों न हो पर ऐसी बेशिर पैरकी बात नहीं कह सक्ता॥

स० पृ० १२० पं० २९ गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके विषयमें पुरुष वा स्त्रीसे न रहाजाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे॥ * १२३।१

समीक्षा-देखिये इस अन्धेरको गर्भवती स्त्रीसे न रहा जाय तो नियोग करके किसीके लिये सन्तानोत्पत्ति कर दे, कहिये अब महात्माजीका सृष्टिक्रम कहां चला गया एक तो बालक तो उत्पन्न हुआ ही नहीं दूसरा कैसे उत्पन्न हो सक्ता है पहला बालक तो उदरमें मौजूद ही रहे और इधर उधर नियुक्त पुरुषको पैदा करके देद बेटोंका स्वामीजीने ढेर लगादिया है, बेटीका नाम नहीं, कोई परमेश्वरने घवडाकर परवा लिखदिया था कि, नियुक्त पुरुषके जाते ही सन्तान होंगे, कन्याका नाम भी नहीं, यहां तो सभीको व्यभिचारिणी बनाया, तुम तो हकीम वैद्यक जाननेवाले थे, यह क्या लिख बैठे, यहां तो निर्बुद्धिप्रकाश लिखते २ बुद्धिको सम्पूर्ण ही तिलांजली देदी, यह न सूझी कि जब गर्भवती है तो नियोगकी आवश्यकता क्या है, अब रहा न जाय इस शब्दसे नियोगविषया शक्तिवेः अर्थ विदित है अब हम आपको क्या कहें॥

स० पृ० १२१ पं० ८ और ऐसे श्लोकोंको न माने॥

---

* १८९७ वाले सत्यार्थप्रकाशमें यह वचन निरुक्त ३। ४ का लिखा है और आत्मा वै पुत्रनामासि १ इतना पाठ भी बदला है स्वामीजीको भूलें पांचवीं बार चेलोंको सूझी हैं।

* १८९७ स० प्र० पृ० १२५ पं० २ इतना बदला है कि पुरुषने वा दीर्घ रोगी पुरुषकी स्त्रीसे न रहाजाय इनसे पूछे कि क्या यह पाठ स्वामीजी-पांचवीं बार चेलोंके कानमें कह गये थे। मेरठी स्वामीने छापेकी अशुद्धि मानी है तो क्या यहां कोई मात्रा या अक्षर बदलगया या इबारत की इबारत बदल जाती है।

पतितोपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः ।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी ॥ १ ॥
अश्वालंभं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् ॥
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ २ ॥
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३ ॥

यह कपोलकल्पित पाराशरीके श्लोक हैं जो दुष्ट कर्मकारी द्विजको श्रेष्ठ और श्रेष्ठकर्मकारी शूद्रको नीच मानें तो इससे परे पक्षपात अन्याय अधर्म दूसरा क्या होगा, क्या दूध देनेवाली व न देनेवाली गाय गोपालकोंको पालनीय होती है, वैसे कुम्हार आदिकोंको गधी पालनीय नहीं होती और यह दृष्टान्त भी विषम है क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्यजाति गाय और गधी भिन्नजाति हैं, कथंचित् पशुजातिसे दृष्टान्तका एक देश दार्ष्टान्तमें मिल भी जावे, तौ भी इसका आशय अयुक्त होनेसे यह श्लोक विद्वानोंको माननीय भी नहीं हो सक्ते, अब अश्वालंभ अर्थात् घोडेको मारके होम करना वेदविहित नहीं है, तौ उसका कलियुगमें निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं, जो कलियुगमें इस नीच कर्मका निषेध माना जाय तौ त्रेता आदिमें विधि आजाय तौ इसमें ऐसे दुष्ट कामका श्रेष्ठमें होना सर्वथा असंभव है और संन्यासकी वेदादि शास्त्रोंमें विधि है उसका निषेध करना सर्वथा निर्मूल है, जब मांसका निषेध हो तो सर्वथा निषेध ही है, जब देवरसे पुत्रोत्पत्ति करना वेदोंमें लिखा है तो श्लोक करता क्यों भूंकता है (नष्टे) अर्थात् पति किसी देशान्तरको चला गया हो घरमें स्त्री नियोग करलेवे तौ उसी समय विवाहित पति आजाय तौ यह किसकी स्त्री हो कोई कहे कि, विवाहित पतिकी, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरीमें तौ नहीं लिखी, क्या स्त्रीके पांच ही आपत्काल हैं जो रोगी पडा हो या लडाई होगई इत्यादि आपत्काल पांचसे भी अधिक हैं. इसलिये ऐसे २ श्लोकोंको कभी न मानना चाहिये पृ १२३ । १४

समीक्षा—स्वामीजीने इन श्लोकोंका भाव नहीं समझा यदि इसके पूर्वश्लोकोंको देखते तौ कभी ऐसा न लिखते ब्राह्मण शूद्रकी तो व्यवस्था लिख ही चुके हैं यदि शूद्र अच्छे आचरण करै तौ वह अच्छा है परन्तु वह ब्राह्मणकी तुल्य नहीं होसक्ता " अनेकयुक्तानटितं च यंत्रु तथापि काको न च राजहंसः " विदुरजी सब कुछ जानतेथे परन्तु ब्रह्मज्ञान शूद्र होनेके कारण स्वयं नहीं कहा सनत्सुजातजीको बुलाया, कहिये विदुरजी सर्वगुणालंकारयुक्त थे या नहीं और दृष्टान्त भी

विषम नहीं है, वह मनुष्योंमें हैं न कि पशुओंमें यदि स्वामीजी काव्य जानते तो ऐसा कभी नहीं कहते और संन्यासके लिये यह आज्ञा है कि, ब्राह्मणके अतिरिक्त कलियुगमें और किसी जातिको अधिकार नहीं है और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति राजा वेनने चलाई है और युगकी कौन कहै इसका कलियुगमें भी निषेध है और यह अश्वालंभकी रीति पाराशरजीने तो निषेध ही करी है, परन्तु आपने तो पुराने १८७५ के सत्यार्थप्रकाशमें ३०२ पृष्ठमें लिखा है कि, कोई मांस न खाय तो पक्षी जलजन्तु जितने हैं इससे सहस्र गुने हो जायँ, फिर मनुष्योंको मारने लगें, फिर पृ० ३९ में लिखा है कि, पशुओंके मारनेसे थोडासा दुःख है, परन्तु चराचरका उपकार होता है फिर अपने ही पुराने सत्यार्थप्रकाशमें पशुओंका यज्ञमें मारना विधिपूर्वक हनन लिखा है, यजु० अ० १९ मंत्र २० में लिखाहै बहुत पशुवाला होम करके हुतशेषका भोक्ता प्रशंसाको प्राप्त होता है उस समय क्या आपमें कुछ विद्या कमतीथी, या अब किसी गुरुसे पढआये, जो अब खण्डन करने लगे, पाराशरजीने तो मनेही लिखा है आज्ञा तो आपने ही दे दी थी अब तीसरे श्लोकका आशय सुनिये कि, वह ही अर्थका प्रसंग यहां है कि, वाग्दानके अनन्तर यदि पति इन पांच आपदाओंमें पतित होजाय तो उसका विवाह अन्य पुरुषसे करदेन। पूर्व पुरुषसे करना नहीं, मनुजीने पतिव्रताधर्मकी और स्त्रीके कालक्षेपकी विधि इस प्रकार लिखी हैं । कलिमें मनुष्योंकी पापप्रवृत्ति तथा लुब्धता और विषयवासनाकी प्रबलता देखकर स्मृतिकारोंने बहुतसी बातें निषेध कर दी हैं और यहां पाराशरीके श्लोकमें ' पतौ ' ऐसा पद नहीं है कारण कि ' पतिः. समास एव, अष्टा० १ । ४ । ८ पतिकी समासमें ही ' घि ' संज्ञा है तो यहां 'अपतौ' शब्द है पूर्वरूप हो रहाहै तब यह अर्थ निकला कि विवाहसे पहले २ यह कन्या हम इसको देचुके इस कहनेके पीछे यदि पति नष्ट मृत क्लीव पतित प्रव्रजित हो जाय तो उस कन्याका विवाह अन्यसे हो सकताहै । दयानन्दजी तो गौ और गधीं एक ही बताते हैं यही तो उनका धर्म है ॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
पतिलोकमभीप्संती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥ १५६ ॥ अ०५
कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १५७ ॥
आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ १५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥ १५९ ॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥
अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निंदामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ १६१ ॥
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ १६२ ॥

पतिलोककी इच्छा करनेवाली साध्वी स्त्री जीवित या मृतपतिके अप्रिय कोई कर्म न करै १५६ पवित्र जो पुष्प मूल फल हैं इनके भोजनसे देहको कृश करै परन्तु पतिके मरनेपर पर पुरुषका नाम भी न ले १५७ क्षमा करके युक्त और नियमवाली पवित्र धर्मकी इच्छा करनेवाली मधुमांसादिककी नहीं इच्छा करती हुई ब्रह्मचारिणी होकर मरणपर्यंत नियममें रहे १५८ ब्राह्मणोंके कई सहस्र ब्रह्मचारी कुमार स्वर्गमें विना पुत्रोत्पादन किये गये हैं, इस कारण पुत्र उत्पन्न करनेकी विधवाओंको कोई आवश्यकता नहीं १५९ साध्वी स्त्री पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यसे रहै तो अपुत्रिणी भी स्वर्गको जाती है जैसे वे ब्रह्मचारी चले गये १६० पुत्रके लोभसे जो स्त्री परपुरुषसे सम्बन्ध करती है वह यहाँ निन्दाको प्राप्त होती है और स्वर्गलोक तथा पतिलोकसे भ्रष्ट हो जाती है १६१ दूसरे पुरुषसे उत्पन्न हुई प्रजा शास्त्रसे उसकी है नहीं और न दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न करनेवालेकी है और न साध्वी स्त्रियोंको दूसरा पति कहा है १६२ यह सनातन वैदिक सिद्धान्त है और महाभारतमें सावित्रीकी कथा देखो पुनः अ० ९ श्लो० ४७

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥४७ अ०९मनु०

हिस्सा एक ही बार किया जाताहै, कन्यादान एक ही बार किया जाताहै और देंगे यह भी एक ही बार कहा जाता है, सत्पुरुषको यह तीन बातें एक ही बार होती हैं ४७

इयंनारीपतिलोकंवृणानानिपद्यतउपत्वमर्त्यप्रेतम् ।
धर्मपुराणमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि।अथर्व०१८।३।१

यह स्त्री जो, पतिलोक जानेकी इच्छा करै सनातन धर्मको अच्छे प्रकार पालन करै और कन्दमूल फलको भोजन करती हुई उत्तम गतिको प्राप्त होती है और धन पुत्रादिक प्राप्त करती है इसकी प्रजा और धन तेरा है पदार्थ पीछे लिख चुके हैं, इन सब बातोंका सिद्धान्त यह है कि नियोग कभी नहीं करना और परपुरुषको भूलसे भी अंगीकार नहीं करना, तथा पतिव्रतधर्म पालन करना ॥

इति श्रीमद्दयानंदसरस्वतीस्वामिकृतसत्यार्थप्रकाशे समावर्तनविवाहगृहाश्रमनियोगविषये चतुर्थसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ १० । ६ । ९० ॥

श्रीः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतपञ्चमसमुल्लासस्य खण्डनं प्रारभ्यते ।

संन्यासप्रकरणम् ।

स० पृ० १२६ पं० २

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् । मनु० अ० ६ श्लो० ३३

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् ५० वें * वर्षसे पचहत्तर वर्षपर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थ न करके संन्यासाश्रम करै उसको पाप होता है या नहीं (उत्तर) होता है और नहीं भी होता, जो बाल्यावस्थामें विरक्त होकर विषयोंमें फंसे वह महापापी और जो न फँसे वह पुण्यात्मा पुरुष है ॥ १२७।७

समीक्षा—दयानंदजीके ही लेखसे हम इनके संन्यासकी परीक्षा करते हैं आपने ७५ वर्षसे पूर्व ही संन्यास लेलिया और विषयसंग भी नहीं छोडा, आपको विषयोंमें फंसे रहनेसे पाप ही हुआ आपने लक्षोंकी मालिका प्रबन्ध किया, निवाडके पलंगपर शयन होता था, बडे बडे तकिये लगे रहते, रसोईमें षड्रस भोजन होता, पांव धुलानेको कहार नौकर, चटनी मुरब्बे पूरी हलुवेके विना भोजन प्रिय नहीं लगता था, दुशाले ओढे जातेथे हुक्का पिया जाता, चार पांच जोडे बूटोंके विलायती बने सन्दूकमें रहते इत्यादि जहां ठहरते कोठी बंगलोंमें ही ठहरते फिर आपको इन संगोंके करनेसे पाप ही हुआ ॥ और न कर्मानुसार आप संन्यासी ठहर सकते हैं ॥

स० पृ० १२६ पं० १९

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः ।
नाशान्तमानसोवापिप्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् । कठवल्ली व० १५० २३

* १८९० सम्वत् ४ पृ० १२० पं० ८ पचीसवें वर्षसे लगाके पचासवें वर्षसे ऐसा बदल लिया है।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥ १५९ ॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥
अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निंदामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥ १६१ ॥
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ १६२ ॥

पतिलोककी इच्छा करनेवाली साध्वी स्त्री जीवित या मृतपतिके अप्रिय कोई कर्म न करै १५६ पवित्र जो पुष्प मूल फल हैं इनके भोजनसे देहको कृश करै परन्तु पतिके मरनेपर पर पुरुषका नाम भी न ले १५७ क्षमा करके युक्त और नियमवाली पवित्र धर्मकी इच्छा करनेवाली मधुमांसादिककी नहीं इच्छा करती हुई ब्रह्मचारिणी होकर मरणपर्यंत नियममें रहै १५८ ब्राह्मणोंके कई सहस्र ब्रह्मचारी कुमार स्वर्गमें विना पुत्रोत्पादन किये गये हैं, इस कारण पुत्र उत्पन्न करनेकी विधवाओंको कोई आवश्यकता नहीं १५९ साध्वी स्त्री पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यसे रहै तो अपुत्रिणी भी स्वर्गको जाती है जैसे वे ब्रह्मचारी चले गये १६० पुत्रके लोभसे जो स्त्री परपुरुषसे सम्बन्ध करती है वह यहाँ निन्दाको प्राप्त होती है और स्वर्गलोक तथा पतिलोकसे भ्रष्ट हो जाती है १६१ दूसरे पुरुषसे उत्पन्न हुई प्रजा शास्त्रसे उसकी है नहीं और न दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न करनेवालेकी है और न साध्वी स्त्रियोंको दूसरा पति कहा है १६२ यह सनातन वैदिक सिद्धान्त है और महाभारतमें सावित्रीकी कथा देखो पुनः अ० ९ श्लो० ४७

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥४७ अ०९मनु०

हिस्सा एक ही वार किया जाताहै, कन्यादान एक ही वार किया जाता और देंगे यह भी एक ही वार कहा जाता है, सत्पुरुषकी यह तीन बातें एक ही वार होती हैं ४७

इयंनारीपतिलोकंवृणानानिपद्यतउपत्वमर्त्यंप्रेतम् ।
धर्मपुराणमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि। अथर्व० १८।३।१

यह स्त्री जो, पतिलोक जानेकी इच्छा करे सनातन धर्मको अच्छे प्रकार पालन करे और कन्दमूल फलको भोजन करती हुई उत्तम गतिको प्राप्त होती है और धन पुत्रादिक प्राप्त करती है इसकी मना और धन तेरा है पदार्थ पीछे लिख चुके हैं, इन सब बातोंका सिद्धान्त यह है कि नियोग कभी नहीं करना और परपुरुषको भूलसे भी अंगीकार नहीं करना, तथा पतिव्रतधर्म पालन करना ॥

इति श्रीमद्दयानंदसरस्वतीस्वामिकृतसत्यार्थप्रकाशे समावर्तनविवाहगृहाश्रमनियोगविषये चतुर्थसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ १० । ६ । ९० ॥

श्रीः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतपञ्चमसमुल्लासस्य खण्डनं प्रारभ्यते ।

संन्यासप्रकरणम् ।

स० पृ० १२६ पं० २

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।

चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् । मनु०अ०६ श्लो०३३

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् ५० वें * वर्षसे पचहत्तर वर्ष-पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थ न करके संन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है या नहीं (उत्तर) होता है और नहीं भी होता, जो बाल्यावस्थामें विरक्त होकर विषयोंमें फंसे वह महापापी और जो न फँसे वह पुण्यात्मा पुरुष है ॥१२७।७

समीक्षा-दयानंदजीके ही लेखसे हम इनके संन्यासकी परीक्षा करते हैं आपने ७५ वर्षसे पूर्व ही संन्यास लेलिया और विषयसंग भी नहीं छोडा, आपको विषयोंमें फंसे रहनेसे पाप ही हुआ आपने रुपयोंकी प्राप्तिका प्रबन्ध किया, निवाडके पलंगपर शयन होता था, बडे बडे तकिये लगे रहते, रसोईमें षड्रस भोजन होता, पांव धुलानेको कहार नौकर, चटनी मुरब्बे पूरी हलुवेके विना भोजन प्रिय नहीं लगता था, दुशाले ओढे जातेथे हुक्का पिया जाता, चार पांच जोडे जूतोंके विलायती बने सन्दूकमें रहते इत्यादि जहां ठहरते कोठी बंगलोंमें ही ठहरते फिर आपको इन संगोंके करनेसे पाप ही हुआ ॥ और न कर्मानुसार आप संन्यासी ठहर सकते हैं ॥

स० पृ० १२६ पं० १९

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः ।

नाशान्तमानसोवापिप्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् । कठवल्ली सं० १व०२२३

---

* १८९१ मुद्रा० ९ पृ० १३० पं० ८ पचीसवें वर्षके स्थानमें पचासवें वर्षसे ऐसा पाठ किया है।

जो दुराचारसे पृथक् नहीं जिसको शान्ति नहीं जिसका आत्मा योगी नहीं जिसका मन शान्त नहीं वह संन्यास लेके भी प्रज्ञानसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता ॥ १२७ । २७

समीक्षा–स्वामीजी आपमें तो शान्ति भी नहीं प्रत्यक्ष देखिये कि, जहां कहीं किसीने आपके विरुद्ध कहा झट उसका उत्तर देनेमें कटिबद्ध हो दुर्वाक्योंकी वर्षा करने लगे, राजा शिवप्रसादपर ही आपने कैसे कटु वाक्य लिखे हैं और सत्यार्थप्रकाशमें ११ समुल्लासमें गालियोंकी वर्षा की है मत लिखनेवालेको कसाई कहा है आत्मा भी तुम्हारा योगी नहीं था क्यों कि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तवृत्ति निरोधका नाम योग है जब कि चित्तकी वृत्ति ही शान्त नहीं हुई तो आत्माके योग कहां मन भी तुम्हारा शान्त नहीं कभी कुछ लिखा कभी कुछ लिखा इससे आपका संन्यास लेना वृथा हुआ ॥

स० प्र० पृ० १२७ पं० १९

अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयंधीराःपण्डितंमन्यमानाः ॥ जंघन्यमानाःपरियन्तिमूढा। अन्धेनैवनीयमानायथान्धाः॥मुं०खं०२मं०८

जो अविद्याके भीतर खेल रहे अपनेको धीर और पंडित मानते हैं वे नीच गतिको जानेहारे मूढ जैसे अंधेके पीछे अंधे दुर्दशाको प्राप्त होते हैं वैसे दुःखोंको पाते हैं ॥ १२१।१८

समीक्षा–पंडिताभिमान भी स्वामीजीमें थोडा नहीं है, जिन्होंने पमंडमें ब्रह्मासे लेकर जैमिनिपर्यंत ग्रंथोंमें अशुद्धता बताते तथा कहते हैं ब्राह्मणभागमें भी जो कुछ विरुद्ध है वह मुझे स्वीकार नहीं, महात्मालोग जो वेदार्थको प्रथमसे जानते थे आपने उनका अर्थ भी विरुद्ध बताया, बस यह श्रुति आप पर घटती है, ऐसी ही दशा पंडिताभिमानियोंकी होनी चाहिये ॥

स० प्र० पृ० १२७ पं० २१

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः॥ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुं०३खं०२मं०६

वेदान्त अर्थात् परमेश्वरप्रतिपादक वेदमंत्रोंके अर्थ ज्ञान और आचार इस प्रकार निश्चित संन्यास योगसे शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वरमें मुक्तिसुखको प्राप्त हो भोगके पश्चात् जब मुक्तिसुखकी अवधि पूरी हो जाती है तब वहांसे छूटकर संसारमें आते हैं, मुक्तिके विना दुःखका नाश नहीं होता ॥ १२१।१९

समीक्षा–अच्छा प्रबन्ध यहांसे बांधा कि, मुक्तिसे लौट होते ।

इस युक्तिसे लौटनेका खंडन तो मुक्तिविषयमें करेंगे परन्तु अब तो इसका अर्थ लिखते हैं ॥

विचारजन्य विज्ञानसे जिन्होंने वेदान्तके अर्थोंको यथार्थ जाना है और वे यत्नशील सर्वस्वत्यागरूप संन्यासयोगसे शुद्धचित्त हैं वे ब्रह्मलोकमें महाप्रलयमें परामृत ब्रह्मज्ञानजन्य मुक्तिको प्राप्त होके (परिमुच्यन्ति) विदेह कैवल्य अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं इसकी विशेष व्याख्या मुक्तिविषयमें लिखी जायगी ॥

स० पृ० १२८ पं० ११ पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्य्यं चरन्ति ॥ शत० १४ । ७ । २ । २६

लोकमें प्रतिष्ठा वा लाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे अलग होके संन्यासीलोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्षके साधनोंमें तत्पर रहते हैं ॥ १३०।२०

समीक्षा—दयानंदजी नामके संन्यासी हैं, * क्यों कि इनमें यह इच्छा भरपूर पाई जाती है, लोकैषणाके अर्थ लोकमें जन निन्दा करें वा स्तुति और अप्रतिष्ठा करें तो भी जिसके चित्तमें कुछ हर्ष शोक न होय, तो वह संन्यासी जानना, स्वामीजीकी यदि कोई निन्दा करता है तो कितना शोक होता है. उसी समय उसके उत्तर देनेको पुस्तक बनाई जाती है वित्तैषणाका भी त्याग आपमें नहीं पाया जाता, धनकी इच्छा यहां तक है कि, जिसकी पूर्ति ही नहीं होती, धनकी प्राप्तिमें कैसे २ प्रयत्न किये कि, निज यंत्रालय जारी किया गया, पुस्तकोंका मूल्य द्विगुण त्रिगुण नियत हुआ, हमारे पुस्तकोंको और कोई न छापसके इस कारण उनपर रजिष्टरी कराई गई, लोगोंसे धनके आने और पुस्तक विक्रयके व्यवहारसे धन मिलनेपर भी व्याकरणका पुस्तक छपवानेको धनकी सहायता ली और बहुत पंडित नौकर रखकर वेदभाष्यकी पूर्ति शीघ्र होगी इस बहानेसे पृथक् याचना की, उपदेशक मंडलीके नामसे एक लक्ष रुपया एकत्रित करनेमें यथाशक्ति प्रयत्न कियागया, परन्तु वह काम आपके विपरीत व्यवहारसे पूर्ण नहीं हुआ, लोभने आपके हृदयमें यहां तक निवास कियाथा कि, धनवानोंसे प्रीतिसमेत घंटों वार्ता होतीथी, निर्धनोंकी तो बूझ ही नहीं थी, प्रतिष्ठा इतनी चाहते कि, कोठियों पर ठहरते चरटपर ही निकलते रहे, पुत्र तो था ही नहीं परन्तु जो मुख्य सेवकलोग हैं उनमें आप प्रीतिकरते हो और उनके सुख दुःखमें हर्ष शोक प्रगट करते हो, क्यों कि आपने पृ० १२८ पं० ८ में लिखा है जो देहधारी है वह दुःख सुखकी प्राप्तिसे पृथक् नहीं रहसक्ता, निदान आप तीनों एषणाओंसे मुक्त नहीं और

* भा० प्र० कर्त्ताजी दूसरोंको क्यों देखतेहो दूसरे तो आपकी दृष्टिमें पहलेसेही अच्छे नहीं पर एकवारतो हृदयपर हाथ धरके सत्य बोलो कि जैसे संन्यासीके लक्षण चाहिये स्वामीजी वैसे ही संन्यासी हैं या नामके ।

संन्यासी भी नहीं, तीनों एषणाओंको वही जीतसकैगा जो संसारके व्यवहारोंसे कुछ संबंध न रक्खेगा ॥

स० पृ० १२८ पं० १९

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥

प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीतादि चिह्नोंको छोड आहवनीयादि पांच अग्नियोंको प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणोंमें आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घरसे निकलकर संन्यासी हो जावे ॥ १३१ । १

समीक्षा—यहां भी स्वामीजीकी बनावट ही है, सर्ववेदस शब्दका अर्थ यज्ञोपवीतादिकका नहीं किंतु सर्वस्व है, मनुके टीकाकार मेधातिथि गोविंदराज कुल्लूकभट्टने इसी श्लोकके टीकेमें सर्ववेदस शब्दका अर्थ सर्वस्व किया है यहां प्राजापत्य इष्टिकी सर्ववेदस दक्षिणा लिखी है, अब ध्यान करो कि, उक्त इष्टिकी, दक्षिणा सर्वस्व हो सकी है या यज्ञोपवीत जिसको बुद्धिका कुछ भी स्पर्श होगा वह यही कहैगा कि, यज्ञोपवीत यज्ञकी दक्षिणाके लिये सर्वथा असमंजस है, और सर्वस्व समंजस है क्यों कि वैराग्यके विना संन्यासका ग्रहण करना वृथा है और जिसने धनादि सर्वस्व पदार्थोंका त्याग न किया, उसको वैराग्य कहां ।

स० पृ० १३१ पं० १ इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक राग द्वेषको छोड सबसे निर्वैर रहे ॥ १३३ । १६

समीक्षा—स्वामीजीमें विद्या ज्ञान वैराग्य एवं जितेन्द्रियता भी नहीं थी, विषयभोगकी इच्छा पूर्ण है, विद्या और ज्ञान यथार्थ होता तो परस्पर विरुद्ध शास्त्रप्रतिकूल युक्ति रहित लेख क्यों करते, वैराग्यके विरुद्ध धनादि पदार्थोंमें राग क्यों होता विषयभोगकी इच्छा न होती तो उत्तमोत्तम वस्त्रों और भोजनोंका क्या प्रयोजन था ॥

स० पृ० १३१ पं० २१ सब भूतोंसे निर्वैर रहे ॥ १३४ । ६

समीक्षा—आर्यसमाजियोंको छोडकर आपका तो सबहीसे विरोध था, फिर कैसे कटुवचन मतावलम्बियोंको लिखे हैं अत एव आप संन्यासी नहीं थे ॥

स० पृ० १३० पं० १३ जब कहीं उपदेश वा शंकासमाधानमें कोई संन्यासीपर क्रोध करे तो संन्यासीको उचित है कि, उसपर क्रोध न करे ॥ १३५ । ६

* यह वचन लिख तो दिया परन्तु कभी इसका बर्ताव भी किया ? क्रोध करे और उसपर क्रोध न करे, यह असंभव है [illegible]

की सेवामें रहते थे, उनका हृदयभी आपकी क्रोधाग्निसे भस्म हो जाताथा जो कोई आपके दोषको दोष कहें उसका भी तिरस्कार होताथा, बीसियों दृष्टान्त आपकी बनाई शास्त्रार्थोंकी पुस्तकोंमें विद्यमान हैं ॥

पृ० १३४ पं० २० 'सम्यङ्नित्यमास्ते यस्मिन्यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यतेऽस्य स संन्यासी' जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें, वह संन्यासी कहाता है ॥ १३७ । १०

समीक्षा-वाहजी अच्छा अर्थ किया (जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय) आपने इससे अर्थ क्या निकाला जो ब्रह्मको और दुष्ट कर्मोंको छोड देवे क्या वह संन्यासी (बौद्धमतावलम्बी) जो दुष्ट कर्मोंको छोडनेका नाम संन्यास है तो सब ही श्रेष्ठाचारवाले गृहस्थ पुरुष संन्यासी हो सक्ते हैं फिर तो सब ही संन्यासी हो जायँगे, इस कारण (सम्यक्न्यासः आत्यन्तिकस्त्यागः संन्यासः) सम्पूर्ण ही वस्तुओंका त्याग शिखा सूत्रसहित इसको संन्यासी कहते हैं

स० पृ० १३९ पं० १८

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥ मनु०

नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन विविक्त अर्थात् संन्यासियोंको देवै॥१३८।१०

समीक्षा-यह और भी द्रव्य लेनेको कपटजाल प्रकट कर मनुके नामसे श्लोक कल्पना किया है सारी मनुस्मृति देखिये कहीं भी यह श्लोक नहीं लिखा है, यतियोंको धन देनेसे महापाप होता है, कोई दयानंदी इसके उत्तरमें यह श्लोक देते हैं कि स्वामीजीने इस श्लोकके आशयसे यह श्लोक बनाया है ।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवि-
त्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ अ० ११ श्लो० ६

सो विद्वान् लोग इसके अर्थ विचारें इसमें संन्यासियोंको द्रव्य देनेका कोई भी पद नहीं है किन्तु इस श्लोकका यह अर्थ है कि, अनेक प्रकारसे धन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको देना चाहिये,जो कि वेद पढे हैं और (विविक्तेषु पुत्रकलत्राद्यसक्तेषु) कुटुम्बी हैं ऐसे ब्राह्मणोंको देनेसे शरीर त्यागने उपरान्त स्वर्ग होता है, संन्यासी-का यहां प्रकरण नहीं संन्यासीको तो चाहिये कि--

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयत् ।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेव्यमानो व्रजत्यधः ॥ अ० ६ । श्लो० ३५

देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण इन तीनों ऋणोंसे उद्धार होके मनको मोक्षमें

ऋलगावे, विना तीनों ऋण मुक्ति किये जो मोक्षसेवन करताहै, अर्थात् संन्यासी होताहै सो नरकमें जाताहै स्वामीजीने इस श्लोकको न विचारा तभी तो तीनों इच्छा बनी रहीं ॥

एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति॥अ० ६।श्लो०५५

एक कालमें भोजन करै और भिक्षाके विस्तारकी इच्छा न करै, बहुत स्वादुके अन्नके भोजन करनेसे यतिको विषय गिराय देवेंगे ॥

स्वामीजी आपके तो प्रतिदिन विविध प्रकारके भोजन बनते हैं, संन्यासीको पेडके नीचे रहना एक समय भोजन करना लिखाहै. आपमें यह लक्षण एक भी नहीं मिलता है, इस कारण आपका संन्यास ठीक नहीं और तुम संन्यासी भी नहीं ॥

इति श्रीमद्यानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतपंचमसमुल्लासस्य खण्डनं समाप्तम् १०।६।९०

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतषष्ठसमुल्लासस्य खण्डनं प्रारभ्यते ।

राजधर्मप्रकरणम् ।

इस समुल्लासमें स्वामीजीने राजधर्मकी व्याख्या की है, इसमें सम्पूर्ण मनुस्मृतिके श्लोक लिखे हैं, जो कि प्राचीन समयसे आजतक सब मानते चले आते हैं इसमें कोई मतविषयक चर्चा नहीं है परन्तु जो वार्ता स्वामीजीने इसमें मानी है अन्यत्र नहीं मानी वही दिखलाते हैं ॥

स० पृ० १४४ पं० २ इस सभामें चारों वेद न्याय शास्त्र निरुक्त. धर्मशास्त्र आदिके वेत्ता विद्वान् सभासद हों ॥ १४७ । १६

स० प्र० पृ० १६६ पं० ११ जो विशेष देखना चाहैं वह चारों वेद मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारतादिमें देखकर निश्चय करैं प्रजाका व्यवहार मनुके अष्टमनवमाध्यायसे करै १८४ । १२

समीक्षा--यहां स्वामीजीका वेह प्रण कहां गया कि, हम वेदानुसार ही मानेंगे जब वेदानुसार ही मानते तो मनुके लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, वेदसे ही लिख दिया होता, इससे मालूम होताहै कि मनुष्योंका व्यवहार राजधर्मादि यह धर्मशास्त्रहीसे होताहै, उसका यथावत् मानना ही बनैगा, वेदानुसारका मानना कहना बन नहीं सकता, यदि वेदानुसार ही है तो बताइये यह राजधर्म कौनसी श्रुतियोंसे निकाला है, अब महाभारत भी मानगये यह साक्षी पूछना, दण्डविधान आदि वेदमें कहांके हैं, इससे अपने विषयमें धर्मशास्त्र भी स्वतः प्रमाण है ॥

स० पृ० १४७ पं० १४ और कुलीन अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात वा आठ मंत्री करें १५१ । १२ स० पृ० १४८ पं० ६ जो प्रशंसित कुलमें उत्पन्न पवित्र चतुर हो उसे दूतपनेमें नियुक्त करे १५२ । ३

समीक्षा–यहां स्वामीजी जन्मसे जाति मानना स्वीकार करते हैं क्यों कि यदि शूद्र संपूर्ण गुणोंसे युक्त हो तो वह दूत करनेके योग्य नहीं, किन्तु जिसका कुल भी श्रेष्ठ हो ऐसे ही मन्त्री और दूत बनावे, कुलीनता तो जन्मसे ही होती है अन्यथा नहीं स० प्र० पृ० १४९ पं० २४ बडे उत्तम कुलमें युक्त सुन्दर लक्षण है अपने क्षत्रिय कुलकी कन्या जो अपने सदृश गुण कर्ममें हो उससे विवाह करना ॥ १९२ । २४

समीक्षा–यहां भी स्वामीजी जाति ही उत्तम मानते हैं, जो क्षत्रिय कन्या बडे कुलमें उत्पन्न हो, उससे विवाह करै, यदि पढी लिखी नीच कुलकी गुणवती भी हो तो उसके साथ विवाह करना नहीं लिखा, किन्तु यहां श्रेष्ठ कुलकी कन्याके साथ विवाह करना लिखा, यहां भी जाति ही प्रधान मानी है, तभी तो शूर वीर उत्पन्न होते थे जो कि, भारतका उद्धार करते थे ॥

स० पृ० १५२ पं० ४ जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक और परलोकमें सुख होनेवाला था उसे उसका स्वामी ले लेता है ॥ १९८ । १३

पृ० १७० पं० २१ जो साक्षी सत्य बोलताहै वह जन्मान्तरमें उत्तम जन्म और लोकान्तरोंमें जन्मको प्राप्त होके सुख भोगता है ॥ १७७ । १

समीक्षा–इन वाक्योंसे प्रतीत होता है कि, स्वामीजी जीवका पृथ्वीके सिवाय अन्य लोकोंमें जाना स्वीकार करते है, अब आपने लोकान्तरमें जीवकी गतिमानी फिर जाने आप स्वर्गलोक माननेमें क्यों हिचकिचाते हो परन्तु स्वर्गलोकमें तो पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं पक्षपाती वा धर्मत्यागियोंका वहां प्रवेश नहीं हो सक्ता इस कारण आपने शोचा कि हमतो वहां जायँगे ही नहीं, इस कारण लिख दिया कि स्वर्ग ही नहीं लोकोंकी व्याख्या आगे लिखेंगे ॥

स० पृ० १६७ पं० २७ और जो २ नियमशास्त्रोक्त न पावें और उनके होनेकी आवश्यकता पावें तो उत्तमोत्तम नियम बांधे १७३ । १६ पृ० १७६ पं० १७ उत्तम नियम बांधे परन्तु जहांतक बने बालविवाह न करनेदे तथा युवावस्थामें प्रसन्नताके विना विवाह न करना न करने देना ॥ १८३ । २५

समीक्षा–यह क्या स्वामीजीको सूझी आपतो शास्त्रमें सब कुछ मानतेहैं, और जो है वहीं नया बनाओगे तो उसका प्रमाण कैसे होगा और वेदानुसार ही वह क्यों कर होसक्ता है बस जाना जाता है कि, आपने बहुतसे मेल मिलाय हाण

तौ तो आवश्यकता पडनेसे आप जाने क्या क्या लिखेंगे, अब इस नियोगकी क्या आवश्यकता थी जो आपने लिखा :परन्तु अब आपकी वेदानुसारकी प्रतिज्ञा जाती रही पुरातनसिद्ध योग्य समयपर विवाहकी रोक और प्रसन्नताके विना व्याह न करो यह हठ न छोडो ॥

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतषष्ठसमुल्लासस्य खण्डनं समाप्तम्॥१०।३।९०.

अथ सप्तमसमुल्लासस्य खण्डनम् । पुनः देवताप्रकरणम् ।

स० पृ० १७९ पं० ४

त्रयस्त्रिंशत्त्रिशता० इत्यादि वेदोंमें प्रमाण है, इसकी व्याख्या:शतपथमें की है कि, तंतीस देव, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, सब सृष्टिके निवासस्थान होनेसे आठ वसु प्राणापान, व्यान, समान, नाग, कूर्म,कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा यह ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि शरीरको छोडते हैं तब रोदन करनेवाले होते हैं, संवत्सरके. बारह महीने बारह आदित्य इसलिये कहाते हैं कि यह सबकी आयु लेते जाते हैं, बिजलीका नाम इन्द्र इस हेतुसे है कि, परम ऐश्वर्यका हेतु है, यज्ञको प्रजापति कहनेका कारण यह है कि जिससे वायु वृष्टि जल औषधीकी शुद्धि विद्वानोंका सत्कार और नानाप्रकारकी शिल्पविद्यासे प्रजाका पालन होता है, यह तंतीस पूर्वोक्त गुणोंके योगसे देव कहाते हैं, इनका स्वामी चौंतीसवां उपास्य देव शतपथके १४ काण्डमें स्पष्ट लिखा है ॥ १८६ । ८ *

समीक्षा--यद्यपि देवता पूर्व प्रतिपादन कर आये हैं, परन्तु स्वामीजीने जो यह पुनः लेख किया उससे अब फिर कुछ थोडासा लिखते हैं, कहीं तो स्वामीजीके विद्वान् देवता होजाते हैं, कहीं इन्द्र ईश्वर होजाते हैं, परन्तु कहीं मिट्टी, पानी, लकडी देवता होजातेहैं, इन्द्रजी बिजली बन जातेहैं (त्रयस्त्रिंशत्त्रिशता) जिसके अर्थ ३० ३३ देवताओंके हैं, स्वामीजीने तंतीस ३३ हीके किए हैं, वह अर्थ तो बदले ही पर हिसाबमें भी गडबडी, क्या आपको तंतीससे अधिक गिनती नहीं आती जो ३०३३ के ३३ ही रहगये देखिये देवता तो अनेक हैं जिनके नाम जपनेसे पाप दूर होताहै ॥

यजुर्वेद अ० ३९ मं० ६ प्रायश्चित्ताहुति० धर्मके भेद होनेमें सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीयेवायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्र-

* पांचवीं बारम भी यही पाठ है छोटे स्वामी इसे अशुद्ध बताते हैं देवताओंरी बहुतायतका मन्त्र यजु० ३७ । ७ देखो १९७० सम्वत्के मा० प्र० में भी ऐसा ही है ।

माः पञ्चमऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ६

प्रथम दिनका सविता देवता है, दूसरे दिनका अग्नि, तीसरे दिनका वायु, चौथे दिनका आदित्य देव, पांचवेंका चंद्रमा, छठेका ऋतु, सातवेंका मरुत्, आठवेंका बृहस्पति, नववेंका मित्र, दशवेंका वरुण, ग्यारहवें दिनका इन्द्र, बारहवेंका विश्वेदेवा देवता है इन देवताओंके निमित्त १२ दिनतक मायश्चित्तके अर्थ आहुति दी जाती है, अब स्वामीजी बतावें इसमें यह देवता कहांसे आगये ॥

नृचक्षसोअनिमिषंतो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवोवर्ष्माणंवसतेस्वस्तये ॥१॥
ऋ० मं० १० सू० ६३ अ० ५

(नृचक्षसः) कर्मनेता मनुष्योंके देखनेवाले (अनिमिषंतः सदा जागरणशील जिनके पलक नहीं लगते (देवासः) देवता (अर्हणा) लोकके परिचरणार्थ (बृहत् अमृतत्वं) अमरत्वधर्मको (आनशुः) प्राप्त हुए हैं (ज्योतीरथाः) वे दीप्यमान रथवाले (अहिमायाः) अव्यय बुद्धि (अनागसः) पापरहित देवता (देवः) स्वर्ग लोकके (वर्ष्माणं) उच्छ्रित देशमें (स्वस्तये) लोकके कल्याणार्थ (वसते) रहते हैं ॥ १ ॥

सम्राजो येसुवृधोयज्ञमाययुरपरिहृतादधिरेदिविक्षयम् ॥ ताँ आविवास नमसासुवृक्तिभिर्महोआदित्याँअदितिंस्वस्तये ॥ २ ॥

(सम्राजः) अपने तेजोंसे अच्छी तरह प्रकाशमान (सुवृधः) अतिवृद्धियुक्त यें (ये) जो देवता (यज्ञं) यज्ञको (आयुः) आते हैं (अपरिहृताः) वे सबसे अजेय (दिवि) स्वर्गलोकमें (क्षयं) निवास (दधिरे) करते हैं (तान् आदित्यान्) उन अदितिके पुत्रोंको (अदितिं) देवताओंकी माताको (महो) बडे गुणयुक्त (नमसा) अन्नकी हवि करके (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियों करके (स्वस्तये) कल्याणके अर्थ (आविवास) पूजो इत्यादि वाक्योंसे विदित होताहै कि, देवता यज्ञमें आते हैं इससे बिजली आदिका अर्थ जो स्वामीजीने लिखाहै सो मिथ्या होगया, आगे ग्यारहवें समुल्लासमें इसका अधिक वर्णन करेंगे " स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति" और "शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके"

फठोपनिषत् १ । १ । १२ स्वर्गलोकमें कुछ भय नहीं स्वर्गलोकमें शोकरहित हो आनंद होता है ॥

ईश्वरविषयप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० १८१ पं० ९ (प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है या नहीं (उत्तर) है पृ० १८१ पं० ९ न्याय और दयाका नाममात्र ही भेद है, क्यों कि जो न्यायसे प्रयोजन सिद्ध होताहै, वह ही दयासे दण्ड देनेका प्रयोजन है पुनः पं० १३ जिसने जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, इसीका नाम न्याय है पं० १७ दया वह ही है कि, डाकूको कारागारमें रखकर पापसे बचाना ॥ १८८ । १३

समीक्षा–यहां तो स्वामीजीने दयाकी खूब ही रेढ लगाई ईश्वर क्या है मानों इनका चेला है, जो सारा सिद्धान्त स्वामीजीसे कथन कर दिया है देखिये (णीञ् प्रापणेसे घञ्) इससे न्याय शब्द सिद्ध होता है, जिसके अर्थ यह हैं कि यथावत् न्याय करना, जो दण्डके योग्य हो उसको दण्ड देना और जो दयाके योग्य हो उसपर दया करना और (दय धातुसे) अङ् करनेसे दया शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ यह है कि किसी भक्त श्रेष्ठाचरणी पुरुषसे अज्ञातमें कोई अपराध हो जाय तो उसको स्तुति करनेपर क्षमा करना. क्यों कि दयाका प्रयोग अपराधीपर ही होता है, जब कि, किसीका दुःख देखकर उसपर करुणा आती है कि इसका दुःख दूर करें, तो इसीका नाम दया है, ईश्वर अन्तर्यामी है वह सबके मनको जानता है, कि यह अपराध बेसुधीमें बना है, या जानकर यदि वह प्रार्थना करै कि आगे ऐसी भूल न करूंगा और परमेश्वर अपनी सर्वज्ञतासे जानता है कि, यह आगेको ऐसा नहीं करैगा, बस उसके ऊपर दया करता है जैसा यजुर्वेदमें लिखा है ॥

सनोबन्धुर्जनितासविधाता धामानिवेद भुवनानिविश्वा ।
यत्रदेवा अमृतमानशानास्तृतीयेधामन्नध्यैरयन्त ॥ १ ॥

यजु० अ० ३२ मं० १०

(सः) यह परमेश्वर (नः) हमारा (बन्धुः) विविध प्रकारकी सहायता रक्षा करनेसे बन्धु है (जनिता) उत्पन्न करता है (सः) वह (विधाता) विधाता मालिक पिता है (सः) वह (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणी (धामानि) स्थानोंको (वेद) जानता है (देवाः) देवता (यत्र) जिस ईश्वरमें (अमृतम्) मोक्षप्रापक ज्ञानको (आनशानाः) प्राप्त करते (तृतीये धामन्) स्वर्गमें (अध्यै-

रयन्त) स्वेच्छानुसार वर्तते हैं आनन्द करते हैं ॥ इस मन्त्रमें बन्धु जनिता आदि शब्दोंसे ईश्वरमें अपार दया जानी जाती है, बन्धुत्वपन नहीं है कि, आपदोंमें सहायता करनी (पातीति पिता) जो रक्षा करै वह पिता, जनिता पिता, पुत्रके अपराधोंको क्षमा कर देता है और दया करता है ॥

शंवातुः श ॅ हि॒ते घृणि॒ः शन्ते॑ भवन्त्विष्टकाः ।
शन्ते॑भवन्त्वग्नयः पार्थिवा सोमात्वाभिशूंशुचन्॥यजु०३५मं०८

भावार्थ-यह कि ईश्वर दया दृष्टिसे कहता है हे यजमान ! भक्त वायु तेरा सुखरूप हो, सूर्यकिरण तुझे सुखरूप हों, मध्यमें और दिशाओंमें स्थापित इष्टिका तेरे लिये सुखस्वरूप हों तुझे तापित नहीं करें ॥ १ ॥ अब विचारना चाहिये कि, यह वाक्य दयारूप है या नहीं, इस कारण न्याय दया पृथक् हैं, ईश्वरमें सर्व शक्तिमत्ता होनेसे दोनों बातें बनती हैं विशेष अघनाशन प्रकरणमें लिखते हैं ॥

निराकारसाकारप्रकरणम् ।

स० पृ० १८२ पं० २ (प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? (उत्तर) निराकार, क्यों कि साकार हो तो व्यापक नहीं, हो सका, जब व्यापक नहीं हो सक्ता तो सर्वज्ञादि गुण उसमें घट नहीं सक्ते, क्यों कि परिमित वस्तुमें गुण कर्म स्वभाव भी परिमित होते हैं, तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, छेदन भेदन आदिसे रहित नहीं होसका इससे यही निश्चय है कि, ईश्वर निराकार है, जो साकार हो तो उसके शरीर नाक कान आदि अवयवोंका बनानेहार दूसरा होना चाहिये, क्यों कि, जो संयोगसे उत्पन्न होताहै उसको संयुक्त करनेहारा चेतन अवश्य होना चाहिये जो कोई कहै कि, ईश्वरने अपनी इच्छासे शरीर धारण किया तो भी यही सिद्ध हुआ कि, शरीर बननेके पूर्व निराकार था, इससे यही सिद्ध हुआ कि ईश्वर निराकार है ॥ १८९ । १२

समीक्षा-ऐसा विदित होताहै कि दयानन्दजीने ईश्वरको मनुष्यवत् समझ लिया है यदि वह साकार होजाय तो व्यापक न रहै, उसका कोई बनानेवाला होजाय जब कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, तो वह आकारवाला होकर शक्ति वा ज्ञानसे रहित नहीं हो सक्ता जिस समय प्रलय होता है उस समय वह निराकार, जब उसमें सृष्टिरचनाकी इच्छा होती है तभी उसको सगुण वा साकार कहते हैं, यह न्यायी दयालु आदि नाम साकारमें ही घटते हैं, यजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट लिखाहै ।

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्चपरिमितश्चापरिमितश्चतद्यद्यजुषाकरोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमितꣳरूपं तदस्यतेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳरूपतदस्यतेनसंस्करोतीतिब्राह्मणम्।श.का.१४अ.१ब्रा.२मं.१८

परमेश्वर दो प्रकारका है परिमित. अपरिमित. निरुक्त और अनिरुक्त इस कारण जो यज्ञउपासनादि कर्म यजुर्वेदके मन्त्रोंसे करता है उसके द्वारा परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित नाम है और जो तूष्णींभावसम्पन्न है अर्थात् अध्यात्ममन्त्रका ही मनन करता है उससे परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करताहै जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है इससे प्रत्यक्ष परमेश्वरमें निराकारता साकारता पाई जाती है ॥

स० पृ०२०१ पं० ७ जो गुणोंसे सहित वह सगुण और जो गुणोंसे रहित वह निर्गुण कहाताहै अपने २ स्वाभाविकगुणोंसे सहित और दूसरे विरोधीगुणोंसे रहित होनेसे सब पदार्थोंमें सगुणता और निर्गुणता या केवल सगुणता हो किन्तु एकहीमें सगुणता और निर्गुणता सदा रहतीहै वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्तज्ञानबलादि गुणोंसे सहित होनेसे सगुण और रूपादि जडके तथा द्वेषादि जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे निर्गुण कहाताहै ॥ २१० । १९

समीक्षा—इस लेखसे तो स्वामीजीका ही पक्ष बिगडताहै जब इस प्रकार निराकार शब्दका अर्थ माना तब तुम्हारे तात्पर्यवाला निराकार शब्दका अर्थ नहीं जो मूर्तिमान्को न बोधन करे किन्तु दिव्य अलौकिकमूर्तिमान्का बोधक भी निराकार शब्द होसकता है जैसा कि, सत्यार्थप्रकाशमें लिखाहै कि, दिव्य अलौकिकगुणवाला भी निर्गुण शब्द बोधक है वैसे ही निराकारशब्द जब साकारका भी बोधक हो गया तो निर्गुणशब्दके दृष्टान्तमें कोई विरोध नहीं निराकारका भी आकार है, सर्वथा आकारशून्यका नाम निराकार कहोगे तो सर्व गुण शून्यका नाम निर्गुण इससे दयानन्दजीका मतभंग हो जायगा क्यों कि, सत्यार्थप्रकाशमें सर्वगुणशून्यका नाम निर्गुण नहीं माना इससे निराकार शब्द भी साकारका बोधक है ॥

जब इस प्रकार निराकारकी अविरोधी साकारता सिद्ध होगई तो (सपर्य्यगात्) इस मन्त्रमें (अकायम्) इस पदका अच्छी तरह समन्वय होगया भौतिक प्राकृत काया करके वर्जित है और बृहदारण्यक उपनिषद्में लिखा है ॥

द्वेवावब्रह्मणोरूपेमूर्तंचामूर्तंचेति० अ० २ ब्रा० ३ कं० १

ईश्वरको दो रूप हैं एक मूर्तिमान् एक अमूर्तिमान् और (एकं रूपं बहुधा यः करोति) एक रूपको जो बहुत प्रकारका करताहै इस मंत्रसे तथा औरोंसे ही सर्वकारण बीजस्थापन परमात्मामें साकारता इस प्रकारसे प्रगट है ॥ " ब्राह्मणोस्यमुखमासीत् । यजु० आत्मैवेदमग्रआसीत्पुरुषविधः० " १४ ४ । ४ । १ आत्मा पुरुषरूप था इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा पुरुषसूक्त भी देखो ॥

अवतारप्रकरणम् ।

स० प्र० १९० पं० २७ ईश्वर अवतार लेताहै वा नहीं (उत्तर) नहीं, क्यों कि " अज एकपाद्" " सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम् " ये यजुर्वेदके वचन हैं इत्यादि वचनोंसे परमेश्वर जन्म नहीं लेता, १९१.पं०२४ और युक्तिसे भी ईश्वरका जन्म सिद्ध नहीं होता जैसे कोई अनन्त आकाशको कहे कि, गर्भमें आया वा मूठीमें धरलिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सक्ता क्यों कि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसे ही अनन्त और सर्वव्यापक परमात्माके होनेमें उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता जाना वा आना वहां हो सकाहै जहां न हो क्या परमेश्वर गर्भमें व्यापक नहीं था जो कहींसे आया और बाहर नहीं था जो भीतरसे निकला ऐसा ईश्वरके विषयमें कहना और मानना विद्याहीनोंके सिवाय कौन कहे और मान सकेगा, परमेश्वरका जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता है १९९ । ६ । २० । ६

समीक्षा स्वामीजी ईश्वरको अज अकाय बनाकर ईश्वरके अवतार होनेमें संदेह करते हैं तो जीवात्मा भी अज और व्यापक श्रवण करा जाता है, उसका भी जन्म न होना चाहिये यथा-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः २०
कठवल्ली अ० उपनिषद्वल्ली २

(विपश्चित्) सबका द्रष्टा जीवात्मा जो कि पूर्वव्याख्यानभाष्यमें लिखा है (सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभवः) इत्यादि वाक्योंसे और (यश्चेतामात्र-

प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः) इत्यादि मैत्र्युपनिषद्से निर्णीत है सो जन्म मरणसे रहि
और यह आप किसीके नहीं उत्पन्न होता और न इससे (कश्चित्)' कुछ
उत्पन्न होता है अज नित्य एकरस वृद्धिरहित है और शरीरके नाशसे इस
नाश नहीं होता * १८ यदि कोई हननकर्ता पुरुष ही हननकर्ता आत्मा चिन
करता है तैसे यदि कोई हत हुआ आत्माको हत चिन्तन करता है वे दोनों आत्म
यथावत् स्वरूपको नहीं जानते क्यों कि, यह आत्मा न हनन करता है न ह
होता है १९ इस जन्तुकी गुहा अर्थात् पंचकोश रूप गुफामें (निहित) स्थित
आत्मा अणुसे भी अणुतर है अर्थात् दुर्लक्ष्य है इससे अणुतर कहा परन्तु
आकाशादिसे (महीयान्) महत्तर है (धातुः प्रसादात्) ईश्वरकी प्रसन्नता
(अक्रतुः) विषयभोगसंकल्परहित पुरुष आत्माको देखता है तौ आत्माकी म
माको देखकर शोकरहित होताहै और योगशास्त्रके भाष्यमें व्यासजी कहते हैं ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । यो० पा० १ सू० २

चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमादर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च व्यासभा
अर्थ (चितिशक्तिः) जीवचेतन अपरिणामी है (अप्रतिसंक्रमा) क्रियारहि
है (दर्शितविषया) सर्वविषयोंका द्रष्टा है शुद्ध और अनन्त व्यापक है इसप्रका
व्यास तथा कणादि ऋषिके मतमें जीव चेतन व्यापक है और जीवका जन्म
मानते हैं इससे व्यापकका जन्म नहीं होता यह कथन कैसे होगा, क्यों वि
व्यापकका जन्म व्यासादिक मानते हैं, यदि यह कहो कि " हम तौ युक्ति ही
मानते हैं जन्म मरण, आना जाना परिच्छिन्नपदार्थमें बनसक्ता है, इस कारण,
जीवात्माका स्वरूप व्यापक नहीं मानते " इसका उत्तर । तब तौ यह विचार
कर्तव्य है विभु पदार्थसे भिन्न अणुपरिमाणवान् वा मध्यपरिमाणवान् होता है
आत्मा अणुपरिमाण है अथवा मध्यमपरिमाण है यदि कहो अणुपरिमाणवान् है
तौ सारे शरीरमें शीतल जल संयोगसे शीत स्पर्शकी प्रतीति न होनी चाहिये क्यों
कि आत्मा अणु है, सो एकदेशमें स्थित होकर शीतका ज्ञान कर सक्ता है, आत्मा
रहित अंगोंमें शीत स्पर्शका भान कैसा होगा (प्रश्न) आत्मा यद्यपि एक देशमें
है तथापि जैसे कस्तूरीका गंध सर्वत्र विस्तृत होता है तैसे ही आत्माका ज्ञान गुण
सर्वत्र विस्तृत है इसमें शीत स्पर्शकी सर्वत्र प्रतीति हो सक्ती है अथवा जैसे सूर्य
प्रभावाला द्रव्य है तैसे ही आत्मा भी प्रभावत् द्रव्य है (उत्तर) यह नियम है कि,

* छोटे स्वामी अर्थ करते हैं कि ज्ञानी जीवात्मा न जन्मता न मरता है, यहां ज्ञानी शब्द कहांसे
लाये यह ज्ञानी जीवात्मा जन्म लेकर हुआ है वा सदासे है यदि जन्म लेकर ज्ञानी हुआ तो जन्मा
कैसे और आपके यहां तो मुक्त भी लौटते हैं फिर न हन्यते हन्यमाने शरीरेकी क्या संगति होगी ।

गुण अपने आश्रयको त्यागकर अन्यत्र गमन नहीं कर सक्ता, क्यों कि गुणमें क्रिया होती नहीं और कस्तूरीके दृष्टान्तमें भी कस्तूरीके सूक्ष्म अवयव विस्तृत होते हैं इसी कारण कस्तूरी कर्पूरादि द्रव्य रक्षक तिसको बन्द कर किसी डिब्बे आदिमें रखते हैं और जो वोह खुले रक्खे जायँ तौ वे उड जाते हैं और प्रभा गुण नहीं किन्तु विरल प्रकाश प्रभा है और घनप्रकाश सूर्य है, ऐसे ही आत्माको माननेसे ज्ञानरूप ही सिद्ध होगा, सो ज्ञान एकरस है, कहीं सघन और कहीं विरल ऐसा कहना बनता नहीं, यदि अनेक रस मानोगे तौ अनित्यत्वप्रसक्ति होगी और सर्वथा अनुवादीके मतमें क्रिया तौ जरूर माननी होगी तो (अचलोयं सनातनः) इत्यादि गीताके वचनसे विरोध होगा और "आत्मा विनाशी क्रियावत्त्वात् घटवत्" इस अनुमानप्रमाणसे विनाशित्वप्रसक्ति तो अवश्य होगी और मध्यम परिमाण पक्षमें स्पष्ट ही जन्यत्व विनाशित्वादि दोष हैं "आत्मा जन्यः मध्यमपरिमाणवत्त्वात् आत्मा विनाशी मध्यपरिमाणवत्त्वात् घटवत्" इस कारण अनादि जीवात्माको मानकर मध्यम परिमाण कैसे मानोगे क्यों कि मध्यम परिमाण माननेसे जन्यत्वकी प्रसक्ति होगी इससे विना इच्छासे भी व्यासादि महात्माओंके वचनानुसार आत्माको व्यापक और अज अवश्य मानना पडेगा तौ जन्म शंका ईश्वरवत् जीवमें भी घनसकती है तौ फिर जीवको जन्म कैसे हो सक्ता है जब जीवका जन्म हो तौ ईश्वरका भी अवतार होगा वेदान्तमें लिखा है ॥

चराचरव्यपाश्रयस्तुस्यात्तद्व्यपदेशोभाक्तस्तद्भावभावित्वात् । शा० अ० २पा० ३ सू० १६

उत्पद्यते जीवो म्रियते चेति तस्य जन्ममरणस्य व्यपदेशः प्रत्ययो भाक्तो गौणः कुत्र तर्हि मुख्य इत्याशंक्याह चराचरव्यपाश्रयस्तु मुख्यः चराचरशरीराश्रयस्तु जन्ममरणप्रत्ययो मुख्यस्थावरजंगमानि हि भूतानि जायन्ते म्रियन्ते चातस्तद्विषयौ जन्ममरणशब्दौ मुख्यौ संतौ तत्स्थे जीवात्मन्युपचर्य्येते तद्भावभावित्वात् शरीरप्रादुर्भावतिरोभावयोर्हि सतोर्जन्ममरणशब्दौ नासतोः नहि देहसंबंधादन्यत्र जीवो जातो मृतो वा केनचिल्लक्ष्यत इति सूत्रतात्पर्य्यम् ॥

"एवंच जीवस्यैव जन्मप्रातीतिकत्वे परमेश्वरस्य जन्मावतारे श्रुतिस्मृतिप्रतिपादिते सति परमेश्वरजन्मप्रातीतिकत्वस्वीकारेऽजत्वश्रुतिर्वास्तवाजत्वमीश्वरे जीवे वा बोधयितुं का हानिरिति निर्विवादतया व्यासभगवदाशयं बुद्ध्वा निरीक्षणीयं सूत्रसंकेतं विना श्रुत्यर्थनिर्णयस्तु वर्षशतेन महता यत्नेनापि न भवतीति बोध्यम् ॥"

भावार्थ-जीव उत्पन्न हुआ और जीव मरता है ऐसे जन्म मरणकी प्रतीति होती है परन्तु यह अनादिसिद्ध जीवमें जन्ममरणप्रतीति गौण है तब मुख्य किसमें

है इस वास्ते कहते हैं कि, चर और अचर शरीरमें तुल्य है, [illegible]
शरीर उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, इससे तिन शरीरोंमें जन्म
[illegible] उपचार होता है, क्यों कि स्थावर जंगम शरीरके [illegible]
[illegible] जन्म मरण प्रतीतिका अन्वय व्यतिरेक है, जब स्थावर [illegible]
होते हैं तब जीवात्मामें जन्म मरण प्रतीत होते हैं, स्थावर जंगम
[illegible] तब तो जीवात्मामें जन्म मरण प्रतीत नहीं होते, क्यों कि
[illegible] जीवके जन्म मरण किसीको प्रतीत होते नहीं. यह सूत्र
[illegible] यह निश्चय होता है कि, जीवात्माके जन्मको [illegible]
जो ईश्वरका अवतार रूप जन्म तिसके, प्रतीतिक माननेमें [illegible]
[illegible] हुई है सो [illegible] जगत्को ईश्वरात्मामें [illegible]
[illegible] है, [illegible] विरोधी पदार्थ एकस्थानमें नहीं रहसकते, [illegible]
[illegible] एक [illegible] रहसके हैं, यह सूत्रका आशय है, इसी [illegible]
[illegible]
[illegible] जीवको परिच्छिन्न मान बैठे हैं, परन्तु [illegible]
[illegible] ही माननेसे अनादित्व भग [illegible]
[illegible] नहीं होसकता जिस पदार्थका किसी भी [illegible]
[illegible] होता है (प्रश्न) जीवका तो लिंगोपाधि [illegible]
[illegible] जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न हुआ तो [illegible]
[illegible] है और ईश्वरात्मामें धर्माधर्म तो नहीं है, तब [illegible]
[illegible] जब शरीरका प्रादुर्भाव न हुआ तो जन्मका
[illegible] (उत्तर) [illegible] कहना सत्य है. धर्माधर्मों [illegible]
[illegible] यह नियतम्य है जो धर्माधर्म स्वतन्त्र [illegible]
[illegible] ईश्वरकी इच्छाद्वारा शरीरके हेतु हैं यदि स्वतंत्र [illegible]
[illegible] होता और स्वतंत्र फल देनेको समर्थ भी नहीं [illegible]
[illegible] है इस कारण ईश्वरकी इच्छादिद्वारा ही फल देते हैं [illegible]
तो [illegible] कोई विविध शक्ति माननी चाहिये [illegible]
[illegible], इसी कारण परमात्मा जगत्की उत्पत्ति पालन [illegible]
[illegible] ईश्वरमें इच्छादि माने तो ईश्वरकी [illegible]
[illegible] प्रवीण होवें, तब [illegible] भी [illegible]
हुआ [illegible] परमात्मामें [illegible]
[illegible] है तो अब तुमको [illegible]
[illegible] उत्पत्ति [illegible]

ईश्वरात्मा माना तो अवतारके माननेमें दुराग्रह क्यों करते हो अब अवतार युक्तिसे सिद्ध कर मंत्र भी लिखते हैं ॥

रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय ।
*इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्यहरयःशतादश ॥
ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

अर्थ-(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वरो (मायाभिः (स्वाश्रितानंतशक्तिभिः (पुरुरूपः)नृसिंहरामकृष्णादिरूपः (ईयते) गम्यते कस्मै प्रयोजनाय स्वशक्तिभिस्तत्तद्रूपमाविष्क्रियते परमेश्वरेणेत्यत आह तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय अस्य स्वस्य भक्तवात्सल्यादिविशिष्टरूपस्य प्रतिचक्षणाय सर्वेषां पुरतः प्रख्यापनाय ईदृशगुणविशिष्टोऽहमिति सर्वेषां प्रत्यवबोधनाय ॥ ननु मायया रचितैः रूपैः कथं स्वगुणप्रख्यापनमित्यत आह रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव यादृशं यादृशं रूपं प्रादुर्भावयति तत्सदृश एव भवतीति स्वस्त्रै(?)कराचितस्य रूपस्य स्वात्मातिरिक्तत्वात् तन्निष्ठभक्तवात्सल्यादिगुणानां स्वनिष्ठत्वादिति भावः । ननु कतिविधानीदृशानि रूपाणीत्यत आह युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश हि निश्चयेन अस्य परमेश्वरस्य हरयः संसारस्य दुःखदायासुरैः भावितस्य हरणात् नाशनात् युक्ता जगद्रक्षणाय नियुक्ता (शता) शतानि नामानंतानि संति तथा दश नृसिंहादयो दश सन्तीत्यर्थः ॥

पदार्थः-(इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनन्तसामर्थ्योंसे (पुरुरूपः) अनेक देहोंके रूपवाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य)इस अपने (रूपम्) रूपको (प्रतिचक्षणाय) सब भक्तोंपर विख्यात करनेके लिये (रूपंरूपंप्रतिरूपः) जैसे जैसे रूपकी इच्छा हो वैसा २ (बभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इस परमेश्वरके (हरयः) रूप (शत) सैकडों हैं (दश) दश मुख्य हैं यही मंत्र परमात्माके अवतार बोधन करता है । यह इन्द्रपरत्व भी है और इन्द्रं मित्र० मं० १ सू० १६४ मं० ४६ के अनुसार ईश्वरपरक भी है ॥

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः ।
यस्योरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियंति भुवनानिविश्वा ॥
ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

पद-प्रतत्, विष्णुः, स्तवते, वीर्येण, मृगः, न, भीमः, कुचरः, गिरिष्ठाः, यस्य, उरुषु, त्रिषु, अधिक्षियंति, भुवनानि, विश्वा ॥

* भा० प्र० इन्द्रः इसका अर्थ इन्द्रियोंवाला जीवात्मा करता है यदि अत्यन्त पश्चु अर्थ है, ' इन्द्रं मित्रम्' वाला ईश्वरप्रतिपादक मन्त्र उडगया । ' प्रतद्विष्णुः ' में सम्बन्धान्तर स्पष्ट है ।

अर्थ-मृगोऽन मृग इव तद्विष्णुः वीर्येण पराक्रमेण प्रस्तवते स्तुतिं प्राप्नोति भीमः भयानकरूपधरः नृसिंहः अत एव मृगे इवेत्युक्तिः संगच्छते कुं पृथ्वीं वराहादिरूपेण चरतीति कुचरः गिरौ कैलासे शिवात्रिनेत्ररूपेण तिष्ठतीति गिरिष्ठा यस्य विष्णोः त्रिविक्रमावतारे त्रिषु पादेषु विक्रमणेषु संस्तु विश्वा सर्वाणि चतुर्दश भुवनानि अधिक्षियंति चलंतीत्यर्थः ॥

भाषार्थः-(मृगो न) मृगकी समान (तत्) सो (विष्णुः) विष्णुभगवान् (वीर्येण) अपने पराक्रमसे (प्रस्तवते) स्तुतिको प्राप्त होते हैं (भीमः) नृसिंहरूपसे भीम, (कुचरः) वराहादिरूपसे पृथिवीमें विचरनेसे कुचरः (गिरिष्ठाः) कैलासादिगिरिमें स्थित रहनेसे गिरिष्ठ हैं (यस्य) जिस विष्णुके (उरुषु) बड़े (त्रिषु) तीन (विक्रमेषु) पादविक्षेपमें (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण भुवन (अधिक्षियंति) कंपित होते वा वसते हैं ॥

वज्रनखायविद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि, तैत्तरीयारण्यक १।१।३१

त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारउतवाकुमारी ।

त्वंजीर्णोदंडेनवंचासि त्वंजातोभवसिविश्वतोमुखः ।

अथर्वकां० १० अनु० ४ मं० २७

पदार्थः-हे भगवन् (त्वम्) आप (स्त्री) दुर्गा काली शक्तिरूप हो (त्वम्) आप ही (पुमान) वामन राम कृष्णरूप (असि) हो (त्वम्) आप ही (कुमार) सनत्कुमारादिरूप (उतवा) और (कुमारी) कन्यारूपसे पूजित हो (त्वम्) आप ही (जीर्णः) वृद्धरूपसे (दण्डेन) दण्ड धारण कर (वञ्चसि) अधर्मियोंको वंचित करते हो (त्वम्) आपही (जातः) प्रगट होकर (विश्वतोमुखः*) सर्वरूप हो ॥

यहां ईश्वरका ही वर्णन है कारण कि आगे २८ मंत्रमें "एषोहदेवो मनसि प्रविष्टो प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः" २८ इसमें ईश्वरका ही मनमें प्रविष्ट होकर प्रगट होना कहा है ॥

इस मंत्रमें सब ही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारोंकी सूचना की है इस कारण यह मंत्र ही सबका मूल है अब वामनावतार मुनिये सामवेद छन्द आर्चिक

३ २३ 　 ३ २ 　 ३ १२ 　 ३१ ३१ 　 ३ १

इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् । समूढमस्यपां सुरे

साम० अ० १८ खं० २ मं० १ छन्दआर्चिक ।

---

* विश्वतोमुखः (विश्वतोमुखः) [illegible]

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतारधारी (इदम्) प्रतीयमानं सर्वं जगदुद्दिश्य (विचक्रमे) विभज्य क्रमते स्म (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारैः (पदं निदधे) स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान् (अस्य) (विष्णोः) पांसुले पांसुरे वा धूलियुक्ते पादस्थाने (समूढम) इदं जगत् सम्यगन्तर्भूतम् (सेयमृग् यास्केनैवं व्याख्याता विष्णुर्विशतेर्वाश्नोतेर्वा)* शतपथमें भी वामनावतारका खुलासा वर्णन है ॥

यथा "वामनो ह विष्णुरास" श० १।२।२।५

वामन साक्षात् विष्णु ही थे यहां वामन अवतारकी पूरी कथा लिखी है ॥

भाषार्थः-अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामनजी इस विश्वका उलंघन करते हैं, तीन पग धरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्गमें इनके चरणमें चतुर्दश भुवन ब्रह्मांड सम्यक् अन्तर्भूत होताहै ॥

रामावतारमाह सामवेदे उत्तरार्चिके १५ अ० २ खं० ३ सू० ३

भद्रोभद्रयासचमानआगात् स्वसारञ्जारोअभ्येतिपश्चात् सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ॥

पदार्थः--(भद्रः) रामभद्रः (भद्रया) सीतया सह (सचमानः) सज्जमानः (आगात्) दण्डकारण्यमित्यर्थात् (स्वसारं) अंगुलयः स्वसारः तद्वन्तं सीतायाः पाणिं ग्रहीतुं (जारः) रावणः (पश्चात्) रामात्परोक्षे (अभ्येति) आगत इति । पूर्वोक्तानुवादः तेन रावणे हते सति जायागार्हपत्य इति इति श्रुतेः जायासहचरः (अग्निः द्युभिः) द्युलोकसाधनतया द्युशब्दवाच्यः रामदारैः सह (रामम्) रामस्याभिमुखम् (अस्थात्) स्थितवान् (सुप्रकेतैः) शोभनचिह्नैरिति दारानिर्दोषत्वं सूचितं वितिष्ठन्नस्थादिति सम्बन्धः तिष्ठन्नासीदित्यर्थः (उशद्भिः) दीप्यमानैः वर्णैः लोहितादिवर्णज्वालाभिरुपलक्षितः अयं चार्थः पुनः पत्नीमग्निरदादिति मंत्रान्तरे

* जब सायणाचार्य अवतारपरत्व व्याख्या करते ही हैं तब सायण अवतार माननेवाले थे इसमें संदेह क्या ? चाहैं एक जगह लिखें चाहैं अनेक जगह भा० प्र० वालेको आक्षेपका अवसर कहां है ? और वामनो ह० यह शतपथका प्रमाण लिखायये ।

दष्टः पक्षे भद्रो बोधः भद्रया श्रद्धया जारः कामः अग्निर्वा॥ नीलकण्ठ भा० ॥ *

भाषार्थः-(भद्रः) भजन करने योग्य रामभद्र (भद्रया) सीतासहित (सचमानः) सज्जित होकर (आगात्) दण्डकारण्यको आता है तब (स्वसारम्) अंगुलीको अर्थात् सीताके हाथको पकडनेको (जारः) रावण (पश्चात्) रामके परोक्षमें (अभ्येति) आता है तब रावणके मारनेके पीछे (सुप्रकेतैः) अच्छे चिह्नोंसे (द्युभिः) दीप्तिमान् (वर्णैः) वर्णोंसे उपलक्षित (द्युभिः) द्युलोककी साधनभूत रामकी दारा सहित (अग्निः) अग्नि देवता (रामम्) रामके सन्मुख (अभ्यस्थात्) उपस्थित होता है अर्थात् जानकी शुद्ध है यह कहकर जानकीको समर्पण करता है इससे रामका प्रति युगमें अवतार सिद्ध होता है नीलकण्ठका यह भाष्य दयानन्दजीसे सैकडों वर्ष पहलेका है और भी देखो

ब्राह्मणोजज्ञे प्रथमोदशशीर्षोदशास्यः ।
ससोमं प्रथमः पपौसचकार रसंविषम् । अथर्व ४ । ६ ।२ ।

(प्रथमः) पहले एक (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (जज्ञे) प्रगटा (दशशीर्षः) दशशिर (दशास्यः) दशमुखवाला (सः) उसने देवतादिसे लेकर (सोमः) सोम (पपौ) पिया (सः) उसने ही (रसम्) रसको (विषम्) विष (चकार) किया, इसमें रावणका प्रत्यक्ष वर्णन है ॥

कृष्णावतारमाह ऋग्वेदे ।

कृष्णंतएमरुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीतादधतेहगर्भं सद्यश्चिज्जातोभवसीदुदूतः ।
ऋ० मं० ४ सू० ७ अ० १ म० ९

पद-कृष्णम्, ते, एम, रुशतः, पुरः, भाः, चरिष्णु, अर्चिः, वपुषाम्, इत्, एकम्, यत्, अप्र, वीता, दधते, ह, गर्भम्, सद्यः, चित्, जातः, भवसि, इत, उद्दूतः ॥

अर्थः-कृष्णं त एम इति, हे भूमन् ते तव रुद्ररूपेण पुरस्तिस्रो रुशतो नाशयतः यद्वा पुरः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहान् ग्रसतस्तुर्यस्वरूपस्य यत्कृष्णं भाः सत्यानंदचिन्मात्रं रूपं तत्तु एम प्राप्नुयाम, यस्य तव एकमिति एकमेव अर्चिर्ज्वालावदंशमात्रं सम-

* यह भाष्य छोटे स्वामीने ठीक नहीं उतारा सायणभाष्यकी दुहाई दी है हमारे यहां तो सनातनधर्मके सब भाष्य ठीक हैं यह भी ठीक वह भी ठीक परन्तु० द० सायणको मानतेहैं या नहीं जब माने तो बात चले सायणभाष्यमें यही आशय गर्भित है वह व्याख्यान यज्ञपरक है ।

ष्टिजीवं वपुषां देहानामनेकेषु देहेषु चरिष्णु भोक्तृरूपेण वर्तते यत्कृष्णं भाः अप्र-
वीता नास्ति प्रकर्षेण वीतं गमनं संचारो यस्याः सा अप्रवीता निरुद्धगतिर्निगडे
स्ता देवकीत्यर्थः (कृष्णाय देवकीपुत्रायेति छांदोग्ये) देवक्या एव कृष्णमातृ-
त्वदर्शनात् सा स्वगर्भे दधते धारयति दध धारणे इत्यस्य रूपं ह प्रसिद्धं सः त्वं
ातः गर्भतो बहिराविर्भूतः सन् सद्य इदुसद्य एव उ निश्चितं दूतः दुनोतीति दूतः
ातुः खेदकरोऽतिवियोगदुःखप्रदो भवसीत्यर्थः एतेन देवकीपतेर्वसुदेवस्य गृहे जन्म
्रुतमिति सूचितम् ॥ नीलकण्ठ भाष्य० ॥

भावार्थः–हे भूमन् ! आपकाजो सत्यानंद चिन्मात्र रूप है और रुद्ररूपसे तीन
ुरको नाश करनेवाला वा स्थूल सूक्ष्म कारण देहको ग्रसनेवाला रूप तुरीयात्मा
तिस कृष्णभा रूपको हम प्राप्त होवें, जिस आपके स्वरूपकी एक ही अर्चि
अर्थात् ज्वालावत् अंशमात्र समष्टि जीव अनेक देहोंमें चरिष्णु अर्थात् भोक्तृ-
रूपसे वर्तमान हैं और जो कृष्णभाको अप्रवीता अर्थात् निगडग्रस्त देवकी गर्भ-
रूपसे धारण करती भई छान्दोग्यमेंभी कृष्णकी माता देवकी सुनी है हे भूमन् !
आप प्रसिद्ध ही गर्भसे प्रादुर्भूत होकर माताके पाससे पृथक् हुए, इससे श्रीकृष्ण-
चंद्रका देवकीके गर्भमें जन्म और महेश्वरावतार तथा जीवको एवं निरूपित चिदं-
शत्व बोधन किया । इस मंत्रमें सब अवतारादि हैं ॥

एतद्घोर आंगिरसः कृष्णायदेवकीपुत्रायोक्त्वोवाचेति
सामवेदीयछान्दोग्य उप० प्र० ३ खण्ड १७

यह उपदेश घोर आंगिरसने देवकीके पुत्र श्रीकृष्णजीसे करके मुझसे कहा यहां
ी कृष्णका देवकीपुत्र होना प्रगट है ॥
और भी ऋक्परिशिष्ट देखो ॥

कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः ॥
यमुनह्रदे हतो जातो यो नारायणवाहनः ॥

(कालिको नाम सर्पः) कालीनामक नाग (नवनागसहस्रबलः) नौसहस्रहाँ-
थियोंका बलवाला ([illegible]) निश्चय (यमुनह्रदे) यमुनाके कुण्डमें (नारायणवाहनः)
नारायण श्रीकृष्णका वाहन (जातः) हुआ अर्थात् श्रीकृष्णने उसको नाथा
और और भी ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥
यजु० अ० १० मं० २९

[illegible] भगवान् हंसः अहंकारहारी (शुचिषत्) आदित्यरूपसे दीप्तिमें रहने-
वाले (वसु) मनुष्योंके प्रवर्तक (अन्तरिक्षसत्) वायुरूपसे आकाशमें रहनेवाले

(होता) देवताओंके आह्वान करनेवाले (वेदिषत्) अग्निरूपसे वेदीमें बैठनेवाले (अतिथिः) अतिथिरूपसे सबके पूजनीय (दुरोणसत्)आहवनीयसे यज्ञमें बैठनेवाले (नृषत्) रामकृष्ण वा प्राणरूपसे मनुष्योंमें होनेवाले (वरसत्) उत्कृष्ट स्थानक्षेत्र आदिमें बैठनेवाले (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्यमें स्थित होनेवाले (व्योमसत्) मंडलरूपसे आकाशमें स्थित होनेवाले (अब्जाः) मत्स्यादिरूपसे जलमें होनेवाले (गोजाः) पृथ्वीमें चतुर्विधभूतग्रामरूपसे होनेवाले (ऋतजाः) सत्यमें होनेवाले (अद्रिजाः) पाषाणमें मूर्ति और अग्निरूपसे होनेवाले मेघजलरूपसे होनेवाले (बृहत्) महान् परब्रह्मरूप हो ॥ २४ ॥

इस एक ही मंत्रमें अवतार और मूर्तिमें भगवदाराधन सब कुछ सिद्ध होता है तथा और भी अनेक मंत्र हैं जिनमें रामचंद्रके चरित्र हैं ॥

चत्वारिंशद्दशरथस्यशोणाः सहस्रस्याग्रेश्रेणिंनयन्ति ऋ० २ । १।११ दशरथस्य राज्ञो यज्ञे लब्धाश्चत्वारिंशत्संख्याः शोणाः अरुणाश्वाः सहस्रस्य सहस्राश्ववाह्यस्यापि रथस्याग्रे पुरस्ताच्छ्रेणिंरथनेमिपंक्तिं नयन्ति प्रापयंति ॥

राजा दशरथके यज्ञमें चार सौ लालवर्णके घोडे सहस्रों अश्वोंकारके वश आप ऐसे रथके आगे चलते हैं ॥ १ ॥

अर्वाचीसुभगेभवसीतेवन्दामहेत्वायथानः सुभगासासियथानः सुफलाससि ॥ ऋ० ३ । ८ । ९ वर्ग ।

हे सुभगे सीते स्यति सर्वेषां रक्षसामन्तं करोतीति सा सीता त्वां वन्दामहे यथा नोऽस्माकं सुभगा ऐश्वर्यदानेन सुफला प्रतिपक्षनाशनेन असासि दीप्यसे तथा अर्वाची अनुकूला भव ॥

हे राक्षसोंका अंत करनेवाली जानकी ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं हमको शुभ ऐश्वर्यको दान करो प्रतिपक्षका नाश करो हमपर अनुकूल हो ॥

इन्द्रः सीतांनिगृह्णातुतांपूषानुयच्छतु । ऋ० ३ । ८ । ९

राम सीताको प्राप्त हों जनक उनको प्रदान करें इत्यादि और भी अनेक मंत्र हैं जिनमें पूर्ण रामावतारकी कथा विदित होती है विस्तारके कारण नहीं लिखे हैं यद्यपर इन अर्थ दूसरा है इस अर्थमें अवतार है । यह अर्थ मंत्रसामर्थ्यमें विद्यमान हैं ॥

महाऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः॥ ऋ. ३।३।२२

इसमें विश्वामित्रका रामचंद्रको बुलाने आना प्रत्यक्ष है पूज्य महाऋषि नारायण राजाके आविर्भूत हुए (सुदासम्) सुदासके गोत्रमें उत्पन्न हुए रामको (विश्वामित्रः) विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षा करनेको (यद्) जिस कारणसे (अवहत्) यज्ञमें प्राप्त करते हुए इस कर्मसे (इन्द्रः) इंद्र (कुशिकः) कुशिक वंशमें उत्पन्न हुए विश्वामित्र पर (अपिप्रियायत) निर्विघ्न यज्ञकी हवि भोगूंगा इस कारण प्रसन्न हुए वेदके अर्थ कथाभाग और अध्यात्म दोनों पक्ष पर चलते हैं वेदान्तमें अध्यात्म और दूसरे कथा सूचन करते हैं इसी कारण जीव ईश्वर विषयक अनेक गाथा आती हैं ॥

(प्रश्न) वेदोंमें तो परमेश्वरको अकाय लिखा है जैसे (सपर्य्यगात्) और तुम अवतार प्रतिपादन करते हो यह विरोध कैसे मिटे (उत्तर) इसके अर्थ तुमने नहीं विचारे इससे यह भ्रम पड गया सुनो यह मंत्र इस प्रकार है ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० अ० ४० मं० ८

पद–सः, परि, अगात्, शुक्रम्, अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम्, कविः, मनीषी, परिभूः, स्वयंभूः, याथातथ्यतः, अर्थान्, व्यदधात्, शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः ॥

अर्थ–(सः) सो परमेश्वर (पर्य्यगात्) अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है (शुद्धं शुक्रम्) अर्थात् शुद्ध प्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञानस्वरूप अथवा अलौकिकदीप्तिमान् परमात्मा है, (अकायम्) सूक्ष्मभूतकार्य लिंगशरीर वर्जित है (अव्रणम् अस्नाविरम्) स्थूलशरीरमें वर्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडीसमूहकर वर्जित है इन दो विशेषणोंसे भौतिक स्थूल शरीरसे विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्मरहित है इस विशेषणसे जीवाभिन्न होनेसे प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंगशरीरधर्म धर्माधर्मादि तीनोंका निषेध कियाहै, (कविः) अर्थात् सर्वज्ञ है (मनीषी) मनका प्रेरक है (परिभूः) सर्वोपरि वर्तमान है पूर्व उक्त अकायादि विशेषणोंसे भौतिक प्राकृत शरीरका निषेध कियाहै, इस अभिप्रायको स्वयं ही यह मंत्र प्रगट करताहै (स्वयंभूः) इस विशेषणसे 'स्वयमेव ब्रह्मरुद्रविष्ण्वादिरूपेण

भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः ' आप ही यह परमात्मा अपनी विचित्र शक्तिसे ब्रह्मादिरूपसे होताहै इससे स्वयंभू है। यही अर्थ गीतामें स्पष्ट है ॥

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ भ० गी० अ० श्लोक ६

श्रीकृष्ण कहते हैं हे अर्जुन ! मैं अज और अव्ययात्मा और सबभूतोंका ईश्वर भी हूं तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्यको आश्रय कर (आत्ममायया) अर्थात् अपने संकल्पसे होताहूं इससे अवतार सिद्ध है और जब परमात्मा ब्रह्मादिभावको प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत् (अर्थान्) कर्तव्य पदार्थोंको (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) दीर्घवर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओंसे (व्यदधात्) विभाग कर्ताहुआ, अथवा जब अकाय कहा तो ' अव्रणम्' और ' अस्नाविरम् ' कहनेकी आवश्यकता क्या रही इससे विदित होताहै भौतिक कायका निषेध है जो कि कायशब्द चिञ् धातु (कर्मोंकेचयन) से बनता है दिव्यशरीरका निषेध नहीं इसीसे स्वयम्भू पद यहां दिया है और (यस्य पृथिवी शरीरम्) यह ब्राह्मणवचन है दयानंदजीने इस मंत्रका अर्थ भी मिथ्या ही कियाहै सोह प्रसंगविरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं और "चक्रपाणये स्वाहा" इस मैत्रायणी शाखाके मंत्रसे भी आकार अवतार दोनों सिद्ध हैं और सुनो यजुर्वेद अ० ३१ मंत्र १९

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधाविजायते ।

तस्य योनिम्परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानिविश्वा ॥

(प्रजापतिः) परमेश्वर (गर्भे अन्तः) गर्भके मध्यमें (चरति) प्राप्त होताहै (अजायमानः) नहीं जन्म धारण करताहुआ (बहुधा) देवता मनुष्य रामकृष्णादिरूपोंसे (विजायते) प्रगट होताहैं (धीराः) ज्ञानी महात्मा सत्त्वगुणप्रधान पुरुष (तस्य) उस परमात्माके (योनिम्) स्थान वा कारणको (परिपश्यन्ति) ज्ञानसे सब ओरसे देखते हैं (अज्ञानियोंको उसका भेद नहीं विदित होता) (यस्मिन्) जिस परमेश्वरमें ही (ह विश्वा भुवनानि) सब ब्रह्माण्ड (तस्थुः) स्थित हैं ॥

शतपथब्राह्मणमें मत्स्यावतारका वर्णन है, यथा—मनवेह प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येव तस्यावनेनिजानस्यमत्स्यः पाणी आपेदे १ सहास्मै वाचमुवाह बिभृहिमा पारयिष्यामित्वेति २ शश्वद्धझष आस ४ तमेवं भृत्वासमुद्रमभ्यवजहार ५ सहोवाच अपीपरं वैत्वावृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व इत्यादि श० कां० १ अ० ८ ब्रा० १ कण्डिका १–६ तक यह संक्षेप कर थोडा लिखाहै कि मनुने अवनेजनके लिये जल हाथमें लिया उनके हाथमें एक मच्छी आगई उसने

कहा तुम मुझे पोषण करो मैं तुम्हें प्रलयके जलसे पार करूंगा फिर वह बडा मत्स्य होगया मनुने समुद्रमें डालदिया तब उसने कहा कि मैं तेरी रक्षा करता हूं नौकाको शृङ्गमें बांध (तस्यशृंगेनावः पाशं प्रतिमुमोचतेनेतमुत्तरं गिरिमति दुद्राव ५) और नावका रस्सा राजाने उसके शृंगमें बांधा तब वह नौका खेंचते उत्तरपर्वतकी ओर चले इत्यादि यहां विस्तारके साथ प्रलयका वर्णन है मत्स्यावतारकी कथा है ।

वाराहअवतार अथर्ववेद काण्ड १२ अनु० १

वराहेणपृथिवीसंविदाना सूकराय विजिहीतेमृगाय ४८ ॥

अर्थात् वाराह सूकररूपधारी प्रजापतिने यह पृथिवी उद्धार की है ॥

इयतीहवाइयमग्रेपृथिव्यासप्रादेशमात्री तामेमूष इति वाराह उज्जघानसोस्यापतिः प्रजापतिरिति । श० १४ । १ । २ । ११

पहले भूमि प्रादेश मात्र प्रगट हुई उसको वाराहने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति है ॥

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना तै०तै०अ०प्र०१ अनु०१मं३०

हे भूमि तुमको असंख्य भुजावाले कृष्ण वाराहने उद्धार किया है ।

(प्रश्न) यदि परमेश्वरका अवताररूप जन्म मानोगे तो अनादिसे सादि अनन्तसे सान्त और व्यापकसे एकदेशवृत्ति होनेसे एकदेशी होना चाहिये (उत्तर) जब जन्म वा शरीर वृत्त होनेसे यह दोष है तब जीवके जन्मको निर्विवाद होनेसें अनादिसे सादि और अनन्तसे सान्त होना चाहिये और (य आत्मनि तिष्ठन्) (यस्यात्मा शरीरम्) इन श्रुतियोंसे परमात्माको जीवरूप शरीरमें वृत्ति होनेसे और 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव' इस मंत्रसे प्रत्येक शरीरमें प्रविष्ट होनेसे ईश्वरको एकदेशी होना चाहिये और व्यापकत्वका भंग होना चाहिये सो सबके शरीरमें प्रविष्ट होनेसे जिस प्रकार तुम परमात्माको व्यापक पूर्ण सर्वत्र मानतेहो, वैसा ही अवतारसे भी रहता है, क्यों कि वह सर्वशक्तिमान् है और यदि निराकारके अर्थ सम्पूर्ण आकारसे रहित कहो तो ब्रह्मके सत् चित् आनन्दरूप सूक्ष्म आकारका भी निषेध होनेसे शून्यत्वापत्ति दोष होगा और निर्गमनाविरहसे निर्गुण शब्द भी सम्पूर्ण गुणोंका प्रतिषेधक हो जायगा, तो दयानन्दजीके लिखे सिद्धान्त सिद्ध सत्यकामत्वादि भी ब्रह्ममें नहीं सिद्ध होंगे ध्यान देनेकी बात है जो दिव्य पदार्थ दूसरेके विरोधी गुणोंसे रहित होनेसे निर्गुण कहे जाते हैं, तब तो विरोधी मलिन आकारसे रहित होनेसे निराकार कहनेमें क्या प्रतिबन्ध है, परन्तु निर्गुण शब्दसे

या निराकार शब्दसे कहो या न कहो तुम्हारे मतमें वह दिव्य पदार्थ सदा साकार बने रहते हैं, जब यह तुम्हारे सिद्ध हुआ तो वह कौन पदार्थ है यदि ईश्वर भिन्न साकार वस्तु सदा रहनेवाली है तो साकारको नित्यत्व प्राप्त होगा, तौ भी दयानंदजीके मतका भंग होगा, क्यों कि स्वामीजीने साकार वस्तु नित्य मानी नहीं यदि वह पदार्थ ईश्वरके अन्तर्भूत है, तो ईश्वरको साकारता निषेध करना असंगत है, इत्यादि सहस्रों वाक्य हैं जो कुछ महाभारतादिमें अवतार विषय हैं सो सब वेदादिकोंसे ही लिया है तथा प्रश्नोपनिषद्में परमेश्वरने यक्षका अवतार लिया यह प्रत्यक्ष है जिसे इच्छा हो देख ले जो कार्य मनुष्योंसे संपादन नहीं होता और ब्रह्माजीके वरदानसे कोई बलिष्ठ हो जाता है और अधर्म करता है तो उसके शांत करनेको परमात्माका अवतार होता है, "आपोधर्मणि प्रथमः ससादततोवपूंषिकृणुपेपुरूणि" अथर्व ५, १। १। २ हे परमेश्वर! सृष्टिकी आदिमें आपने सब धर्मोंको स्थापन किया और बहुतसे वपु नाम शरीर अवतार रूपधारण किये हैं जिसकी मृत्यु मनुष्यसे विधान कीगई है उसे मनुष्य न मार सकता हो तो प्रभु स्वयं मनुष्य होते हैं इसी प्रकार और भी सबमें जानलेना जैसे गीतामें लिखा है ॥ स्वामीजी यह प्रमाण बातोंमें उडाना चाहते हैं परन्तु इन का प्रमाण तीनं कालमें भी निवारण नहीं होसकता । देखो गीता ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं महात्माओंकी रक्षा करनेको दुष्टोंके नाश करनेको धर्मके स्थापन करनेको मैं युगयुगमें अवतार लेता हूं। पुनः वाल्मीकीये बालकाण्डे स०१५।श्लो०१६

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ॥
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १ ॥
तमब्रुवन्सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ॥ २ ॥
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥ ३ ॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककंटकम् ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥ ४ ॥ २२

देवताओंकी स्तुति सुनकर विष्णु भगवान् आपे शंख चक्र गदा पद्म धारण

किये पीले वस्त्रवाले साक्षात् जगदीश्वर १ भगवान्से सब देवता बोले हे भगवन्! आपको लोकोंके हितके वास्ते नियुक्त करते हैं २ कि राजा दशरथके यहां आप आत्माका चार प्रकारसे विभाग कर जन्म लो ३ मनुष्यरूप धारण कर लोकके कंटक देवतोंसे अवध्य महापापी रावणको मनुष्य होके मारो ४ पुनरपि-

अथ विष्णुर्महातेजा आदित्यां समजायत ॥
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥ १ ॥
त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् ॥
वाल्मी० बा० सर्ग. २९ श्लो० २०

विष्णु भगवान् महातेजस्वी अदितिके गर्भसे जन्म ले वामनरूप धारण कर राजा बलिके पास आये १ तीन पग पृथ्वीकी याचना करते हुए और पृथ्वी सब लेली इत्यादि वाल्मीकि रामायणमें भी अवतार विषय स्पष्ट है (प्रश्न) वेद-मंत्रोंमें तो कोई इतिहास नहीं होता इतिहास तो पुराणादि ग्रंथोंमें है (उत्तर) यह उनकी भूल है जो कहते हैं कि वेदमंत्रोंमें इतिहास नहीं होता बहुतसे मन्त्र इतिहासमिश्रित निरुक्तमें व्याख्यान किये हैं यथा हि-

त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तंप्रतिबभौतत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रंगाथामिश्रंभवति । नि० अ० ४ खंड० ६

कूपमें पडे हुए त्रित नामक ऋषिको यह अधो लिखित सूक्त प्रतीत हुआ यहां ब्रह्म वेद वाक्य इतिहासमिश्रित ऋचायुक्त हैं और गाथा मिश्रित हैं ॥

त्रितःकूपेऽवहितोदेवान् हवत ऊतये तच्छुश्रावबृहस्पतिःकृण्वन्नंहूरणादुरुवित्तमे अस्यरोदसी ऋ० मं० १ अ० १५ सू० १०५ मं० १७

(कूपे) कुयेमें (अवहितः) गिराहुआ (त्रितः) त्रित ऋषि (ऊतये) रक्षाके लिये (देवान्) देवताओंको (हवते) स्तुति करता है (तत्) सो कि (मे) मेरे (अस्य) इस स्तोत्रको वा कूपपतन रूप दुःखको (रोदसी) हे द्यावा पृथ्वीके अधिष्ठातृ देवता जानो यह आह्वान (बृहस्पतिः) देवताओंके बडे अधिपतिने (शुश्राव) सुना और (अंहूरणात्) पापरूप इस कूपसे निकालकर (उरुवित्तमः) बडा श्रेष्ठ (कृण्वन्) करता हुआ ॥ *

इतिहास शाखायन शाखामें प्रसिद्ध है, एकत द्वित और त्रित नामक ऋषि थे, ये तीनों एक समयपर मरुभूमिमें प्याससे सन्तप्त हुए एक कूपपर पहुँचे तिन ती-

* छेटे स्वामीने यहां सायणभाष्यके लिये सर्वथा नेत्र बंद करलिये ।

-गांमेंसे त्रित जल पान करनेको कूपमें प्रवेश कर जल पी उन दोनोंके अर्थ जल लाया उन्होंने जल पीलिया पीछे फिर तीनों कूपके ढिग पानी पीनेके यह गये और त्रितको कूपमें ढकेल उसके ऊपर रथचक्र धर सब उसका माल लेके चल दिये तब त्रितने देवताओंको स्मरण किया और कूपसे निकले य इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है इससे जो कहते हैं वेदमें इतिहास नहीं है वे अल्पज्ञ हैं और भी सुनो सामवेदमें भी लिखा है ॥

३ १२ २२ २ १ २३ १२ ३ १ २ १ ११ १ २

अपाम्फेनेननमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ॥ विश्वायदजयस्पृधः छन्दआर्चिके अ० २ खं० १० मं० ८

(इन्द्र) त्वम् (अपांफेनेन) वज्रीभूतेन (नमुचेः) असुरस्य (शिरः) (उदवर्तयः) शरीरादुद्धृतमवर्तयः अच्छैत्सीरित्यर्थः कदेति चेत् (यत्) यदा (विश्वाः) सर्वाः (स्पृधः) स्पर्धमाना आसुरी सेना (अजयः) जितवानसि इन्द्रो वृत्रहन्ता असुरान् परास्य नमुचिमसुरं नालभत इत्यादिकमध्वर्युब्राह्मणमनुसंधेयम् ॥

पदार्थः-(इन्द्र) हे इन्द्र (अपाम्) जलोंके (फेनेन) फेनसे (नमुचेः) नमुचिका (शिरः) शिर (उत् अवर्तयः) शरीरसे पृथक् किया (यत्) जब (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्धा करती हुई असुरसेनाको (अजयः) जीता। पहले इन्द्र असुरोंको जीतकर नमुचि असुरको ग्रहण करनेको न समर्थ हुआ और युद्धमें उस राक्षसने इन्द्रको ग्रहण किया और इन्द्रके विनय करनेपर यह कहा कि, जो तू मुझे संध्या समय सूखे गीले आयुधसे न मारे तौ मैं छोडदूं इंद्रने इस बातको मान जब छुटकारा पाया और फिर युद्ध किया तो संध्यासमय इंद्रने वज्रमें फेन लपेटकर उसे मारडाला यह इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र १२ ९र

इन्द्रोदधीचोअस्थिभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः जघाननवतीर्नव सामवेदे २ प्र० २ । ७ । ५

(अप्रतिष्कुतः) परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहितः (इंद्रः) आथर्वणस्य (दधीचः) एतत्संज्ञकस्य ऋषेः अस्थिभिः पार्श्वशिरः सम्बन्धिभिरस्थिभिः (नवतीर्नव) नवसंख्याका नवतीः दशोत्तरा अष्टशतसंख्याकाः (८१०) वृत्राणि आवरकाणि असुरजातानि (जघान) हतवान् ।

पदार्थः-(अप्रतिष्कुतः) दूसरास प्रतिकूलशब्दरहित (इन्द्रः) इन्द्र (दधीचः) अथर्वणदधीचको (अस्थिभिः) पार्श्वशिरःसम्बंधी अस्थियोंसे (नवतीर्नव) आठसौदश (वृत्राणि) वृत्रोंको (जघान) मारता हुआ यहां भी यह इतिहास है

आथर्वण कुलके दधीच ऋषिने जीवितसमय देखनेहीसे असुरोंको परास्त किया जब ये स्वर्गको गये, तो पृथ्वी असुरोंसे पूर्ण होगई जब इन्द्र उनके साथ युद्ध करनेको प्रवृत्त हुआ तो उन्हें निग्रह करनेमें समर्थ न हो ऋषिको ढूंढने लगे वनवासियोंने कहा महाराज ! वे तो ब्रह्मलोकको गये, तब इन्द्र बोला उनका कोई कहां पात हुआ और उनका कुछ अंग मिलसक्ता है, ऋषिगण बोले कि, उनका पार्श्वशीर्ष अङ्ग है जिस शिरसे अश्विनीकुमारोंको विद्या सिखाई थी, पर वह कहां है हम नहीं जानते तब इन्द्रने कहा ढूंढो तो ऋषिगण खोजने लगे और पाया इन्द्रने उस शिरकी हड्डियोंसे (आयुध) बनाय ८१० असुरोंको जीता सोइ यह मंत्र कहता है कि " इन्द्रने दधीचिके हाडसे आयुध बनाय असुरोंको जीता " ऋग्वेदमें भी यही मंत्र है इस प्रकार और भी बहुत इतिहास हैं । "जायापतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः " अथर्व कां० २० । ९ । १२८ । मं० ९ राजापरीक्षित्के राज्यमें जाया पतिको आनंदसे बोलतीहै इत्यादि और भी अथर्ववेद काण्ड ८ अनु० ५ सू० १० " सोदक्रामत् साऽसुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति १ तस्याः विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदायस्पात्रं पात्रम् " ॥ २ ॥

तब वह चलकर असुरोंपर आई असुरोंने उसे बुलाया मा आओ । प्रह्लादका पुत्र विरोचन गोरूप भूमिका वत्स हुआ लोहपात्र पात्र हुआ इत्यादि इस काण्डके पांचवें अनुवाकके अन्ततक भूमि दुहनका वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवतमें राजा पृथुका गोदोहनवर्णन है ॥

(प्रश्न) इन बातोंसे तो यह विदित होता है कि इन इतिहासोंके पश्चात् वेदकी रचना हुई है (उत्तर) वेदमें भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालकी वार्ता वर्तमानवत् रहती हैं, ईश्वरके ज्ञानमें तीनों काल वर्तमानवत् हैं यथा-

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति । मनु० ।

अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके समाचार वेदोंसे जाने जाते हैं परमेश्वरका ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्तमान रहता है भूत भविष्य जीवोंके लिये हैं यह दयानन्दजीने भी स० प्र० पृ० १९४, पं० ९ में लिखा है फिर इतिहास अवतारादि वेदोंमें हो तो क्या सन्देह है ? ॥ समाप्तं वेदमवतारप्रकरणम् ॥

सर्वशक्तिमत्प्रकरणम् ।

स० पृ० १८२ पं० ११ (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ? (उत्तर) है परन्तु जैसा तुमने सर्वशक्तिमान्का अर्थ जानरक्खा है वैसा नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान्का यही अर्थ है कि, ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन प्रलयादि और सब जीवोंके पुण्य पापकी यथायोग्य व्यवस्था करनेमें किंचित् भी

किसीकी सहायता नहीं लेता, अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्यसे सब काम पूर्ण करता है, फिर पं० १९ में लिखा है और जो तुम कहो कि, सब कुछ चाहता और कर सक्ताहै तो हम पूछते हैं कि, परमेश्वर अपनेको मार अनेक ईश्वर बना स्वयं अविद्वान् चोरी आदि पापकर्म कर दुःखी भी हो सक्ताहै १८९।२२

समीक्षा--ऐसा विदित होताहै कि, ईश्वरने स्वामीजीसे कर्ज काढा होगा, और एक तमस्सुक लिख दिया होगा, जिसके जरियेसे सत्यार्थप्रकाश बनालिया कि, जिससे सर्वशक्तिमान्का अर्थ अपना ही ठीक रक्खा है और ग्रंथोंका अशुद्ध, जब कि ईश्वर उत्पत्ति पालन लय जीवोंके काममें किसी प्रकारकी सहायता नहीं लेता, तो इसके व्यतिरिक्त तारागणादिकी रचनामें जरूर सहायता लेता होगा यह स्वामीजीके ही लेखसे खुलसक्ता है, जैसे कि, वेदार्थमें स्वामीजीसे ही सलाह ली होगी तथा अपने भूमिका भी नई गढी क्या वेदका अर्थ आपहीको आताथा और आपने यह भी कोई ईश्वरपर बडी ही कृपा करी जो सर्वशक्तिमान् नाम तो रहने दिया, परन्तु, अर्थ ऐसा किया है जैसे कोई बँधुएका नाम स्वतंत्र रखदे, वा स्वतंत्रका नाम बँधुआ रखदे स्वामीजी तुमने तो अपने जान वेदभाष्य भूमिकामें ईश्वरको बांध ही लिया है और सत्यार्थप्रकाशरूपी तमस्सुककी धमकी देतेहो कि, खबरदार अवतार न लेना नहीं तो नालिश करदी जायगी, यह अवतार ही दूर करनेके वास्ते आपने उसकी अनन्त सामर्थ्यमें धब्बा लगाया है, मगर क्या होसक्ता है और यह तो अजब ही बात कही कि " जो चाहे सो करै तो अपने आपको मारडाले चोरी करै " धन्य दयानंदजी ! इस निर्बोधानंदका क्या ठिकाना है । क्या जो जो चाहैं सो कर सक्ते हैं वे चोरी करते हैं आत्मघात करतेहैं यह दोनों काम करनेको तो निर्बल भी समर्थ है जब चाहे तब प्राण त्यागें और जब चाहै तब चोरी करैं तो जितने इस कार्यमें समर्थ हैं सब ही मरजाने चाहियें सो तो नहीं होता किन्तु जो अज्ञानी हैं वोही किसी वस्तुकी इच्छा होनेसे और उसके न मिलनेसे दुःखी हो प्राण खोदेते हैं पर ज्ञानी नहीं, निर्धन दुष्ट चोरी करते हैं ईश्वरमें पूर्णज्ञान सदा रहताहै, वोह क्यों आत्मघात करेगा ? उसकी इच्छामात्रमें सब जगत् उत्पन्न होजाताहै फिर वोह पूर्णज्ञानी कौनसे कारणसे मरे और निश्चय नाश नहीं होता, आत्माका कोई भी नाश कर सक्ताहै ! जब ईश्वर अजर अमर है प्रकाशस्वरूप है अकाय है तो अपनेको कैसे मारे आत्माके लक्षण तो सुनो--

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ भ० गी० ॥

न कोई शस्त्र इसको छेदन करसकता, न अग्नि जला सकती, न पानी गला सकता, न वायु सुखा सकताहै, जब ऐसा आत्मा है जिसका स्वरूप कुछ जाना नहीं जाता फिर कैसे उसका नाश हो सकताहै ? क्या कोई ईश्वरको आपने मूर्ख जाना जो वह सर्वशक्तिमान् होनेसे अपनेको मार डाले, तो वह शब्द ही क्या रक्खा, अलग कर दिया होता," इसी विचारपर वेदभाष्यकी रचना करीथी, सर्वशक्तिमान्के अर्थ हैं कि, सब प्रकारकी जिसमें ताकत हो, जो चाहे सो करसकै, परन्तु आपसे कदाचित् ईश्वरने वार्ता करी हो और बतादिया हो कि, सर्वशक्तिमान्का प्राचीन अर्थ अशुद्ध है, यह अर्थ ठीक है परन्तु दयानंदजी वेद तो यों कहता है ॥

नतंविदाथयइमाजजानान्यद्युष्माकमन्तरम्बभूव ॥ नीहारेण

प्रावृताजल्प्याचासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ यजु० अ० १७ मं. ३१

पदार्थः-(यः) जो ईश्वर (इमा) इस भुवन और सब प्राणियोंको (जजान) उत्पन्न करताहुआ तथा (युष्माकम्) तुम्हारे सबके (अन्तरम्) मध्य (अन्यत्) अन्तर्यामीरूपसे स्थित (बभूव) हुआ (तम्) उस ईश्वरको (यूयम्) तुम (न विदाथ) नहीं जानते क्यों कि (नीहारेण) नीहार सदृश अज्ञान (च) तथा (जल्प्या) देवता हूं मनुष्य हूं यह मेरा घर है क्षेत्र है इत्यादि असत्य जल्पनासे (प्रावृताः) युक्त और (असुतृपः) केवल प्राणोंके पोषक होकर (उक्थशासः) परलोकमें भोगोंको संपादन करनेको यज्ञमें शास्त्रस्तुति करनेको (चरन्ति) प्रवृत्त होते हैं ॥

जिसको जाननेको वेद कहताहै कि, तुम नहीं जानते दयानंदजी उसको, और उसकी सर्वशक्तिको कैसे जानगये ?: जो योगियोंको भी अगम्य है । और देखो-

एतावानस्य महिमाऽतोज्यायाँश्च पूरुषः ॥

पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

यजु० अ० ३१ मं० ३

पदार्थः-(अस्य) इस परमेश्वरकी (महिमा) ऐश्वर्य विभूति (एतावान्) इतनी ही नहीं (च) किन्तु (पुरुषः) चिदात्मा परमेश्वर (अतः) इस संसारसे (ज्यायान्) अतिशय अधिक है जिस कारण (विश्वा) सब (भूतानि) ब्रह्माण्ड (अस्य) इस परमात्माका (पादः) चतुर्थांश अर्थात् एक चौथाई है (दिवि)

वैकुण्ठलोक अर्थात् निज स्थानमें (अस्य) इस (त्रिपादस्य) त्रिपादका स्वरू
(अमृतं) विनाशरहित है ॥

इससे विदित होताहै कि, जो कुछ यह आकाश पाताल सम्पूर्ण तारामंड
सहित है यह सब तो उसकी महिमाकी चौथाई है, जिसके पदार्थोंतकका भी
अभीतक लाखों वरससे भेद नहीं जाना जाता, इससे तिगुनी महिमा उसके
निज लोकमें स्थित है फिर उस अनन्त परमात्माकी महिमा और सर्वशक्तिमत्ता
दयानंदजीने कैसे जानली और उस अनन्त ऐश्वर्यवाले परमात्माकी सृष्टिका क्रम
आपने कैसे जाना ? जो कह देते हो कि, यह सृष्टिक्रमविरुद्ध है, वोह सब
कुछ करसकताहै सारा संसार और जो कुछ भी है यह सब उसीकी महिमासे
उत्पन्न है ॥

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजोनोव्योमापरोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनंगभीरम् ॥
ऋ० मं० १० अ ११ सू १२९

(तदानीं) महाप्रलयकालमें (असत्) अपरा माया (न) नहीं थी (सत्)
जीव (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था
(यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सत्त्वगुण (नो) नहीं था
(कुहकस्य) इन्द्रजाल रूप (शर्मन्) ब्रह्माण्डके चारोंओर जो (आवरीवः)
तत्त्वसमूहका आवरण होताहै (तत् किं) " न किमप्यासीत् " वह भी नहीं था
(गहनं गंभीरम्) गहन गंभीर (अम्भः) जल (किम् आसीत) क्या था
अर्थात् नहीं था ॥

स्वामीजी कान खोलकर सुनो उस समय यह तुम्हारे नित्य माने पदार्थ
भी नहीं थे ॥

नमृत्युरासीदमृतंनतर्हि नरात्र्याअह्न आसीत्प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरःकिंचनास ॥ ऋ०२

(तर्हि) तिस समय (मृत्युः) मौत (न) नहीं (आसीत्) थी (अमृतम्)
जीव (न) नहीं (आसीत्) था (रात्र्याः) रात (अह्नः) दिनका (प्रकेतः) ज्ञान
(न आसीत्) नहीं था (अवातं) प्राणरहित (स्वधया) अपनी परा शक्तिसे
(एकम्) अभिन्न एक (तत्) ब्रह्म ही (आसीत्) था (तस्मात् ह) उस सर्व-
शक्तिमान्से (अन्यत्) अन्य (किंच) और कुछ भी (न) नहीं (आस) था ॥

ब विचारनेकी बात है कि, एक ब्रह्मके सिवाय जब कुछ भी न था और अब सब कुछ करके दिखाया तो वह सर्वशक्तिमान् क्यों नहीं और वह कुछ करता स्वयं अवतार भी धारण करता है यथा हि ॥

यऽइमाविश्वाभुवनानि जुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः ।
सऽआशिषाद्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ २ ॥ ऽआविवेश ॥

यजु अ १७ मं ० १७

ार्थः-(यः) जो (ऋषि) अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संसाररूप कर्ता (नः) हम वैदिक मन्त्रोंका (पिता) जनक उत्पन्न करनेहारा पर- (इमा) इस (विश्वा) इस सम्पूर्ण संसारको (जुह्वत्) प्रलयकालमें करता हुआ (न्यसीदत्) अकेला ही स्थित हुआ (सः) वह ही (प्रथम- प्रथम एक अद्वितीयरूपमें प्रविष्ट होता (आशिषा) फिर सृष्टिकी स्व- च्छासे (द्रविणम्) जगत् रूप धनको (इच्छमानः) इच्छा करता- अवरान्) मायाविकार व्यष्टि समष्टि देहोंमें (आविवेश) अन्तर्यामि- विष्ट हुआ ॥

समझ लीजिये कि, वह क्या क्या करसकाहै वह सब कुछ करनेको और देखिये दयानंदजीने स्वयं सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है श्रुति भी बदली अर्थ भी बदला है परन्तु इनके यथार्थ अर्थसे उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रगट कि, वह सब कुछ करसक्ता है ॥

[० १८८ पं० २४

पादोजवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
वेत्तिवेद्यंनचतस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यंपुरुषंपुराणम् १ अ. ३ मं.१९

रके हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता, रन्तु व्यापक होनेसे सबसे अधिक वेगवान्, चक्षुका गोलक नहीं परन्तु वत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं जगत्को जानताहै उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं, ातन सबसे श्रेष्ठ सबमें पूर्ण होनेसे पुरुष कहते हैं १९६ । २३

वेदंनच तस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् १८९७ के सत्यार्थप्रकाशमें यह ो शुद्ध है ।

स० पृ० १८९ पं० ७

नतस्यकार्य्यं करणंचविद्यते नतत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते।
परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानवलक्रियाच २
श्वे० अ० ६। मं० ८

परमात्मासे कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं न कोई उसके तुल्य और न अधिक है सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान अनन्त बल और अनन्त क्रिया हैं यह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती हैं जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सक्ता इस लिये वह विभु तथापि चेतन होनेसे उसमें क्रिया भी है १९७। ६

समीक्षा—ऊपरकी श्रुतिमें स्वामीजीने बहुत पाठभेद किया है (सर्वेति वेद्यम्) के स्थानमें 'विश्वंपद 'लिखा है और (महान्त) पदके स्थानमें (पुराण) पद (नचतस्यास्ति) इसमेंसे अस्ति पदको त्यागकर उपनिषद् वचन लिखकर अर्थ किये हैं यह वचन श्वेताश्वतर उप० अ० ३ मं० १९ के है अर्थ यह है पाणि तथा पादसे वर्जित है आत्मा और जवन तथा ग्रहीता अर्थात् ग्रहण करनेवाला है भाव यह है कि, हस्त पाद उपाधि सहित होकर वेगवान् तथा ग्रहण करताहै, परन्तु स्वरूपमें हस्त पाद उपाधि रहित है, इसी रीतिसे वास्तव चक्षु कर्ण रहित है, परंतु चक्षु कर्ण उपाधि सहित होकर देखता तथा सुनता है, सो आत्मा वेद्य वस्तुको जानता है तिसके जाननेवाला दूसरा नहीं, स्वयंप्रकाश होनेसे तिस महान् पुरुष सर्व नाम रूप प्रपंचसे आगे होनेवालेको वेद वचन कथन करते हैं ॥

अब स्वामीजीके श्रुति अर्थमें दृष्टि देना चाहिये "यह जो कहा कि, परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता है" यहां यह पूछना है कि, शक्ति परमात्मासे भिन्न है वा अभिन्न या भिन्न अभिन्नसे विलक्षण विचित्रतावाली अनिर्वचनीय है जो भिन्न कहो तो अनादि ही मानना होगा तो तुम्हारे मानेहुए तीन पदार्थ जो नित्य हैं जीव ईश्वर प्रकृति जडरूप (पृ० २०९) में अ एक चौथा पदार्थ शक्ति भी होगी जो सादि मानो तो सादि शक्तिरूप शरीरसे ईश्वर शरीरी होजायगा इससे ईश्वरका शरीर सादि नहीं है यह कथन असंगत होगा और जो ईश्वरसे शक्तिको अभिन्न मानो तो शक्ति जड है और जड चेतनका अभेद वस्तुतमें बाधित है और भिन्न अभिन्नसे विलक्षण मानोगे तो तिससे भिन्न जड प्रकृतिका मानना निष्फल है क्यों कि ऐसा अद्भुत शक्तिमान ईश्वर

अष्टप्रकृतिकी सहायता नहीं चाहता यह तो मन तथा कामनाद्वारा प्रपंचरचना करदेता है देखो-

ऋ० मं० १० सू० १२९ मंत्र ४

कामस्तदग्रेसमवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमंयदासीत् ॥
सतोबन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदिप्रतीष्याकवयोमनीषा ॥ १ ॥

पदः-कामः, तत, अग्रे, समवर्तत, अधिमनसः, रेतः, प्रथमम्, यत्, आसीत्, सतः, बन्धुम्, असति, निरविन्दन्, हृदि, प्रतीष्य, आ, कवयः, मनीषा ॥

(मनसो यत् प्रथमं रेत आसीत् तत् अग्रेकामः अधिसमवर्तत) अन्वयः ॥

अर्थ-मूल प्रकृतिसे जो जगत् सर्जन इच्छा ईक्षण संकल्पादिका आश्रय प्रथम मन उत्पन्न हुआहै तिस मनकोजो प्रथम (रेतः) कार्य्य होताहुआ सो पूर्वकालमें कामरूप होकर (अधि) अधिकता करके (समवर्तत) होताहुआ इतने मंत्रसे यह जनाया कि, जो प्रथम ईक्षण संकल्पविशिष्ट मन होताहुआ पश्चात् इस मनमें काम इच्छा उत्पन्न होती हुई जैसा तैत्तिरीय श्रुतिमें भी सिद्ध है "सोकामयतबहुस्यांप्रजायेयेति" यह मनोभावापन्न मूलप्रकृति कामना करती हुई कि, मैं बहुतरूप हो प्रजारूपसे अपने स्वरूपको वैसा ही स्थित कर प्रतीत हूं अब मंत्रके उत्तरार्द्धसे परमात्मामें जगत्स्थिति प्रकार कहते हैं (कवयोमनीषाहृदिप्रतीष्य असतिसतोबन्धुंनिरविन्दन्) जो मेधावी पुरुष हैं वे अपने (हृदि) हृदयकमलमें (प्रतीष्य) विचार करके (असति) पूर्व उक्त अनभिव्यक्त नाम. रूप मूलप्रकृतिमें (सतः) सत्यरूप करके प्रतीयमान जगत्का (बन्धुम्) बन्धन हेतु पूर्व उक्त कामको (निरविन्दन्) निश्चय करतेहुए । भावार्थ यह है जगत्का बन्धनहेतु काम है जो मनसे उत्पन्न हुआ है तो शक्तिरूप हस्तसे रचना कहना दयानन्दजीका वेदविरुद्ध है और इस मंत्रमें तो ग्रहीता यह पद है अर्थ इसका पूर्वरचित पदार्थका ग्रहण है कुछ रचना शब्दार्थ नहीं इससे इसका रचना अर्थ करना अशुद्ध है इससे बृहदा० अ० ५ ब्रा० ७ यश्चक्षु इत्यादि १८ मंत्रके अनुसार ही इसका अर्थ है सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर, हस्त, पाद, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि हैं वे ही सम्पूर्ण परमात्माके शरीरादि हैं और वास्तव दृष्टिसे केवल ही स्वरूप है इससे तिस तिस उपाधिसहित होकर क्रिया करता है परन्तु वास्तवमें सर्वक्रियारहित है यह सब श्रुतियोंका अभिप्राय है और व्यापक होनेसे जो दयानन्दने अत्यन्त वेगवान् कहा है सो भी व्यापक वस्तुमें गमन उपाधि विना प्रतीत नहीं होता तो (जवनः) अत्यन्त वेगवान् यह शब्दप्रयोग कैसे होसकता है इससे सोपाधिकत्व कल्पना विना दूसरा अर्थ बन नहीं सकता और यह जो लिखा है कि " तिसको अवंधि

सहित कोई नहीं जानसकता " इस कहनेका भाव यह स्वामीजीने रक्खा है कि, परमेश्वर तो दूसरे करके जाना जाताहै परन्तु तिसकी अवधि न जानकर (नचतस्यास्ति) यह कहना बन सकताहै परन्तु यह अर्थ करेंगे तो परमेश्वरको वेद्यत्व प्रसक्त होगा और वेद्यत्व प्रसक्तिसे जडत्वादि दोष होंगे, स्वयंप्रकाशत्वबोधक श्रुतिका बाध होगा, इससे इस श्रुतिमें परमात्माको अवेद्यत्व बोधन कर सर्वका वेत्ता कहनेसे स्वप्रकाश ही बोधन करा है इसी प्रकार दूसरी श्रुति भी कहती है उसे कार्य और कारणकी कुछ आवश्यकता नहीं है वह अपनी इच्छासे जो चाहे सो कर सकता है ॥

अघनाशनप्रकरणम् ।

पृ० १८२ पं० ३० क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड स्तुति प्रार्थना करनेवालेका पाप छुडादेगा, (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना (उत्तर) उसका फल अन्य ही है स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभावसे अपने गुण कर्म स्वभावका सुधारना प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासनासे परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना, पृ० १८३ पं० १८ और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है, पुनः पृ० १८६ पं० १३ ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न ईश्वर उसे स्वीकार करता है जैसे हे परमेश्वर आप मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बडा, मेरी प्रतिष्ठा और मेरे ही अधीन सब हो जाय पुनः पं० १९ ऐसी मूर्खताकी प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा कि हे परमेश्वर ! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये मकानमें झाडू लगाइये वस्त्र धो दीजिये खेती वाडी भी कीजिये इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वे महामूर्ख हैं पुनः पृ० १९२ पं ३ ईश्वर अपने भक्तोंके पाप क्षमा करता है वा नहीं (उत्तर) नहीं क्यों कि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय क्यों कि क्षमाकी बात सुनते ही उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय, जैसे राजा अपराधको क्षमा करदे तो वे उत्साहपूर्वक बडे बडे पाप करें क्यों कि राजा उनका अपराध क्षमा कर देगा तो उनको भरोसा होजायगा कि राजासे हाथ जोडकर अपराध छुडालेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करनेसे न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त होजायँगे ॥ १९० । १० ॥ १९१ ॥ १ । १९४ । ३ ॥ २०० । १६ ।

समीक्षा—यहां तो स्वामीजी सारी उपासना स्तुतिकी चटनी कर गये लो अब ईश्वरकी प्रार्थना भी मत करो क्यों कि वह हमें उसका फल देता नहीं, पाप क्षमा करता नहीं, फिर ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करनेसे क्या लाभ ? उसका भजन

करना वृथा होगा तो " प्रयोजनं विना मन्दोपि न प्रवर्तते" विना प्रयोजन मन्द पुरुष भी कोई काम नहीं करते फिर ईश्वरका नामस्मरण भी निरर्थक है, तो सब कर्मोंका फल भी निरर्थक होगा, बस कर्मकांड भी समाप्त करदिया, जब ईश्वर ही तो सबसे श्रेष्ठ है स्तुति प्रार्थनासे पाप दूर नहीं करता तो कौनसा शुभकर्म है जिसके करनेसे मनुष्य दुःखसे छूटें, जब कि श्रेष्ठ कर्म करनेसे श्रेष्ठ फल, बुरा कर्म करनेसे अनिष्ट फलकी प्राप्ति होती है तो उस पवित्रात्माका स्मरण उपासना ध्यान करनेवाला पवित्र क्यों नहीं होगा ? (जो यह कहो कि उसके नामसे अपने गुणकर्मोंको सुधारै) तो जब उसका नाम कुछ गुण रखता है तभी तो मनुष्य उसके गुणकर्मसे अपने गुणकर्म सुधार सकता है, नहीं तौ किस प्रकार सुधार सकता है, यदि स्वयं ही सुधारसकता तो उसके नामस्मरणादिकी आवश्यकता क्या थी ? जब उसके नामसे गुण कर्म स्वभाव सुधरते हैं तौ पवित्र क्यों नहीं होसक्ते ? जो पाप दूर नहीं होसक्ते तौ गुण कर्म स्वभाव भी नहीं सुधरसक्ते और ईश्वरमें कर्म ही क्या हैं जिसकी सदृश वह अपने गुण कर्म सुधारै, और गुणकर्म ही सुधारै तौ किसी भले आदमीके चरित्र देख अपने कर्म सुधार सक्ता है इससे ईश्वरकी आवश्यकता ही नहीं रहती, ईश्वरको निराकार मानते हो तौ उसके कर्म क्या होंगे इससे तौ आप रामचन्द्रको श्रेष्ठ पुरुष मानते हो उनके सब ही आचार श्रेष्ठ थे उन्हींके नामस्मरण करनेसे मनुष्य अपने चरित्र सुधार सके हैं, फिर आपको ईश्वरकी आवश्यकता क्यों, जब आप कहते हैं कि प्रार्थना करनेसे अहंकार दूर होगा, सहायता प्राप्त होगी, तौ क्या उसके पाप दूर न हुए साधारण हाकिम जिनकी सहायता करते हैं उनके दुःख दूर होजाते हैं और जब ईश्वरने सहायता करी तो पाप कहां, बस ईश्वरने सहायता करी तौ भक्तोंके मनोरथ पूर्ण होगये, और पापसे छूट सुखके भागी हुए, सुख तब ही होता है जब पाप दूर होते हैं, इस सहायता करनेसे तो दयानंदजीका लेख ही उनके लेखको खंडन करता है और उपासनासे ब्रह्मसे मेल होना भी आपने क्या सोच कर लिखा है जो मेल हुआ तौ फिर पृथक् होना कठिन है, जो जल गंगाजलमें पडगया हजार यत्नसे वह फिर अलग नहीं होसक्ता और वह गंगाजल ही होजाता है इसी प्रकार जब उपासना करनेसे ईश्वरसे मेल होगया तौ उसकी पवित्रतामें क्या संदेह है पापीसे ईश्वरका मेल ही नहीं होसक्ता है मेल होने उपरान्त फिर मुक्तिसे नहीं लौट सक्ता है, और ईश्वरके प्रत्यक्ष होनेके आपने विशेष अर्थ नहीं खोले क्या वह इन्द्रियोंके सामने होजाता है, क्यों कि जो आकारवाला होगा वही इन्द्रियोंके सामने होगा इससे तौ सिद्ध होता है कि ईश्वर साकार है, निराकार प्रत्यक्ष कैसे होसक्ता है और यह जो लिखा कि (जो भाँडके समान परमेश्वरकी स्तुति करता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ

हे.) यह तौ बडा ही उलटा लेख है क्यों कि ईश्वरकी प्रार्थना तौ सकाम इसीसे करी जाती है कि यह कार्य हमसे नहीं हो सक्ता ईश्वर तू हमारी सहायता कर. जो अपने चरित्र सुधारनेमें असमर्थ हैं वा और किसी कार्यमें वे ही तौ प्रार्थना कर सहायता चाहते हैं कि परमेश्वर हमारे चरित्र सुधरे हमारे काम बनें ऐसी कृपा करो जो जिस कामके करनेमें स्वयं समर्थ होता है वह कब दूसरेसे सहायता चाहता है, जो अपने चरित्र सुधारनेमें स्वयं समर्थ है वह ईश्वरकी उसमें सहायता क्यों चाहेंगे पहले तौ लिखा कि गुणकर्म सुधारनेको ईश्वरकी प्रार्थना करनी यहां लिखते हैं अपने कर्म सुधारो विना सुधारे स्तुति प्रार्थना व्यर्थ है यह परस्पर विरुद्ध लेख कौन बुद्धिमान् मान सक्ता है (ऐसी प्रार्थना कभी न करनी मेरे शत्रुओंको मारो मुझे सबसे अधिक करो इत्यादि) और क्या प्रार्थनामें स्वामीजीके यंत्रालयकी वृद्धि मनाई जाय, शतशः वेदमंत्र इसी आशयसे पूर्ण हैं हे ईश्वर ! हमारे पाप दूर करो, हमारे शत्रुओंको मारो हमको श्रेष्ठ बनाओ हमारी रक्षा करो क्या यह वेदमें मिथ्या प्रलाप है, नहीं तौ कह दीजिये कि किसीने मिला दिया है बस इतनी ही कसर है आपकी चलती तौ अपने प्रतिकूल मंत्रोंपर जरूर हरताल फेरते पर तौ भी अर्थ बदलकर अनर्थ कर ही दिया और (झाडू लगाइये वस्त्र धो दीजिये,) यह क्या स्वामीजीने लिखदिया क्या जिस समय यह पुस्तक लिख रहेथे आपका बिस्तर मैला था या कूडा पडा था, या कपडे मैले थे, भला यह तौ सोचा होता कि जिसके भौतिक शरीर नहीं वह कैसे ऐसे काम कर सकेगा, और अपने मालिक उत्पन्न करता संकटमोचनसे कोई भी ऐसा कह सक्ता है, साधारण मालिकके सामने तौ जवाब नहीं दिया जाता और उस बडे महन्तसे यह ढीठता, शायद ऐसी प्रार्थना तुमने ही की होगी जब आपके कपडे मैले, सामने कूडा पडा होगा कि ईश्वर यह दोनों काम कर दे, जब उसने नहीं किये तौ क्रोध करके लिखदिया कि उस प्रार्थना मत करो कुछ लाभ नहीं, फिर लिखा है (जो परमेश्वरके भरोसे आलसी बने बैठे रहते हैं वे मूर्ख हैं) देखिये इस नास्तिकताको, कि ईश्वर भरोसा करना मूर्खताका काम है जब ईश्वरका भरोसा करना मूर्खता है, जिसका भरोसा नहीं उसके गुण गानेसे क्या लाभ, और नास्तिकता होती है, इसीको अनीश्वरवादी कहते हैं सहस्रों ऋषि मुनि अरण्यमें परमेश्वरके भरोसे जप तप करते थे, और करते हैं और वह ही परमेश्वर उन रक्षा करता है क्या स्वामीजी तुम्हारे भंडारसे सीधा जाया करता था भोजन कर ऋषि मुनि तप करते थे, आपको देना बुरा लगाया, जो लिख दिया कि ईश्वरके भरोसे रहना वृथा है, आप लिखते हैं कि पापक्षमा भगवान् नहीं करता यदि करे तौ फिर सब पाप करने लगजायें, सुनिये

दुष्टोंके पाप क्षमा नहीं करता. भक्तोंके अवश्य क्षमा करता, है, क्यों कि वह जानता है कि भक्तसे अनजाने यह पाप बनगया है और अब प्रतिज्ञा करता है कि आगेको नहीं करूंगा और करैगा भी नहीं उसका पाप परमेश्वर निश्चय क्षमा करैगा, वोह प्रार्थना ही उसका प्रायश्चित है और जो दुष्ट हैं मनमें पाप और ऊपरसे बने भक्तवंचक उनका पाप कभी क्षमा नहीं होगा, जो भला आदमी होता है उसके अनजाने अपराधको राजा भी क्षमा कर देताहै और जो दुष्ट हैं उनके पाप क्षमा नहीं करता क्यों कि जानताहै छोड देनेसे अधिक पाप करैंगे जो अन्तःकरणसे शुद्ध हैं और प्रेमसे ईश्वरका स्मरण करतेहैं उनके पाप भी क्षमा होते हैं और दुष्टोंको यथावत् दंड देता है, इसीका नाम न्याय है जो दुष्ट हैं उन्हें दंड और जो दयायोग्य हैं उनपर दया करना क्षमाके योग्य हैं उनपर क्षमा करना, यह नहीं कि सब धान बाईस पंसेरी ही तोला जाय सुनिये शत्रु निवृत्ति अपनी भलाई आदिकी प्रार्थना भी वेदोंमें है ॥

सुमित्रियानुआपुओषधयः सन्तुदुर्मित्रिया-
स्तस्मैसन्तुयोस्मान्द्वेष्टियञ्चवयंद्विष्मः । यजु० अ० ३६ मं० २३ ।

हे परमेश्वर ! (आपः) जल (ओषधयः) औषधी (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुमित्ररूपा (सन्तु) हों (यः) जो शत्रु (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (वयम्) हम (यम्) जिस शत्रुसे (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तस्मै) उसके लिये (दुर्मित्रियाः) दुर्मित्ररूप (सन्तु) हों ॥

पापक्षमा मांगना ।

यद्ग्रामेयदरण्येयत्सभायांयदिन्द्रिये । यदेनंश्चकृमावयमिदन्त
दवयजामहेस्वाहा- यजु ० अ० ३ मं० ४५

(वयम्) हमने (ग्रामे) गांवमें (यत्) जो (एनः) मनवाणीशरीरसे पररूप पाप किया है (अरण्ये) वनमें (यत्) जो वृक्षछेदन, मृगवध आदि किया है (सभायां) सभामें (यत्) जो अनीतिआदि पाप किया (इन्द्रिये) इन्द्रियसमूहमें (यत्) जो धर्मविरुद्ध भोजनपानमैथुनादि पाप (आचकृम) किया (तत्) उस (इदम्) इस पापको (अवयजामहे) विनाश करताहूं (स्वाहा) हवि पाप नाशक देवताको दिया ॥ १ ॥ इसमें पापक्षमा चाही अब और सुनिये ॥

तनूपाअंग्नेसितन्वम्मेपाह्यायुर्दाअंग्नेस्यायुर्मेदेहिवर्च्चोदाअंग्ने सिवर्च्चोमेदेहि अग्ने यन्मेतन्वा ऊनन्तन्म आपृण–य० अ० ३ मं१७

(अग्ने) हे परमेश्वररूप अग्नि तुम (तनूपाः) जाठराग्निरूपसे देहोंके रक्षक (असि) हो (मे) मेरे (तन्वम्) शरीरको (पाहि) रोगादिकोंसे रक्षा करो (अग्ने) हे परमेश्वर तुम (आयुर्दा) आयुके दाता (असि) हो (मे) मुझे (आयुः) दीर्घायु (देहि) दीजिये अर्थात् अपमृत्युको दूर कीजिये प्रसिद्ध है कि जबतक जाठराग्नि रहती है तबतक मनुष्य नहीं मरता है (अग्ने) हे अग्नि तुम (वर्चोदा) तेजके दाता (असि) हो (मे) मुझे (वर्चः) तेज (देहि) दीजिये (अग्ने) हे अग्नि (मे) मेरे (तन्वा) शरीरका (यत्) जो अंग (ऊनम्) ज्ञानके अनुष्ठानमें असमर्थ है (मे) मेरे (तत्) उस अंगको (आपृण) समर्थ कीजिये ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ र ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः

१ २३ १२

अमैरमित्रमर्दय--सामवे० प्र० १ खं० २ मं० १

हे (अग्ने) देव (ते) तुभ्यं (नमोगृणन्ति) नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति किमर्थम् (ओजसे) बलाय (कृष्टयः) मनुष्याः यजमानाः कृष्टिरिति मनुष्यनाम निघण्टुत्वं च (अमैः) बलैः (अमित्रं) शत्रुम् (अर्दय) नाशय ॥

भावार्थ–हे अग्निदेव ! मनुष्य यजमान तुमको नमस्कार करते हैं बलवान् होनेको, और तुम अपने बलसे हमारे शत्रुओंको नाश करो ॥

अग्ने रक्षाणो अ१७ हसः प्रतिष्मदेव रीषतः ।

तपिष्ठैरजरो दह--साम० प्र० १ । अ० ३ मं०४

हे (अग्ने) त्वं (नः) अस्मान् (अंहसः) पापात् (रक्षाणः) पाहि अपि च हे (देव) द्योतमानाग्ने (अजरः) जरारहितस्त्वं (रीषतः) हिंसतः शत्रुन् (तपिष्ठैः) अतिशयेनतापकैस्तेजोभिः (प्रतिदहस्म) भस्मीकुरु ॥ *

भावार्थः–हे अग्निरूप परमेश्वर ! तुम हमको पापसे रक्षा करो हे दीप्तियुक्त जरारहित अग्नि तुम शत्रुओंको मारतेहुए बडे तपानेवाले तेजोंसे शत्रुओंको भस्म करदो, दहका अर्थ भस्म करो प्रत्यक्ष ही है ॥

* छोटे स्वामी भास्करप्रकाशमें यहां चुप हैं ।

१ २　　　३ १ ३ ३ १ २ ३ १　　　२
आ नो अग्ने वयो वृधꣳरयिम्पावक शꣳयस्यम् ।
१ २　　　३ ३ ३　　　१ २ ३ १२
रास्वाचन उपमाते पुरु स्पृहꣳसुनीतीसुयशस्तरम् ॥
साम ० प्र १ अ० १ खं० ४ मं० ९

(अग्ने) हे परमेश्वर (पावक) शुद्ध करनेवाले पापहर्ता पाप दूर करनेसे ही प[...]का नाम पावक है (वयोवृधं) अन्नके बढानेवाले (शस्यं) स्तुतिवा[...]यें) धनकूँ (नः) हमारेवास्ते दीजिये और लाकर (उपमाते) हमारे समी[...] करिये हे ईश्वर (नः) हमको सुनीती अच्छे मार्गसे (पुरुस्पृहं) बडे श्रे[...]यशस्तरम्) अच्छे यश कीर्तिधनको (रास्व) दीजिये और देखिये—

अग्नेनयसुपथाराये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानिविद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनोभूयिष्टांतेनम उक्तिविधेम ॥
यजु० अ ४० मं० १६

(देव) हे दिव्य दानादि गुणयुक्त (अग्ने) अग्निदेव (विश्वानि) सम्पू[...]युनानि) हमारे कर्मोंको (विद्वान्) जाननेवाले आप (अस्मान्) हमक[...]ये) मुक्तिलक्षणवाले धन वा भोगको (सुपथा) उत्तरायण दक्षिणायन मार्ग[...]य) प्राप्त करो (जुहुराणम्) कुटिलवंचनात्मक (एनः) पापको (अस्मत्[...]) (युयोधि) पृथक् करो हम (ते) आपके निमित्त (भूयिष्ठाम्) अने[...]मउक्तिम्) नमस्कारोंको (विधेम) विधान करते हैं ॥

इसके अर्थ सत्यार्थप्रकाश पृ० १८९ प० २१ में स्वामीजीने यों लिख हैं[...]के दाता प्रकाशस्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन् आप हमको श्रेष्ठ मार्ग[...]र्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरण रूप मार्ग[...]से पृथक् कीजिये इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी स्तुति करते हैं कि[...]र हमें पवित्र करें, यह स्वामीजीका अर्थ ही इस वातको सिद्ध करता है कि[...]र पाप दूर करता है, इस दयानंदजीके लेखसे स्वयं ही उनका लेख खंडि[...]ा है हम क्या करेंगे वेदमें सब स्तुति सार्थ हैं स्तुति जिस २ गुणसे करी जाती[...]ी सो गुण और कार्य अवश्य होता है, नहीं तौ निराकारताको जलांजलि[...]ठो क्यों विधि निषेध करते हो और निराकारता निर्गुणता स्तुतिको सार्थ मानो[...] साकारतासाधक स्तुतिने क्या पाप किया है यदि वेदमें स्तुति निरर्थक मानो[...] सार्थक क्या रहैगा और सुनो—

एवैवापागपरेसन्तुदूढ्योऽश्वायेषांदुर्युजआयुयुज्रे ॥ इत्थायेप्राग्-परेसन्ति दावने पुरूणि यत्रवयुनानिभोजना ॥ऋ० मं० १० सू० ४४

पदार्थः—ईश्वर कहताहै हे मनुष्यो (एवैव) इसी प्रकार (दूढ्यः) स्तुति प्रार्थना नहीं करनेवाले दुर्बुद्धि (अपरे) और यज्ञ नहीं करनेवाले (अपाग) नरक जानेवाले (सन्तु) हों (येषाम्) जिन स्तुति प्रार्थना और यज्ञ न करनेवालोंके (अश्वाः) इन्द्रियरूप घोडे (दुर्युजः) प्रबल जो साधनेमें न आवैं ऐसे (आयुयुज्रे) रथोंमें युक्त होते हैं और (इत्था) इसी प्रकार वे स्वर्गको जाते हैं और उनके सब पाप दूर होजाते हैं (ये अपरे) जो यज्ञ करनेवाले (प्राक्) मरणसे पहले (दावने) मुझ ईश्वरको हवि देनेको (सन्ति) उद्यत होते हैं (यत्र) जिन यज्ञोंके करनेवालोंमें (वयुनानि) प्रज्ञान (भोजना) भोग करने योग्य धन (पुरूणि) बहुतसे मेरे अर्पणके लिये होते हैं ॥

यह परमेश्वरकी आज्ञा है योगी लोग उसीके भरोसे योग साधते हैं कुछ स्वामीजीकीसी गपोड, वा धनके, इकट्ठा करनेके उद्योगमें नहीं लगे रहते हैं जब मनुष्य शुद्ध होताहै तब दूसरेको शुद्ध उपदेश देसक्ताहै अब और देखिये प्रार्थना यजुः अ० ३६ मंत्र ॥ २४ ॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदःशतञ्जीवेमशरदःशतꣳ शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्यामशरदःशतम्भूयश्चशरदः शतात् २४

समष्टिमूर्तिव्यापकं परमेश्वरं प्रार्थयति (तत्) (देवहितम्) देवानां हितं प्रियम (चक्षुः) परमेश्वरस्य चक्षूरूपं (शुक्रम्) सूर्यरूपं ब्रह्म श० ४, ३, १, २१ (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तं (शतं) (शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (पश्येम) (शतंशरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (जीवेम) अस्माकं निरंतिरस्त्वित्यर्थः (शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् भगवच्चरितानि शृणुयाम (शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (प्रब्रवाम) भगवद्गुणानां चरितानि कथयाम (शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (अदीनाः स्याम) (शतात् शरदः) पूर्णायुःपर्यंति (भूयः) योगशक्त्या बहुकालं जीवेम ॥ २४ ॥

भाषार्थ—परमेश्वरसे प्रार्थना है यह देवताओंका प्रिय परमेश्वरका चक्षु सूर्यरूप ब्रह्म पूर्व दिशामें उदय होता है, उसको हम पूर्णायुपर्यन्त देखें पूर्णायुपर्यन्त जीवें, अर्थात् अकालमृत्युकी निवृत्ति हो, पूर्णायुपर्यन्त भगवच्चरित्रोंको सुन पूर्णा-

युपर्यन्त परमेश्वरके अवतारचरित्रोंको कथन करें पूर्णायुपर्यन्त अदीन रहें तथा योगशक्तिसे पूर्णायुसे भी अधिक जियें ॥ २४ ॥

इस मंत्रमें परमात्माका गुण कहना सुनना आदि वर्णन किया है फिर क्या इसमें भरोसा नहीं आया और (स नो बन्धु०) जब वह हमारा बन्धु०उत्पन्न करता पालन कर्त्ता है तौ हम उसपर क्यों न भरोसा करें और क्यों न हमको फल वह देगा और जो किया जाय सो कर्म ईश्वरकी स्तुति स्वामीजी भाँडके समान करना व्यर्थ बताते हैं स्तुति करना भी कर्म है और जब कर्म है तौ-अवश्य उसका कुछ फल होगा स्तुति करना कभी व्यर्थ नहीं वेदोंमें शतशः प्रार्थना विद्यमान हैं ॥

स० पृ० १८८ पं ११ (में स्वयं पाप दूर होना मानते हैं यथा) ॥

सार्वज्ञादि गुणोंके साथ परमेश्वरकी उपासना करनी सगुण और द्वेषरूप गन्ध स्पर्शादि गुणोंसे पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्माके भीतर बाहर व्यापक परमेश्वरमें दृढ स्थित होजाना निर्गुण उपासना कहाती है इसका फल जैसे शीतसे आतुर पुरुषका अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुणकर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इससे उसकी प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिये (१९६।९) पुनः पृ० १८७ पं० १४ में लिखा है उपासना शब्दका अर्थ समीप होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो जो काम करना है वह सब करना (१९९।७ पुनः पृ० १८७ पं २९ नित्य प्रति जप किया करै (१९५।२४) पुनः पृ० १८८ पं० १ अपने आत्माको परमेश्वरकी आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे ॥

समीक्षा-स्वामीजीकी परस्पर विरुद्धताको कहांतक लिखें और गिनावें सत्यार्थप्रकाश सारा ग्रंथ ही, परस्पर विरुद्धतासे भरा पडा है, कहीं तौ कुछ लिखा है और कहीं कुछ लिखा है सार्वज्ञादि गुण सहित उपासनाको जब सगुण माना है और रूप रस गन्ध स्पर्शसे अलगको निर्गुण उपासना कही है. तौ इससे यही सिद्ध होता है कि सगुण उपासनामें स्पर्श रूप रस गन्ध होते हैं, और यह गन्ध स्पर्शादि अवतारमें घन सके हैं,स्वामीजीने निर्गुण उपासनामें स्पर्श रूपादिका

पृष्ठ-१९८ । पं० ७ सन् १८९०

१अथवा पीठके मध्यहाडमें किसीस्थानपर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्माका चिन्तन करके परमात्मामें मग्न होजानेसे संयमी होवे । समीक्षा-धन्य है देवमंदिर आदि छोडकर दयानंदी उपासना पीठके मध्य हाडमें होती है ॥

एवैवापागपरेसन्तुदूढचोऽश्वायेषांदुर्युजआयुयुज्रे ॥ इत्थायेप्रागुपरेसन्ति दावने पुरूणि यत्रवयुनानिभोजना ॥ऋ०मं० १०मू० ४४

पदार्थः-ईश्वर कहताहै हे मनुष्यो (एवैव) इसी प्रकार (दूढयः) स्तुति प्रार्थना नहीं करनेवाले दुर्बुद्धि (अपरे) और यज्ञ नहीं करनेवाले (अपाग) नरक जानेवाले (सन्तु) हों (येषाम्) जिन स्तुति प्रार्थना और, यज्ञ न करनेवालोंके (अश्वाः) इन्द्रियरूप घोडे (दुर्युजः) प्रबल जो साधनेंमें न आवें ऐसे (आयुयुज्रे) रथोंमें युक्त होते हैं और (इत्था) इसी प्रकार ये स्वर्गको जाते हैं और उनके सब पाप दूर होजाते हैं (ये उपरे) जो यज्ञ करनेवाले (प्राक्) मरणसे पहले (दावने) मुझ ईश्वरको हवि देनेको (सन्ति) उद्यत होते हैं (यत्र) जिन यज्ञोंके करनेवालोंमें (वयुनानि) प्रज्ञान (भोजना) भोग करने योग्य धन (पुरूणि) बहुतसे मेरे अर्पणके लिये होते हैं ॥

यह परमेश्वरकी आज्ञा है योगी लोग उसीके भरोसे योग साधते हैं कुछ स्वामीजीकीसी गपोड, वा धनके, इकट्ठा करनेके उद्योगमें नहीं लगे रहते हैं जब मनुष्य शुद्ध होताहै तब दूसरेको शुद्ध उपदेश देसक्ताहै अब और देखिये प्रार्थना यजुः अ० ३६ मंत्र ॥ २४ ॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदःशतञ्जीवेमशरदःशतꣳ शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्यामशरदःशतम्भूयश्चशरदः शतात् २४

समष्टिमूर्तिव्यापकं परमेश्वरं प्रार्थयति (तत्) (देवहितम्) देवानां हितं प्रि (चक्षुः) परमेश्वरस्य चक्षूरूपं (शुक्रम्) सूर्यरूपं ब्रह्म श० ४, ३, १, (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तं (शतं) (शरदः पूर्णायुःपर्यन्तम् (पश्येम) (शतंशरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (जीवेम) अल्पानां नि त्तिरस्त्वित्यर्थः (शतं शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् भगवच्चरितानि शृणुयाम (शरदः) पूर्णायुःपर्यन्तम् (प्रब्रवाम) भगवदवतारचरितानि कथयाम (शतं शरदः पूर्णायुःपर्यन्तम् (अदीनाः स्याम) (शतात् शरदः) पूर्णायुःपर्यपि (भूयः योगशक्त्या बहुकालं जीवेम ॥ २४ ॥

भावार्थ-परमेश्वरसे प्रार्थना है यह देवताओंका प्रिय परमेश्वरका चक्षु सूर्यरू ब्रह्म पूर्व दिशामें उदय होता है, उसको हम पूर्णायुपर्यन्त देखें पूर्णायुपर्यन्त जी अर्थात् अकालमृत्युकी निवृत्ति हो, पूर्णायुपर्यन्त भगवच्चरित्रोंको सुन पूर्ण

युपर्यन्त परमेश्वरके अवतारचरित्रोंको कथन करें पूर्णायुपर्यन्त अदीन रहें तथा योगशक्तिसे पूर्णायुसे भी अधिक जियें ॥ २४ ॥

इस मंत्रमें परमात्माका गुण कहना सुनना आदि वर्णन किया है फिर क्या इसमें भरोसा नहीं आया और (स नो बन्धु०) जब वह हमारा बन्धु०उत्पन्न करता पालन कर्त्ता है तौ हम उसपर क्यों न भरोसा करें और क्यों न हमको फल वह देगा और जो किया जाय सो कर्म ईश्वरकी स्तुति स्वामीजी भाँडके समान करना व्यर्थ बताते हैं स्तुति करना भी कर्म है और जब कर्म है तौ अवश्य उसका कुछ फल होगा स्तुति करना कभी व्यर्थ नहीं वेदोंमें शतशः प्रार्थना विद्यमान हैं ॥

स० पृ० १८८ पं ११ (में स्वयं पाप दूर होना मानते हैं यथा) ॥

सार्वज्ञादि गुणोंके साथ परमेश्वरकी उपासना करनी सगुण और द्वेषरूप गन्ध स्पर्शादि गुणोंसे पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्माके भीतर बाहर व्यापक परमेश्वरमें दृढ स्थित होजाना निर्गुण उपासना कहाती है इसका फल जैसे शीतसे आतुर पुरुषका अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुणकर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इससे उसकी प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिये (१९६।९) पुनः पृ० १८७ पं० १४ में लिखा है उपासना शब्दका अर्थ समीप होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो जो काम करना है वह सब करना (१९६।७ पुनः पृ० १८७ पं २९ नित्य प्रति जप किया करे (१९६।२४) पुनः पृ० १८८ पं० १ अपने आत्माको परमेश्वरकी आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे ॥

समीक्षा-स्वामीजीको परस्पर विरुद्धताको कहांतक लिखें और गिनायें सत्यार्थप्रकाश सारा ग्रंथ ही, परस्पर विरुद्धतासे भरा पडा है, कहीं तौ कुछ लिखा है और कहीं कुछ लिखा है सार्वज्ञादि गुण सहित उपासनाको जब सगुण माना है और रूप रस गन्ध स्पर्शसे अलगको निर्गुण उपासना कही है तौ इससे यही सिद्ध होता है कि सगुण उपासनामें स्पर्श रूप रस गन्ध होते हैं, और यह गन्ध स्पर्शादि अवतारमें बन सक्ते हैं, स्वामीजीने निर्गुण उपासनामें स्पर्श रूपादिका

पृष्ठ--१९८ । पं० ७ सन् १८९७

---

१ अथवा पीठके मध्यहाडमें किसीस्थानपर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न होजानेसे संयमी होवे । समीक्षा-धन्य है देवमंदिर आदि छोडकर दयानंदी उपासना पीठके मध्य हाडमें होती है ॥

निषेध किया है, सगुणमें तो सार्वत्यादि होनेसे रूपादि सब ही आगये अत एव परमेश्वरका रूप भी स्वामीजीके कथनसे ही सिद्ध होगया, और उपासनाके अर्थ समीप होनेके लिखेहैं, यह भी सगुणमें ही बन सक्ता है क्यों कि उसकी कोई मूर्त्ति बनाकर उसमें अनेक प्रकारके गुण आरोपण कर उसके निकट वा समीप बैठकर स्तुति प्रार्थना करना इसीसे समीप हो सक्ता है, निर्गुणमें यह बात कैसे बन सक्ती है क्यों कि जब उसमें रूपादि नहीं गुण नहीं तो उसके समीप कैसे होसक्ता है, वह तो शून्य होगया यदि कहो सर्व व्यापक होनेसे वह निर्गुण है तो भी नहीं बनसक्ता क्यों कि सर्वव्यापकता भी एक गुण है और जिसमें गुण हो वह सगुण और जो व्यापक मानते हो तो उपासनासे समीपस्थ होना कैसा वह तो सदा सबके ही समीप है समीप क्या बाहर भीतर वर्त्तमान है इससे दयानंदजी निर्गुण अवस्थामें ईश्वरको शून्यत्वसे युक्त करते हैं जिससे विदित होता है कि उस अवस्थामें ईश्वर नाममात्र है और जिसमें, सार्वत्र्यादि गुण स्पर्श रूपादि कुछ भी नहीं वह प्रत्यक्ष कैसे हो सक्ता है इससे उपासना सगुणमें बनेगी और मूर्तिपूजन भी इससे सिद्ध होता है ॥

अरंदासोनमीढुषेकराण्यहंदेवायभूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्योगृत्संरायेकवितरोजुनाति ॥
ऋ० मं० ७ अनु० ५ सू० ८६ मंत्र ७

पद । अरम् दासः नं मीढुषे कराणि अहम् देवाय भूर्णये अनागाः अचेतयत् अचितः देवः अर्य्यः गृत्सम् राये कवितरः जुनाति ॥

इस स्थानमें न शब्दके अर्थकी मंत्रोंमें व्यवस्था करनेवाले निरुक्तको भी समझना चाहिये ॥

प्रतिषेधार्थीयःपुरस्तादुपाचारस्तस्ययत्प्रतिषेधति ॥
उपमार्थीयउपरिष्टादुपाचारस्तस्ययेनोपमिमीते ॥
नि० अ० १ । खं० ४

यत्प्रतिषेधति तस्य पुरस्तात् प्रतिषेधार्थो यो नशब्दः इत्युपाचारः येनोपमिमीते तस्योपरिष्टात् उपमार्थो यो नशब्द इत्युपचारः यह अन्वय है । भावार्थ यह है-कि जिस अर्थका निषेध करतेहैं तिस वाचकके पदसे यदि पूर्व नकार हो तो प्रतिषेध अर्थवाला होताहै मंत्रमें और जिसकी उपमा दी जातीहै तद्वाचक शब्दसे यदि नकार पश्चात् हो तो उपमा अर्थमें नकार होता है यह नियम बहुधा मंत्रोंमें ही होता है ॥

मंत्रार्थः-(अनागा अहं भूर्णये मीडये पेवाय अरंकराणि दासोनदास इव) निषिद्धाचरण वर्जित मैं दासवत् देवके अर्थ अलंकार करता हूं (भूर्णये मीडये) वो देव बहुतसी धनकी वृद्धि करनेवाले हैं, जैसे स्वामीका सेवक स्रक् चन्दन वस्त्रादिसे अलंकार करताहै तद्वत् मैं भी बहुत धन देनेवाले देवको अलंकार करता हूं इस मंत्रमें दासकी उपमा अहंशब्दार्थ कर्ताको दी गई है और दास शब्दसे परे नकार है तिससे उपमार्थमें है इस मंत्रमें देवको अलंकार करना लिखा है, और बिना समीप हुए अलंकार नहीं होसक्ता, समीपस्थ होना उपासनासे युक्त है और निराकारमें अलंकारादि करना असंभव है इससे प्रतिमारूप आधारमें ही देवपरमात्माके अलंकारादि हैं, और उपासना भी तभी हो सक्ती है(प्रश्न)इस मंत्रमें तो आचार्यादि देवता मानकर उनका अलंकार कहा है कुछ प्रतिमामें, अलंकार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुति ही देती है (अचेतयदचितो देवोअर्य्यः) स्वामी देव अचेतनोंको चेतन करता है अपने जीवरूपसे प्रवेश करके (राये गृत्सं कवितरो जुनाति) इस प्रकार धनकी प्राप्तिके अर्थ प्राणके भी प्राणरूप देवको अत्यन्त बुद्धिमान् (जुनाति) आश्रय करता है इस मंत्रमें प्रतिमामें परमेश्वर पूजनको काम्य कर्मता प्रतीत होती है, और आचार्य यद्यपि पूजनीय है परन्तु वह अचेतनोंको चेतन नहीं करसकता जीवरूपसे प्रवेश करनेसे, इससे उपासना सगुणमें बनती है और स्वामीजीने इतना फल तो माना है कि, परमेश्वरके समीप होनेसे सब दुःख दूर होजाते हैं और परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके समान जीवके गुण कर्म स्वभाव होजाते हैं उसकी समान पवित्र होजाते हैं (और पूर्व लिखाहै कि, यह स्तुति प्रार्थनासे पाप क्षमा नहीं करता) कैसा अन्धेर है और यहां कहा कि, ईश्वरके बराबर गुण कर्म स्वभाव जीवके होजाते हैं जीव और ईश्वरके जब गुण कर्म स्वभाव एकसे हुए तो अंतर कैसा जो वस्तु एकसी रंगरूपमें हो उनमें अन्तर कैसा " अथोदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वैभयं भवति " बृ० उ० जो ब्रह्म और जीवमें थोडा भी भेद करता है उसको भय प्राप्त होताहै क्यों कि दूसरेसे भय प्राप्त होताहै और इसीसे यजुर्वेदके ४० अ० १७मं० " योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्" जो यह आदित्यमें पुरुष है सो मैं हूं इत्यादि जीव ईश्वरमें एकता बोधक बहुत श्रुति हैं फिर पाप दूर हुए विना गुण कर्म स्वभाव समान कैसे हो सकते हैं, इससे भी पाप दूर होना स्वयं सिद्ध होता है, फिर लिखाहै नित्यप्रति जप करै, फिर लिखा है ईश्वरके भरोसे रहना मूर्खता है अब यहां लिखा अपने आत्माको समर्पित कर दे. इत्यादि विरुद्ध बातोंसे प्रतीत है कि, स्वामीजीने गहरी भंग पीकर सत्यार्थ प्रकाश बनाया है, अब सबका सारांश यह है कि जो गीतामें श्रीकृष्णजी कहते हैं ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ भ० गी०

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि और सब धर्मोंको छोड मेरी शरणरूप धर्ममें प्राप्त हो तो मैं तुझे सब पापोंसे छुडा दूंगा इससे ही सब कुछ समझलेना चाहिये-इति ॥ *

जीवपरतंत्रप्रकरणम् ।

सत्या० पृ० १९२ पं० १२ (प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र (उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मोंमें स्वतन्त्र और ईश्वरके व्यवस्थामें परतन्त्र है जो स्वतंत्र हो उसको पुण्य पापका फल प्राप्त नहीं होसक्ता पुनः पं० २९ जीवका शरीर और इन्द्रियोंके गोलक परमेश्वरके बनाये हैं पुनः पृ० १९४ पं० १० जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है जैसा स्वतन्त्रतासे जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है जैसा ईश्वर जानता है वैसा ही जीव करता है, भूत भविष्यत् वर्त्तमानका ज्ञान और फल देनेमें ईश्वर स्वतंत्र है और जीव किंचित् वर्त्तमानऔर कर्म करनेमें स्वतंत्र है ॥ २०० । २४ ॥ २०२ । २९ ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है पृ० २०२ । २१ सन् १८१२ ।

समीक्षा-स्वामीजीकी अलौकिक बुद्धिका कहांतक ठिकाना लगाया जाय लेख कि, कर्त्तव्य कर्मोंके करनेमें स्वतंत्र और ईश्वरकी व्यवस्थामें जीव परतंत्र फिर लिखा है जो जीव कर्त्ता है वह ईश्वर सर्वज्ञतासे जानता जब कि जीव कर्मोंके करनेकी त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है, तौ जीवके कर्म स्वतंत्रताके कब हो सके क्यों कि जो जो वह कर्म करेगा सो तौ ईश्वर सर्वज्ञतासे पहले ही जानता वास्तवमें जीव कर्म करनेमें तथा पाप पुण्यके फल भोगनेमें सर्वथा परतंत्र अर्था अपने पूर्वकर्मानुकूल ईश्वराधीन है, जब कि: स्वामीजीके लेखानुसार जीव जैसे कर्म करैगा ईश्वरने पहले ही अपनी सर्वज्ञतासे जान रक्खा है तौ जीव कर्म करने स्वतंत्र कहां रहा, क्यों कि जैसा ईश्वरने अपनी सर्वज्ञतासे जानाहै उसके विरु कर ही नहीं सक्ता, यदि स्वामीजी कहें कि, करसक्ता है तौ ईश्वरका ज्ञान अन्यथा हुआ, सो असम्भव है इससे अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि, जीव कर्म करनेमें किसी प्रकार स्वतंत्र नहीं किन्तु जैसे ईश्वरने अपने ज्ञानसे जान रक्खा है उसीके अधीन है और जैसा स्वामीजीने पृ० १९२ पं २९ में लिखा है कि, पापफल भोगनेमें परतंत्र है, स्वामीजी यही कहेंगे कि पुण्यका फल भोगनेमें स्वतंत्र और इससे यही धुनि निकलती है कि पापकर्म तो परतंत्रतासे भोगने पड़ेंगे तौ पुण्य-

* भा० प्र० न इसके अर्थमें दोनों लोक मान लिये हैं ।

फलमें स्वतंत्र हुआ चाहे, ग्रहण करे वा नहीं, सो इसमें भी जीव स्वतंत्र नहीं हो सक्ता तो दयानंदजी यही कहेंगे कि, पुण्यका फल सुख है और उसका ग्रहण और त्याग जीवके अधीन है अर्थात् देवदत्तको उसके पुण्यादि अनुकूल धनादिकको प्राप्ति हुई उसके ग्रहण और त्यागमें वह स्वतंत्र है मैं कहताहूं ग्रहण और त्यागमें भी जीव स्वतंत्र नहीं क्यों कि ग्रहण और त्याग कर्म है और हम अर्था स्वामीजीके इस लेखानुसार कि (जैसा स्वतंत्रतासे जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है) सिद्ध कर चुके हैं कि, जीव किसी प्रकार कर्म करनेमें स्वतंत्र नहीं फिर जब कि, देवदत्तको पुण्यानुकूल ईश्वरने किसी प्रकारका भोग नियत किया है और स्वामीजीके मतानुसार कि, (अपने सामर्थ्यानुकूल कर्मोंके करनेमें स्वतंत्र है) यह उसको न भोगे अर्थात् त्यागकर दे तो जीव ईश्वरसे प्रबल ठहरा, अथवा स्वामीजीके मतमें कोई शैतानका प्रपितामह है जो ईश्वरके नियमित कार्यको बलात्कार जीवसे विरुद्ध करावे, ध्यान रहे कि, जिसके लिये उसके कर्मानुकूल ईश्वरने जो भोग नियत किया है वह उसको अवश्य भोगेगा, उसके विरुद्ध कदापि किसी प्रकार नहीं हो सकता यदि कहो कि यह बात प्रत्यक्ष है कि, जो पदार्थ हमारे पास हैं जब चाहें दूसरेको देसक्ते हैं, वा उसका त्याग कर सक्ते हैं इससे जीवका पुण्योंके फल भोगनेमें स्वतंत्र होना स्पष्ट है, तो उत्तर यह है कि, किसी पदार्थका दूसरेको देना वा त्याग करना जीवके अधीन नहीं है, किन्तु जिस कालतक जिस पदार्थका परमात्माने जिसके पास रहना वा भोग नियत किया है, उस कालतक उसके पासको रहना वा भोगना अवश्य होगा और जिस कालमें उसके द्वारा दूसरोंको दिया जाना वा त्याग करना नियत किया है, तभी दूसरेको देना वा त्याग करना होगा, प्रत्यक्ष देखा जाता है प्रायः मनुष्य धनवान् होते हैं, परन्तु उस धनको अपने भोजन वस्त्रमें भी यथोचित व्यय नहीं करते और अपने पुत्रादिकोंको भी दुःखी करते हैं इससे यही जाना जाता है कि, ईश्वरने उनके लिये उस धनका भोगना नियत नहीं किया है केवल रक्षक ही किया है जब कि, यह बात है तो किसी पदार्थका दूसरेको दे देना वा त्याग करदेना जीवके अधीन नहीं है दूसरेको कोई पदार्थ हम उसी समय दे सक्ते हैं जिस समय परमात्माने उसके प्रारब्धमें उस पदार्थकी प्राप्ति नियत की हो [illegible] भी होगा जब कि, हमारे प्रारब्धमें उसका त्याग होना नियत [illegible] हम प्रकारके हैं, कि, उनका किसीको दे देना [illegible] जैसे कि, उत्तम वंशमें उत्पन्न होना, [illegible] हान संततिका होना, तथाच [illegible] होना, अपने अनुकूल [illegible]

स्वर्गादिके उत्तम लोकोंका प्राप्त होना, इत्यादि जो पुण्यके फल हैं इन्हें न कोई दूसरेको देसक्ता है न पासक्ता है, जबतक, जिसके भोगमें भोगना है भोगेगा और जिस समय दूसरेको देना होगा दे देगा, इससे सिद्ध है पुण्योंके फल भोगनेमें भी जीव स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने कर्मानुकूल ईश्वराधीन ही है और यह तो स्वामीजी स्वीकार करचुके हैं कि पापोंके भोगनेमें जीव पराधीन है फिर यह लिखा कि, कर्मोंके फल भोगने तथा (पुण्योंके) करनेमें स्वतंत्र है उन्हींके लेखके विरुद्ध है (प्रश्न) जब कि, हम कर्म करनेमें परतंत्र हैं तो फिर कर्मोंका फल हमको न होना चाहिये किन्तु ईश्वरहीको होना चाहिये (उत्तर) विद्यमान शरीरसे जो जो कर्म किये जाते तथा सुख दुःख भोगे जाते हैं ये सब अपने ही पूर्वकर्मोंके अनुकूल होते हैं जैसे चोरको उसीके कर्मानुकूल राजा बन्दीगृहमें रखता है, और उससे चक्की पीसना आदि कर्म भी कराता है इसी प्रकार अस्मदादिकोंके पूर्वकर्मानुकूल ही ईश्वर उन कर्मोंको हमसे कराता है और फलोंको भुगवाता है, यद्यपि जीव कर्म करनेमें सर्वथा परतंत्र है परन्तु जब कि ईश्वर उसीके पूर्व कर्मानुकूल क्रियमाण कर्मको कराता है, अर्थात् जो पहले बुरी वासना चित्तमें है तो वही बुरी वासनायें उससे बुरा कर्म कराती हैं, तो इनका फल भी अवश्य पुनः जीवको होना चाहिये ईश्वरपर लेशमात्र भी दोष नहीं आता है जैसे कि कोई किसीको मार डाले तो उसका मारना स्वतंत्रतासे नहीं हो सकता किन्तु उसके कर्मोंने उसे मार डालनेकी प्रेरणा कराई और [illegible] तो ज्ञान बूझकर कौन पैरमें कुल्हाडी मारता है, और मरनेवालाभी क[illegible] नुसार मरा अथवा जैसा बीज वैसा ही पेड होता है, तदनुसार फूल [illegible] लगते हैं इसी प्रकार पूर्वकर्मकी वासनानुरूप सब यह जीव, कर्म करता है, [illegible] पर दोष नहीं आसक्ता (प्रश्न) यदि जीव अपने, पूर्व कर्मानुकूल कर्म कर[illegible] परतंत्र है तो उपदेश करना वृथा है, क्यों कि ईश्वरने जिसके लिये जो कर्म क[illegible] नियत किया है वह अवश्य वही करैगा इससे विरुद्ध तो कर नहीं स[illegible] (उत्तर) निःसन्देह ईश्वरने जो जिसके लिये उसके पूर्वकर्मानुकूल जो [illegible] करना नियत किया है वह अवश्य ही करैगा उसके विरुद्ध कदापि कुछ न[illegible] करसका बस जिसके लिये उपदेश करना नियत किया है वह उपदेश करता [illegible] जिसके लिये सुनना नियत किया है वह सुनता है जिसके लिये स्वीकार कर[illegible] नियत किया है वह स्वीकार करता है निदान इसी प्रकार प्रत्येक जीव जो जो [illegible] करता है ईश्वराधीन होकर अपने पूर्वकर्मानुकूल ही करता है, किसी कर्मके क[illegible] नेमें कोई भी किसी प्रकार स्वतंत्र नहीं अब जीवोंके परतंत्र होनेमें वेदादिशास्त्रों[illegible] प्रमाण दिया जाता है ॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनः प्रचोदयात्।

यह मंत्र सर्वप्रधान है, संक्षेपार्थ यह है कि उस जगत्प्रकाशक सविता देवताके वरणीय प्रकाशको हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा करता हैं, किसी कर्मके करनेमें हम स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने कर्मानुकूल सर्वथा ईश्वराधीन हैं शंकराचार्य रामानुजाचार्यप्रभृति तथा सायणाचार्य (प्रचोदयात्) पदका अर्थ (प्रेरयति) ही करते हैं परन्तु स्वामीजीने इसको प्रार्थनापर लगाया है और (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कर्मोंसे अलग करै सदा उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्त करै यदि स्वामीजीका यह गडबड अर्थ भी मान लें तो भी जीवकी परतंत्रता कही गई है क्यों कि स्वामीजी आप लिखते हैं कि, परमेश्वर हमारी बुद्धियोंको कृपा करके सब बुरे कर्मोंसे अलग करै सदा उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्त करै यदि कर्मोंके करनेमें जीव स्वतंत्र होते तो अपनी बुद्धियोंको बुरेकामोंसे हटाने और उत्तम कामोंमें लगानेकी परमात्मासे प्रार्थना क्यों करते जिस कामको मनुष्य आप नहीं करसक्ता उसीके लिये दूसरेसे प्रार्थना किया करता है और जिस कामके करनेमें आप समर्थ होताहै उसके लिये कभी किसीसे प्रार्थना नहीं करता अब देखिये बृह० ब्रा० ७ अ० ३

यःसर्वेषुभूतेषुतिष्ठन्सर्वेभ्योभूतेभ्योऽन्तरोय ँ सर्वाणिभूतानिनविदुर्यस्यसर्वाणिभूतानिशरीरंयःसर्वाणिभूतान्यन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १ ॥
यःप्राणेतिष्ठन्प्राणादन्तरोयंप्राणोनवेदयस्यप्राणःशरीरं यः प्राणमन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २ ॥
योवाचितिष्ठन्वाचोन्तरोयंवाङ्नवेदयस्यवाक्शरीरं योवाचमन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥
यश्चक्षुषितिष्ठ ँ श्चक्षुषोन्तरोयंचक्षुर्न वेदयस्यचक्षुः शरीरंयश्चक्षुरन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ४ ॥
यः श्रोत्रेतिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरोयंश्रोत्रंनवेदयस्यश्रोत्रंशरीरं यः श्रोत्रमन्तरोयमयत्येपत आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ५ ॥
योमनसितिष्ठन्मनसोन्तरोयंमनोनवेदयस्यमनः शरीरं योमनोन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ६ ॥

यस्त्वचितिष्ठ॒ २ स्त्वचोऽन्तरोयंत्वङ्नवेदयस्यत्वक्शरीरं
यस्त्वचमन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः।७॥१६-२
यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयम् आत्मानवेदयस्यआत्मा
शरीरं यआत्मनोन्तरोयमयत्येपतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥
१४६।७।३०

अर्थ यह है (यः सर्वेषु भूतेषु) अर्थात् जो सब भूतोंमें स्थित होता हुआ स
पृथक् है जिसको सब भूत नहीं जानते जिसके सब भूत शरीर हैं जो भूतोंके अ
र्वर्ती होकर-उन्हें नियत करता है वही अमृतस्वरूप परमात्मा तेरा अन्तर्यामी
इसी प्रकार शेष श्रुतियोंका अर्थ बुद्धिमान् (प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्व
आत्मा) इनका भी विचार कर सक्ते हैं इन श्रुतियोंसे यहांतक सिद्ध होगया कि
प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्वक् और आत्मासे जो जो क्रिया होती है वह स
ईश्वराधीन ही होतीहै जीव स्वतंत्रतासे कोई भी क्रिया नहीं करसक्ता। पुनः बृ
दारण्यउपनिषद्में ॥

यः प्राणेन प्राणितिसत आत्मा सर्वान्तरोयोऽपानेनापानि-
तिसत आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानितिसतआत्मा
सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति सत आत्मा सर्वान्तर एपत
आत्मा सर्वान्तरः १ बृ० अ० ३ ब्रा० ४

इसपर स्वामी शंकराचार्यजी भाष्य करते हैं ॥

यः प्राणेन मुखनासिकासंचारिणा प्राणिति प्राणचेष्टां करोति
येन प्राणः प्रणीयत इत्यर्थः स ते तव कार्यकारणस्यात्मा वि-
ज्ञानमयः समानयन्योऽपानेनापानिति व्यानेन व्यानितीति
सर्वाः कार्यकारणसंघातगताःप्राणनादिचेष्टा दारुयंत्रस्येव येन
क्रियन्ते नहि चेतनावदनधिष्ठितविलक्षणेन दारुयंत्रंतत्प्राण-
नादिचेष्टा प्रवर्त्तते ॥

आशय यह है कि जैसे काठकी पुतली आप कुछ भी चेष्टा नहीं करसक्
उससे जो जो चेष्टा होतीहै किसी चेतनके द्वारा होती है इसी प्रकार मनुष्य स्वतं
त्रतासे कोई चेष्टा नहीं करसक्ता जो जो चेष्टा करता है परमात्माधिष्ठित ही हो
करता है पुनः तत्रैव ॥

सर्वस्यवशीसर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः बृह० उ० अ० ४ ब्रा० ४।२१
परमात्मा सबको वशमें रखनेवाला है सबका ईशान है सबका अधिपति है
उपनिषद्में लिखाहै (एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा) सबको वशमें रखनेवाला
भूतोंका अन्तरात्मा है और श्वेताश्वतरोपनिषद्में लिखा है ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ६।११

अर्थात् एक देवता परमेश्वर सब भूतोंमें छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापी है और
जीवोंका प्रेरक है कर्मोंका अध्यक्ष है सर्वभूतोंमें उसका निवास है सर्वद्रष्टा है
को चेतना देनेवाला है अर्थात् सबकी स्थिति प्रवृत्ति उसीके अधीन है पुनः
तीतकी उपनिषद्में लि ॥ ॥ परात्तु तच्छ्रुतेः वेदान्त सू० अ० २पा० ३ सू०
जीव ईश्वरके अधीन है उस पर यह नीचेकी श्रुति प्रमाण है ॥

एषह्येवसाधुकर्मकारयतितंयमेभ्योलोकेभ्यउन्निनी-
षतएषउएवासाधुकर्मकारयतितंयमधोनिनीषते

अर्थात् वही सुकर्म कराताहै उससे कि जिसको ऊपर लेजानेकी इच्छा
ता है और वही पापकर्म कराता है उससे कि जिसको नीचे लेजानेकी इच्छा
ता है उसके कर्मानुसार और गीतामें लिखा है कि ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ भ० गी० १८ । ६१

हे अर्जुन ! ईश्वर सब भूतोंके हृदयमें विराजमान होकर अपनी मायासे
को कर्मानुसार कलकी पुतलीकी तरह घुमाता है । पुनः महाभारते ॥

धात्रा तु दिष्टस्य वशं किलेदं सर्वं जगच्चेष्टति न स्वतंत्रम् ।

अर्थात् निश्चय ईश्वरनियमित प्रारब्धके वशमें स्थित यह संपूर्ण जगत् चेष्टा
ताहै स्वतंत्र नहीं है । वनपर्व अ० ३० ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥
ईश्वरस्य वशे लोकास्तिष्ठन्ते नात्मनो यथा ॥ २१ ॥
धातेव खलु भूतानां सुखदुःखे प्रियाप्रिये ॥
दधाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २२ ॥
यथा दारुमयी योषा नरवीरसमाहिता ॥

ईरयत्यंगमंगानि तथा राजन्निमाः प्रजाः ॥ २३ ॥
आकाश इव भूतानि व्याप्य सर्वाणि भारत ॥
ईश्वरो विदधातीह कल्याणं यच्च पापकम् ॥ २४ ॥
शकुनिस्तंतुबद्धो वा नियतोयमनीश्वरः ॥
ईश्वरस्य वशे तिष्ठेन्नान्येषामात्मनः प्रभुः ॥
मणिसूत्र इव प्रोतो नस्योत इव गोवृषः ॥ २५ ॥
धातुरादेशमन्वेति तन्मयो हि तदर्पणः ॥
नात्माधीनो मनुष्योऽयं कालं भजति कंचन ॥ २६ ॥
स्रोतसो मध्यमापन्नः कूलाद् वृक्ष इव च्युतः ॥
अज्ञो जंतुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २७ ॥
यथा वायोस्तृणाग्राणि वशं यांति बलीयसः ॥
धातुरेव वशं यांति सर्वभूतानि भारत ॥ २८ ॥

अर्थ–इस विषयमें पुरातन इतिहास कहते हैं जिस प्रकार जीव ईश्वरके वशमें रहते हैं न कि अपने २१ निश्चय सबका स्वामी ईश्वर ही पूर्वकर्म बीजके अनुसार प्राणियोंको सुख दुःख और प्रिय अप्रियको नियत करता है २२ हे नरवीर ! जिस प्रकार काष्ठकी पुतली सूत्रधारके हाथमें स्थापित की हुई अंगोंको हिलाती है, उसी प्रकार यह प्रजा ईश्वरसे प्रेरित हस्तपादादि अंगोंको प्रचलित करती है २३ हे भरतवंशी ! वह ईश्वर आकाशके समान प्राणियोंको व्याप्त करके उनके शुभाशुभ कर्मोंको इस लोकमें नियत करताहै २४ निश्चय यह असमर्थ जीव तन्तुबद्ध पक्षीकी समान ईश्वरके वशमें स्थित है, न दूसरोंकेमें और आप अपने आत्माका स्वामी नहीं है मणिसूत्रकी समान पिरोया हुआ है जैसे बैल नासिकामें सूतसे नाथा जाता है २५ वह धाताकी आज्ञापर चलता है उसके अधीन और उसके अर्पण है, यह मनुष्य स्वाधीन किसी प्रकार नहीं है, किन्तु काल नाम ईश्वरके अधीन है २६ अपने सुख दुःखका न जाननेवाला असमर्थ यह जीव ईश्वरसे प्रेरित स्वर्ग अथवा नरकको जाताहै जैसे नदीके तटसे गिरा और उसके मध्यमें विद्यमान वृक्ष २७ हे भरतवंशी ! जैसे तृणोंके अग्र बलवान् वायुके वशको प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार सब प्राणी ईश्वरके वशको प्राप्त होते हैं २८ पुनः वनपर्वणि ॥

यं पुरुषः किंचित्कुरुते वै शुभाशुभम् ॥
द्धातृविहितं विद्धि पूर्वकर्मफलोदयम् ॥ अ० ३२ श्लोक २२ वनपर्व
यह पुरुष निश्चय जो कुछ शुभाशुभ कर्मको करता है उसको पूर्वकर्मके फलका
दय ईश्वरसे कियाहुआ जानो २२ पुनः वनप०

वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति ।
चोद्यमानोपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥

पापात्मा पुरुष पापोंसे रोकाहुआ भी पाप कर्म करता है शुभात्मा मनुष्य
पसे प्रेरित करनेसे भी शुभकर्म करताहै पुनः उद्योगपर्व० अ० १५९

नह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।
अस्वतंत्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयंत्रवत् ॥ १४ ॥

अर्थात् पुरुष शुभाशुभ कर्मोंका करनेवाला नहीं पुरुष अस्वतंत्र है काष्ठके
त्रोंकी सदृश कर्मोंमें नियुक्त किया जाता है ॥

एतत्प्रधानं च न कामकारो यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।
भूतानि सर्वाणि विधिर्नियुंक्ते विधिर्बलीयानिति वित्त सर्वे ॥४८॥
माहा भारत आपद्ध० अ २७

यह बात मुख्य है कि, मै इच्छाके अनुसार कर्म करनेवाला नहीं हूं जिस प्रकार
नियुक्त किया गयाहूं उसी प्रकार करताहूं सम्पूर्ण भूतोंको ईश्वर नियुक्त करता है
रमेश्वर बलवान् है तुम सब इस प्रकार जानो इसप्रकार जीव परतंत्र है ॥ फिर
दान्तदर्शन देखो ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः४२ अ० २ पा० ३
किये हुए प्रयत्नोंकी अपेक्षायुक्त परमात्मा करता है विहित वा प्रतिषिद्धोंके
था न होने आदि हेतुओंसे

सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्नलिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्यदोषैः
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा नलिप्यतेलोकदुःखेनबाह्यः
कठवल्ली अ० २ वल्ली० ५ । मं० ११

जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकोंका चक्षु है बाह्यदोष चक्षुमें लिप्त नहीं होता है
से ही सर्वभूतान्तरात्मा एक है परन्तु लोकदुःखसे आप नहीं लिप्त होता है ॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपंचमः २ वल्ली ६ मं० ३

जिसके भयसे अग्नि तपता है, जिसके भयसे सूर्य तपता है, जिसके भयसे इन्द्र और वायु और पांचवीं मृत्यु, दौडती है, तौ विचारिये कि, फिर जीव कैसे स्वतंत्र रहसक्ता है और यही आशय वेदान्तशास्त्रके अ० २ पा० ३ सू० ४० । ४१ । सूत्रमें कहा है जैसे कि, (परात्तु तच्छ्रुतेः) यहांसे इसका भाष्य देख लीजिये इस कारण जीव परतंत्र है ॥

जीवलक्षणप्रकरणम् ।

स० पृ० १९३ पं० १२ ईश्वर और जीव दोनों चेतन स्वरूप स्वभाव दोनोंके पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदि हैं परन्तु परमेश्वरके सृष्टि उत्पत्ति प्रलय स्थिति सबको नियममें रखना, जीवोंको पाप पुण्योंके फल देना. आदि धर्मयुक्त कर्म हैं जीवके सन्तानोत्पत्ति उनका पालन शिल्प विद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं ॥ पृ० २०१ । २९

समीक्षा—यह क्या स्वामीजी कहनेलगे, परस्पर महाविरोध है पहले तो लिखते हैं कि, दोनों ही स्वभावसे पवित्र हैं, फिर स्वभावसे पवित्र जीवमें बुरे कर्म कहांसे प्रवेश कर गये, और जो स्वभावसे पवित्र जीवमें बुरे कर्म प्रवेश करगये तो स्वभावसे पवित्र ईश्वर इससे कैसे बच सक्ता है, कहीं आप जीवको पवित्र कहीं पापी बताते हो यह आपकी बात गडबडीकी है. जीव शुद्ध ही है आपको उसका ज्ञान नहीं हुआ इससे ऐसा लिखा है कि जीवके सन्तानोत्पत्ति कर्म हैं इसमें कोई श्रुति तो लिखो कि जीवका सन्तानोत्पत्ति कर्म है ॥

स० पृ० १९३ पं० १७

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति न्या० सू० अ० १ आ० १ सू० १०

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिंगानि वैशेषिक सू० अ० ३ आ० २ सू० ४

(इच्छा) पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा (द्वेषः) दुःखादिकी अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहचानना यह तुल्य है परन्तु वैशेषिकमें (प्राणः) प्राण वायुको बाहर निकालना (अपान) प्राणको बाहरसे भीतर लेना (निमेष) आंखको मींचना (उन्मेष) आंखको खोलना (मन) निश्चय और अहंकार करना (गति) चलना

(इन्द्रिय) सब इन्द्रियोंका चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न २ क्षुधा तृषा हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्माके गुण हैं परमात्मासे भिन्न हैं, इन्हींसे आत्माकी प्रतीति करनी क्यों कि, यह स्थूल नहीं है जबतक आत्मा देहमें होता है तभीतक यह गुण देहमें प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोडकर चला जाता है तब यह गुण शरीरमें नहीं रहते जिसके होनेसे जो हों और न होनेसे न हों वे गुण उसीके होते हैं, जैसे सूर्य और दीपादिकके न होनेसे प्रकाशादिकका न होना और होनेसे होना है वैसेही जीव और परमात्माका विज्ञान गुण द्वारा होता है ॥ २०२ ॥ १

समीक्षा–मूल मन्त्रसे विना सूत्रोंसे जीवके स्वरूपका निरूपण करनेसे स्वामीजीकी यह प्रतिज्ञा भंग होतीहै कि मैं मन्त्र भागको स्वतः प्रमाण मानता हूं कोई जीवके स्वरूपकी श्रुति लिखी होती और यह सूत्र भी जीवके इच्छादिमान् स्वरूपके साधक नहीं किन्तु देहादिभिन्न आत्माके बोधक हैं, देहादिसे भिन्न आत्माके अनुमान करानेके वास्ते हैं, न्यायसूत्रमें (आत्मनो लिंगमिति) यह जो वाक्य है इसका अर्थ यह है इति आत्मनो लिंगम् ऐसा अन्वय करनेसे यह अर्थ होता है (इति) इच्छादि पूर्व उक्त आत्माके लिंग अर्थात् देहादि भिन्न आत्माके अनुमान करानेवाले हैं जैसे धूम वह्निका लिंग है और यह नहीं कहा जाता जो धूमयुक्त है वह वह्नि है क्योंकि वह्निविना धूम काष्ठ लोहपिण्डादिमें भी है, ऐसेही इच्छादि सब आत्माके अनुमापक होगये तब इतनेसे यह नहीं हो सक्ता जो इच्छादिमान् है सो आत्मा है क्यों कि आत्मा सुषुप्ति समाधिमें भी है और इच्छादि हैं नहीं इससे इस सूत्रमें इच्छादि गुणवाला आत्मा कहना स्वामीजीकी अविद्या है और वैशेषिकमें आत्मा विभु लिखा है ॥

विभवान्महाकाशस्तथाचात्मा वै० अ ७ आ० १ सू० २२

(विभवात्) अर्थात् सर्व मूर्त संयोगरूप विभुत्व होनेसे आकाश (महान्) परममहत् है (तथा) तैसेही सर्व मूर्तसंयोगित्वरूप विभुत्व होनेसे आत्मा भी परममहान् है जब आत्मा विभु है तो गति कैसी यदि आत्मामें यह गुण होते तो मुक्ति नहीं होती गौतमजी मुक्तिमें इन सबका छूटना मानते हैं ॥

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदनन्तरापायादपवर्गः अ० १ आ० १ सू० २ तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः गौ० सू० २२ अ० १ आ० १

दुःख जन्मकी प्रवृत्ति मिथ्या ज्ञान इनका जो अत्यन्त विमोक्ष अर्थात् छूट जाना है उसीको अपवर्ग कहते हैं और भी कहा है "नप्रवृत्तिःप्रतिसंधानायहीनक्लेशस्य" अ० ४ आ० १ सू० ६४ अर्थात् जिसके क्लेश छूट जाते हैं फिर उसकी प्रवृत्ति

नहीं होतीह फिर यदि यह आत्माके गुण हों तो इनका अत्यन्त विमोक्ष कै हो सक्ताह और गौतमजी इनका नाश होना मानते हैं गुण गुणीसे पृथक् ना होता यह यदि आत्माके गुण होते तो अपवर्गमें भी न छूटते, गौतमजी इन छूटजाना मानते हैं और यदि यह आत्माहीके गुण हों तो शरीर छूटनेपर भी अपने कुटुम्बियोंसे प्रीति शत्रुओंसे वैर होना चाहिये, खाने पीनेकी भी मृत शरीरमें इच्छा होवै आंख खोलकर देखै मांचे परन्तु यह तो कुछ नहीं होता इससे यह आत्माके गुण नहीं हैं, किन्तु देहादिभिन्न आत्माके अनुमान करानेवाले हैं, यह इन्द्रिय मनादिके धर्म हैं, जैसे दीपक बलनेसे घरकी सामग्री दृश्य आने लगती है, दीप निर्वाण होनेसे वह सामग्री उसी कोठेमें रहती है दीपकके संग नहीं जाती, इसी प्रकार जब तक आत्मा इस देहमें प्रकाश करताहै तबतक सब इन्द्रिय अपने अपने विषयोंका ग्रहण करती हैं,पृथक् होनेसे ही लोप हो जाती हैं बालकको द्वेष प्रयत्नादि नहीं होते यह लक्षण आत्माके नहीं किन्तु देह भिन्न आत्माके अनुमानकराने वाले हैं, इसके अर्थ वात्स्यायन भाष्यमें विस्तारसे लिखे हैं उसमें देख लेना यहां हमने संक्षेपसे लिखे हैं ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुः खेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि वै० अ० ३ आ० २ सू० ४

देहमध्यवर्ति वायुके ऊर्ध्वगमनवत् रूप प्राण है और अधोगमनवत् रूप अपान है, सो यह दोनों प्राणापान वायु चेष्टा चेतनाधीन जडचेष्टावान् (रथचेष्टावत्) है इससे आत्मा देहप्राणभिन्न चेतन है यह सिद्ध हुआ ऐसे ही निमेषोन्मेष व्यापार भी नियत है, सो भी चेतनका अनुमापक है जीवनपदसे वृद्धि होना शरीरका तथा शरीरमें घावका भरजाना यह दोनोंका ग्रहण है, सो जीवितशरीरमें देखे जाते हैं यहभी शरीरभिन्न चेतनके अनुमापक हैं, अनुमानप्रकार यह है (इदं शरीरं सात्मकं वृद्ध्यादिमत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतशरीरम्) मनोगति अर्थात् मनका इतर ग्राही इन्द्रियमें प्रवेश करना सो भी आत्माका अनुमापक है, जिसकी इच्छा वा सावधानता मनको प्रेरणा करती है सो आत्मा है, अनुमान प्रकार यह है (मनोगतिः चेतनाधीना जडनिष्ठगतित्वात् रथगतिवत्) जिस पुरुषने कभी नींबू अचार वा नींबूका स्वाद पाया है, पुनः किसीके पास नींबू देखकर उसके मुखमें जो पानी भर आता है जिसका नाम इन्द्रियान्तरविकार है, यह इन्द्रियान्तरविकार भी आत्माका अनुमापक है, क्यों कि आगे गौतमजी इसी प्रकार लिखते हैं ॥

इन्द्रियान्तरविकारात् न्याय० अ० ३ आ० १ सू० १२

: (भाष्य)कस्यचिदम्लफलस्य गृहीतमाद्रूपयें रूपे गन्धे वा केनचिदिन्द्रियेण

गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगर्द्धिप्रवर्तितोदन्तोदकसंप्लवमूलो गृह्यते तस्येन्द्रियचैतन्येऽनुपपत्तिः नान्यदृष्टमन्यः स्मरति ॥

अर्थ-किसी अम्ल फलके रूपमें वा गन्धमें जिस पुरुषको रसके सद्भावका ज्ञान है तिसके रसना इन्द्रियमें रसस्मृतिसे जो रसग्रहणकी इच्छा तिससे प्रवृत्त होती है तिस जलप्रस्रवणरूप विकारकी इन्द्रिय चैतन्यस्वामीजीके मतसे अनुपपत्ति है क्यों कि अन्यदृष्टपदार्थकी अन्यको स्मृति नहीं होती, यहाँ रस दर्शन तौ रसना इंद्रियसे हुआ है और रसस्मृति चक्षु वा घ्राणको फलका रूप देख वा गन्ध-ग्रहण करके कैसे होगी, इससे इन्द्रियोंसे सर्व अर्थका ग्रहण करनेवाला आत्मा भिन्न है यह मन्तव्य है और सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह पाँचों जैसे अनेकार्थदर्शी स्थायी आत्माके अनुमापक हैं, सो वात्स्यायनजीने अपने भाष्यमें लिखाहै विशेष इच्छा हो तौ वहाँ देख लो गौतमजीने यह इन्द्रियोंहीके धर्म लिखे हैं ॥

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् गौ० अ १ आ० १सू० १५.
युगपज्ज्ञानानामुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् गौ० १ । १ । १६
स्मृत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्यक्षमिच्छादयश्चमनसोलिंगानि गौतमभाष्य. ३
ज्ञानायोगपद्यादेकंमनः ३ अ० २ आ० सू० ६१

भावार्थः-बुद्धिसे ज्ञानकी यथार्थता जानी जाती है, अर्थात् भला बुरा बुद्धिसे ही निर्णय होताहै १ मनमें एकसमय दो बातोंका ग्रहण नहीं होताहै २. स्मृति-अनुमान आगम संशय विचार स्वप्नज्ञानतर्क सुखादि इच्छा यह मनके लिंग हैं ३ ज्ञानका विचार मनसे होता है, क्यों कि जिस धातुसे मन शब्द सिद्ध होता है, वह मन धातु विचारमें वर्तती है, विना मनके मनन नहीं होता ॥ ४ ॥

ज्ञानलिंगत्वादात्मनोनविरोधः गौ० अ० २ आ० १सू २३

अर्थात् आत्माका लिंग ज्ञान है यहां मनुजीने सबका लिंग पृथक् करदिया केवल शुद्धज्ञान लिंग आत्माका वर्णन किया परन्तु आत्माका विचार वेदान्तशास्त्रसे होताहै यह शास्त्र पदार्थविद्याके हैं इस कारण वेदान्तसे ही आत्माका निर्णय करतेहैं ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे
कठ० अ १ वल्ली ० २ मं० १८

अर्थात् यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता न मरता सर्वज्ञ है यह किसीसे हुआ नहीं अज है, नित्य है, शाश्वत अर्थात् वृद्धिक्षयादिसे रहित है शरीरके विनाश होनेसे विनाश नहीं होता ॥

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २१ ॥
कठ० अ० १ वल्ली २ मं० २१

यह आत्मा शरीररहित है, शरीरोंमें अवस्थित है, जिसकी स्थिति निश्चय नहीं होती वह महान् विभु है ऐसे अपने आत्माको जानके धीर पुरुष शोच नहीं करते, विभुमहान् कहनेसे अखण्डका बोध होताहै, अर्थात् सबसे स्थित होनेसे भी अखंड है विभु होनेसे ॥

नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेनयमेवैषवृणु-
तेतेनलभ्यस्तस्यैषआत्मा।विवृणुते तनूंस्वाम्२२कठ०अ०१व०२

यह आत्मा बहुत पढनेहीसे नहीं प्राप्त होता न बुद्धिसे न बहुत श्रवणसे क्यों कि (इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः अ० १ व० ३ श्रु० १० ॥) अर्थात् इन्द्रियोंसे परे अर्थ हैं अर्थोंसे परे मन मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे वह आत्मा है "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" जिसको यह इच्छा करता है तिसहीसे लभ्य है अर्थात् अपने आप आत्माको यह जो निष्काम सर्वसाधनसम्पन्न केवल आत्माकामी मुमुक्षु है सो जब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे आत्मप्राप्तिके अर्थ प्रार्थना करता है तब तिस आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके श्रवण मननरूप उपाय करके ही प्राप्त होता है तिसको यह आत्मा अपने तनुको प्रकाशता है ॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
कठ० अ० १ व ३ मं ३ । ४

आत्माको रथका स्वामी जानो (अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट सोपाधि कर्ता भोक्ता संसारी जीवात्मा) शरीरको रथ जानो, बुद्धिको सारथि क्यों कि कर्ता रथका सब व्यापार बुद्धिपर ही चलना है और बुद्धि विज्ञान नेत्रसम्पन्न होनेसे मन

इन्द्रियोंको यथा प्रमाण चलाती हैं मनको रस्सी जानो क्योंकि मनसे ही इन्द्रियों-का रोकना होता है ३ इन्द्रियोंको अश्व कहते हैं, चक्षुरादि और वागादि ज्ञान और कर्मेन्द्रियां यह घोडे हैं विषयोंको तिनके मार्ग जानो, अर्थात् शब्द, रूप, रस, गन्ध इन पांच विषयोंको इन्द्रियाँ रूपी घोडोंके चलनेके मार्ग जानो यह इन्द्रियाँ-रूपी घोडे शरीररूपी रथको विषयोंकी ओरही खींचते हैं इस कारण विषय मार्ग हैं यह आत्मा है जो वास्तवमें अकर्ता अभोक्ता परम शान्त अचल एकरस शान्त निर्विकार है, परन्तु (आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्ता) शरीर इन्द्रिय मनयुक्त आत्माको भोक्ता ऐसा कहते हैं अर्थात् तिस आत्माको शरीर इन्द्रिय मन आदि उपाधि सहित होनेसे आवागमन वाला पापपुण्यके फल सुखदु-खादिका भोक्ता भोगनेवाला ऐसा मननशील विवेकी पुरुष कहते हैं अर्थात् केवल निरुपाधि शुद्ध अचल आत्माको गमनागमन कर्तृत्वभोक्तृत्वादि कुछ भी हैं नहीं तथापि बुद्धयादि उपाधिके सहित होनेसे बुद्धयादिकोंके कर्तृत्वभोक्तृत्वादि धर्म आत्मामें भासते हैं (बृहदारण्यमें यह मनके धर्म लिखे हैं) परन्तु यह धर्म आत्माके नहीं क्यों कि (ध्यायतीव लेलायतीव) यह बृहदारण्यकके छठे अध्यायमें है यह जो शरीररूपी रथ निरूपण किया है विष्णुपदकी प्राप्ति इस ही रथद्वारा होती है परन्तु रथके चलानेकी मुख्यसामग्री बुद्धिरूपी सारथि ही है जिस रथीका सारथि परम विवेकी होता है सो रथिको अपने रथद्वारा संसारके पार मोक्षाख्य विष्णुके पदको प्राप्त करदेता है और जिसका सारथि अविवेकी मूर्ख है सो जन्म मरण रूपी संसारहीको प्राप्त होताहै, परन्तु आत्माको कुछ दोष नहीं क्यों कि-

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥
उपनि० कठ० २ । ५ । ११

जिस प्रकारसे सूर्य सब लोकोंका प्रकाशक है और स्वयं लोकचक्षुदोषसे लिप्त नहीं होताहै इसी प्रकार सबका एक अन्तरात्मा है सो बाह्य दुःखसे लिप्त नहीं होता । आत्मामें कोई विकार नहीं है बुद्धयादिके आवरणसे कर्ता भोक्ता मालूम होता है परन्तु स्वामीजीने तो आत्माके लक्षण ही बिगाडदिये जीवके गुण शिल्पविद्या सन्तानोत्पत्ति लिखदिये भला जीव शिल्पी कौनसे शास्त्रसे सिद्ध करा कोई वाक्य तो लिखा होता ॥

जीवविभुत्वप्रकरणम् ।

उ० पृ० १९४ पं० १७ जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न (उत्तर)

परिच्छिन्न जो विभु होता तो जाग्रत् सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग जाना आना कभी नहीं होसक्ता पं० २७ ॥ जैसे जीव ईश्वरका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है वैसे ही सेव्य सेवक आधाराधेय स्वामी भृत्य राजा प्रजा पिता पुत्रादिमें भी सम्बन्ध है ॥ २०३ । ९ ॥ २०३ । १९ ॥

समीक्षा–स्वामीजी यदि वेदान्तशास्त्रको गुरुसे पढते तो ऐसे भ्रम जालमें न पढते क्यों कि इस लेखसे जीवका जन्म माना है और (अजामेकां) इसके अर्थमें प्रकृति जीव तथा परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म नहीं होता इस अपने विरोधयुक्त लेखकी भी स्वामीजीको किंचित् मात्र सुध न रही. यही तो अनभिज्ञता है परिच्छिन्न जीवको मानना यह जैनमत है, यदि जीव परिच्छिन्न परिमाण है तो कौनसे शरीरके तुल्य मानोगे यदि पुरुष शरीर तुल्य मानो तो हस्ती चींटी आदिके शरीरमें प्रवेशकी व्यवस्था नहीं होगी यदि संकोच विकास स्वभाव मानोगे तो विकारित्वादि प्रसक्तिसे विनाशी वा जन्म सिद्ध होगा, इससे परिच्छिन्न अनादि सिद्ध नहीं हो सक्ता और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिवाला जीव मानो तो तिसमें विचारना चाहिये कि.

जाग्रत् क्या पदार्थ है "जागृ निद्राक्षये" इस धातुसे निद्राके नाशका नाम जाग्रत् और निद्राका नाम सुषुप्ति और मध्य अवस्थाका नाम स्वप्न है निद्राका लक्षण पतंजलिजी लिखते हैं ॥

अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा यो० पा० १ सू० १०

अभावका जो कारण अज्ञान तिसे आलंबन करनेवाली मनकी वृत्तिका नाम निद्रा है अब विचारिये जाग्रत् तो मनकी प्रमाणादिवृत्ति है और केवल विपर्य्यय वृत्ति स्वप्न है जिसकी वृत्ति है तिसका आश्रय भी वह ही है इससे जीवात्मामें जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति जाना आना मानना स्वामीजीकी अज्ञता है वेदान्त सूत्रमें लिखा है ॥

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् शा० अ० २ पा० ३ सू० २९

आत्मा अणु नहीं जन्म सुननेसे वह ब्रह्म ही है जीवरूपमें प्रविष्ट सुननेसे और तादात्म्यके कहनेसे ब्रह्म ही जीव कहाया "ब्रह्माभिन्नत्वात् विभुर्जीवः ब्रह्मवत्" फिर यदि ब्रह्म ही जीव है तो जितना ब्रह्म है उतना जीव होनेके योग्य है फिर ब्रह्म विभु है तो जीव भी विभु है "सवा एष महानज आत्मायोयं विज्ञानमयः प्राणेष्विति. बृ० ४ । ४ । २२ " अणुत्वश्रुति औपाधिक अणुत्वपर है प्रधानविभुत्वके विरोधसे भावशैत्यकी असिद्धिसे अध्यस्ताणुत्वपर वह कथञ्चिदर्थवाद है और अणुजीवको सब देहमें वेदना सिद्ध नहीं है यदि कहो कि, त्वचाके सम्बन्धसे हो सो भी नहीं, कांटा लगनेसे भी सब देहमें वेदना हो त्वचा कटिका

संयोग सब त्वचामें वर्तता है और त्वचा सब देहमें व्याप्त है और कांटा तो पांव तलेहीमें वेदना देताहै जो कहाथा कि, गुणका भी गुणीसे विश्लेष है गन्धवत् "गन्धेनाश्रयाद्विश्लिष्टः गुणत्वाद्रूपवत्" गुणकाभी गुणी देश है गुणीके अनाश्रित गुणका गुणत्व ही न हो गन्ध भी गुणत्वसे स्वाश्रय ही संचारी है अन्यथा गुण-हानि हो इत्यादि शंकरस्वामीके भाष्यमें स्पष्ट है कि, जीव विभु है जिसे देखना हो सो वहां देखले. "जीवोऽनित्यः परिच्छिन्नत्वात् घटादिवत्"इस अनुमानसे अनि-त्यत्वापत्तिदोषसे परिच्छिन्नत्वकथन असंगत है ॥

उपादानप्रकरणम् ।

स० पृ० १९० पं० १७ परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं निमित्त कारण है ॥ १९८ । १९।

समीक्षा—स्वामीजीके इस प्रश्नके उत्तरमें वेदान्तदर्शनके सूत्र लिखते हैं जिससे विदित हो जायगा कि, परमेश्वर जगत्का अभिन्ननिमित्त उपा-दान कारण है ॥

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात् सू० २३ अ० १ पाद ४

प्रकृति घट रुचकादिके मट्टी और सुवर्ण जैसे कारण हैं वा निमित्तकुलाल हेमकारादि जैसे कारण हैं तैसे ब्रह्मको कैसी कारणता हो यह विचार है, सो ईक्षापूर्वक कर्तृत्व सुननेसे केवल निमित्त कारण है " स ईक्षांचक्रे स प्राणमसृज-दित्यादि"कुलालादिनिमित्त कारणमें ही ईक्षापूर्वक कर्तृत्व देखा है, लोकमें अनेक कारकपूर्विका क्रियाके फलकी सिद्धि देखी है यही न्याय आदि कर्तामें पहुंचानेके योग्य है जैसे राजा वैवस्वतादि ईश्वरोंका केवल निमित्त कारणत्व ही है तैसे ही परमेश्वरको भी केवल निमित्त कारणत्व ही जाननेके लिये युक्त है यद्यपि ईक्षासे कर्तृत्व निश्चित है तथापि ब्रह्म प्रकृति नहीं कर्ता होनेसे जो जिसका कर्ता है, वह उसकी प्रकृति नहीं जैसे घटका कर्ता कुलाल जगत् कर्तासे भिन्नोपा-दानक है, कार्यसे घटके समान ब्रह्म जगत्का उपादान नहीं, ईश्वर होनेसे, राजाके समान, जगत् ब्रह्म प्रकृतिक नहीं ब्रह्मसे विलक्षण होनेसे, जो इस प्रकारसे है, वह तैसे ही कुलालसे विलक्षण घट समान है जगत्सावयव अचेतन अशुद्ध देखते हैं कारण भी उसका वैसा ही होना चाहिये कार्यकारणका समान रूप देखनेसे ब्रह्म तो ऐसा नहीं है (निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनमिति श्वेता० ६।१९) तो अब ब्रह्म कारण नहीं बना प्रधान ही ठीक रहा ब्रह्मको कारण बताती श्रुति निमि-त्तकारणमें ही सोरही उठ बैठी, प्रधान बोधक स्मृति (इसका उत्तर) ॥ तुम तो कहचुके अब इसका उत्तर सुनो प्रकृतिश्च ब्रह्म ही उपादान वो निमित्त कारण

मानो केवल निमित्त कारण नहीं क्यों कि " प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् " ऐसी श्रौ प्रतिज्ञा और दृष्टान्त इनकी रोक न होगी प्रतिज्ञा " उततमादेशमप्राक्ष्योयेनाश्रुतम्श्रुतम्भवत्यमतंमतमविज्ञातं ज्ञातमिति " दृष्टान्त एकके जाननेसे अन्य सब जाना जाता है यह उपादान कारणके जाननेसे सबका जानना सम्भव है, क्यों कि कार्य उपादानसे भिन्न नहीं लोकमें निमित्त कारणका कार्यसे भेद है जैसे तक्षा प्रासादसे भिन्न है दृष्टान्त भी उपादानके विषयमें यथा " सौम्येकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति तथैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यादेकेन नखनिकृन्तनेन सर्वंकार्ष्णायसं विज्ञातं स्यादिति " छां॰ प्रपा॰ ६ खं॰ १ । हे सौम्य जैसे एक मट्टीके पिण्डसे सब मट्टीके बरतन जानलिये जाते हैं, केवल उनके नाममें वाणीमात्रका ही भेद है, सब मट्टी है इसी प्रकार एक लोहमणिसे सब लोहा जान लिया जाता है इत्यादि और ऐसे मुण्डकमें भी पढाहै " कस्मिन्न भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति " हे भगवन्! किसके जाननेसे यह सब जाना जाता है यही प्रतिज्ञा कर " यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति " जैसे पृथ्वीमें औषधी होती हैं यही दृष्टान्त है और "आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितमिति" निश्चय आत्माहीमें देखने सुनने जाननेसे यह सब जाना जाता है यह प्रतिज्ञा बृहदारण्यकमें है "सयथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्यनबाह्याञ्छब्दाञ्शक्नुयात् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वाशब्दो गृहीतः "जैसे नगाडेके बजनेमें उसके शब्दोंको ग्रहण करनेमें कोई समर्थ नहीं होता और दुन्दुभीके ग्रहणसे दुन्दुभीके आघातका शब्द ग्रहन ही होजाता है वही दृष्टान्त है (यतो वा इमानि भूतानि जायन्त) जिस परमात्मासे यह प्रजा उत्पन्न होती है इससे भी उपादान ही है " जनिकर्तुःप्रकृतिरिति इस विशेष स्मृतिसे जैसे लोकमें मृत् हेमादि उपादान कारण कुलाल हेमकारादि अधिष्ठाताओंको अपेक्षा करके प्रवर्त्त हैं तैसे उपादान सत् ब्रह्म कारणको अन्य अधिष्ठाता अपेक्षित नहीं है उत्पत्तिके पहले एक अद्वितीय था इस निश्चयसे अन्य अधिष्ठाताका अभाव भी प्रतिज्ञा वो दृष्टान्तके निरोधसे कहाहुआ जानो ॥

अभिध्योपदेशाच्च अ॰ १ पा॰ ४ सू॰ २४.

चेतनका कार्यके साथ भेद होना सुना है तिससे अचेतन अणु और प्रधान विश्व निदान नहीं "अभिध्योपदेशश्चात्मनः कर्तृत्वप्रकृतित्वे गमयति " " सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति " तैत्तिरीय "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति " छां॰अर्थात् परमेश्वर कामना करता हुआ कि, मैं बहुत होजाऊं, इनमें संकल्पपूर्व जो स्वतंत्र प्रवृत्ति है तिसको कर्त्ता जाना जाता है यह प्रत्यगात्मविषयसे बहुत होनेसे संकल्पका प्रकृति भी जाना जाता है ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् २५

जन्म और नाश यह दो शब्द ब्रह्महीसे सुने हैं जिससे निमित्त और उप-दान ब्रह्म ही है अथवा ईक्षासे ब्रह्मको केवल निमित्त ही समझा था, जैसे कुम्हां मट्टीका द्रष्टा निमित्त कर्ता है, जिससे भूतोंका जन्म है इस पञ्चमी विभक्तिसे उप दानका अपादान नाम धरके ब्रह्मको प्रगट उपादान कहा है यथा हि"आकाशादे वसमुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्तीति " "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि इत्यादि अर्थात् यह सब उससे ही उत्पन्न होते हैं और यह सब प्राणी उसीमें ल होजाते हैं, इनमें साक्षात् ब्रह्महीसे उत्पत्ति और प्रलय दोनों वेदोंमें कहे हैं, " इत प्रकृति ब्रह्मयत्कारणं साक्षात् ब्रह्मैव कारणमुपादायोभौ प्रभवप्रलयावाम्नायेत" ज जिससे जन्मता है वह जिसमें मिलता है सो ही उसका उपादान प्रसिद्ध है जै व्रीहियवादिककी पृथ्वी, साक्षादाकाशादेवेति श्रुति उपादानांतरके अभाव दिखाती है ॥

स्वाप्ययात् अ० १ पा० १ सू० ९

ब्रह्महीमें सबका लय कहा है तिससे भी प्रधान विश्व निदान नहीं है सोजाने सब चेतनोंका लय होता जिसमें सो ही चेतन विश्वनिदान है ।

गतिसामान्यात् १०

जैसे नेत्रादि इन्द्रियां रूपादिमें समान गतिसे वर्ते हैं, तैसे सब वेद ब्रह्मको जगत् कारण:कहते हैं न कि, तार्किकोंके समान भिन्न कारण हैं " यथाग्नेर्ज्वल सर्वा दिशो विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन् एवमेवैतस्मादात्मनः सर्वे प्राणे यथा यतनं वि तिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका इति " " तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत इति " " आत्मन एवेदं सर्वमिति " " आत्मन एप प्राणो जायत इति जैसे जलती हुई अग्निसे चिनगारी निकलती हैं, इसीप्रकार आत्मासे प्राण प्राणों देवता देवताओंसे लोकादि प्रतिष्ठित हैं, उसी परमात्मासे यह आकाशादि उप हुआ है, यह सब कुछ आत्मा ही है, आत्मासे ही प्राण उत्पन्न हुए हैं ॥

श्रुतत्वाच्च ११

वेदसे उपादान कारण कर्ता सब चेतन ही सुना है यथा हि-

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिंगम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः ॥
श्वेता० अ० ६ । ९.

इस आत्माका लोकमें न कोई पति है न शिक्षक है न उसका लिंग है वह कारण करण है वह ही ईश है उसका कोई उत्पन्नकर्ता वा अधिपति नहीं

अर्थात् सब कुछ वही है इससे सिद्ध है कि उपादान कारण इस जगत्का प
त्मा है इसका विशेष विवरण अगले समुल्लासमें करेंगे ॥

महावाक्यप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० १९४ पं० ३० से पृ० १९५ के अन्ततक

" प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म " वेदोंके इन महा
वाक्योंका अर्थ क्या है (उत्तर) यह वेदवाक्य नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थोंके व
हैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्य शास्त्रोंमें नहीं लिखा अर्थात् (अहम्
मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं यहां तात्स्थ्योपाधि है जैसे (मंचाः
शन्ति) मचान पुकारते हैं मंचान जड हैं उनमें पुकारनेका सामर्थ्य नहीं इसलि
मंचस्थ मनुष्य पुकारते हैं इसी प्रकार यहां भी जानना पुनः पृ० १९५ पं०
जीवका ब्रह्मके साथ तात्स्थ्य वा तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्मका सहचारी जी
है इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं जैसे कोई किसीसे कहे कि, मैं और यह एक
अर्थात् अविरोधी है वैसे ही जो जीव समाधिस्थ परमेश्वरके प्रेमबद्ध होकर निमग्न
होता है वह कह सक्ता है कि, मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एकम अवकाश
स्थ हैं, * जो जीव परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव
करताहै, वह साधर्म्यसे ब्रह्मके साथ एकता कहसका है (प्रश्न) अच्छा तो इसका
अर्थ कैसा करोगे (उत्तर) तुम तत् शब्दसे क्या लेते हो " ब्रह्म " " ब्रह्म "
पदकी अनुवृत्ति कहांसे लाये ॥

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंब्रह्म ।

इस पूर्ववाक्यसे तुमने छान्दोग्यका दर्शन भी नहीं किया जो वह देखी
होती तो वहां ब्रह्म शब्दका पाठ ही नहीं है ऐसा झूंठ क्यों कहते किन्तु छान्दो
ग्यमें तो ॥

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ।प्र० ६ खं० २ मं०

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं (प्रश्न) तो आप तच्छब्दसे क्या लेते हैं

स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं
स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति छां० प्र० ६ खं० १४ मं० १

वह परमात्मा जाननेके योग्य है जो यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत
और जीवका आत्मा है वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है हे श्वे
तकेतो प्रिय पुत्र और पृ० २०२ पं० १८ ॥

* ब्रह्म और जीव दोनों एक आकाशमें स्थित होनेसे यह यह दयानन्द जैसे कोई कहे
कह सकते हैं

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि

उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है ॥ पृ० २०५ पं०२५ से

समीक्षा-इस लेखमें स्वामीजीने दो बातां कथन करीं एक तो इन वाक्योंकी महावाक्य संज्ञा प्रमाणिक नहीं दूसरा इनको वेदत्व नहीं सो मंत्र ब्राह्मण नाम वेदका है यह तो आगे इसी समुल्लासमें सिद्ध करेंगे परन्तु अब महावाक्यकी व्यवस्था लिखते हैं, यहां महावाक्य संज्ञा अन्वर्थ है जैसे तुमने ईश्वरके नाम दयालु न्यायकारी रख लिये हैं उसी प्रकार यह संज्ञा है "महद्बोधकं वाक्यं महावाक्यम् अथवा महच्च तद्वाक्यं च महावाक्यम" यह अन्वर्थ संज्ञा है भाव यह है कि महत् जो अखण्ड चेतन वस्तु तिसके बोधक होनेसे महावाक्य हैं और द्वितीय पक्षमें महद्वाक्य हैं इससे महावाक्य हैं पहले पक्षमें तो महत् शब्दकी महद्बोधक इतने अर्थमें लक्षणावृत्ति है और दूसरे पक्षमें ब्रह्मबोधकत्व ही वाक्योंमें महत्त्व है क्यों कि ब्रह्म (महत्) देश काल वस्तु परिच्छेद रहित है, ऐसे ब्रह्मके बोधक होनेसे महावाक्य हैं, भाव यह है कि, भेद भ्रम निवारक वाक्यको अद्वैतसिद्धान्तमें अपनी परिभाषासे महावाक्य कहतेहैं, जैसे पाणिनि ऋषिके मतसे वृद्धिशब्द परिभाषासे आ ऐ औ का बोधक होता है वैसे ही व्यास शंकर स्वामी अद्वैतसिद्धान्ताचार्योंके मतमें महावाक्य शब्द भी भेदभ्रमनिवारक वाक्योंमें पारिभाषिक हैं, इससे इन वाक्योंका नाम महावाक्य तो सिद्ध हो गया, अब अहं ब्रह्मास्मि इसकी व्यवस्था सुनिये इसके अर्थ करके बाबाजीने आप ही अपनी अविद्वत्ता प्रगट करी है क्यों कि अपनी उक्तिसे आप ही विरुद्ध कथन करा है (य आत्मनि तिष्ठन्) इस श्रुतिमें जीवात्माको आधारता और ब्रह्मको आधेयता कही है और इस वाक्यमें ब्रह्मपदकी ब्रह्मस्थ अर्थमें लक्षणा करनेसे (ब्रह्मणि तिष्ठतीति ब्रह्मस्थः) इस व्युत्पत्तिसे पुरुषाधार पंचवत् ब्रह्माधार प्रतीत होता है तब एक बृहदारण्यकमें किसी वाक्यमें तो ब्रह्म आधार और जीव आधेय और किसी वाक्यमें जीव आधार और ब्रह्म आधेय यह प्रतीत होता है, ऐसे विरुद्ध अर्थके स्वीकारसे स्वामीजीकी अविद्या प्रतीत होतीहै जैसे पृष्ठ १९६ पं० ३ में लिखाहै ॥

य आत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम् ।
यआत्मनोऽन्तरोयमयति एपतआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

(यह बृहदारण्यकका वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीसे कहते हैं कि, हे मैत्रेयि ! जो परमेश्वर आत्मामें अर्थात् जीवमें स्थित और जीवात्मासे भिन्न है जिसको मूढ जीवात्मा नहीं जानता कि, यह परमात्मा मेरेमें व्यापक है जिस परमेश्वरका जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीरमें जीव रहता है वैसे ही

जीवमें परमेश्वर व्यापक है जीवात्मासे भिन्न रहकर जीवके पाप पुण्योंका स
होकर उनके फल जीवोंको देकर नियममें रखताहै वही अविनाशी स्वरूप
भी अन्तर्यामी अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है ॥)

यह दयानंदजीका कथन सर्वथा असंगत है इस लेखसे जीवात्माकी आधा
और ईश्वरात्माको आधेयता और अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्यमें ब्रह्मपदबोध्य ईश्व
आधारता और जीवमें आधेयता सिद्ध होती है सो ऐसे असंगत अर्थको स्वा
जीके सिवाय और कौन लिख सकताहै और एक महा अज्ञानता यह है कि, ग
त्मक याज्ञवल्क्यके संवादकी श्रुतिको मैत्रेयी याज्ञवल्क्यके संवादको वर्णन की है जि
इतना भी ज्ञान नहीं कि, क्या कहरहे हैं और जो जीवको ब्रह्मके निकटस्थ और मुक्ति
साक्षात्सम्बन्धमें रहनेवाला और ब्रह्म सहचारी (अर्थात् ब्रह्मके साथ विचरनेवाला
कहा सो तौ सर्वथा झूंठ प्रलाप स्वामीजीके मतका विघातक है क्यों कि यदि जी
निकटस्थ और दूसरे पदार्थ दूरस्थ और मुक्तिमें साक्षात्संबन्ध और बन्धमें परम्परा
सम्बन्ध और जीवके साथ रहनेवाला है तौ ब्रह्म एकदेशी परिच्छिन्न क्रियावत् होग
और जो जीवको ब्रह्मका अविरोधी रूप अथवा ब्रह्मको जीवका अविरोधीरूप कहा
तो क्या जीव भिन्न पदार्थ ब्रह्मके विरोधी हैं, वे क्या ब्रह्मसे लडाई लडते हैं और
वह एक अवकाश ब्रह्मसे भिन्न कौन है जिसमें समाधिकालमें ब्रह्म और जीव स्थित
है सर्वका आधार ब्रह्म यदि किसी दूसरे अवकाशमें रहैगा तौ परिच्छिन्नत्वादि दोष
युक्त होगा इससे अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्यका व्याख्यान सर्वथा स्वामीजीकी अज्ञा-
नता प्रकाश करता है और यह जो लिखाहै (जो जीव परमेश्वरके गुण कर्म स्वभा-
वके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्ययुक्त होताहै ब्रह्मके
साथ एकता कहसकता है) इस स्थानमें यह विचारना चाहिये कि, वह
गुण कर्म स्वभाव कौन है जिनके अनुसार अपने गुण कर्म करने चाहिये
यदि सत्यकामत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, नियंतृत्व धर्मादिफलप्रदत्व, यह
और सृष्टिपालन संहारकर्तृत्वादि कर्म कहो तौ इस गुण कर्मके अनुसार अप
तत्सदृश गुण कर्म कहोगे तब तौ यह गुण कर्म स्वामीजीके मतमें मोक्षमें
नहीं होते, तो बंधकालमें कहांसे होंगे यदि न्यायकारित्व कर्म और दया
त्वादि गुण परमेश्वरमें प्रसिद्ध हैं तत्सदृश गुणकर्म अपनेमें करना चाहिये
कहो तौ किस प्रमाणसे परमेश्वरको न्यायकारी दयालु जानाहै यदि जीवोंके सु
दुःखको देखके अनुमान होताहै कि, कोई सुखदुःखदाता न्यायकारी दयालु
सो तौ ठीक नहीं क्यों कि मूल प्रमाणसे विना अनुमानाभास होजाता है मीमां
सक कर्मवादी सुख दुःख दाता कर्मको कह सक्ताहै इससे शब्द प्रमाणसे न्याय
कारी दयालु निश्चय होगा तब तो परमेश्वरके अवतार माने विना न्यायकारी दया

र्भी सिद्ध नहीं हो सका सो स्वामीजीने माना नहीं तो परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावानुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करने चाहिये यह कथन असंगत है हां परमेश्वरके अवतारादिमें गुण कर्म स्वभावके अनुसार आप भी अपने करे पर अवतार तौ माना नहीं हो कैसे अब भेदसाधक श्रुति जो स्वामीजीने लिखी उसे समग्र लिखते हैं जिससे अभेद निश्चय होता है ॥

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम् । यआत्मनोन्तरोयमयति एषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टोद्रष्टाऽश्रुतःश्रोताऽमतोमन्ताऽविज्ञातोविज्ञातानान्योऽतोऽस्तिद्रष्टानान्योतोऽस्तिश्रोतानान्योऽतोस्तिमन्तानान्योऽतोस्तिविज्ञातैषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम् श० १४।६।७।२१

लोकप्रसिद्ध भेदका प्रथम श्रुति अनुवाद करके पश्चात् प्रमाणान्तराज्ञात अभेदको प्रतिपादन करती है जो आत्मामें अर्थात् विज्ञानोपाधिक कर्तृत्व भोक्तृत्वरूपसे निर्णीत संसारी जीवमें कारणोपाधिक ईश्वर स्थित होकर तिस विज्ञानोपाधिका कारण होनेसे तिससे अन्तर है और जिसको वह जीव नहीं जानता जिसका जीवात्मा शरीर है और वह ईश्वर जीवको अन्तरस्थित ही प्रेरणा करता है इतने श्रुतिभागसे औपाधिक भेद कहा अब उत्तर श्रुति भागसे अभेद कहते हैं याज्ञवल्क्य कहते हैं हे उद्दालक ! जो अन्तर्यामी अमृत तत्पदलक्ष्य अदृष्ट द्रष्टा और अश्रुत श्रोता और अमत मन्ता वैसे ही अविज्ञात विज्ञाता है (एष ते आत्मा) यह तेरा स्वरूप है और (एष ते आत्मा) इस वाक्यका दयानंदजीने (वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है,) यह अर्थ लिखा है सो असंगत है क्यों कि पूर्व वाक्यसे इसी अर्थको बोधन किया है इससे यह महावाक्य है भेदभ्रमनिवारक होनेसे और हे उद्दालक ! इस चैतन्य ज्योतिसे भिन्न द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं इस वाक्यसे जीव और ईश्वरके द्रष्टा श्रोता मन्ताविज्ञाताके भेदका निषेध करा पुनः दृढता करते हैं (एष ते आत्मा अन्तर्याम्यमृतः) यह अन्तर्यामी अमृत तेरा स्वरूप है इससे जो भिन्न वस्तु है सो (आर्त) विनाशी है, इस वाक्यके अर्थसे यह जनाया (यत्र ब्रह्मभिन्नत्वं तत्र विनाशवत्त्वं) जिसको ब्रह्मभिन्नत्व है तिसको विनाशवत्त्व है यदि जीवको ब्रह्मभिन्न मानेंगे तो तिसको विनाशवत्त्व होगा तब जीवको अनादि अनंतत्व कल्पना असंगत होगी इससे जीवको ब्रह्मरूप करके ही अनादि अनंतत्व है; अब तत्त्वमसि वाक्यकी लीला देखिये (सदेव सोम्येति) यह तत्त्वमसि

वाक्यका व्याख्यान लिखा है परन्तु इस स्थानमें जिस अद्वैतवादीके साथ प्रश्नोत्तर हुआ है जाने वह वेदान्ती भी कोई महामूर्ख है जिसे स्वामीजीके बृहदारण्यक बोधकी तरह छांदोग्यका वोध है क्यों कि यदि बृहदारण्यकका बोध होता तो याज्ञवल्क्य उद्दालकके संवादमें मैत्रेयीका संवाद न लिख बैठते और छांदोग्य श्रुतिमें सत् शब्दको प्रकृतिवाचक न लिखते जैसे स्वामीजी हैं वैसा ही कुशाग्र-बुद्धि इन्हें पूर्वपक्षी मिला है जिसने छांदोग्यका दर्शन भी नहीं किया ऐसेहीके मतका खंडन किया होगा यदि शंकराचार्यके सिद्धान्तका खंडन कियाहै तो किसी शंकरमतके ग्रंथका वाक्य लिखते क्यों कि शंकरस्वामीजीके भाष्य प्रसिद्ध हैं खंडन तो क्या दयानंदजी शंकराचार्य्यके भाष्यकी पंक्ति भी नहीं समझसके उपनिषदोंका दर्शन भी नहीं किया ॥

स्वामीने जो लिखा है कि, तच्छब्दसे ब्रह्मकी अनुवृत्ति यहांसे लाये क्या तच्छब्द अनुवृत्तिके वास्ते है यदि अनुवृत्तिका बोधक होता तो असंगत होता क्यों कि अनुवृत्ति प्रकरणके बलसे वैसे ही हो सक्ती किन्तु (सर्वनाम्नामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वम्) सर्वनामसंज्ञकशब्दोंको प्रधान अर्थकी परामर्शित्व अर्थात् ज्ञापकता होती है सो इस प्रकरणमें सत् एक अद्वितीयरूप वस्तु ब्रह्म प्रकरणप्रतिपाद्य होनेसे प्रधान है तिसका लक्षण तत्पद है किसी पदकी अनुवृत्तिका बोधक नहीं स्वामीजीकी शंका समाधान वृथा है क्यों कि प्रथम एकपदसे एकपदकी अनुवृत्ति बोधन करनी फिर दूसरे पदसे अर्थको बोधन करना महागौरव है, और (तत्सत्यं स आत्मा) इस श्रुतिवाक्यका अर्थ यह किया (वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है) और (तत्त्वमसि) इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह किया है उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है इस लेखको असंगत करनेको सम्पूर्ण श्रुति लिखते हैं ॥

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां, स य एषोऽणिमा ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो ।
छां० उ० प्र० ६ खण्ड ८ मं० ६।७

अर्थ–हे सौम्य ! इस म्रियमाण पुरुषके वाणुपलक्षित सम्पूर्ण इन्द्रियवृत्ति मनमें लीन होजाती हैं और मन किंचित् काल अंतर ही. संकल्पादि रहित होकर जब पुरुष लंबे लंबे श्वास लेता है, तब प्राणमें लीन होताहै प्राण भी किंचित् काल देहमें यथावत् चल कर तेजमें लीन होता है तेज भी किंचित् काल रहता है तब उस तेजसे ही निश्चय करते हैं जो जीवता है फिर तेज भी परमसूक्ष्म कारणमें जो सत् ब्रह्म है

तिसमें लीन होता है और दयानंदजी कहते हैं ब्रह्मका पाठ नहीं सो सर्वथा विद्याहीनताका बोधक है, क्यों कि ब्रह्मशब्दके पाठ न होनेसे भी सत्का प्रकरण तौ सम्पूर्ण षष्ठाध्याय है यदि ब्रह्म सत् नहीं तौ क्या असत् शून्यरूप है सो तो असंगत है किन्तु सद्रूप है इससे ब्रह्मका ही प्रकरण है, जो यह पर देवता सद्रूप ब्रह्म है सो (अणिमा) अत्यन्त सूक्ष्म है जिसमें मरण समय जीव लीन हुआ है मरण समयमें सब वागादि उपाधिका ब्रह्ममें लय कथनका भाव यह है ब्रह्मको सर्वकी उपादानता बोधन करना क्यों कि उपादानमें ही कार्यका लय होताहै दूसरा भी तात्पर्य यह है वागादिको उपाधिके लीन हुएसे जीवका स्वरूप केवल ब्रह्म है इससे ब्रह्मजीवका भेद केवल उपाधिकृत है क्यों कि उपाधिके अभावकालमें जीवत्वभाव प्रतीत नहीं होता (इदं सर्वमैतदात्म्यम्) ॥

एष सद्रूप आत्मा अन्तरात्मा यस्य सर्वस्य आकाशादिविराट्पिण्डांतस्य वस्तुमात्रस्य स प्रपंचः एतदात्मा एतदात्मनोभावसत्तारूपोऽर्थः। इदं सर्वं वस्तुमात्रमेतदात्म्यम्। एतेन प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वमपि बोधितम्। यथागन्धवत्त्वमित्यत्र गन्धवच्छब्दोत्तरवृत्तिभावप्रत्ययस्य गन्धरूपार्थबोधकत्वं भावप्रत्ययस्य। तथाच सर्ववस्तुमात्रस्यात्मनः एतदात्मशब्दप्रतिपाद्यस्य ब्रह्मण इदं सर्वमितिपदप्रतिपाद्येन प्रपंचेन सह समानविभक्तिकयोः पदयोरभेदसंसर्गेणान्वये प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वमेव निश्चितमिति भावः ॥ शंकरभाष्य०

भावार्थ-सर्व वस्तुका आत्मा वास्तवरूप जो सद्वस्तु ब्रह्म है (तत्सत्यं) सो नाशरहित है और (सआत्मा) सोई जीव है यहां सद्वस्तु ब्रह्मको उद्देश्य करके आत्मा विधेय है और तत्त्वमसि यहाँ भी पुनः तच्छब्द बोध्य सद्ब्रह्मको उद्देश्य करके त्वंशब्दबोध्य जीवात्मा श्वेतकेतुसंबोध्य चेतन विधेय है इसका पुनः कथन करनेका यह भाव है जो कि पूर्व सआत्मा इस वाक्यमें आत्मा शब्द जीवात्माका बोधक है और उत्तर वाक्यमें भी त्वंपदबोध्य आत्मा है अर्थान्तर नहीं इस प्रकार एकता दृढ होती है और केचित् भेद भ्रान्ति युक्त वास्तव भेदवादी यह कहते हैं (तत्त्वमसि) इस वाक्यमें तस्य त्वं तत्त्वम् इत्यादि समास करके भेदको सिद्ध करते हैं तिनके भ्रम दूर करनेवास्ते सआत्मा यह पृथक् अभेद बोधक वाक्यका उपदेश करा है क्यों कि इस वाक्यमें समासकी संभावना ही नहीं हो सक्ती और

उद्देश्य विधेय भाव स्थलमें भिन्न पदजन्य पदार्थोपस्थितिकी शाब्दबोधमें कारणता देखी है यदि समासकर एक पद होगा तो विभिन्नपदजन्य पदार्थोपस्थितिके अभावसे उद्देश्य विधेय भाव ही नहीं होगा और पूर्व वाक्यमें अभेद और उत्तर वाक्यमें भेद यह कथन असंगत होगा और दयानन्दजीने (तत्सत्यं सआत्मा) इसका (वही सत्य स्वरूप अपना आत्मा आप है) यह अर्थ लिखा है आशय स्वामीजीका यह है सशब्द आत्मशब्द दोनों ब्रह्मके बोधक हैं यदि इस वाक्यमें अपना आत्मा आप है यही अर्थ विवक्षित हो तो (य आत्मनि तिष्ठन्) इस श्रुति वाक्यमें भी अपने आत्मामें आप ही स्थित है, अपना नियंता आत्मा आप ही है इस अर्थके करनेसे, दयानंदजीका भेद ही रसातलको चला जायगा, यदि इस श्रुतिमें (आत्मनि) यह पद जीवात्माका बोधक है तब (सआत्मा) इस श्रुतिमें भी आत्मशब्द जीवात्माका बोधक है जैसे एकमें आधाराधेयभाव असंभव है वैसे ही आत्मा आत्मवत्त्वभी एकमें असंभव है और उत्तर वाक्यसे विषमता होगी, क्यों कि " तत्त्वमसि " का उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है यह अर्थ क्या तब कहना चाहिये कैसे युक्त है तो यही कहना होगा जो तेरे अन्तर अन्तर्यामी है तो जीवका आत्मा परमेश्वर हुआ तो अपना आत्मा आप कैसे होसका है, यदि अपना आत्मा आप हुआ तो जीव परमात्मासे अभिन्न सिद्ध होगया स्वयं स्वामीजीके मुखसे और यह भी सोचना चाहिये, परमात्मासे कौन वस्तु युक्त नहीं सर्व वस्तु परमात्मासे युक्त हैं यदि निकटस्थ जीवको कहोगे तो परमात्मामें व्यापकत्वका भंग होगा और वाक्यमें युक्त अर्थका बोधक पद कौन है और यह भी विचार करना जहाँ अत्यन्त भेद होता है वहाँ समान विभक्तिवाले शब्दोंका प्रयोग नहीं होता जैसे घटः पटः इस शब्दप्रयोग कर्ताको भ्रान्त कहते हैं तैसे यदि जीवसे परमात्माका अत्यन्त भेद है, तो तत्त्वम्, अहंब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म यह शब्द प्रयोग कैसे होंगे और जहां अत्यन्त अभेद होताहै वहां भी समान विभक्तिक शब्दप्रयोग होता नहीं, जैसे कटः कलशः यह प्रयोग नहीं होता इसी प्रकार जब सशब्द तथा आत्मा शब्द ब्रह्मके ही बोधक होगये तो (सः) ब्रह्म आत्मा ऐसा शब्दप्रयोग नहीं होना चाहिये, पुनरुक्ति दोष इसमें आता है परन्तु जहां औपाधिक भेद और वास्तव अभेद होताहै वहां ऐसा शब्द प्रयोग होताहै जैसे "नीलो घटः" इस वाक्यमें नीलत्वघटत्व धर्मसे भेद है वास्तव नीलरूपवत् व्यक्ति एक वस्तु है तैसे (सआत्मा तत्त्वम्) इस स्थानमें भी जीवत्व परमेश्वरत्व उपाधिका ही भेद है वास्तव एकव्यक्ति सत् चित् आनन्द है (प्रश्न) जीवत्व और परमेश्वरत्व उपाधिका नाम कैसे होगा यह दोनों तो धर्म हैं (उत्तर) ऐसे समझो श्रुतिमें जब वाक् मन प्राण तेज यह कार्य्यरूप उपाधिके होते जीव कहा और इनके अभा-

वमें कारणात्मा ब्रह्मपर देवतारूपता कहा तब यह निश्चय हुआ जो कार्य्य उपाधितत्संस्कारविशिष्ट सदंश है,सो तो जीव और कारणोपाधिविशिष्ट सदंश परमेश्वर है, इतनेसे यह निश्चय हुआ जो उपाधि विशेषण और चित् सत् वस्तु विशेष्य और भाव अर्थमें त्वप्रत्ययका यह स्वभाव है कि विशेषणीभूत वस्तुका बोधक होता है, जैसे नीलशब्द जब नीलवत् गुणीका बोधक है, तब नीलत्व पद नील गुणमात्रका बोधक होताहै, तैसे जीव विशेषण कार्य्य उपाधि जीवत्व है और परमेश्वर उपाधिकारणत्व संपादक विचित्रशक्ति परमेश्वरत्व है और वास्तव व्यक्ति सच्चिदानन्द वस्तु अखंड है, ऐसे अखंडार्थबोधक होनेसे इनकी महावाक्यसंज्ञा पारिभाषिक है और हठ छोड यह भी समझना चाहिये कि, इस स्थानमें अस्मिपद और असिपद वर्तमान कालके प्रयोग हैं, यदि समाधिस्थ होकर या गुणकर्म परमेश्वरके अनुकूल करके पश्चात् कह सक्ता तौ वर्तमान कालके प्रयोग न होते इस कारण यहां ऐसा उपदेश है जैसा कि, कर्णको सूर्यभगवान्का कुंतीपुत्रत्व उपदेश,भ्रमसिद्धि राधापुत्रत्वकी निवृत्तिके वास्ते था;दयानंदजीने जो कहा कि (तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि)उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है, यह असंगतहै क्योंकि एक विज्ञानमें सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा उद्दालक ऋषिने जो कि उपदेशके प्रारम्भमें प्रथम करी है उसका भंग होगा और इस प्रकारका अर्थ प्रकरणविरुद्ध है क्यों कि यह प्रकरण अन्तर्यामीका नहीं किन्तु म्रियमाण जीवका जो वास्तवरूप है जहांसे तेज आदि जगत् उत्थान होनेसे जीवत्व भाव होता है, और तिनकी लीनतामें जीवत्वभाव निवृत्त होताहै तिसका प्रकरण है, इस प्रकार प्रौढ युक्ति और श्रुति प्रमाणसे अहंब्रह्मास्मि और तत्त्वमसि इन वाक्योंका अर्थ निरूपण होगया तौ "प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि सर्व महावाक्योंके अर्थका निर्णय होगया, और इतने ही महावाक्य हैं यह नियम नहीं किन्तु भेदभ्रम निवारण यावत् हैं वे महावाक्यही हैं प्रज्ञान शब्द और आत्मा शब्द अवस्थात्रतयसाक्षीका बोधक है और अयं शब्द अखण्ड चैतन्यमें अपरोक्षताका बोधक है इस प्रकार त्रिविध परिच्छेद वर्जित अखण्ड चैतन्यके बोधक सब महावाक्य होगये और औपाधिक भेद और वास्तव अभेद सिद्ध होगया यदि औपाधिक भेद वास्तव अभेदका बाधक होवै अथवा उपाधिसे टुकडे होवैं, तौ आकाशका वास्तव अभेदका बाध और घटादि उपाधिसे आकाशके टुकडे होजाने चाहिये उससे उपाधिसे चेतनके टुकडे और चेतनमें वास्तव भेद कल्पना स्वामीजीका प्रलाप है ॥

पृ० १९६ पं० १६

अनेनात्मना * जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे ।

* अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य० ऐसा पाठ भी है ।

व्याकरवाणि--छां० प्र० ६ खं० ३ मं० २ ॥ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्--तैत्तिरी० ब्रह्मानं० अनु० ६

अर्थ -पं० २२ में यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके साथ अनुप्रविष्टकी समान होकर वेदद्वारा सब नामरूपादिकी विद्याको प्रगट करता है और शरीरमें जीवको प्रवेश करा आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहा है ॥ २०५ । १४

समीक्षा--स्वामीजी अपनीसी बहुतेरी करतेहैं पर कुछ बसाती नहीं जो जिस मार्गहीमें न चलाहो वह उस मार्गको क्या जाने देखिये व्याकरणशास्त्र भी यहां भूल गये ॥

अनुर्लक्षणे अ० १ । ४ । ८४ यह अष्टाध्यायीका सूत्र है ।

अर्थ-लक्षण अर्थमें अनु उपसर्ग कर्मप्रवचनीय संज्ञावाला हो ॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २ । ३ । ८ पाणिनीय०

अर्थ--कर्मप्रवचनीय संज्ञक पदसे जो युक्त है दूसरा पद तिसमें द्वितीया विभक्ति हो अब इसपर जो भाष्यकार लिखते हैं सो सुनिये ॥

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् शाकल्येन सुकृतां संहिता मनुनिशम्य देवः प्रावर्षत् महाभाष्य अ० १ पा० ४ आ० ४

अर्थ--शाकल्य ऋषि सुष्ठु कृतकारी संहितानाम सीमाको देखकर देव वर्षा करता हुआ पहले उदाहरणका अर्थ दूसरे वचनसे आपही भाष्यकारने किया है क्योंकि भाष्यकारकी यह शैली है अपनी कठिन उक्तिका आप ही व्याख्यान करते हैं जैसे वेदने संक्षिप्त अर्थ मन्त्रोंका ब्राह्मण भागसे व्याख्यान किया है सो अन्यकृत मानो महाभाष्यके व्याख्यान वाक्य भी किसी दूसरेके होने चाहिये अब सुनिये (तत्सृ०) इस श्रुति वचनमें भी अनु लक्षण अर्थमें है तब यह अर्थ सिद्ध हुआ जगत्को रचकर (तदेवानु निशम्य प्राविशत्) तिस जगत्को देखकर प्रवेश करता हुआ (लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्) जिस करके कुछभी लखाजाय सो लक्षण है जैसे भाष्यके उक्त उदाहरणमें शाकल्यकृत सीमाका देवसे देखना सो वर्षणके दिखानेमें लक्षण है और प्रकृत श्रुति रूप उदाहरणमें जो परमेश्वर करके सृष्ट सूक्ष्म जगत् तका अपनेमें देखना है सो प्रवेशका बतानेद्वारा है भाव यह है कि जो उपाधिमें जैसे मनुष्योंमें हिरण्यगर्भोंमें विराटमें ऐसी प्रतीति होती है सोई प्रवेशका वाचक है प्रतीतिमें प्रवेश कहाजाता है, वास्तवमें प्रवेश नहीं जैसे बृहदारण्यक श्रुतिमें

जो अहंकारको अपनेमें देखकर अहंनामवाला परमात्मा हुआ अहंकारको जो अपनेमें देखाना यही प्रवेशका लक्षण है यथाहि-

आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत् ।

बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ४

अर्थ- इदं मनुष्यादिशरीरजातम् अग्रे-इस उत्पत्तिसे पूर्व आत्माही पुरुषाकार हुआ, सो पुरुषाकार * आत्मा अनुवीक्ष्य-देखकर अर्थात् आत्मासे पृथक् वस्तुको न देखकर अहमस्मि ऐसा सबसे प्रथम उच्चारण करताहुआ, उच्चारणमात्रसे ही अहंनामवाला होगया, इसी प्रकार जो अपनेमें हिरण्यगर्भादि पिपीलिकातक देहोंका स्फुरण होकर प्रतीति होना है सोई अनुप्रवेश है और अनुशब्दका अर्थ जहां पश्चात् होता है वहां प्रवेश और अनुप्रवेश दोनों मुख्य होते हैं जैसे "राजा प्रासादे प्रविशति अमात्योनुप्रविशति" राजा मंदिरमें प्रवेश करता है पीछे अमात्य प्रवेश करता है दयानंदजीके मतमें जब जीवने प्रवेश करा तब परमेश्वर तो व्यापक होनेसे प्रथम ही प्रविष्ट है और यह जो कहा (जीवको प्रवेश कराकर आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहा है) सो भी असंगत है अनुप्रविष्ट हो रहा है क्या प्रथम प्रविष्ट न था सो तो पहले भी जीवमें प्रविष्ट था पीछे प्रवेश करना ही कैसे कहसकैहैं देखो जैसे शरीरके गृहमें प्रवेश होनेसे शरीरांतर्गत अन्न जलादि वा आकाशादि वा मनोबुद्धि आदिक (अनुप्रविष्ट) पश्चात् प्रविष्ट हैं वा साथ ही प्रविष्ट हैं बस जब साथ ही प्रविष्ट हुए तो जीवान्तरवर्त्ती ईश्वर भी अनुप्रविष्ट नहीं किन्तु सहप्रविष्ट है व युगपत् प्रविष्ट है ऐसा कहना चाहिये अनुप्रविष्ट कहना नहीं बनता और यह भी भूल मत करना जो जन्मादिवत् प्रवेश भी जीवमें आरोपित है(देहस्यत्वेनोपलब्धिः प्रवेशः) देहमें स्थित रूपसे प्रतीत ही प्रवेश है जो लक्षण· अर्थमें अनुको इस श्रुतिमें नहीं मानेंगे किन्तु पश्चात् अर्थमें मानेंगे तो प्रवेश और अनुप्रवेश दोनों मुख्य होने चाहिये तैसे तदेव इसके स्थानमें तस्मिन्नेव इस प्रकार सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये जैसा" राजा प्रासादे प्राविशत् अमात्योऽनुप्राविशत्" ऐसा प्रयोग होता सो श्रुतिमें नहीं करा इस कारण इसका अर्थ स्वामीजीका किया हुआ मिथ्या है यहां व्याकरणशास्त्रको भी लपेट धरा ॥

स० प्र० पृ० १९७ पं० १०

जीवे शौचविशुद्धाचिद्भिदेस्तु तयोर्द्वयोः आविद्यात-

* भा० प्र० में पुरुषविधः का अर्थ व्यापक स्वरूप लिखाहै तु० स्वामी पूछा जाय आप पुरुष नहीं हो व्यापक स्वरूप हो वा निराकार हो ।

च्चितोयोगः षडस्माकमनादय ॥ कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥ कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते॥
यह संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्यमें कारिका है ॥ पृ० २०६ पं० १३
समीक्षा–धन्य है स्वामीजीकी सत्यता और विद्याको जो महाझूठ लिखते नहीं लजाते विदित होता है कि, कभी संक्षेप शारीरक और शारीरकका दर्शन भी नहीं किया उक्त दोनों ग्रन्थोंमें यह कारिका ही नहीं है प्रथम वचन तो वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका है प्रमाणरूप ग्रन्थोंमें बहुधा लिखा जाताहै द्वितीय वचन आथर्वणोपनिषद्का है जो प्रमाण विधि बहुत ग्रन्थोंमें लिखी जाती है परन्तु उक्त दोनों ग्रन्थोंमें प्रमाण विधि या उपन्यास कुछ भी नहीं करा इससे यह स्वामीजीका प्रमाद है वेदान्तका दर्शन स्वप्नमें भी नहीं किया ॥ *

स० प्र० पृ० १९९ पं० २१ब्रह्मके सत् चित् आनन्द और जीवके अस्तिभाति प्रियरूपसे एकता होतीहै फिर क्यों खण्डन करते हो (उत्तर) किंचित् साधर्म्य मिलनेसे एकता नहीं हो सक्ती जैसे पृथ्वी जड दृश्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड और दृश्य हैं इतनेसे एकता नहीं होसक्ती इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध रूक्षता काठिन्य आदि गुण पृथ्वी और रसद्रवत्वकोमलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्निके होनेसे एकता नहीं, जैसे मनुष्य और कीडी आंखसे देखते मुखसे खाते पगसे चलते हैं तथापि मनुष्यकी आकृति दो पग और कीडीकी आकृति अनेक पग आदि भिन्न होनेसे एकता नहीं होती वैसे परमेश्वरके अनन्त ज्ञान आनन्द बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीवसे और जीवके अल्पज्ञान अल्पबल अल्पस्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्मसे भिन्न होनेसे जीव और ब्रह्म परमेश्वर एक नहीं क्यों कि इनका स्वरूप भी परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होनेसे भिन्न है॥२०८॥१०

समीक्षा–स्वामीजीका यह लेख भी चैतन्यरूप सत्यानन्द आत्मामें भेदका साधक नहीं किन्तु विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोशके भेदका साधक है क्यों कि इन्हीं दोनोंमें किंचित् स्थूलता और सूक्ष्मता बाह्यता अन्तरता बनसक्ती है और पृथ्वीको गन्ध, रूक्षता, काठिन्यरूपसे जलसे भेद कहा है तिसमें यह पूछना है कि, पृथ्वीका जलसे अत्यन्त भेद है या औपाधिक भेद है यदि अत्यन्त

उत्पत्ति नहीं होती इस प्रकार जलसे पृथ्वीकी उत्पत्तिके असंभव होनेसे (अद्भ्यः पृथिवी) यह श्रुति दयानन्दजीके मतमें व्यर्थ होगी इस कारण जल और पृथिवीका औपाधिक किंचित् भेद है जैसे दुग्धसे दधिका और अग्निका दाहकत्वादि धर्मयुक्त होनेसे जलादिसे भिन्न कहा सो भी अशुद्ध है क्यों कि (अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) अग्निसे जल उत्पन्न हुआ जलसे पृथिवी तो * यह श्रुति भी व्यर्थ हो जायगी और अनन्त पृथिवी कार्य्य औषधिमें दाहकत्वादि धर्म हैं तिनको पृथिवीत्व नहीं होना चाहिये और मनुष्य कुष्ठीका भी भेद किंचित् विकारसे है वास्तव भेद नहीं यदि वास्तव भेद हो तो 'कुष्ठी मनुष्यो न' ऐसी प्रतीति न होनी चाहिये, इस कारण सर्वथा स्वामीजीका वेदान्तसे अनभिज्ञपना सूचित होताहै वेदान्त सिद्धान्तमें परमाणवादि अस्वीकृत हैं ॥

स० पृ० २०० पं० ३

अथोदरमन्तरं कुरुते अथतस्यभयं भवति द्वितीयाद्वैभयंभवति ॥

पंक्ति ७ में अर्थ लिखाहै कि, जो जीव परमेश्वरका निषेध वा किसीएक देश कालमें परिच्छिन्न परमात्माको माने वा उसकी आज्ञागुणकर्म स्वभावसे विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्यसे वैर करै उसको भय प्राप्त होताहै ॥ २०९ । १२

समीक्षा–जब कि स्वामीजीने गुरुमुखसे वेदान्त पठन नहीं किया तो उसके ऊपर लिखना व्यर्थ ही है भला इसमें जीव परमेश्वरका निषेध देशकालपरिच्छिन्न गुणकर्मस्वभाव यह कहाँसे लिखदिये यह अर्थ सब ही भ्रष्ट हैं इसका अर्थ यही है कि, जो आत्मासे पृथक् देखताहै उसीको भय होताहै क्यों कि–

अभयं वैजनकप्राप्तोसिअयमहमस्मीति । बृह० ४ ब्रा० २ । ४

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत इति । ईशावास्य मं०७

जब आत्माको जाना तब ही जनकजीको अभय प्राप्ति हुई "अह्मास्मीति" मैं ही हूं यह सब यही है जो सर्वत्र एक देखता है उसको कुछ भय नहीं होता यह अभय है "आत्मा एवेदं सर्वम्" यह सब आत्मा ही है वेदान्तशास्त्रमें ॥

शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् १० प्र० अ० पा० १

जैसे तत्त्वमसि इस वाक्यको देखकर वामदेव ऋषिने कहा है कि, मैं ही मनु सूर्य और कक्षीवान् हुआ था तैसा ही इन्द्रने कहाहै कि, मैं ज्ञानरूप हूं तू इसीकी उपासना कर (अहंमनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवानित्यादि ऋ० मं०४ सू०२६ मं०१)*

* भा०प्र० में इन प्रकरणोंपर कुछ भी लिखते नहीं बना है कहीं हेतु और प्रकरण बिल्कुल छोड गये हैं सत्य भी है बिना पढे वेदान्त क्या समझाजाय केवल भ्रांतिका मनमाना अर्थ करलेते हैं ।

* मेरठके स्वामीने यहां मिथ्या लिखाहै कि वामदेवके प्रति तत्त्वमसि वाक्य है द० ति० भा०में कहा है दिखाओतो ।

इस प्रकार यदि कोई इस कालमें भी जीवात्माको ब्रह्म जानताहै जल्ततरंगवत् इन दोनोंके अभेदको जानताहै वही ब्रह्मभावको प्राप्त हो अभय होताहै ॥

स० पृ० २०१ पं० २ (प्र०) ईश्वरमें इच्छा है वा नहीं (उत्तर पं० २९) ईश्वरमें इच्छाका तो संभव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका दर्शन और सब सृष्टिका करना कहताहै ॥ २११।६

समीक्षा–अच्छे प्रश्नोत्तर किये हैं जैसे गुरु वैसे चेले, ईश्वरमें कामना क्यों नहीं यदि कामना नहीं तो यह सृष्टि कहांसे आगई, यदि विना इच्छाके सब ही जगत की रचना होगई तो ईश्वरकी आवश्यकता क्या है (बौद्धमत ही होजाय) इस लिये ईश्वरमें इच्छा है ॥

आनन्दमय प्रकरणसे सुनाहै कि, एकने बहुतकी इच्छा की "सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति" यह परमात्मा कामना करताहुआ कि, मैं बहुतरूप होकर प्रतीत होऊं तैत्ति० "एकं रूपं बहुधा यः करोति" जो एक रूपको बहुत कर लेताहै जिसे विशेष देखनाहो वेदान्तदर्शनमें देखले ॥

वेदप्राप्तिप्रकरणम् ।

स० पृ० २०२ पं० १७ (वेद) जीवोंको अन्तर्यामीरूपसे उपदेश कियाहै पंक्ति २२ से किनके आत्मामें कब वेदोंका प्रकाश किया (उत्तर) पृ० २०२।२०।२११।६

* अग्नेर्वाऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः शत० ॥ ११।४।२।३

इन ऋषियोंके आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया (प्रश्न)

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्राहिणोति तस्मै ।

यह उपनिषद्‌का वचन है इस वचनसे ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका उपदेश किया है फिर अग्नि आदि ऋषियोंके आत्मामें क्यों कहा (उत्तर) ब्रह्माके आत्मामें अग्नि आदिके द्वारा स्थापित कराया देखो मनुमें क्या लिखाहै ॥ ११२ । ११ पृ० २०३ पं० ३

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ मनु० १।२३

जिस परमात्माने आदि सृष्टिमें मनुष्योंको उत्पन्न करके अग्निआदि चारों महर्षियोंके द्वारा चारों वेद ब्रह्माको प्राप्त कराये और उस ब्रह्माने अग्नि वायु आ-

* १८९७ के स०प्र० म अग्ने ऋग्वेदो ऐसा पाठ लिखाह ।

दित्य और अंगिरासे ऋग्यजुः साम और अथर्वका ग्रहण किया क्यों कि वही सबसे अधिक पवित्रात्मा थे पृ० २०४ पं० ९ जो परमात्मा उन आदि सृष्टिके ऋषियोंको वेद विद्या न पढाता और वे न पढते तो सब लोग अविद्वान् रह जाते (पुनः पं० २२) धर्मात्मा योगी महर्षि जब जिसके अर्थ जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थ हुए तब २ परमात्माने अभीष्टमंत्रोंके अर्थ जनाये जब बहुतोंकी आत्मामें वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वह अर्थ और ऋषि मुनियोंने इतिहासपूर्वक ग्रंथ बनाये उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रंथ होनेसे ब्राह्मण नाम हुवा ॥ २१२ । २२

समीक्षा-स्वामीजीने तो अपना मत ही नवीन कल्पित किया है जबतक सब बातें सनातन धर्मसे उलटी न लिखते तब तक उनकी ख्याति कैसे होती जैसे कि, यवन हम लोगोंसे उलटी ही रीति करते हैं हम जिसे रक्षा करें (गौ) वे उसे मारें हम सीधे परदेका अंगरखा पहरें वे बायेका हम चौका दें वे भ्रष्टाचार करें इत्यादि विपरीत ही करते हैं इसी प्रकार स्वामीजी, हम कहें मूर्तिपूजन श्राद्ध अवतार, पतिव्रत वेदमत है वे कहें यह सब झूठ है और नियोग (व्यभिचार) ठीक है, हम कहें वेद ब्रह्मापर आये वे कहें नहीं चार ऋषियोंपर आये, यहां यह विचार कर्तव्य है कि सृष्टिकी आदिमें कौन ऋषि उत्पन्न हुए स्वामीजीने तीन ऋषियोंका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना लिखा पर कोई प्रमाण नहीं दिया इस कारण उनका कहना मिथ्या है सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए यह वेदमें लिखा है यथा हि-

> ब्रह्मज्येष्ठासंभृतावीर्याणि ब्रह्माग्रेज्येष्ठंदिवमाततान ॥
> भूतानांब्रह्माप्रथमोहतजज्ञेतेनार्हतिब्रह्मणास्पर्धितुंकः॥
> अथर्ववेदे १९ । २३ । ३०

(ब्रह्म) ब्रह्मने (ज्येष्ठा) बडे (वीर्याणि) बल (सम्भृता धारण किये हैं (ब्रह्म) ब्रह्मनेही (अग्रे) सृष्टिके आरम्भमें (ज्येष्ठं दिवम्) बडे द्युलोकको (आतता न) विस्तार किया है (भूतानाम्) सब प्राणियोंमें (प्रथममोहत) पहले वही (ब्रह्मा) ब्रह्मारूपसे (जज्ञे) प्रगट हुआ है (तेन) उस (ब्रह्मणा) ब्रह्मसे (स्पर्धितुम्) स्पर्धा करनेको (कः) कौन समर्थ है (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे १३ । ४ यजु०) कि हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए मनु भी यही लिखते हैं कि, ब्रह्माजी सबसे पूर्व उत्पन्न हुए ॥

तस्मिन्नण्डे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १ ॥ ९ ॥

उस अण्डरूपब्रह्माण्डसे सबसे प्रथम ब्रह्माजी प्रगट हुए मुण्डक उपनिषद्में यही लिखाहै ॥

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता १ । १

ब्रह्माजी सब देवताओंसे प्रथम उत्पन्न हुए जो संसारके रक्षक और विश्वके बनानेवाले हैं फिर भी—

यो देवानांप्रभवश्चोद्भवश्चविश्वाधिपोरुद्रोमहर्षिः ।
हिरण्यगर्भंजनयामासपूर्वंसनोबुद्ध्याशुभयासंयुनक्तु। श्वेता० ३।४

जो परमात्मा इन्द्रादिक देवताओंके प्रभवका कारण है और विश्वका स्वामी और पापियोंको रुवानेवाला और सर्वज्ञ है जिसने पूर्व अर्थात् सृष्टिकी आदिमें श्रीब्रह्माजीको उत्पन्न किया वह परमेश्वर हमको शुभ बुद्धिके साथ संयुक्त करे और कपिलदेवजीने भी सांख्य शास्त्रके तीसरे अध्यायमें ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें होना माना है ॥

आ ब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंतत्कृतेसृष्टिराविवेकात्।कपि०सू०अ०३सू०४७

यहां (ब्रह्मासे लेकर) इस शब्दसे ही ब्रह्माका सृष्टिकी आदिमें होना सिद्ध है पाराशरजीने भी निज सूत्रोंमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति पूर्व ही मानी है ॥

सकलजगतामनादिरादिभूत ऋग्यजुः सामादिमयी भगवद्विष्णुमयस्य ब्रह्मणो मूर्तिरूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डतो भगवान् ब्रह्मा प्रागभूत् ।

सारे जगत्का कारण हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्डसे पहले उत्पन्न हुआ जैसे कि ऊपर लिखे ग्रन्थोंसे ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना स्पष्ट लिखा है इसी प्रकार यदि स्वामीजी किसी श्रुतिसे अग्न्यादि ऋषियोंका सब देवताओंसे प्रथम होना और ब्रह्माजीको वेदोंका पढाना सिद्ध करते तो उनकी यह बात स्वीकार करने योग्य होती अन्यथा नहीं अब वह दिखाते हैं जो ब्रह्माजीपर ही प्रथम वेद प्रगट हुए ॥

यो ब्रह्माणंविदधातिपूर्वंयोवैवेदांश्चप्रहिणोतितस्मै
तँहदेवमात्मबुद्धिप्रकाशंमुमुक्षुर्वैशरणमहंप्रपद्ये।श्वेता०अ०६ ।१८

---

१ कहीं तो छोटे स्वामी ब्रह्माका अर्थ ब्रह्माण्ड करतेहैं कहीं मेधावी विद्वान्का करते हैं कहीं वेदवेत्ताका अर्थ करते हैं पर क्या इससे ब्रह्माजीका आदिमें होना असिद्ध होसकताहै ! कभी नहीं, " विदधाति पूर्वं " आदि पदोंका अर्थ मेटेसे नहीं मिटसकता ।

अर्थ यह है कि, जिस परमात्माने (पूर्व) अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और जिस परमात्माने ब्रह्माजीहीके लिये वेदोंको दिया उस ही प्रकाशस्वरूप आत्मज्ञानके प्रकाश करनेवाले परमात्माको मैं मुमुक्षु शरण होताहूं देखो इस श्रुतिमें (पूर्व) शब्द है जिससे विदित है कि, परमात्माने सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया और शतपथकी श्रुतिमें ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे सृष्टिकी आदिमें अग्न्यादिके जन्मका बोधक हो और इस श्रुतिमें (वै) शब्द है जिसका अर्थ अन्ययोगव्यवच्छेद अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीके ही लिये वेदोंका उपदेश किया दूसरेको नहीं क्यों कि अन्ययोगव्यवच्छेद दूसरेके योगके पृथक् करनेको अर्थात् दूर करनेको कहते हैं इससे यही विज्ञान होता है कि, सृष्टिकी आदिम परमात्माने केवल एक ब्रह्माजीकेही हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया (वै) शब्दका अन्वय तत् शब्दके साथ होगा जो कि ब्रह्माका वाचक है और जो वै शब्दका अन्वय यत् शब्दके साथ करें जो परमात्माका वाचक है तो यह अर्थ होगा कि ब्रह्माजीको वेदोंका उपदेश परमात्माहीने किया, हे अब बुद्धिमान् विचार करें कि ऐसा कोई शब्द शतपथकी श्रुतिमें निकलता है, इस कारण स्वामीजीका कथन सर्वथा अशुद्ध है फिर ऋग्वेद मंडल १० सू० ९९ मंत्र १४ में लिखा है ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ॥ कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ऋ० मं० १० अ० ८ सू० ९१ मंत्र १४

यहां (वेधसेहृदामतिंजनये) इसका अर्थ यही है कि, परमात्मा ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश करता हुआ ॥

फिर स्वामीजीने अग्न्यादिकोंको महर्षि कहाहै यह सर्वशास्त्रबाह्य है किसी ग्रंथमें इनको महर्षि ऋषि नहीं लिखा परन्तु वेदादि शास्त्रोंमें इन नामके देवता लिखे हैं ।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवतेत्यादि यजु० अ० १४ मं० २०

अर्थ स्पष्ट है स्वामीजी और उनके पंथी पक्षपात छोडकर विचार करें कि, स्वामीजीका यह कथन कि, अग्न्यादिकने ब्रह्माजीको वेद पढाये श्वेताश्वतरकी श्रुतिसे लेशमात्र भी नहीं पायाजाता यह उनकी कपोलकल्पना है अब यह तो सिद्धान्त होचुका कि, वेद ब्रह्माजीपर प्रगट हुए और सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी

उत्पन्न हुए अब (अग्निर्वै) इस श्रुतिका अर्थ दिखलाते हैं इस श्रुतिके देखनेसे विदित होता है कि, शतपथ कभी स्वामीजीके दृष्टिगोचर भी नहीं हुआ अथवा देखा हो तो भूल गये क्यों कि सत्यार्थप्रकाशमें इस श्रुतिको कई जगह अशुद्ध लिखा है प्रथम अग्नि शब्दके आगे वै बढाया है और ऋग्वेदके आगे जायते यह बढाया है यजुर्वेदके आगे सूर्यात् यह पद नहीं है किन्तु आदित्यात् यह पाठ है स्वामीजीने भ्रमसे श्रुतिका पाठ अस्तव्यस्त लिखा है प्रसंगसहित पूर्ण पाठ इस प्रकार है ॥

प्रजापतिर्वाइदमग्रआसीदेकएव । सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्त्रयोलोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षंद्यौः १ सइमांस्त्रीँलोकानभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणिज्योती ँ ष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः २ स इमानित्रीणि ज्योती ँ ष्यभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ३ सइमाँस्त्रीन् वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद् भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् ४ श० कां० ११ अ० ५ ।८।१-४

अर्थ-पहले प्रजापति सृष्टिकी आदिमें थे उन्होंने इच्छा की कि मैं बहुत होजाऊं सो तप किया उस तपसे उन्होंने तीन लोक निर्माण किये पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक १ फिर इन तीन लोकोंको तपाया तो तीन ज्योति प्रगट हुईं अग्नि वायु और सूर्य २ फिर ब्रह्माजीने इन तीनों ज्योतियोंको तपाया तो उन तपे हुओंसे तीन वेद प्रगट हुए अग्निसे ऋग्वेद वायुसे यजुर्वेद सूर्यसे सामवेद ३ तब फिर प्रजापतिने इन तीनों वेदोंको तपाया तब इनसे तीन व्याहृति हुईं ऋक्से भूः । यजुर्वेदसे भुवः । सामवेदसे स्वः । आशय यह कि, भूमिका सार अग्नि अग्निका सार ऋग्वेद है, इसमें भूसम्बन्धी पदार्थोंका विशेषरूपसे कथन है, अन्तरिक्षका सार वायु वायुका सार यजुर्वेद है इसमें अन्तरिक्षके पदार्थोंका विशेषरूपसे कथन है, जैसे यज्ञ करना उसका फल आहुति मेघरूपसे परिवर्तन होना इत्यादि, द्युलोकका सार आदित्य और आदित्यका सार साम है, सामद्वारा परमानन्दकी प्राप्ति करना इत्यादि अथवा प्रजापतिने ज्ञानरूप तपसे प्रथम मनमें ही यह त्रिलोकी और वेदत्रयी देखली पीछे स्मरणको प्रगट किया और मनुजी भी यही कहतेहैं (अग्निवायुरविभ्यस्तु०) अग्नि वायु और रविसे यज्ञ सिद्धिके लिये सनातन ऋक् यजुःसामको ब्रह्माजीने दुह

पढ़ना नहीं है यह ऋषि हैं किन्तु यह ज्योति हैं मानसिक विचारसे ब्रह्माजीने दुहा है । अब यहां दयानन्द और उनके चेले पल्लो लगावें कि, यह अग्नि, वायु, रवि इस शतपथकी श्रुतिमें ऋषि कहां हैं यदि ऋषि सम्पादनकी सामर्थ्य हो तो लघुस्वामी ही यह प्रसंग सम्हालें, पर सत्यके सामने असत्य कहां ठहर सकता है इसीसे तो कहते हैं स्वामीजीको शास्त्रका मर्म नहीं आता था, ब्रह्मासे पहले, अग्नि आदि न थे तथा हि--

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥

तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ अ० १ श्लो० ९

यह जो बीज सुवर्णके सदृश पवित्र और सूर्यके समान प्रकाशित ईश्वरकी इच्छासे अंडेके आकार होगया उसमें आप ब्रह्माजी सब लोकके पितामह उत्पन्न हुए जब ईश्वरने ब्रह्माजी सबसे प्रथम उत्पन्न किये तो अग्नि आदि सृष्टिके अन्तर्गत हुए इनसे ब्रह्माका वेद पढना असंगत है और देखिये-

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ अ० १ श्लो० २१

ब्रह्माजीने सृष्टिकी आदिमें सबके नाम और सबके कर्म वेदके शब्दोंसे जानकर भिन्न २ बनाये गोजातिका नाम गौ, अश्वजातिका नाम अश्व, मनुष्यजातिका नाम मनुष्य रक्खा जब सबके नाम और वायुका कर्म वेद शब्दोंसे जानकर बनाये तो निश्चय है कि, अग्निका अग्नि और वायुका वायु आदित्यका आदित्य नाम वेदसे ही ब्रह्माजीने रक्खा है यह कौनसा वेद था, कि, सब सृष्टिकी आदिमें अग्निकी अग्नि संज्ञा वायुकी वायु, आदित्यकी आदित्यसंज्ञा होनेसे पहले ब्रह्माजीके पास था, जिससे उन्होंने सबके नाम रक्खे इससे यही विदित है कि, सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजीपर ही वेद आये यदि इन तीनोंपर ही वेद आते तौ यही सबके नामकी व्यवस्था वेदानुसार करते ॥

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ॥

साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ अ० १ श्लो० २२

उस प्राणियोंके प्रभु ब्रह्माजीने कर्मस्वभाववाले देवताओंका समूह साध्योंका समूह और सनातन यज्ञको उत्पन्न किया इस श्लोकमें प्रभु शब्द ब्रह्माजीका विशेषण है अर्थ उसका जनक अर्थात् पिता है क्योंकि निरुक्ति उसकी यह है कि, प्रकर्षेण भवत्यस्मादिति अर्थात् जिससे जन्म हो वही प्रभु है इससे यही विदित होता है कि, अग्नि आदिकी गणनाभी इसी देवगणमें है इससे बाहर

नहीं है इसके आगे (अग्निवायुरविभ्यस्तु) यह २३ वां श्लोक है ब्रह्माजीने तीनों ज्योतियोंको देवगणकी सृष्टिके संग उत्पन्न किया और वेदानुकूल उ नाम रक्खे जब कि. इनकी उत्पत्ति और नाम रखनेहीके पहले ब्रह्माजीके प वेद विद्यमान थे तौ क्यों कर हो सक्ता है कि, अग्नि सूर्य वायुने ब्रह्माजीको वे पढाये अब अंगिरासे वेद पढनेकी वार्ता सुनिये ॥

ब्रह्मादेवानां प्रथमः सम्बभूवविश्वस्य कर्ताभुवनस्यगोप्ता स ब्रह्मविद्यांसर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्टपुत्रायप्राह ॥ अथर्वणेयांप्रवदेतब्रह्माथर्वातांपुरोवाचाङ्गिरसेब्रह्मविद्यांसभारद्वाजायसत्यवाहायप्राहभरद्वाजोंगिरसे परावराम् ॥ मुण्डक० ॥ २ ॥

विश्वके कर्ता भुवनोंके रक्षक ब्रह्माजी सब देवताओंसे पहले हुए ब्रह्माजीने यह वेदविद्या जिसके सर्व विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व ऋषिको पढाई, अथर्वने यह ब्रह्मविद्या अंगिरा ऋषिको पढाई, अंगिरा ऋषिने भारद्वाजगोत्री सत्यवाहको पढाई उसने यह परावर विद्या अंगिराको पढाई, धन्य है स्वामीजीके निर्णयपर श्रुतिमें तौ अंगिराको शिष्यपरम्परा करके ब्रह्माजीका चतुर्थ शिष्य गिना है और स्वामीजी कहते हैं कि, अंगिराने ब्रह्माजीको अथर्ववेद पढाया जाने इस कथनसे स्वामीजीने अपना क्या लाभ समझा है फिर एक बडा आश्चर्य यह है कि, परमात्माने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिराको एक २ वेदका उपदेश किया और उनके द्वारा ब्रह्माजीको चारों वेदोंकी प्राप्ति कराई अंगिरातक अथर्ववेद गुप्त ही रहा यदि परमात्माने अग्न्यादिकोंमेंसे किसी एकको चारों वेदोंका अधिकारी नहीं समझा और ब्रह्माजीको चारों वेदोंका अधिकारी जाना तौ ब्रह्माजीको स्वतः चारों वेदोंका उपदेश क्यों न किया निदान स्वामीजीके व्याख्यानसे भी यही प्रगट हुआ कि, अग्न्यादिकोंकी अपेक्षा ब्रह्माजी पूर्णविद्वान् हैं इसी कारण श्वेताश्वतरमें आया है कि ॥

तद्वेदगुह्योपनिषत्सुगूढंतद्ब्रह्मावेदते ब्रह्मयोनिम् ॥ श्वेता० अ० ५।६

है उसको ब्रह्माजी ही जानते हैं जैसे कि, ब्रह्माजीका ब्रह्मज्ञान उपनिषद्से प्रगट है वैसे अग्निप्रभृतिके ब्रह्मज्ञानमें कोई प्रमाण नहीं ब्रह्मज्ञान तो एक ओर है अग्नि तो देवताओंमें भागप्राप्तिके लिये प्रार्थना करता है ॥

अग्निर्वा अकामयत अन्नादो देवानां स्याम् ।

अग्नि यहां प्रार्थना करता है कि मैं देवताओंमें अन्नभाग पानेवाला होऊं और पराशरसूत्रमें आदित्यको ब्रह्माजीके पुत्रका धेवता वर्णन किया है ॥

ब्रह्मणश्च दक्षिणांगुष्ठजन्मा दक्षः प्रजापतिः

दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वानीति॰ पा॰

अर्थात्-ब्रह्माजीके दक्षिणांगुष्ठसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए और दक्षप्रजापतिसे अदितिनामकी कन्या उत्पन्न हुई उससे विवस्वान् अर्थात् आदित्य उत्पन्न हुआ यहांसे प्रगट है कि, आदित्य ब्रह्माजीके पुत्रका धेवता है और मनुजीके १ अध्यायके ३२ श्लोकका यह आशय है कि, ब्रह्माने एक स्त्री और एक पुरुष उत्पन्न किया, उनसे विराट् विराट्से मनु और मनुसे अंगिरा उत्पन्न हुआ तो अंगिरा ब्रह्माजीकी चौथी पीढीमें हुआ, अंगिरा आदित्यके जन्मसे बहुत पहले चारों वेद ब्रह्माजीके पास विद्यमान थे उन्होंने वेदके शब्दोंसे अंगिरा और आदित्यके पितापितामहादिकोंके नाम रक्खे, फिर यह क्योंकर होसकाहै कि अंगिरा और आदित्यने ब्रह्माजीको साम और अथर्ववेद पढाया. यदि ईश्वर प्रथम इन्हींको वेदका उपदेश करता तो वही सबके नाम और कर्म और लौकिक व्यवस्था वेदानुसार निर्माण करते न कि, ब्रह्माजी, और अथर्ववेदको बृहदारण्यकादि उपनिषदोंमें जो आंगिरस कहाहै उसका कारण यह है कि, अंगिरा ऋषिने मुंडकोपनिषद्के वचनानुसार ब्रह्माजीके बेटे शिष्यके शिष्यने इस वेदको पढकर अथर्वको ऐसा हस्तामलक किया कि, उसीके नामसे सम्बद्ध होगया यदि स्वामीजीके कथनानुकूल अथर्ववेदका नाम इसलिये आंगिरस होता कि, अंगिराके हृदयमें ईश्वरने उसका प्रकाश किया तो स्वामीजीके मतानुसार ऋग्वेद अग्निके नाम यजुर्वायुके नामके साथ सम्बद्ध होता परन्तु कहीं इसका चिह्न भी नहीं पाया जाता इसलिये इस विषयमें जो कुछ स्वामीजीने लिखाहै वह निर्मूल है फिर स्वामीजीने यह जो लिखाहै कि, (अब भी जो कोई चारों वेदोंको पढताहै वही यज्ञमें ब्रह्मासनको प्राप्त और उसीका नाम ब्रह्मा भी होताहै) इससे भी यही विदित होताहै कि, चारों वेदोंका ब्रह्माजीके साथ सम्बन्ध विशेष है दूसरेके साथ वैसा नहीं है और वह यही है कि, आदि सृष्टिमें ब्रह्माजीको ही वेदोंका उपदेश दियाहै इसी कारण अब भी वेदाभ्यासयुक्त पुरुष ब्रह्माका प्रतिनिधि गिना जाता है यज्ञमें यदि स्वामी-

क्योंकी नहीं होता तो वेदके जाननेवाले यज्ञमें, अग्न्यादिकोंके प्रतिनिधि होते यदि स्वामीजी और उनके शिष्य वेद, शास्त्रको यथार्थ विचार करते तो ऐसे धोखे न पडते और (स पूर्वेषामपि गुरुः) इस योगसूत्रमें अग्न्यादिकोंका कुछ भी वर्णन नहीं है किन्तु पूर्वेषां से व्यासजीने भी योगभाष्यमें ब्रह्मासे आदि ले ऋषियोंका यह गुरु है यही वर्णन किया है इससे स्वामीजीका कथन असत्य है, अब मंत्र ब्राह्मण दोनोंका नाम वेद है इस विषयमें लिखा जायगा ॥

स्वामीजीने भी ब्रह्माजीको प्रथम माना है जैसा यजुर्वेदके प्रथम अंकमें नोटिस छपा है कि ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रन्थ साक्षीके समान प्रमाण मानता हूं इससे भी प्रथम ब्रह्मा हुए यह सिद्ध है ॥

मंत्रब्राह्मणप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० २०६ पं०६

संहिता पुस्तकके आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें वेद यह सनातनसे शब्द लिखा आताहै और ब्राह्मण पुस्तकके आरम्भ वा अध्यायकी समाप्तिमें कहीं नहीं लिखा और निरुक्तमें–

इत्यपिनिगमोभवति, इति ब्राह्मणम् नि० अ० ५। खं०३।४

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि अष्टाध्या० ४ । २ । ६६

यह पाणिनीय सूत्र है इससे भी स्पष्ट विदित होताहै कि, वेद मंत्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग है इसमें जो विशेष देखना चाहें वे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें देखलें अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे ॥

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् का० सू०

यह कात्यायनका वचन नहीं होसक्ता जो ऐसा माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सक्ते क्यों कि ब्राह्मण ग्रंथोंमें ऋषि मुनि राजादिकोंके इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है किसी मनुष्यकी संज्ञा वेदमें नहीं है स० पृ० २०६ पं० १७ जो किसीसे कोई: पूछे तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर दे कि, हमारा मत वेद है, जो कुछ वेदोंमें कहा है हम उसको मानते हैं ॥ २१९।२

समीक्षा–स्वामीजीने यहां भी अपनी ही धुनि निकाली भला मंत्र और ब्राह्मणको आप वेद नहीं मानते और कहते हो कि, अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे यह कात्यायन वचन नहीं होसकता अब हम यही प्रमाण दिखावेंगे कि, सबही आचार्योंने यह बात मानी है कि, मंत्र और ब्राह्मण मिलकर वेद कहाता है प्रथम तो आपहीने उपनिषदोंको भी वेद माना है स०पृ० ११ पं० ३ देखिये वेदोंमें ऐसे २

प्रकरणोंमें ओम् आदि परमेश्वरके नाम हैं ओमित्येतदक्षरमिद * उपासीत छान्दोग्य,० ओमित्येतदक्षरमिद * सर्वमित्यादि मांडूक्य, यहां उपनिषदोंके प्रमाण दिये और सब वेदके नामसे उच्चारण किये पुनः पृष्ठ १९० पं०–१० श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य सांख्य सू० इसके अर्थमें स्वामीजी लिखते हैं उपनिषद् भी प्रधानहीको जगत्का उपादान कारण कहता है यहां श्रुतिशब्द देखिये उपनिषदोंतकका नाम सिद्ध होता है और यदि वेद शब्दसे व्यवहार्य्य वाक्य कलापके दूसरे पदोंसे अर्थ करनेको व्याख्यान कहते हैं तौ स्वामीजी इसे क्या कहेंगे ॥

प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वारूपाणिपरितावभूव ।
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोऽअस्तु वय ँ स्यामपतयोरयीणाम् ॥
यजु० अ० २३ मं० ६५

और–प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वा जातानिपरिताबभूव ।
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयंस्यामपतयोरयीणाम्
ऋ० मं० १० सू० १२२ मं० ४

और–नवोनवोभवासिजायमानोऽह्नांकेतु रुपसामेष्यग्रम् ।
भागंदेवेभ्योविदधास्यायन्प्रचन्द्रमस्तिरतेदीर्घमायुःअथर्व०७।८६।२
नवोनवोभवतिजायमानोऽह्नांकेतुरुपसामेत्यग्रम् ।
भागन्देवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतंदीर्घमायुः॥
ऋक्० मं० १० सू० ८५ मं० १९

इनमें पहले मन्त्रमें (विश्वारूपाणि) ऐसा पद है और दूसरेमें (विश्वाजातानि) ऐसा पद है तीसरेमें (भवासिजायमान उपसामेत्यग्रम् विदधात्यायन्) ऐसे विलक्षण पद हैं तौ इन भिन्न २ मन्त्रोंमें वेदपदोंके पदान्तरसे अर्थ कथनरूप स्वामीजीका पूर्वोक्त) ऋग्वेद भा० भूमिका) वेद व्याख्यानत्व तौ स्पष्टतासे प्रतिपन्न होता है तो फिर वेदभी व्याख्यान कहलावैगा ॥

(प्रश्न) भरद्वाज अङ्गिरा वसिष्ठादि ऋषियोंके संवाद देखनेसे ऋषिप्रणीतत्व ब्राह्मण है (उत्तर) अच्छे भ्रममें पडे हो वेदोंका वेदत्व तौ इतनाही है कि, भूत भविष्य वर्त्तमान सन्निकृष्ट विप्रकृष्ट सर्ववस्तु साधारणसे सबोंको जानते हैं और दूसरोंको जनाते हैं (लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात्) ऐसा कात्यायन ऋषिने प्रातिशाख्यमें कहा है इसका अर्थ यह है कि, लौकिकानां अर्थात् " गामानय शुक्लां दंडेन " इत्यादि लौकिक वाक्योंका प्रयोग अर्थपूर्वक होता है अर्थात् प्रयोग

करनेवाले लोग उन उन वक्तव्य अर्थोका लाभ करके वा अनुसन्धान करके लौकिक वाक्योंका प्रयोग करते हैं और वैदिक नित्य वाक्योंका अर्थपूर्वक प्रयोग नहीं बन सक्ता क्यों कि, वैदिक वाक्योंके अर्थ सृष्टि प्रलयादिक नित्य नहीं हैं इससे वस्तु-सत्ताकी अपेक्षा न करके लोकवृत्तको जनाते हुए वेद यदि याज्ञवल्क्यादि जनका-दिके संवादका कथन भी करें तो क्या हानि होती है अन्यथा तौ "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् " अर्थात् सूर्य चन्द्र परमेश्वरने जैसे पहले बनाये थे ऐसेही इस सृष्टिमें बनाये इत्यादि इस संहिता भागकी भी अवेदत्वापत्ति होजायगी जैसे जनकादिसंवादोंके ब्राह्मण ग्रन्थोंमें देखनेसे जनकादिकके उत्पत्तिकालके पश्चात् कालमें उत्पन्न होना ब्राह्मण भागमें उत्प्रेक्षित करते हो वैसे (सूर्याचन्द्रमसौ०) और (त्रितःकूपे०) इस पूर्व लिखित श्रुतिको भी सूर्यचन्द्रकी सृष्टि कहने और त्रितऋषिके उत्पत्तिकालके पश्चात् कालमें मन्त्रका भी उत्पन्न होना प्रतीत होनेके कारण अनित्यत्वापत्ति होजायगी तब तौ वही हुई कि, आप ब्याजको मरतेथे मूलभी गँवा बैठे इस आपत्तिके निवारणार्थ आपको यही कहना पडैगा कि, सूर्य-चन्द्रादिककी उत्पत्तिको कहनेवाले भी वेद कुछ सूर्यादिकी सृष्टिके पश्चात् कालमें उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वेदवाक्यका प्रयोग अर्थपूर्वक देखकर नहीं होता किन्तु उसमें जो कथन है वह अवश्य होगा तौ फिर ब्राह्मण भागने क्या बिगाडा है जो इससे आप चिढते हो आपने भी यजुर्वेद अ० १२ मं० ४ वामदेव्यम् इस पदके अर्थमें वामदेव ऋषिके जाने वा पढाये सामवेद ऐसा लिखाहै तौ यह इति-हास पहले आया या पीछे अब यजुर्वेद आपका रहा ही नहीं ब्राह्मण वेदद्वेष अच्छा नहीं अब आगे देखिये कि मीमांसाके प्रथम अध्याय,१ पादका ३२ सूत्र मन्त्रके लक्षणमें इस प्रकार है ॥

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ३२ अ० २
शेषेब्राह्मणशब्दः ३३

यहां ऐसा आचार्य कहते हैं शेषे ब्राह्मणशब्दः इस द्वितीय सूत्रोक्तिसे (शेष) मन्त्र भागसे अवशिष्ट मन्त्रैकदेशमें (ब्राह्मणशब्दः) ब्राह्मण शब्दसे व्यवहार होताहै ऐसा कहतेहैं इस कथनसे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि,वेदके मन्त्र और ब्राह्मण दो भेद हैं यदि आचार्य ब्राह्मणको वेदका एक भाग नहीं मानते तौ शेषे ब्राह्मण शब्दः ऐसा कैसे कहते प्रकृतिस्थ जन रामायण महाभारतका शेष है ऐसा कोई नहीं कहेगा तब शेष शब्दके कथनसे ब्राह्मणको वेदत्व अवश्य अभिमत है ऐसा प्रतीत होता है अत एव ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरणमें आचार्य शबरस्वामी ऐसी व्याख्या (प्र०) ब्राह्मणका क्या लक्षण है ! (उत्तर) मन्त्र और ब्राह्मण दो भाग वेद हैं

इसमें मन्त्रभागके लक्षण कहनेहीसे परिशेषतः ब्राह्मणका लक्षण सिद्ध होगया फिर कहनेकी क्या आवश्यकता है और यही समझकर भगवान् जैमिनिने भी पूर्व लिखित दो सूत्रोंसे मन्त्र ब्राह्मणात्मक समस्त वेदका लक्षण कहकर वेदके एक देश ऋक्का ॥

तेषामृग्यत्रार्थवशेनपादव्यवस्था ३५ अ० २
गीतिषुसामाख्या ३६
शेषेयजुःशब्दः ३७

अर्थवशसे पादव्यवस्थावाली ऋक् गीतिवाले साम और शेषे मन्त्रोंमें यजुः शब्दका प्रयोग है इसमें (ऋक् यजु साम का लक्षण कहा है और यजुषके भी एकदेशका)

निगदोवाचतुर्थस्याद्धर्मविशेषात् ॥ ३८ ॥

इस सूत्रसे यजुविशेष निगदका भी लक्षण कहा है यदि आचार्य ब्राह्मणको वेद नहीं मानते तब तौ (तच्चोदकेषु मंत्राख्या) इससे मन्त्र लक्षण कहनेके उपरान्त ही ऋगादिका भी लक्षण कहते पर यह तो मन्त्र लक्षणके अनन्तर (शेषे ब्राह्मण-शब्दः) इस सूत्रसे ब्राह्मणका लक्षण कहते हैं इससे जैमिनि मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंहीको वेद मानते हैं अब लीजिये श्रीकणादाचार्य ६ अध्यायकी आदिमें लिखते हैं कि ॥

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे—क० ६ । १ । १

अर्थ यह है कि (वेदे) वेदनामक वाक्यकलापमें (वाक्यकृतिः) वाक्यरचना बुद्धिपूर्वा वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वक है अर्थात् वेदमें जो जो वाक्य लिखे हैं उन वाक्योंके अभिमेत अर्थोंको यथार्थ जान करके वक्ताने प्रयोग किया है वाक्यरचनाका यह नियम ही है कि जबतक जिस अर्थको नहीं जानते तबतक उस अर्थके वाक्यकी रचना नहीं करसक्ता (यथा नृपतिः सेव्यः) "कांची नगरीमें त्रिभुवनतिलक राजा हुआ है" इत्यादि अस्मदादिककी रचना ज्ञानपूर्वक होती है इससे विधि निषेध वाक्य अनाप्तया अपनी उपपत्तिके लिये वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वकत्वका अनुमान करता है हम लोगोंका जो ज्ञान तत्पूर्वक-त्वेन अन्यथासिद्धि तौ नहीं होसकी क्योंकि "स्वर्गकामो यजेत" स्वर्गकी कामना हो तौ यज्ञ करै उसीसे हमारा अभीष्ट साधन होसकैगा और इसको करना चाहिये इत्यादि ज्ञान हमलोगोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् यज्ञ करनेसे स्वर्ग होताहै ऐसी बात हमलोगोंकी क्षुद्र बुद्धिमें नहीं बैठ सक्ती अतः ऐसा ज्ञानवान् कोई स्वतंत्र

पुरुष अवश्य पूर्वमें था जो कि, इस विधि निषेधका रचनेवाला है और ऐसा स्वतंत्र एक वेदपुरुष ही है इससे संहिता आदिका भ्रम प्रमादादि दोषसे शून्य जो स्वतंत्र पुरुष वही रचनेवाला है यह सिद्ध हुआ और प्रकारान्तरसे भी वेदवाक्योंका बुद्धिपूर्वकत्व वही कहते हैं कि, " ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम् " कणा० ६।१।२ अर्थात् ब्राह्मणनामक वेद भागमें नामकरण (सिद्धि) अर्थात् बुद्धिपूर्वकत्वका अनुमापक है जैसे लोकमें चैत्र मैत्र आदि नाम रखनेवालोंकी बुद्धिका आक्षेप करता है ब्राह्मणमें 'उद्भिदा यजेत' 'बलिभिदा यजेत' 'अभिजिता यजेत' विश्वजिता यजेत' इत्यादि नामकरण हैं इनमें 'उद्भिदा' इत्यादि नाम किसी स्वतंत्र पुरुषकी बुद्धिका आक्षेप करता है अर्थात् अलौकिक अर्थ तो हम लोगोंकी बुद्धिगोचर हुआ नहीं है कि 'उद्भिद्' इत्यादि नाम जो हम लोग रखसकें इससे ऐसे नामहीसे किसी एक स्वतंत्र पुरुषका बोध होता है और वैसा एक वेदपुरुष भगवान् है और ऐसे ही "बुद्धिपूर्वो ददाति" २ यहां भी "स्वर्गकामो गां दद्यात्" अर्थात् स्वर्गकी इच्छासे गोदान करना ऐसा कहनेसे वक्ताका यथार्थ ज्ञान जान पडता है गोदान करनेसे स्वर्ग होता है ऐसा निःसंशय ज्ञान हम लोगोंको प्रत्यक्ष नहीं। इससे यहां भी वैसा ही ज्ञानवान् स्वतंत्र पुरुष सिद्ध होता है ऐसे ही-

तथा प्रतिग्रहः--क० सू० ६ । १ । ४

इस चौथे कणादसूत्रका भी ऐसा ही अर्थ जानना चाहिये पृथ्वीदान देनेसे स्वर्ग होता है और कृष्णचर्मादि दान लेनेसे नरक होता है ऐसे हम नहीं निश्चय कर सक्ते इत्यादि रीतिसे वेदोंके आप्तोक्तत्व साधनद्वारा उनका प्रामाण्य साधन करते हुए कणादाचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनोंको वेद स्पष्ट मानते हैं यदि केवल मंत्रभागहीको वेद मानते तो पूर्वोक्त सूत्रोंमें दोनोंके उदाहरण दानपूर्वक लेख नहीं करते इससे कणादाचार्य भी ब्राह्मण भागको वेद मानते हैं इससे स्वामीजीका यह कहना कि, कात्यायनके विना और किसीने मंत्र ब्राह्मणको वेद नहीं कहा असत्य प्रतीत होगया अब ब्राह्मणके वेद होनेमें और प्रमाण सुनिये कि, गौतमजीने वेदप्रमाणनिरूपणावसर स्थूणानिखननन्यायसे वेदके प्रमाणहीको दृढ करानेके लिये आशंका की है ॥

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः । न्याय० अ० २ आ० १ सू०५७

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेदका प्रमाण नहीं हो सक्ता क्यों कि (अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः) उसके वाक्योंमें असत्य पूर्वापरविरोध दोवार कहना आदि दोष हैं असत्यका उदाहरण यथा " पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत " किये

पुत्रकी इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करै परन्तु कहीं पुत्रेष्टी करनेसे भी पुत्र नहीं होता जब कि, इस प्रत्यक्ष वाक्यका प्रमाण नहीं तौ " अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः " स्वर्गकी कामनासे अग्निहोत्र करै ऐसा जो वेदमें अदृष्टार्थ वाक्य है उसके (प्रामाण्यं) सत्यतामें कैसे विश्वास होवे यहाँ (तदप्रामाण्यम) इस सूत्रमें तत्पदसे वेदहीका परामर्श है इस रीतिसे वेदके अप्रमाणकी आशंका करके (अग्निहोत्रं) इस ब्राह्मणवाक्यका अप्रमाण दिखलाते हैं यदि ब्राह्मणको वेद न मानते होते तौ वेदके अप्रमाण दिखलानेके समय ब्राह्मणका अप्रमाण दिखाना तौ कान छूनेके समय कंधे लचकाने समान अति हास्यकारक होता इस कारण गौतमजी ब्राह्मणको वेद अवश्य मानते हैं क्यों कि दृष्टान्त उन्होंने मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंहीके दिये हैं सो भाष्यकारने खोलके लिख दिये हैं आगे इस शंकाका समाधान किया है और देखिये ॥

वाक्यविभागस्यचार्थग्रहणात् अ० २ सू० ६१

विध्यर्थवादानुवादवचनाविनियोगात् ६१ न्या०

इसपर वात्स्यायनजी लिखतेहैं "त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि युक्तानि विधिवचनानि अर्थवादवचनानि अनुवादवचनानीति तत्र विधिर्नियामकः यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु विनियोगो अनुज्ञा वा यथा अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ॥ "

यहाँ ब्राह्मणवाक्योंके विभागावसरमें वात्स्यायनजीके " अग्निहोत्रं " इस वाक्यके लिखनेसे इनकी व्याख्यप्रणालीसे (अपि) इस ब्राह्मण वाक्य सूत्रस्थ (तत्) पदसे संग्रह करना अवश्य गौतमजीको अभिमत है इस रीतिसे ब्राह्मणको वेद सभी ऋषि मानते हैं ॥

जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदि क्रम वेदोंमें वारंवार कहा है पर उनसे वेद पौरुषेय नहीं होसके इसी प्रकार लौकिक इतिहासोंको भी समझिये वेद सभी विद्याओंका मूल है इससे लौकिक जनोंकी सुगमताके लिये भगवान् परमेश्वरने याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, जनक इत्यादिके नामोल्लेखपूर्वक ब्रह्मविद्यादि विद्याओंका उपदेश किया है जैसे कि, सृष्टिको कहनेवाला वेद सृष्टिके पीछे बना है (यह नहीं), किन्तु सृष्टि ही अनादि प्रवाहसिद्ध वेदोंके पश्चात् हुई है इससे सृष्टिको वर्णन करनेवाले भी वेद कुछ सृष्टिके अनन्तर बने नहीं कहलाते ऐसे ही ब्राह्मणमें लौकिक इतिहास वर्णन करनेपर भी ऐतिहासिक अर्थोंकी उत्पत्तिके पश्चात् कालमें उत्पन्न वा बने ब्राह्मण नहीं कहला सकते और " तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च " इस अथर्ववेदमें इतिहास पुराणके आनेसे क्या वेद इतिहास पुराणके पीछे बना है कभी नहीं

इस प्रकार वेदमें इतिहास होनेसे भी सादित्व नहीं आता और व्याख्यान वा भाष्य करता अलग अलग हों यह कोई नियम नहीं है क्यों कि शंकरभाष्यमें "पश्वादिभिश्चाविशेषात्" इस अपने भाष्यकी आप ही व्याख्या शंकराचार्यजीने की है और पातंजल भाष्यमें भी "अथ शब्दानुशासनम्" इसका "अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः" इत्यादि व्याख्यान स्वयं भाष्यकारने किया है फिर जब भाष्यका व्याख्यान भाष्य कहलाता है तो वेदके व्याख्यानको भी वेद कहलानेमें क्या संदेह है (प्रश्न) ॥ ऋग्वेदा० भा० भूमिका पृ० ८६ पं० २८ ॥

द्वितीया ब्राह्मणे २ । ३ । ६० अष्टा०
चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । २ । ३ । ६२
पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । ४ । ३ । १०५
छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । ४ । २ । ६६

यहां पाणिनि आचार्य वेद और ब्राह्मणको पृथक् २ कहते हैं पुराण अर्थात् प्राचीन ब्रह्माआदि ऋषियोंसे प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प वेदव्याख्यान हैं इससे इनकी पुराणेतिहास संज्ञा की गई है यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको अभिमत होती तौ (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्दग्रहण न करते "द्वितीया ब्राह्मणे" इस सूत्रमें "ब्राह्मणे" इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतः प्राप्त है इससे जानते हैं कि, ब्राह्मण ग्रंथकी वेद संज्ञा नहीं और यदि छन्द पदसे ब्राह्मणका भी ग्रंथ पाणिनिको अभिमत होता तौ "छन्दोब्रा०" इस सूत्रमें ब्राह्मण ग्रहण क्यों करते केवल छन्दसि कह देते क्यों कि ब्राह्मणभी छन्द ही हैं (उत्तर) वाह ! व्याकरणमें भी आपकी बहुत पहुंच है यह कहना सर्वथा आपका अनुचित है देखिये "द्वितीया ब्राह्मणे २।६।६० " इस सूत्रसे ब्राह्मण विषयक प्रयोगमें अवर्तक और पण धातुके समानार्थक दिव धातुके कर्ममें द्वितीया विभक्ति होतीहै यथा "गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः " यहां शतस्य दीव्यति इत्यादिमेंकी नाई "दिवस्तदर्थस्य २ । ३ । ५८" इस सूत्रसे गोरस ऐसी षष्ठी प्राप्त थी सो नहीं "गामस्य" ऐसी द्वितीया की जाती है यहां ब्राह्मणरूप वेदैकदेशहीमें द्वितीया इष्ट है न कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक श्रुति छन्दः आम्नाय निगम वेद इत्यादि पदसे व्यवहार्य्य समस्त वेदमात्रमें और "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २ । ३ । ६२ " इस उत्तर सूत्रसे मंत्रब्राह्मणरूप छन्दोमात्रके विषयमें चतुर्थीके अर्थमें षष्ठीका विधान किया जाता है "पुरुषमृगश्चंद्रमसः" "पुरुषमृगश्चन्द्रमसे" इत्यादि इस सूत्रसे छन्दसि ... से मंत्रब्राह्मणरूप समस्त वेदमात्रका संग्रह पाणिनि आचार्य्यको अभिमत

है, अत एव इसके उदाहरणमें (या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वो जायते तिस्रोरात्रीरिति तस्या इति प्राप्ते, यां मलवद्वाससं संभवंति यस्ततो जायते सोभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनो यां पराचीं तस्यै ह्रीतमुख्यप्रगल्भा या स्नाति तस्या अप्सुमारुकोयाभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा या प्रलिखते तस्यै खलतिरपस्मारी याङ्क्ते तस्यै काणो यादतो धावते तस्यै श्यावदन् या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबो या रज्जुं सृजति तस्या उद्बंधुको या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादुको जायते अहल्यायै जारमनाय्यै तन्तुः)इत्यादि बहुतसे ब्राह्मणोंहीको प्रमाणमें भाष्यकारने दिया है यदि इस सूत्रमें छन्दोग्रहण न रहेगा तो पूर्व सूत्रसे 'ब्राह्मणे' इस पदकी अनुवृत्ति लानेपर भी केवल ब्राह्मणहीमें षष्ठी होगी वेदमात्रसे नहीं इस कारण इस सूत्रसे (छन्दसि)ग्रहणका विशिष्ट फल हुई है और ब्राह्मणकी भी छन्दोरूपतामें भाष्यकार सम्मति देतेहीहैं फिर इस सूत्रमें छन्दो ग्रहणको व्यर्थ कहते हुए आप निरे स्वच्छन्द नहीं हैं तो और कौन है और नहीं तो (मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्विन् ३ । २ । ७१ अवेयजः ३ । २ । ७२ विजुपेछन्दसि ३ । २ । ७३) ऐसे क्रमिक सूत्रमें पाठसे अन्तिम सूत्रमें "छन्दसि" ऐसा कहनेसे मंत्रभागमें भी छन्दोरूपता न सिद्ध होने पायेगी देखिये जैसे (ब्राह्मणे) ऐसा कहकर (छन्दसि*) ऐसा कहनेसे ब्राह्मणका छन्दपदमें व्यवहार पाणिनिको अभिमत नहीं है ऐसी उत्प्रेक्षा आप करते हैं तैसे ही पूर्व सूत्रमें मंत्र ऐसा कहकर (विजुपे छन्दसि) ऐसा कहनेवाले पाणिनिको मंत्रभागमें भी छन्दपदसे व्यवहार अभिमत नहीं है ऐसा कहना पड़ेगा तब तो ब्राह्मणद्वेषी आपके शिरपर भी महाअनिष्ट आपड़ेगा और भी "अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि ८। २ ।७०" इस सूत्रमें पाणिनि (छन्दसि) ऐसा कहकर "भुवश्च महाव्याहृतेः ८ । २ । ७१ " इस उत्तर सूत्रमें महाव्याहृते ऐसा कहते हैं इससे महाव्याहृतिकी भी छन्दोभावच्युति अवश्य होजायगी क्यों कि "ब्राह्मणे" ऐसा कहकर "छन्दसि " ऐसा कहना ही ब्राह्मणका छन्दोभावका अभाव साधन करेगा और "छन्दसि " ऐसा कहकर "महाव्याहृतेः" ऐसा विशिष्ट व्याहृतिका कहना महाव्याहृतिका छन्दोभावका नाशक न होगा ऐसी आंखमें धूल तो आप नहीं डाल सकते इस हेतुसे पाणिनि आचार्य प्रयोग साधुत्वके अप्रसंग और अतिप्रसंग निवारण करनेकी इच्छासे कहीं सामान्यसे (छन्दसि) ऐसा कहकर विशेषसे "महाव्याहृते" ऐसा कहते हैं और कहीं तो विशेषसे " ब्राह्मणे " "मन्त्रे" ऐसा कहकर सामान्यसे "छन्दसि" ऐसा कहते हैं इससे यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको इष्ट न होती तो (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्दोग्रहण वह क्यों करते क्यों कि (द्वितीया ब्राह्मणे) इस

* व्याकरणज्ञाता समझ सकतेहैं ग्रेरठी स्वामीका यहां कैसा निष्फल प्रयास है ।

सूत्रसे ब्राह्मणे इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतः सिद्ध थी इससे जानते हैं कि,मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है और आपका कहना सब मिथ्या है और, (छन्दोब्राह्मणानीति) ब्राह्मणों और मन्त्रोंका छन्दोभाव समान होनेसे पृथक् ब्राह्मण व्यर्थ है. ऐसा प्राप्त था तथापि ब्राह्मण ग्रहण यहां "अधिकमधिकार्थम्" इस न्यायसे ब्राह्मण विशेषके परिग्रहार्थ है इससे (याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि सौलभानि) इस प्रयोगसे पूर्वोक्त नियम नहीं हुआ वार्तिककार भी (याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः) ऐसा कहते हुए इस सूत्रमें ब्राह्मण, ग्रहणका प्रयोजन यही सूचित कराते हैं और "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५" इस सूत्रमें ब्राह्मणका पुराणप्रोक्त ऐसा विशेषण कहते हुए पाणिनिको यही अर्थ अभिमत हैं अन्यथा यदि ब्राह्मण विशेषके परिग्रह करनेकी इच्छा न होती तौ (पुराणप्रोक्तेषु०) इसके कहनेसे आचार्यकी प्रवृत्ति व्यर्थ होजाती चाहैं स्वामीजी आप कुछ समझें परन्तु भाष्यक श्रम करनेवाले विद्वानोंको यह, बात कुछ परोक्ष नहीं है इस हेतु हम इसमें कुछ और नहीं कहा चाहते, और मंत्रभागकी नांई ब्राह्मणभागका भी प्रामाण्य वारंवार सिद्ध कर आये हैं अत एव पुराणप्रामाण्य व्यवस्थापनके प्रसंगसे (प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणानां प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते) ऐसा वात्स्यायनमहर्षिने कहा है यदि ब्राह्मणोंका स्वतःप्रामाण्य न हो तौ दूसरेकी प्रामाण्यबोधकता कैसे उनमें संभवित होसक्ती है क्यों कि ब्राह्मणभाग स्वयं जबतक प्रमाणपदवीपर व्यवस्थित न होवेगा तबतक इतिहास पुराणके प्रामाण्यका व्यवस्थापन करनेमें कैसे समर्थ हो सकेगा यह कहावत प्रसिद्ध है कि (स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयिष्यति) इससे श्रुति वेद शब्द आम्नाय, निगम इत्यादि पद मंत्रभागसे लेकर उपनिषद् पर्यंत वेदोंका बोधक है यह शास्त्र मार्मिक विद्वानोंका परामर्श है अत एव (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः) श्रुतिको वेद कहते हैं धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ऐसा आस्तिक जनोंके जीवनौषध भगवान् मनुजीने भी माना है अत एव वेदान्तचतुरध्यायीमें भगवान् व्यास मुनि उपनिषदोंके कहनेके इच्छुक होकर ॥

श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् अ० २ पा० १ सू० २७
पराऽऽत्तुतच्छ्रुतेः अ० २ पा० ३ सू० ४१
भेदश्रुतेः अ० २ पा० ४ सू० १८
सूचकश्चाहिश्रुतेराचक्षतेचतद्विदः अ० ३ पा० २ सू० ४
तदभावोनाडीषुतच्छ्रुतेरात्मनिच अ० ३ पा० २ सू० ७
वैद्युतेनैवततस्तच्छ्रुतेः अ० ४ पा० ३ सू० ६

इत्यादि सूत्रोंमें वारंवार श्रुतिपद शब्दपदका उपादान करते हैं श्रुतिसे उपनिषदोंको ही ग्रहण किया है और श्रीकणादाचार्यने भी दशाध्यायीके अन्तमें (तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्)ऐसा आम्नायपदसे वेदके प्रामाण्यका उपसंहार किया है यहां आम्नाय पद संहितासे लेकर उपनिषद् पर्य्यन्त समस्त वेदका बोधक है क्यों कि इसके समान तन्त्र गौतमीय न्यायदर्शनके (मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्)इस सूत्रमें तत्पदसे उपादेय उपनिषदोंके संहितावाक्यकलापहीके प्रामाण्यका अवधारण किया है और वहांके तत्पदकी मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदमात्रकी बोधकता पूर्वमें निश्चित कर ही चुके हैं और मन्वादि स्मृतियां इसी अर्थके अनुकूल हैं देखिये-

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षाविप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ अ० ६ श्लो० २९

दीक्षायुक्त ब्राह्मण वनमें वास करता हुआ आत्मज्ञानके अर्थ अनेक उपनिषदोंकी श्रुति विचारे यहां (औपनिषदीः श्रुतीः) ऐसा कहनेसे उपनिषदोंका श्रुतिपदवाच्यत्व स्पष्ट सिद्ध होता है और स्वामीजीकी लीला देखो सौवर पृ० ७ पं० ७

न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः १ । २ । ३३

जो सुब्रह्मण्या ऋचामें यज्ञकर्ममें पूर्व सूत्रसे एकश्रुतिस्वर प्राप्त है सो न हो किन्तु जो उनमें स्वरित वर्ण हो उनके स्थानमें उदात्त होजाय सुब्रह्मण्या एक ऋचाका नाम है उसका व्याख्यान शतप० ब्रा० तीसरे काण्डके तीसरे प्रपा० के प्रथम ब्राह्मणमें सैत्रहवीं कण्डिकासे लेकर बीसवीं कण्डिकातक कियाहै ॥

समीक्षा-इसमें स्वामीजीसे पूछना है कि, आप यह तो कहें कि, जिस ऋचाका व्याख्यान मौजूद है वह मन्त्र भी अवश्य होगा यदि दयानंदजी कहीं उस ऋचाको दिखादें तो हम भी इस बातको मानें कि, हां मन्त्र ब्राह्मण मिलकर वेद नहीं मन्त्रहीका नाम वेद है परन्तु पाणिनिजी भी मन्त्र ब्राह्मण वेद मानते हैं,इसी कारण सुब्रह्मण्या शतपथकी श्रुतिमें भी मन्त्रवत् स्वरका विधान किया है पाठकवर्ग किसी दयानंदीसे यह प्रश्न करें तो देखें क्या उत्तर देते हैं ॥

स० प्र० पृ० २०२ पं० २४

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि वायु आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियोंके आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया ॥ २१२ । १६ ॥

यों तो दयानंदके मतसे वेदकी उत्पत्ति हुई अब ब्राह्मणका प्रादुर्भाव सुनिये-

स० प्र० पृ० २०४ पंक्ति २१

वेदोंका अर्थ उन्होंने कैसे जाना (उत्तर) परमेश्वरने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस अर्थके जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थ हुए तब तब परमात्माने अभीष्ट मन्त्रोंके अर्थ जनाये जब बहुतोंके आत्मामें वेदार्थका प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वह अर्थ और ऋषि मुनियोंके इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये उनका नाम ब्राह्मण वेदका व्याख्यान हुआ ॥ २१४ ॥

समीक्षा–अब इसपर यह विचार करना है कि, जब ईश्वरके प्रकाश किये मंत्र ईश्वरोक्त कहे जांय तो परमात्माके प्रकाश किये मन्त्रार्थ ईश्वरोक्त क्यों न कहे जांय स्वामीजीकी अच्छी बुद्धि है जिन दो वस्तुओंका एक ही कर्ता है उनमें एक उसके द्वारा निर्गत तो उसका वचन माना जाय दूसरा न माना जाय इसमें क्या प्रमाण दोनोंकी उत्पत्ति भी एक ही प्रकार है इससे ईश्वरोक्त दोनों ही हो सक्ते हैं,जैसे अग्नि वायु रवि मंत्रोंमें अनेक स्थानमें आयेहैं इसी प्रकार व्याख्यान जिसको तुम कहते हो, ब्राह्मणोंमें उन १ महर्षियोंके नाम आये हैं, इत्यादि जब दोनोंमें एक ही बात है तो दोनों एक ही क्यों न कहे जांय और यहां स्वामीजीने साक्षात् ईश्वरका स्वरूप भी मान लिया अब आकारमें क्या सन्देह रहा, कहांतक कहें सत्यार्थप्रकाशका जो पत्रा उठाकर देखो वहां ही अशुद्धि है यह दिग्दर्शनमात्र है ॥

बौधायन भी 'मंत्रब्राह्मणमित्याहुः' मंत्र और ब्राह्मण दोनोंका नाम वेद मानते हैं 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' मंत्रब्राह्मणका नाम वेद यही आपस्तम्ब मानते हैं 'मंत्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः' यही सायणाचार्य मानते हैं 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदशब्दं महर्षयः' सर्वानुक्रमणीवृत्ति भूमिकामें यही सिद्धान्त है और गोदुरध, परीक्षितकी कथा त्रितवृत्रासुरवधादि बहुतसी कथा अथर्वके मंत्रभागमें विद्यमान ही हैं वैसे ही ब्राह्मणभागमें हैं इससे दोनों मिलकर वेद कहाते हैं ॥

और श्रुतिशब्द वेदका आम्नाय वेदका पर्य्याय शब्द है जैसे कि, मनुजीने कहा है (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः) इत्यादि पूर्व लिख आये है जब मनुजीने इनदोनोंको श्रुति माना और व्यवहार भी वैसा ही किया तब ब्राह्मणोंका वेदभाव अक्षय हुआ, क्यों कि ब्राह्मणोंहीके शेषभूत तो उपनिषद् है इसी कारन वेदान्त नामसे विख्यात हैं अतः यह कात्यायनवाक्य कि, "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" मंत्र ब्राह्मण दोनोंका वेद नाम है यह अचल सिद्धान्त है नहीं तो दिखाया होता यह वाक्य कि, वेद ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणके आदि अन्तमें वेद होना भी नहीं लिखा यह केवल भाग जाननेकी इच्छासे नहीं लिखा जिसमें यह सिद्ध

होता रहे कि, यह मंत्रभाग है यह ब्राह्मण यदि दोनोंहीको एक पद दिया जाता तो मंत्र ब्राह्मण ऐसे मिश्रित हो जाते जिससे यह निर्धारण करना कठिन होजाता कि, यह श्रुति मंत्रकी है या ब्राह्मणकी कुछ ब्राह्मण भागके अन्तमें पुराण शब्द तो लिखा ही नहीं है लिखा तो यही है कि, 'ब्राह्मण' सो यह भाग निर्धारण करनेको लिखा है. इससे मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है, यह सिद्धान्त निश्चित है और जब आप ही मंत्रभाग ब्राह्मणभाग कहते हैं तो भाग मानना तुम्हारे ही वचनसे सिद्ध है इस खंडनमें वेदभाष्य भूमिकाका भी खंडन आगया है और वेदभाष्य-भूमिका पृ० २७३ पंक्ति ७ में आपने संहिताको मंत्रभाग लिखा ही है ॥

सत्यार्थप्रकाशकी विचित्र लीला देखिये पृ०२०९ पं० २० (प्र०) वेदोंकी कितनी शाखा हैं (उत्तर) एकसो सत्ताईस ।

समीक्षा-समझे साहब कहीं तो ग्यारह सौ सत्ताईस बताईं यहां एक सहस्रकी चटनी कर गये ॥ पांचवीं वारके छपे पृ० २१७ पं० २९ में ११२७ लिखी हैं पर महाभाष्यके मतसे ११३१ होती हैं ॥

फिर आपने यह भी एक तमाशेकी बात लिख दी है कि, जो कोई पूँछे कि, तुम्हारा क्या मत है तो कहना कि, वेद मत यदि आपका वेदका मत है तो आपने तो वेदमें रेल तार कमेटी वर्ण संकरता सब एकजाति हो जाओ एक स्त्री ग्यारहतक पति करले इत्यादि बहुतसी बातें लिखी हैं तो आपके मतवाले क्या करें आपके मतमें ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता जैसा करना वैसा भरना फिर ईश्वरका स्मरण क्यों करना फिर जिस मतमें ईश्वरहीसे प्रेम नहीं वह मत ही क्या है, वेदके नामसे लोगोंको जालमें फँसाना है जैसे पीतलके ऊपर मुलम्मा करके सोना बनाके कोई भोलेभालेको ठग लेता है ऐसी यह स्वामीजीकी चाल है, आपके वेदार्थको दूरहीसे नमस्कार है वेदका तो नाम है अर्थ तो मनमाने घरमें ही किये हैं जो कि, निघंटु निरुक्त प्राचीन भाष्यादिसे संपूर्ण विरुद्ध हैं इस कारण आपका वेदार्थ ठीक नहीं और उन अर्थोंके अनुसार वैसा मत भी ठीक नहीं उसके अनुसार नियोगमत आदि सिद्ध होते हैं ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशांतर्गतसप्तमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥१०।७९० ।

॥ श्रीः ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गताष्टमसमुल्लासस्य खण्डनं आरभ्यते ।

वेदान्तप्रकरणम्--सृष्ट्युत्पत्तिप्रकरणम् ।

स० पृ० २०७ पं० १२

पुरु॑षऽए॒वेदꣳ सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भा॒व्य॑म् ।
उ॒ताम़ृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥ यजु० अ० ३१ मं० २

इसका अर्थ पृ० २०८ पं० ४ हे मनुष्यो ! जो सबमें पूर्ण पुरुष और जो नाश-रहित कारण और जीवका स्वामी जो पृथिव्यादि जड और जीवसे अतिरिक्त है वही पुरुष सब भूत और भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत्का बनानेवाला है ॥ पृ० २२१ । ८

समीक्षा–स्वामीजीके अर्थोंकी कैसी विचित्र महिमा है इस मन्त्रमें जीव प्रकृति और ईश्वरका वर्णन कर बैठे हैं वेदांत विषयमें आता तो कुछ भी नहीं परन्तु दाल चावलकी खिचडी पकाये विना रहा भी नहीं जाता देखिये इसका यह अर्थ है ॥

(इदम्) यह (यत्) जो (भूतम्) अतीत ब्रह्मसंकल्प जगत् है (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य संकल्प जगत् है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) बीज वा अन्न परिणाम वीर्यसे (अतिरोहति) वृक्ष नर पशु आदि रूपसे प्रगट होता है (सर्वम्) यह सब (अमृतत्वस्य) मोक्षका (ईशानः) स्वामी (पुरुषः) नारायण (एव) ही है उसका अन्य न होनेसे ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे सब जगत् ब्रह्मरूपही है इससे ब्रह्म अनन्त है, स्वामीजी ब्रह्मको अन्यो-न्याभावप्रतियोगी मानते हैं क्यों कि, जीव जगत् जड प्रकृतिमें ब्रह्मका भेद मानते हैं तो यही ऊपरकी श्रुतिसे विरोध पडेगा और (ब्रह्मविकारी भवितुमर्हति अन्योन्याभावप्रतियोगित्वात् पृथिव्यादिवत्) इस अनुमानसे ब्रह्ममें विकारत्वप्र-सक्ति होगी ॥

स० पृ० २०७ पं० १४ ॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयंत्य-भिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति तैत्तिरी० भृगुवल्ली अनु. १

पृ० २२८ में इसका अर्थ लिखा है जिस परमात्माकी रचनासे यह सब पृथि-

यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिसमें प्रलयको प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है उसके जाननेकी इच्छा करो ॥ २१८ । १२

समीक्षा–यह क्या स्वामीजी इतना ही पद लिखकर गडप गये (जिससे जीव) इससे तो प्रत्यक्ष है कि, जिस परमेश्वरसे जीव उत्पन्न होते हैं और आप आगे इनको नित्य मानते हैं नित्य भी मानना और जन्म भी कहना यह वैदिक विरोध रसातलमें अर्थकर्ताको क्यों न ले जायगा, सूधा अर्थ है कि, जिससे यह प्राणी उत्पन्न होते और उसीसे जीते और अन्तमें उसीमें प्रवेश करते हैं उसे ही ब्रह्म जानो अब प्रकृति जीव नित्य और पृथक् न रहे ॥

पृ० २०८ पं० १८

द्वासुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते ।
तयोरन्यःपिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योअभिचाकशीति ॥
ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः । य० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणोंसे सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भावसे संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि हैं और (समानं) वैसे ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न भिन्न होजाताहै वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनोंके गुणकर्म स्वभाव भी अनादि हैं इन जीव ब्रह्ममेंसे एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसारमें पाप पुण्यरूप फलोंको "स्वाद्वत्ति" अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मोंके फलोंको (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है जीवसे ईश्वर ईश्वरसे जीव और दोनोंमें प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनों अनादि हैं शाश्वती अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजाके लिये वेदद्वारा परमात्माने सब विद्याओंका बोध किया है ॥ २१८ । २३

समीक्षा–जैसे किसीके हाथ हल्दीकी गिरह लग गई और वह पसारी बन बठा ठीक यही दृष्टांत स्वामीजीपर है बस उनके शिष्योंको और उन्हें द्वैतमतःरणको यह श्रुति सजीवनमूल है परन्तु उनकी बुद्धि तो * अज्ञानतिमिरसे आच्छादित है उन्हें सूझे कहांसे वास्तव इसका अर्थ यह है जो प्रकाश करते हैं ॥

प्रथम तो इस मंत्रमें यह प्रश्न है कि, यह मंत्र चेतनमें भेदसिद्ध करता है या भोक्ता अभोक्ता रूप पक्षियोंके भेदको सिद्ध करता है जो चेतनमें भेदसाधक कहो तो इस

* मा० प्र० मनमाना शोध तो पांचवीं वार भी न हुआ आप नया सत्यार्थप्रकाश बनावें ।

मंत्रमें ऐसा कोई पद नहीं जो चेतनमें भेद साधन करै इस कारण चेतनमें भेद नहीं किन्तु दो सुपर्णोंका बोधन करता है सो भी सुपर्ण वेदप्रतिपाद्य होने चाहिये मन्त्रका अर्थ दो सुपर्ण है (द्वासुपर्णा) दो सुपर्णा (सयुजा) परस्पर सम्बन्धवाले (सखाया) समान प्रीतिवाले अर्थात् जिनका प्रतीत होना तुल्य है वे दोनों (समानं) एक (वृक्षं) वृक्षको (परिषस्वजाते) आश्रय कर रहे हैं (तयोः) तिन दोनोंमें (अन्यः) एक (पिप्पलं) (स्वाद्वत्ति) वृक्षफलको भोक्ता है और दूसरा (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ (अभिचाकशीति) प्रकाश करता है यहां प्रकाश करनेवाला सुपर्ण मंत्रप्रतिपाद्य है यथा हि-

एकःसुपर्णःससमुद्रमाविवेशसइदंविश्वंभुवनंविचष्टे । तंपाकेनमनसापश्यमन्तितस्तंमातारेह्ळिसउरेह्ळिमातरम्

ऋ० मं० सू० मं० ४

अर्थ-(एकः) एक (सुपर्णः) प्राणवायु उपाधिक सुपर्णवत् सुपर्ण है (स) है (समुद्रम्) समुद्रवत् विस्तृत अन्तरिक्षको (आविवेश) प्रवेश करता है (सः) सोई प्राणोपाधिक परमात्मा (इदम्) इस (विश्वं भुवनम्) सर्व लोकको (विचष्टे) पश्यति, प्रकाशित करता है (तम्) तिस प्राणदेवको (पाकेन मनसा) परिपक्व मन करके मैं उपासक (अन्तितः) अपने हृदयकमलमें (अपश्यम्) देखता हुआ किस प्रकारसे जो (तम्) तिस प्राणदेवको अध्ययनकालमें (माता) मा वाणी सो (रेह्ळि) अपने आपमें लीन कर लेती है और तूष्णीं भावकालमें वा स्वापकालमें वह प्राणदेव (मातरम्) वाक्को अपने आपमें लीनकर लेता है एक तो सुपर्ण इस मंत्रसे प्राणोपाधिक ईश्वर चेतन प्रतिपाद्य है यहां जो लीनता कही है सो केवल उपाधि धर्म्मका व्यवहार विशिष्टमें करा है और जो प्राण उपाधिक ईश्वर प्रतिपाद्य इस मंत्रमें न होता तो सर्वजगत् प्रकाशकर्ता कैसे कहते निघण्टुके अ० ३ । खं० ११ में (विचष्टे) पश्यतिकर्मा कहा है इससे केवल जड प्राण इस मंत्रमें प्रतिपाद्य नहीं और केवल चेतन भी प्रतिपाद्य नहीं क्योंकि, वाक्में लीनता कही है, इससे प्राणोपाधिक चित् प्रतिपाद्य है यह सुपर्ण तो केवल प्रकाशक अभोक्तारूपसे मंत्रप्रतिपाद्य है और भोक्तारूप बुद्ध्युपाधिक जीव चित् है तथा हि-

तद्यथास्मिन्नाकाशेश्येनोवासुपर्णोवाविपरिपत्यश्रान्तःसंहत्यपक्षौ सल्लयायैवध्रियतएवमेवायंपुरुषएतस्माअन्तायधावतियत्रसुप्तोन कञ्चनकामंकामयतेनकञ्चनस्वप्नंपश्यति बृ०उ०अ०६ब्रा०३कं०

भावार्थ-जैसे इस प्रसिद्ध आकाशमें श्येन बडे शरीरवाला वा सुपर्ण शरीर-वाला बाज है सो अधिक भ्रमण करनेसे श्रमको प्राप्त होकर पक्षोंको (संहत्य) विस्तार करके (सल्याय) अपने नीडको (ध्रियते) अनवस्थित हो गमन करता है ऐसे यह (पुरुष) जीव बुद्ध्युपाधिक (अन्तः) अन्तरस्थान जो हृदयकमल है तहांको दौडता है जहां सोता हुआ कुछ भी (कामं) विषयको (न कामयते) नहीं चाहता और कुछ स्वप्न भी नहीं देखता इस श्रुतिमें सुपर्ण दृष्टान्तसे जो बु-द्ध्युपाधिक जीव सुपर्णवत् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमें गमन करनेवाला द्वितीय सुपर्ण कर्मफल भोक्ता प्रतिपादन करा है सो यह दो सुपर्ण वाक्यान्तरप्रतिपाद्य ही द्वासु-पर्णा इत्यादि मंत्रसे कहे हैं तिन दोनोंका प्राणबुद्धि उपाधि भेदसे भेद वेदान्ति-योंके सिद्धान्तमें स्वीकृत ही है, चेतन ब्रह्म सर्वात्मरूपसे (सोसावहम्) इस मंत्रमें प्रतिपादन कराहै तिसके भेदका साधन कौनहै अर्थात् तिसके भेदका साधन कोई मंत्र नहीं यह भेद केवल मोह और उपाधिसे प्रतीत होता है वास्तवमें जीव कुछ और नहीं है यही आत्मा जीवरूपसे मोहके होनेसे प्रतीत होता है यह मंत्र ही कहता है ॥

समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानः ।
जुष्टंयदापश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमितिवीतशोकः ॥
यह मंत्र श्वेता॰तरके अ॰ ४ । ७ में आयाहै ।

(समानेवृक्षे) एक शरीररूपीवृक्षमें (पुरुषः) परमात्मा ही (निमग्नः) निमूढ है (अनीशया) अनीशबुद्धिसे (मुह्यमानः) मोहको प्राप्त हुआ (शोचति) मैं सुखी दुःखी हूं ऐसा शोच करताहै (य:) जब (अन्यम्) यथार्थ दूसरे (जुष्टम्) नित्य तृप्त दोषरहित (ईशम्)अपने ईश्वरीय रूपको तथा (अस्य महिमानम्)इस अपने रूपकी महिमाको अनन्यतासे (पश्यति) देखता अर्थात् साक्षात्कार करता है तब (वीत-शोकः) शोकरहित हो जाता है यहां महिमाका यही अर्थ है अपने परमेश्वर रूपको प्राप्त होता है इस कारण वास्तवमें वह एक ही है मोहसे भेद तथा दो प्रतीत होते हैं और (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) इसका अर्थ पूर्व करचुके हैं ॥

सत्या॰ पृ॰ २०९ पं॰ ४

अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीः प्रजाः सृजमानांसरूपाः ।
अजोह्येकोजुषमाणोनुशेतेजहात्येनांभुक्तभोगामजोन्यः॥श्वेता॰४।५

प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी यह जन्म लेते अर्थात् यह तीन सब जगतके कारण हैं इनका कारण

कोई नहीं इस अनादि प्रकृतिका भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता है और न उसका भोग करता है ॥ २१९ । १२ ॥

समीक्षा-दयानंदजीने सत्या० पृ० ६९ में दश उपनिषद् प्रमाण माने हैं पर यह वचन श्वेताश्वतर उपनिषद्का है जो उनके प्रमाण किये उपनिषदोंमें नहीं है अपने अर्थ सिद्धिको और उपनिषद् भी माने हैं दूसरेके प्रमाणमें कह देते हैं हम यह नहीं मानते. भला इसमें वेदमंत्रका प्रमाण क्यों न लिखा यहां तो लिखा कि, प्रकृति जीव परमात्माका जन्म नहीं होता इससे निश्चय होता है कि, एक अज शब्द जीववाचक है और द्वितीय अज शब्द ईश्वरवाचक है यह स्वामीजीने समझा होगा परन्तु यदि यहां ईश्वरका ग्रहण करोगे तो (जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः) इस श्रुतिभागकी असंगति होगी क्यों कि (भुक्तो भोगो यया सा भुक्तभोगा तां भुक्तभोगामेनां प्रकृतिं जहाति) भोग लिया है भोग पूर्वकालमें जिससे तिस प्रकृतिको त्याग देता है ऐसा अर्थ होनेसे परमेश्वरमें सुख दुःख साक्षात्कार रूप भोग मानना असंगत है इस कारण इसमें अनुत्पन्न साक्षात्कार और उत्पन्न साक्षात्कार जीवांश ग्रहण है स्वामीजी यहां जीवको जन्मरहित कहते हैं और पृ० १९४ जो विभु हो तो जागृत् स्वप्न सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग आना जाना कभी नहीं होसक्ता यह लिखते हैं यहां उसका परिच्छिन्न मानकर जन्म मानते हैं इनकी अनभिज्ञताका क्या ठिकाना है अब इस श्रुतिका यथार्थ अर्थ लिखते हैं ॥

अजावत् अजारूप जो एक लोहितशुक्लकृष्णरूपवाली प्रकृति है अर्थात् रक्त शुक्ल कृष्णरूपवाली तेज जल पृथिवीरूप सद्रूप ब्रह्म कार्यभूत प्रपंचरूप प्रकृति अपने समान रूपवत् बहुतसी प्रजाको उत्पन्न करतीको अनुत्पन्न साक्षात्कार एक अज अर्थात् जीव सेवन करताहुआ तिसके पश्चात् गमन करता है, अर्थात् अपने कर्मप्राप्तसे प्रकृति भोगता है और भुक्तभोग इस प्रकृतिको उत्पन्न साक्षात्कार और दूसरा त्याग देता है अब यहां यह विचार कर्तव्य है जो रक्त शुक्ल कृष्णरूपवाली प्रकृति है सो अनादि अर्थात् अजन्य है यह किसकी बुद्धिमें आसक्ता है (विमता प्रकृतिजन्या रूपवत्त्वात् घटवत्) इस अनुमानसे सादि सिद्ध होती है इस कारण इस श्रुति वचनसे अनादि प्रकृति नहीं सिद्ध हो सकती और इससे पूर्व वाक्य देखनेसे ब्रह्मतादात्म्यापन्न भिन्नाभिन्न विलक्षण प्रकृति सिद्ध होती है यथाहि-

तेध्यानयोगानुगताअपश्यन्देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम् ।

श्वे० अ० १ मं० ३

वे ब्रह्मवादी ब्राह्मण योगाभ्यास करके परमात्मामें अनुगत अर्थात् प्रवीण

कर देव परमात्माकी आत्मरूप शक्ति तादात्म्य संबंधसे वर्तमान अपने कार्योंसे आच्छादितको योगज प्रत्यक्षसे देखते हुए इस कहनेसे भिन्न २ विलक्षण अचिन्त्य कि सिद्ध होगई ॥ इस श्रुतिमें कल्पना करके अजात्व है अजावत् अजा है जैसे कमें कोई अजा नाम छागी लोहित कृष्ण शुक्लरूपवाली अपने तुल्य प्रजा उत्पन्न रै तिसके पीछे कोई अज गमन करता है कोई अज छाग भुक्तभोगको त्याग ता है तैसे ही यह प्रकृति है और इसी प्रकारकी अजात्व कल्पना व्यासजी अपने त्रमें लिखते हैं ॥

कल्पनोपदेशाच्चमध्वादिवदविरोधः शा० अ० १ पा० ४ सू० १०

अजावत् अजा ऐसी कल्पनाका उपदेश अजा मंत्रमें होनेसे अविरोध है जैसे करणान्तरमें अमधु आदित्यको देव मधु कहा है और अधेनुवाकको धेनु कहा है वल कल्पना करके देवताओंका मोदन हेतु होनेसे मधु और सर्व कामना पूरक नेसे धेनु आदित्य और वाकका कहा है ॥

और जब कि, सब कुछ ईश्वरहीने उत्पन्न किया है तो प्रकृति नित्य कैसे ॥

तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः ।
वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ।
ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नात्पुरुषः सएवाएषपुरुषोऽन्नरसमयः तैत्ति०
१ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

इदं सर्वमसृजत् यदिदंकिंचेति । तैत्तिरी० २ अनु० ६

आत्मावा इदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत्किंचन ३ ऐतरेय उप० १

अर्थ–उस आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे थिवी, पृथिवीसे ओषधी, ओषधीसे अन्न, अन्नसे पुरुष हुआ है इस कारण यह रुष अन्नरसमय है ॥ १ ॥

जो कुछ भी यह है सब परमेश्वरने बनाया है ॥ २ ॥

प्रथम एक आत्मा ही था अन्य कुछ नहीं ॥ ३ ॥

और (नासदासीत्) इत्यादि वेदमंत्र जो पीछे लिख आये हैं कि प्रलयकालमें त्व रज तम प्रकृति आदि कुछ भी नहीं था इस कारण प्रकृतिकी ईश्वरके समान त्य मानना ठीक नहीं ॥

स० पृ० २०९ पं० १२

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहं-

फारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः । सांख्य० १।६१

(सत्त्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्यः अर्थात् जडता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है उससे महत्तत्त्व बुद्धि उससे अहंकार उससे पंचतन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इंद्रियां तथा ग्यारहवां मन पांच तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पांच भूत ये चौवीस और पचीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है ॥ २१९ । २०

समीक्षा—स्वामीजी जो सूत्रार्थ बिगाडते हैं कि, पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर क्या कपिलदेवजी पर गिनती नहीं आती थी जो जीव पचीस और परमेश्वर २६ वाँ प्रगट न लिखकर पचीसहीमें समाप्त कर दिया स्वामीजीके जीव ईश्वर दो अर्थ ठीक नहीं यहां पुरुष शब्दसे एक ही चेतन आत्मा ग्रहण किया है॥

स० पृ० २०९ पं० २२ से पृ० २११ पं० १ तक

(प्र०) सदेव सोम्येदमग्रआसीत् १ छा० प्र० ६ खं० २
असद्वाइदमग्रआसीत् २ तैत्ति० ब्रह्मा० अनु० ७
आत्मैवेदमग्र आसीत् ३ बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १
ब्रह्मवाइदमग्रआसीत् ४ श० ११ । १ । ११ । १

ये उपनिषद् वचन हैं हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृष्टिके पूर्व सत् १ असत् २ आत्मा ३ और ब्रह्मरूप ४ था पश्चात् ॥

तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेति १ सोकामयत बहुस्यांप्रजायेयेति
२ तैत्ति० ब्रह्मा० अनु० ६

यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है वही परमात्मा अपनी इच्छासे बहुरूप हो गया है १ । २

सर्वंखल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन ॥

यह भी उपनिषद्का वचन है जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नानाप्रकारके पदार्थ कुछ भी नहीं किंतु सब ब्रह्मरूप है (उत्तर) क्यों इन वचनोंका अनर्थ करते हो क्यों कि उन उपनिषदोंमें ॥

अन्नेनसोम्यशुंगेनापोमूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्यशुंगेनतेजोमूलमन्विच्छ तेजसासोम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाःसोम्ये

मास्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः* ॥ छा० प्र० ६ खं० ८ मं. ४

छान्दोग्यउपनि० हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्यसे जलरूप मूल कारणको तू जान कार्यरूप जलसे तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्यसे सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत्का मूलघर और स्थितिका स्थान है यह सब जगत् सृष्टिके पूर्व असत्के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृतिमें लीन होकर वर्तमान था अभाव न था और जो "सर्व खलु" यह वचन सो ऐसा है जैसा कि, "कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुन्बा जोडा ॥" ऐसी लीलाका है क्यों कि-

सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीत ॥

छान्दोग्य । प्र० ३ खं० १४ मं० १

और-नेहनानास्तिकिंचन । कठोपनि० अ० २ वल्ली ४ मं० ११

यह कठवल्लीका वचन है जैसे शरीरके अंग जबतक शरीरके साथ रहते हैं तबतक कामके और अलग होनेसे निकम्मे हो जाते हैं वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरणसे अलग करने वा किसी अन्यके साथ जोडनेसे अनर्थक हो जाते हैं (यह बात स्वामीजीपर ही लगती है आपने ऐसा बहुत ही जगह किया है) सुनो इसका अर्थ यह है हे जीव ! तू ब्रह्मकी उपासना कर जिस ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति और जीवन होता है जिसके बनाने और धारणसे यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्मसे सहचरित है उसको छोड दूसरेकी उपासना न करनी इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मरूपमें नानावस्तुओंका मेल नहीं है किन्तु यह सब पृथक् स्वरूपमें परमेश्वरके आधारमें स्थित है ॥ २२३ । २ से ।

समीक्षा-स्वामीजीकी बाजीगरकीसी लीला है आप ही प्रश्न कर्ता हैं और आप ही उत्तरदाता हैं, स्वयं ही कहींकी ईंट कहींका रोडा लेकर उपनिषदोंकी श्रुति लिखी हैं जैसा (सर्व) में (नेहनाना०) यह श्रुति मिला दी भला यह प्रश्न किसने स्वामीजीसे किये ये यह मिथ्या कल्पना इनके घरकी है (नेहनाना०) इसके अर्थ जो (इस चेतनमात्र) इत्यादि पूर्व लिखित किये हैं इस अक्षरार्थमें दृष्टि दीजिये तौ यह अर्थ होता है कि (इह नाना किंचन नास्ति) अर्थात् इस ब्रह्ममें कुछ भी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जैसे लोकमें भी कहते हैं (इह मृदि घटादिकं किंचन नाना नास्ति (अर्थात् पृथग्भूतं नास्ति किन्तु मृदेव घटादिरूपेण प्रतीयते) इन घडोंमें मिट्टीके सिवाय कुछ नहीं है किन्तु यह मिट्टी ही घडोंके रूपसे प्रतीत

* पांचवीं बारमें एवमेव खलु सोम्यान्नेन इत्यादि शुद्ध किया है ।

ी है स्वामीजीने जो इसका लम्बा चौडा अर्थ किया है वह कौनसे पदोंका
है (और परमेश्वरके आधारमें स्थित है) तो क्या कोई परमेश्वरसे भं
ार दूसरा है सबका आधार तो परमात्मा आप है उसमें भी आप पृथग्वस्तु
ा आधार लगाते हैं और उसमें नानावस्तुओंका मेल नहीं यह कहना भी
का असंगत है क्यों कि पंचभूतोंके मेल विना कोई भी कार्य्य सिद्ध होता नहीं
कारण त्रिवृत्करण होकर सर्वकार्य सिद्ध होते हैं यह समग्र श्रुति लिखते हैं
से स्वामीजीका खण्डन स्वतः हो जायगा ॥

मनसैवेदमाप्तव्यन्नेहनानास्तिकिंचन ।
ः समृत्युमाप्नोतियइहनानेवपश्यति कठ.उ.वल्ली४.मं०११अ.२

र्थ-ज्ञानयुक्त मनसे ही अखण्ड एकरस ब्रह्म प्राप्त होसकता है इस ब्रह्ममें
भी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जो सर्वाधिष्ठान सर्व प्रपंचका सारांश ब्रह्म है तिसमें
की नाईं पृथग्भूत वस्तु तुल्य कुछ भी ब्रह्म भिन्न आत्माको वा सर्वको
ा है सो मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है भाव यह है भेददर्शी ब्रह्मके ज्ञान होनेसे
र जन्म मरणको प्राप्त होते हैं इससे स्वामीजीका भेदपक्ष उडगया ब
खलु) इसका जो स्वामीजीने अर्थ लिखा है सो भी भ्रष्ट है क्यों कि-
दं सर्वं ब्रह्म) यह सम्पूर्ण ब्रह्म है इदंशब्द प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध वस्तुका
है, जैसे कोई कहे यह सम्पूर्ण कटक कुण्डलादिक सुवर्ण है सो यहां सुवर्ण
दिका उपादानोपादेय भाव है (शंका) इसका यह अर्थ नहीं किन्तु (य
ब्रह्म अर्थात् ब्रह्ममें स्थित है) इसी शंकाकी निवृत्तिके वास्ते (तज्जलान्)
शेषण है अर्थ यह है तिस ब्रह्मसे ही उत्पन्न होकर तिसहीमें लीन होता
ीमें चेष्टा करताहै जिसमें कार्यका लय होता है सोई उपादान कारण
, जैसे किसी निमित्तसे मेघका जल ओले होकर फिर ओले जलहीमें लीन
हैं और जलरूप होते हैं ऐसे ही कटकादि सुवर्णमें लीन होकर सुवर्ण ही हो
कटक ओले आदिका आदि मध्य अन्तमें सुवर्ण वा जल ही तत्त्व है इसी
व संसारका (तज्जलान्) यह विशेषण कहा तो ब्रह्म जगत्का उपादान कारण
होगया बस यह जगत् ब्रह्ममें जैसे स्थित है ऐसे सुवर्णमें कटक आदि
ी कारण ब्रह्म और जगत्के अभेद साधक (सर्वं ब्रह्म) यह वाक्य
भी श्रुतिमें संगत होता है जब ऐसा सर्वात्मा ब्रह्म है तो ऐसे ही
ासना करनी योग्य है जब ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है तब ब्रह्मभिन्न
नना और ब्रह्मसे सहचारित है यह मानना असंगत है अब यह हम
ि है जिससे उपादान कारण और इसका अर्थ विदित हो जायगा ॥

सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीतायखलुक्रतु-
मयःपुरुषोयथाक्रतुरस्मिँल्लोकेपुरुषोभवतितथेतःप्रेत्य
भवति सक्रतुंकुर्वीत ॥ १ ॥
मनोमयःप्राणशरीरोभारूपः सत्यसंकल्पआकाशात्मासर्व-
कर्म्मासर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्य-
नादरः ॥ २ ॥ एषमआत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवा-
द्वासर्षपाद्वाश्यामाकाद्वाश्यामाकतण्डुलाद्वाएषमआत्मान्तर्हृ-
दयेज्यायान् पृथिव्याज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवोज्या-
यानेभ्योलोकेभ्यः ॥ ३ ॥ सर्वकर्मासर्वकामः सर्वगन्धः
सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरएषमआत्मान्तर्हृदय
एतद्ब्रह्मेतमितःप्रेत्याभिसंभवितास्मीतियस्यस्याद्द्धानविचि-
कित्साऽस्तीतिहस्माहशाण्डिल्यः ॥ ४ ॥ छान्दो० प्रपा० ३
खं० १४

अर्थ-वह उपासना कैसे करनी चाहिये सो लिखते हैं "सक्रतुं कुर्वीत" सो उपासक क्रतु अर्थात् निश्चयरूप संकल्प करके शान्त ब्रह्मकी उपासना करे जिस हेतुसे कि क्रतुमय पुरुष है अर्थात् संकल्प प्रधान पुरुष होता है जैसे संकल्पवाला पुरुष इस लोकमें होता है वैसे ही भावनानुसार प्राणवियोगसे उत्तर कालमें होता है १ जिसको शरीर मनोमय अर्थात् प्रधान मन उपाधि विशिष्ट (प्राण-शरीरः) ज्ञान और क्रिया शक्ति विशिष्ट है, ऐसा ब्रह्म उपास्य है (भारूप) प्रकाशस्वरूप और सत्यसंकल्प है, इस विशेषणसे संसारी जीवकी व्यावृत्ति बोधन की आकाशवत् व्यापक और सर्वकर्मा अर्थात् जिसका सम्पूर्ण विश्व कार्य है दोषरहित और सर्वकामनायुक्त सुखसे सर्व गन्धयुक्त और दिव्य सर्व रसयुक्त (सर्वम् इदम् अभिआत्तः) इस सर्वके चारोंओरसे व्याप्त हो रहा है (अवाकी अनादरः) वाग् उपलक्षित सब इन्द्रिय वर्जित अर्थात् आप्तकाम है २ (एष म आत्मा) यह मेरा स्वरूप भूत आत्मा है यह ध्यानका आकार है आशय यह है अपनेमें ईश्वरात्माका आरोप करके उपासना करे इसे अहं ग्रह उपासना कहते हैं जो ऐसी उपासनासे साक्षात्कार होजाय तो शीघ्र मुक्ति होजाती है मनउपाधिक उपास्यका वर्णन करते हैं (हृदयमें अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म है और धान यव श्यामाक और श्यामाकतंदुल इन सबसे सूक्ष्म है) परिच्छिन्नप-

रिमाण पदार्थोंसे भी सूक्ष्मतर कहनेसे अणुपरिमाणत्व शंका भी हत होगई यह मेरा आत्मा पृथिवी अन्तरिक्ष सर्व लोकसे अधिकतर है ऐसे पूर्व मनोमयत्वादिगुणविशिष्ट ईश्वर ध्येय है सो इसका तीसरे अध्यायमें उपदेश कर ज्ञेय वस्तुका षष्ठ सप्तममें उपदेश करेंगे ३ इस उपासनामें सर्वकर्मा इत्यादि गुणयुक्त ही उपास्य है इसी कारण श्रुतिमें सर्वकर्मादिक पद पुनः आये हैं (एतद्ब्रह्मैतमितःप्रेत्याभिसम्भवितास्मीति) यह उपास्य देव ब्रह्म है इसको इस शरीरसे प्राणको त्यागकर प्राप्त होऊँगा (यस्यस्यादद्धा) जिस उपासकको यह दृढ निश्चय है सो उपासनाके फलको प्राप्त होगा यह शाण्डिल्य ऋषिने कहा है पुनरुक्ति विद्या समाप्तिके वास्ते बोधन करी है अब इसे सज्जन पुरुष विचारेंगे कि, इस श्रुतिमें सर्वप्रपंचका उपादान कारण ब्रह्म सर्वात्मा सर्व कर्मत्वादिविशिष्ट निश्चय होता है ऐसे २ स्वामीजीके असंगत लेखको कहांतक गिनावैं अब और सुनिये-

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् तद्धैकआहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥ १ ॥ कुतस्तुखलुसोम्येवं स्यादितिहोवाचकथमसतः सज्जायेतेतिसत्त्वेवसोम्येदमग्रआसीत् । एकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥ तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेतितत्तेजोसृजत । छां०उप. अ०प्र.६ खं. २

अर्थ-उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं हे सौम्य ! यह प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध वस्तुमात्र सृष्टिसे पूर्व कालमें सद्रूप ही होता हुआ अर्थात् सद्रूप वस्तुके साथ तादात्म्यापन्न होता हुआ जैसे वृक्ष उत्पत्तिसे प्रथम बीजभावापन्न था वैसेही सद्वस्तु जो सर्वका बीज है तद्रूप ही यह प्रथम था, सो सद्वस्तु क्या है (एकमेव) अर्थात् कार्य्यभावापन्नवस्त्वन्तररहित है निश्चय (अद्वितीय) निमित्तकारणान्तरवर्जित है कोई ऐसा कहते हैं कि, यह नामरूप प्रपंच प्रथम (असद्) अभावमात्र था (एकमेव) कार्यवस्त्वन्तरवर्जितानिमित्तादिरहित था तिस असत्से यह सत्नाम रूप वस्तु हुआ है उनका कहना ठीक नहीं है हे सौम्य ! यह कैसे हो सक्ता है (असतः) अभावमात्रसे सत् हो इस कारणसे सत् ही कार्य भावापन्न वस्त्वन्तरवर्जित निमित्तकारणान्तरवस्तुरहित होता हुआ सो सद्वस्तुका आलोचन करता हुआ भावी जगत्को अपनेमें देखा और इच्छा करी मैं बहुतसा होकर प्रतीत होऊं प्रजारूपको धारण करूं सो तेजका सर्जन करता हुआ इसी प्रकारसे

मं० ६ सू० ४७ मं० १८ रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव)में कहा है इस जगत्का उपादान कारण है सिद्ध होगया अब यहां यह

भी विचार है जब सत्में देखना अथवा बहुत होनेकी कामना हुई तो चेतनत्व सिद्ध होगया इससे इस श्रुतिमें सत् शब्दको जड प्रकृतिका बोधक मानना स्वामीजीकी वेदान्तानभिज्ञता प्रगट करता है अब दूसरी श्रुतिमें जो अज्ञानता प्रगट करी है उसे दिखलाते हैं ॥

तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳसोम्यविजानीहिनेदममूलंभविष्यति ३ तस्यक्कमूलंस्यादन्यत्रान्नादेवमेवखलुसोम्यान्नेनशुङ्गेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्यशुङ्गेनतेजोमूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छसन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतना सत्प्रतिष्ठाः–छां० प्रपा० ६ खं० ८ मं० ४

अर्थ–जब अन्न रसादिकार्य देह प्रसिद्ध हुआ तब यह जो शुङ्ग देह है सो उत्पतित, उत्पन्न है जैसे वटबीजसे वटका वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे यह देह भी मूलशून्य नहीं ऐसे तू जान सो इस देहका अन्नके विना कौन मूल है किन्तु अन्न ही मूल है इसी प्रकार हे प्रिय श्वेतकेतो ! अन्नरूप विकारसे जल और जलसे तेज जान, तेजसे सत् मूल जान, इस प्रकार सत् मूल कारणवाली संपूर्ण प्रजा है और सत् वस्तु ही आयतन अर्थात् स्थितिस्थान है, और सत् ही प्रतिष्ठा अर्थात् लयाधार है स्वामीजीने खलु पर्य्यन्त श्रुतिभागको त्यागके शेषश्रुतिका अर्थ भ्रष्ट कर दिया सो पूर्व लिख चुके हैं स्वामीजीने सत् शब्दको प्रकृतिवाचक मानकर सर्व जगत्का मूलकारण प्रकृतिको माना है इस स्थानमें सत्रूप और नित्य प्रकृति यदि चेतनरूप है तौ ब्रह्मरूप ही प्रकृति सिद्ध होगी यदि जडप्रकृति ब्रह्मभिन्न अभिमत है तब तौ स्वामीजीका महामोह है क्यों कि, जड प्रकृतिमें ईक्षण और बहुभवन संकल्प कैसे होगा इसी कारण प्रकृतिको जगत् कारणत्वका व्यासजी अपने सूत्रमें निषेध करते हैं ॥

ईक्षतेर्नाशब्दम्–शा० अ० १ पा० १ सू० ५
ईक्षतेः न अशब्दम् ।

अर्थ–तत्व समन्वयात् इस चौथे व्याससूत्रमें प्रतिपादित सर्व उपनिषद्वचन तात्पर्य्य विषय ब्रह्मसे भिन्न जड प्रकृति परमाणु आदि जगत्के कारण नहीं क्यों कि अशब्द अर्थात् वेदसे अप्रतिपाद्य होनेसे और वेद अप्रतिपाद्यमें हेतु (ईक्षतेः) यह दिया है अर्थात् ईक्षणवालेको कर्तृत्व श्रवण करा जाता है सो ईक्षण चेतनका धर्म है जडका नहीं इससे जड प्रकृतिको यदि सत् शब्द वाच्य मानेंगे तो सत् शब्द वाच्य वस्तुमें ईक्षण तथा बहुत होनेकी कामनाका बाध होगा इस कारण

छान्दोग्यके ६ अध्यायमें सत् शब्दसे ब्रह्महीका ग्रहण किया है सोई जगदुत्पत्ति स्थिति लयाधार है तिससे भिन्न जड प्रकृति नहीं अब दूसरी श्रुति भी देखिये जिससे ब्रह्मभिन्न प्रकृतिको उपादानकारणता सिद्धान्तका खंडन होता है।

सोऽकामयत । बहुस्यांप्रजायेयेति । सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा । इद २ सर्वमसृजत । यदिदंकिंच । तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्चत्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च ।विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्चसत्यमभवत् । यदिदं किञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येषश्लोको भवति । असद्वाइदमग्रआसीत् । ततोवैसदजायत । तदात्मानंस्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ॥ तैत्ति० ब्रह्मा० अनु० ६ । ७

अर्थ- सो पूर्व प्रकरणप्रतिपाद्य आकाशादि भूतकारण स्वरूप आत्मा कामना करता हुआ कि, मैं बहुतरूप होकर प्रतीत होऊं और प्रजारूपको धारण करूं (तपोऽतप्यत) आलोचन करता हुआ आलोचन करके सब नामरूप प्रपंचको रचता हुआ जो कुछ भी वस्तु है । पीछे तिस सब वस्तुको बनाकर सो आप ही तिस सब वस्तुमें जीवरूपकर प्रविष्ट हुआ तिसमें प्रविष्ट होकर (सत्) पृथिव्यादिभूत (त्यत्) वायु आकाशरूप हुआ (निरुक्तंचानिरुक्तंच) निर्वचन योग्य और निर्वचनायोग्य (निलयनंचानिलयनं च) लयाधार और लयानाधार (विज्ञानंचाविज्ञानं च) प्रत्यक्षादि विषय और प्रत्यक्षादिका अविषय (सत्यंचानृतं च) व्यावहारिक सत्य और प्रातिभासिक (सत्यमभवत्) यह संपूर्ण पृथिवीसे प्रातिभासिक वस्तु पर्यंत सर्व वस्तु सत्यरूप परमात्माही हुआ अपनी अचिन्त्य शक्तिकर जो कुछ वस्तुमात्र है तिसको सत्य कथन करते हैं आशय यह है कि, सत्यका कार्य होनेसे सत्य कहलाता है इसमें वक्ष्यमाण यह श्लोक भी प्रमाण है ॥ यह सर्व वस्तु (असत्) अनभिव्यक्त नाम रूप होकर कारण रूपसे स्थित था अब तिससे व्यक्त होकर प्रतीत हुआ सो आत्मा अपने आपको जगदूप अपनी अचिन्त्य शक्तिसे करताहुआ जैसे कोई योगसिद्धियुक्त योगीजन अपनी शक्तिसे अनेक शरीर धारण करता है वैसे परमात्मा महायोगीश्वर मायाशक्तिसे अपने आपको ही जगद्रूप करा इसी कारण भगवान् (सुकृत) स्वयंकृत कहते हैं ॥

स० पृ० २११ पं० २९ (भ्रम) नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वरहीको
गत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं ॥

यथोर्णनाभिः सृजतेगृह्णते च । मुंडक० १ खं० १ मं० ७

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेपि तत्तथा—माण्डू०कारिका ३१

(इसका उत्तर पृ०--२१२ पं० ५ में) जो तुम्हारे कहने अनुसार सब जगत्का
ादान कारण ब्रह्म हो जावे तो वह परिणामी अवस्थान्तर युक्त विकारी होजावे
ार उपादान कारणके गुण कर्म स्वभाव कार्यमें आते हैं ॥

ारणगुणपूर्वकःकार्य्यगुणोदृष्टः—वैशेषिक सू० २४ अ० २ आ० १

उपादान कारणके सदृश कार्यमें गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप जगत्
ार्यरूपसे असत् जड और आनंदरहित ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है
ा अदृश्य और जगत् दृश्य है ब्रह्म अज और जगत् खण्डरूप है जो ब्रह्मसे
ृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादिमें कार्यके जडादि गुण ब्रह्ममेंभी होवें
ात् जैसे पृथिव्यादि जड हैं वैसा ब्रह्म भी जड होजाय और जैसा परमेश्वर चे-
है वैसे पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होने चाहिये और जो मकरीका दृष्टान्त दिया
तुम्हारे मतका साधक नहीं बाधक है क्यों कि वह जडरूप शरीर तन्तुका
दान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यह भी परमात्माकी अद्भुत रच-
ा प्रभाव है क्यों कि अन्य जन्तुके शरीरसे जीव तन्तु नहीं निकाल सक्ता
ही ब्रह्मने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारणसे स्थूल जगत्को
कर बाहर स्थूलरूप कर आप उसीमें व्यापक होके आनंदमय होरहा है और
२१२ पं० १४ में लिखा है यह कारिका भ्रममूलक है क्यों कि प्रलयमें
र प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टिके अन्त अर्थात् प्रलयके आरम्भसे जबतक
ा पार सृष्टि न होगी तबतक भी जगत्का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता
ों कि—

तमआसीत्तमसागूढमग्रे ऋ० मं० १० सू० १२९ मं० ३

ऋग्वेदका वचन है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु १ । ५

ह सब जगत् सृष्टिके पहले प्रलयमें अंधकारसे आवृत आच्छादित था और
रम्भके पश्चात् भी वैसा ही होता है उस समय न किसीके जानने न तर्कमें

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेपि तत्तथा ।

ठाने और न प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त इन्द्रियोंसे जानने योग्य था और न होगा कि वर्तमानमें जाना जाता है, और प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त जानने योग्य होता है यथावत् उपलब्ध है पुनः उस कारिका करके वर्तमानमें भी जगत्का अभाव लि है सो सर्वथा अप्रमाण है क्यों कि जिसको प्रमाता प्रमाणोंसे जानता और प्र होता है वह अन्यथा कभी नहीं होसक्ता ॥ २२२ । १० से २२३ तक ।

समीक्षा-यद्यपि हम उपादान कारण आदिकी व्यवस्था पूर्व अच्छी प्रका कथन कर चुके हैं परन्तु स्वामीजीने इस प्रकरणको वार २ लिखा है इससे हम कुछ इसके उत्तरमें व्यासजीके सूत्र लिखते हैं ॥

दृश्यते तु-अ० २ पा० १ सू० ६

यहां तुशब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके वास्ते है (एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः) इसमें चेतनसे जडका जन्म सुना है बस स्वामीजीका यह कथन कारणके सदृश कार्य होता है खंडित होगया (विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायेति) इस जडसे चेतनका जन्म है लोकमें भी चेतनोंसे) विलक्षण केशनखादिका जन्म और अचेतन गोमयादिसे चेतन वृश्चिकादिका जन्म देखते हैं ननु अचेतन ही देह अचेतन केशादिका कारण वह अचेतन वृश्चिकादि देह अचेतनगोमयादिका कार्य है इसमें कुछ भी अचेतन चेतनका आयतन भावको पहुँचा यह कुछ नहीं यही वैलक्षण्य है यह बडा पारिणामिक स्वभावका विप्रकर्ष है पुरुषादिकोंका व केशादिकोंका, क्यों कि स्वरूपभेदसे तैसे गोमयादिका वह वृश्चिकादिका है अत्यन्त सारूप्यमें प्रकृति विकृति भाव नहीं होसक्ता है, जो पार्थिवादि स्वभाव पुरुषादिका केशादिमें वह गोमयादिवृश्चिकादिमें अनुवर्त्त है तो ब्रह्मका भी सत्ता लक्षण स्वभाव आकाशादिमें भी देखते हैं फिर ब्रह्मवादीसे यह नहीं कहसक्ते हो कि जो चेतनसे युक्त नहीं है सो अब्रह्म प्रकृतिक देखा है यह तो सब वस्तुको ब्रह्मप्रकृतिक मानता है, निष्पन्न ब्रह्ममें रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाण वह लिंगादिके अभावसे अनुमानादिका असम्भव है ब्रह्म ही धर्मके समान केवल वेदहीसे जाना जाता है (नैषा तर्केण मतिरापनेया) तर्ककी मतिसे यह प्राप्त नहीं हो सक्ता यही तर्क प्रमाण है जो श्रुतिसे मिली है चेतन शुद्ध शब्दादि हीन ब्रह्मका उलटा कार्य है शब्दादिवत् और जो केवल तर्कसे ही निर्णय करता है उसका निर्णय ठीक नहीं व्यासजी सूत्र लिखते हैं ॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमितिचेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसंगः ११
वेदा० अ० २ ।

वेदबोधक अर्थमें केवल तर्कसे ही नहीं झगडना चाहिये क्यों कि वे तर्कना पुरुषों बुद्धिसे रचीगई हैं इस कारण सर्वथा प्रमाण नहीं क्यों कि उत्प्रेक्षा निरंकुश प्रमाण

किसीने तर्कबलसे उत्प्रेक्षा करी दूसरेने उसको तर्काभास कहा है फिर अन्यने उसको भी तर्काभास कहा इससे तर्क ध्रुव मानने योग्य नहीं है यद्यपि कहीं तर्क प्रतिष्ठित हो तथापि जगत्कारणके विषयमें तर्क स्वतंत्र नहीं है यह अति गंभीर परमानन्दमुक्तिनिबंध वेदके विना अन्य प्रमाणोंसे जाननेको शक्य नहीं है यह अर्थ रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषय वा लिंगादिके अभावसे अनुमानादिकोंका भी गोचर नहीं है ॥

स्वामीजी इस सूत्रमें वेदप्रमाण लिखते यह सूत्र यहां चरितार्थ नहीं है ॥

यथाचप्राणादि–व्याससूत्र २० अ० २ पा० १

जैसे लोकमें जबतक प्राणपवन हृदयमें रहता है तबतक उससे जीवन मात्र ही सिद्ध है अन्य प्राण भेदोंसे प्रसारणादि कार्य भी सिद्ध होते हैं परन्तु ये सब प्राणादि भेद पवनस्वभाव ही हैं न कि, पवनसे भिन्न हैं, ऐसेही विश्वरूप कार्य कारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं है तिससे सब विश्व ब्रह्मका कार्य और ब्रह्मसे अनन्य है यह श्रौतप्रतिज्ञा सिद्ध हुई है "येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति" जब कि, कार्य कारण सब ब्रह्म ही है तो दृश्य अदृश्य खंड अखंड जड चेतन आदिका सम्बन्ध कैसा, उससे कुछ पृथक् हो तो कल्पना की जा सक्ती है इससे स्वामीजीका कथन भ्रान्तियुक्त है अब आगे ऊर्णनाभिका प्रसंग भी देखिये ॥

देवादिवदपि लोके २५ अ० २ पा० १

जैसे लोकमें देव पितर ऋषि बडे बडे प्रतापी चेतन विना सामग्रीके ऐश्वर्ययोग द्वारा संकल्प ध्यानहीसे जो पूर्व नहीं थे देह पर रथादि उनको रचते देखते हैं यही मंत्र यह अर्थवाद वृद्धव्यवहारोंसे प्रगट है फिर मकरी भी आप ही डोरोंको सृजती है बकुली भी शुक्रके विना मेघके गर्जनसे ही गर्भको धारण करती है पद्मिनी भी गमनके साधन विना एक तालसे दूसरे तालमें जमती है ऐसे ही चेतन भी ब्रह्म-बाह्य सामग्रीके विना आप ही जगत् सृजता है ब्रह्म तो सबसे विलक्षण है वह बाह्यसाधन नहीं चाहता, अपनेसे आप ही जगत् बनाता है और आप ही लय कर लेता है क्यों कि ब्रह्म देवताओंसे भी विलक्षण है, इसीमें ऊर्णनाभिका दृष्टान्त है उसे बाह्यवस्तुकी अपेक्षा नहीं होती, अपनेसे ही तन्तुआदि निकालती है और इसी प्रकार ईश्वर भी अपनसे ही सब वस्तु निकालकर जगत् बनाता है, उसे कुम्हारकी नाई बाह्यवस्तुओंकी अपेक्षा नहीं होती ॥

कारिकापर भी आपका मिथ्या ही आक्षेप है क्यों कि कारिकाका आशय यह है कि जब आदि अन्तमें ही ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है तो वर्तमानमें कब हो सक्ती है, अर्थात् आदि अन्त मध्यमें ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं सब यह

ही है (जगत्) इसका अर्थ विना जाने महात्माजीने गडबडका लिख दिया है कि (आसीदिदं) इसमें भी झूंठ ही लिख दिया है कि (प्रसिद्ध विद्वांसे जानने योग्य होता है) अर्थ तो इसका यह है कि, यह जगत् प्रलयमें अंधकाररूप प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीन प्रमाण हैं, इनसे भी जाननेके अयोग्य था क्यों कि, देख नहीं पडता था तथा लक्षनसे रहित अपने कार्यमें असमर्थकी नाईं रहा, यह मनु जीका श्लोक है और प्रथम ही वेदमंत्र लिखचुके हैं कि, महाप्रलयमें प्रभुके सिवा और कुछ नहीं था फिर प्रकृति आदि कहां २ थे देखो (नासदासीत्) आदि मंत्र जो पीछे लिख आये हैं * ।

स० पृ० २१४ पं० ९ सर्व शक्तिमान्का अर्थ इतना ही है कि, परमात्मा बिना किसीकी सहायताके अपने सब कार्य पूर्ण करसकता है ॥ २२४ । २८

समीक्षा—स्वामीजीकी विद्याबुद्धि बालकोंकीसी है कहीं लिखते हैं कि, बिना प्रकृतिके यह कुछ नहीं कर सक्ता कहीं लिखा कि, बिना सहाय कार्य कर सक्ता है सर्वशक्तिमत्ता तो ईश्वरकी दहगई ॥

पृ० २१४ पं० १८ जब वो प्रकृतिसे भी सूक्ष्म और उसमें व्यापक है तभी उसको पकडकर जगदाकार बना देता है ॥ २२५ । ११

समीक्षा—प्रकृति भी भागी जाती होगी ईश्वर उसके पीछे दौडता होगा पकडता होगा प्रकृति नाहीं करती होगी पर ईश्वर जगदाकार बनाही देता है अब तो ईश्वरके हाथ भी प्राप्त मान गुये ॥

[illegible]

स० पृ० २१४ पं० २६ कारणके विना ईश्वर कार्यको नहीं करसक्ता (उत्तर) नहीं २२५ । १९

समीक्षा—स्वामीजी पूर्व तो लिख आये हो कि, (न तस्य कार्य करणं च विद्यते) कि, उसे कार्य करणादिकी कुछ अपेक्षा नहीं अब यहां यह गडबडी यह सब कुछ करनेमें समर्थ है ॥

स० पृ० २१९ पं० २३ सर्वमनित्यमुत्पातिविनाशधर्मत्वात् ॥ २२६ । १९

२१६ पं० २९ श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ॥ ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मेव नापरः ॥ २२७ । २२ से

पांचवां नास्तिक कहता है कि, सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाशवाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं, नवीन वेदान्ती लोग पांचवें नास्तिककी कोटीमें हैं क्यों कि वे ऐसा कहते हैं कि, करोडों ग्रंथोंका यह सिद्धान्त है ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं ॥

समीक्षा—जिसके नेत्रोंमें जैसी रंगतकी ऐनक लगी होती है उसे जगत् वैसाही दीखता है, नास्तिकशिरोमणि तो आप हैं, जो कि आपका ईश्वर कुछ कर ही नहीं सकता औरोंको नास्तिक बताते हैं, जब कि सब कुछ ब्रह्म है तो जीव कहांसे है, और जगत् क्या है कुछ नहीं इस प्रकार स्वामीजीकी अनेक गडबडी हैं, बस सिद्धान्त यही है कि, जैसे घटाकाश घटके टूटनेसे आकाशमें मिलता है, इसी प्रकार कर्मबंधन टूटनेसे यह शुद्ध आत्मा सर्वसामर्थ्ययुक्त होता है, यहां और जो स्वामीजीने (नित्यायाः) और (नासतो विद्यते) इत्यादि जो वाक्य लिखे हैं उन सबका उत्तर पूर्व प्रसंगमें आगया है इस प्रकारसे बुद्धिमान् महाशय जान लेंगे यह उपादानकारणआदिका विषय पूर्ण हुआ यह सब वेदान्तप्रकरणके अन्तर्गत हैं ॥

आदिसृष्टिस्थानप्रकरणम् ।

स० पृ० २२३ पं० ७ सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या (उत्तर) अनेक, क्यों कि जिन जीवोंके कर्म ऐश्वरी सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जन्म ईश्वर सृष्टिकी आदिमें देता क्यों कि "मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेदमें लिखा है * इससे निश्चय है कि,

* ग्यारहवीं वारमें यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मणमें लिखाहै ऐसी थेगडी लगाईहै पर यह ध्यान रहे कि समस्त दयानन्दी पंडित कितना ही कुछ क्यों न लगावें पर पद पद पर अशुद्ध सत्यार्थ प्रकाश शुद्ध नहीं होसक्ता तभी तो अब शास्त्रार्थोंके समय सत्यार्थप्रकाश बंद रहताहै—

आदिमें अनेक सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न किये ॥ २३४ । १४ पुस्तक (हुए) २४ । २१ ।

समीक्षा–स्वामीजीने असत्य बोलनेका बीडा उठा लिया है यजुर्वेदमें ? यह वाक्य नहीं कि, "ततो मनुष्या अजायन्त" और दूसरे पदमें चोरी किया है " मनुष्या ऋषयश्च ये " इसमें ' साध्या ऋषयश्च ये' ऐसा है यह मंत्र इस प्रकारसे है ॥

तंयज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ॥
तेनदेवाऽअयजन्तसाध्याऽऋषयश्चये ॥ यजु० अ० ३१ मं० ९

(ये) जो (साध्याः देवाः च ऋषयः) साध्य देवता और ऋषि हैं उन्होंने (अग्रतः) सृष्टिके पूर्व (जातम्) उत्पन्न हुए (तम्) उस (यज्ञम्) यज्ञ साधनभूत (पुरुषम्) विराट् पुरुषको (बर्हिषि) आत्मामें (प्रौक्षन्) प्रोक्षण किया (तेन) इसी पुरुषद्वारा (अयजन्त) यज्ञ किया ९ तथा [illegible] शत० ११ का० इस श्रुतिसे यज्ञ नाम उसकी प्रतिमाका है अर्थात् प्रतिमामें पूजन किया ॥

अब न्यायदृष्टिसे विचारिये कि, दयानन्दजीने वेदके नामसे भी कैसी ? [illegible] दिखाई है, सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जो पूर्व वर्णन कर चुके हैं अब और लीला देखिये सृष्टिकी आदिमें बहुत मनुष्य नहीं हुए [illegible] पं० ३ मनुष्योंकी आदिसृष्टि किस स्थलमें हुई (उत्तर), त्रिविष्टप अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं ३३६ । १२ एक मनुष्यजाति थी । ३३६ । १४

यहां तो स्वामीजी आर्यावर्तका नाम [illegible] तिब्बतमें प्रथम सृष्टिकी उत्पत्ति हुई स्वामी जी सब बातोंमें वेदके प्रमाण देते थे, इस प्रकरणमें कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया अंग्रेज कहते हैं कि, [illegible] अब इनसे भी आगे बढ़गये जो तिब्बत देशमें उत्पत्ति लिखदी और [illegible] कि [illegible] पृ० ३१४ पं० १० में लिखते हैं जब आर्य और दस्युओंमें [illegible] विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिखण्डको जानकर यहीं आकर बसे, इसीसे इस देशका नाम आर्यावर्त हुआ पृ० पं० १० में इससे पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई [illegible]

[illegible]

इस देशमें बसते थे, क्यों कि आर्यलोग सृष्टिकी आदिमें कुछ कालक पश्चात् तिब्बतसे सूधे इसी देशमें आकर बसे थे, और ईरानसे आनेकी बात झूठ है २३६।९

समीक्षा-अब स्वामीजीसे यह प्रश्न है कि, आपने कौनसे वेदानुसार यह तिब्बतसे आना लिखा है, और त्रिविष्टपको तिब्बत लिखा यह कौनसे कोश मेंसे निकाला है मैं जानता हूं कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं है पूर्वकाल वह नवीन कालका हमारे मतका जिसमें यह बात लिखी हो कि तिब्बतसे आये, स्वामीजी तौ अंग्रेजोंके अनुयायी ही ठहरे उन्होंने ईरान लिखा इन्होंने तिब्बत लिखकर पहले नम्बरका सर्टिफिकट हासिल किया और इससे स्वामीजीके वृद्धोंकी भी मूर्खता प्रगट होती है कि तिब्बत जिसे त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्गकी सदृश कहिये उससे आर्यावर्तको श्रेष्ठ और निवासके योग्य जाना और जब कि आर्य्यावर्त सब भूगोलमें श्रेष्ठ है तौ परमेश्वर प्रथम सृष्टिकी उत्पत्ति इसी देशमें करता क्यों कि वे पहले उत्पन्न हुए पुरुष धर्मात्मा थे और यह एक कैसे आश्चर्यकी बात है कि, उत्पत्ति होते ही लडाई हुई और विजयी आये ही हारे और आर्योद्देश्यरत्नमाला पृ० ११ में लिखा है कि आर्य उसको कहते हैं जो श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यविद्यादिगुणयुक्त और आर्य्यावर्त देशमें सब दिनसे रहनेवाले हों यह पुस्तक भी स्वामीजीकी ही बनाई है इससे दो बातें प्रगट होती हैं एक तौ स्वामीजीको अपने लेखका स्मरण न रहा दूसरे यह कि, सृष्टिकी आदिमें दयानंदसरस्वतीके जितने लोग हुए हैं उनमेंसे कोई आर्य न था तिब्बती थे, क्यों कि वे सब दिनसे आर्यावर्तमें नहीं रहते थे, किन्तु तिब्बतके रहनेवाले थे, इस देशको उत्तम जान यहां आ बसे, सिद्धान्त यह है कि जो कुछ वेदशास्त्रने आर्य्यावर्तकी महिमा लिखी है दयानंदजीने उसपर धूल डाल दी, यह कैसे साबित हुआ कि त्रिविष्टपका नाम तिब्बत है, जब त्रिविष्टपसे तिब्बतकी निस्बत ठीक होगी तौ ईरानसे आर्य यह यूरूपवासियोंका कथन क्यों प्रमाण योग्य नहीं, और यह कौनसे ग्रंथमें लिखा है कि, तिब्बतमें * उत्पत्ति हुई पहले सत्यार्थप्रकाशपर भी धूल डाल दी जो लिखा था कि आर्य सदासे यहांके रहनेवाले थे और यदि आर्योंके आनेसे इस देशका नाम आर्यावर्त पडगया तो यह जिस देशमें रहते थे उसका त्रिविष्टप तिब्बत नाम क्यों उसका नाम भी आर्यावर्त होता और यदि तिब्बतसे ये लोग यहां आते तौ तिब्बती कहे जाते जैसे कि कहीं कोई किसी देशको जाता है तौ उसको उस देशके नामसे पुकारते हैं, जैसा गुजराती काबुली. यूरुपियन, जिस द्वीपमें यूरुपियन वा और कोई जाति जाकर वास

* भा० प्र० में भी तिब्बतमें रहनेका कोई प्रमाण नहीं लिखा लिखते क्या।

करती है तौ वह उनकी जातिके नामवाला नहीं होता किन्तु उसके नामका उनमें सम्बन्ध आजाता है फिर जब इस देशको कोई नहीं जानता था, तौ (तुम्हारे बुजुर्ग तिब्बतियोंने कैसे जाना) क्या कोई रेलका मार्ग बनाया था ज्यो पढे थे फलितको तुम मानते नहीं मार्ग महा भयंकर है अनेक प्रकारकी दु हिमालय महापर्वत बीचमें पडता है कदाचित् आप कंधेपर चढाकर लाये हों इससे यह बात कभी चित्तमें नहीं लानी चाहिये कि, आर्यलोग कहींसे आये हों सदासे इसी देशके रहनेवाले हैं जो कि, प्राचीन कालसे आर्यलोग इस देशमें र चले आते हैं इसीसे इस देशको आर्यावर्त कहते हैं जैसा कि मनुजीने लिखा है।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ अ० २ श्लो० २२

बंगालके समुद्रसे लेके अरबदेशके समुद्रतक हिमालय और विंध्याचलके बीचमें जितना देश है उसको आर्य्यावर्त कहते हैं आर्य्योंका यही देश (आर्य्याणामावर्तः आर्यावर्तः) अर्थात् जन्मभूमि थी आर्य्यावर्तके कुछ भागका नाम ब्रह्मावर्त है:—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् ॥
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥मनु० अ० २ श्लो० १७

सरस्वती नदी जो कि गुजरात और पंजाब देशके पश्चिमभागमें बहती है और दृषद्वती नदी जो कि नयपालके पूर्वभागमें बहती है इन दोनों पवित्र नदियोंके मध्यमें जितना देश है वह आर्य्यावर्तकी अपेक्षासे पुण्य देश है, और देवताओंका निर्मित है उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं सबसे प्रथम ब्रह्माजीने यही देश रचा और उनके द्वारा मनुष्यकी उत्पत्ति यहीं ही हुई इसी कारण इस देशका नाम ब्रह्मावर्त रक्खा गया इसके पश्चात् दूसरे देश बसे, सब देशके मनुष्योंने इस देशसे विद्या सीखी जैसा कि मनुजीने लिखा है:—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ मनु० २० श्लो० २

इस देशके उत्पन्न हुए विद्वानोंसे सारी पृथ्वीके मनुष्य अपने चरित्र (आचार) और विद्याओंको सीखें यहीके लोगोंसे सबने विद्यायें सीखी, यहां यह सिद्ध हुआ कि, ब्रह्मावर्त ही सबकी सृष्टिका मुख्यस्थान है और यहींसे और २ देशोंमें विद्या गई यदि आर्य लोग तिब्बती होते तौ तिब्बतमें सब विद्या सीखी जाती

क्यों कि आपके कथनानुकूल इस देशमें कोइ रहताही नहीं था, तौ आर्य्य लोग विद्या अपने साथही तिब्बतसे लाये थे, तो तिब्बतही सब विद्याओंका स्थान होता इससे यही सिद्ध है कि, आर्य्य इस देशमें सदाके हैं और विद्या भी सदासे है और न कभी हिमालयवासियोंने आर्योपर चढाई करी ॥ और जब एक मनुष्य जाति थी तो 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' इस यजुर्वेदमें चार जाति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रका वर्णन कैसे आया है ॥

स० पृ० २२९ पं० २६

*आर्य्यवाचोम्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ मनु० १०।४५.
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः २ अ० २ श्लो० २३ मनु०

जो आर्य्यावर्तदेशसे भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहलातेहैं॥ २३७।९

समीक्षा–क्या स्वामीजीने गपोडा लिखा है जो ऊपरके आधे श्लोकका अर्थ गडपही गये हैं सुनिये यह श्लोक मनुजीने यों लिखा है ॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ मनु० १०।४५

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी क्रियालोपसे जो अधम जाति उत्पन्न हुई चाहे वे म्लेच्छभाषा करके संयुक्त हों चाहे आर्यभाषा बोलते हों वे सब दस्यु हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि, इससे भिन्न देश दस्युदेश कहाता है इसका यह भाव है कि, आर्य्यावर्त्त देशमें भी कर्महीन क्रियाभ्रष्ट लोगोंका नाम दस्यु प्रचलित था, और यदि आधाही पद प्रमाण मानों तौ जितने अपनेको आर्य कहते हैं उन सबकी दस्यु संज्ञा हो जायगी दूसरे श्लोकका अर्थ यह है कि इससे आगे म्लेच्छदेश है देवासुरसंग्राम भी स्वामीजीने मिथ्या ही कल्पना की है यह संग्राम वास्तवमें राजा इन्द्रसे और दैत्योंसे जो उसका सिंहासन लेनेकी इच्छा करते थे अनेकवार हुआ है जो बहुत प्रसिद्ध है और "अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३ " इस अष्टाध्यायी सूत्रके अनुसार वैश्य तो अर्य्य होता है आर्य नहीं तौ वैश्य भी दस्यु हुए कारण कि आपके मतसे जो आर्य न हो वह दस्यु ॥

---

*पांचवीं बारकीमें म्लेच्छावाचश्चार्यवाचः शुद्धपाठ है। और सत्या० प्र० पृ० २३९पं० १७ 'उत शूद्रे उत आर्ये' ऐसा अथर्ववेदवचन होनेसे शूद्रका नाम भी आर्य नहीं होसक्ता अब अर्थ जो बतावें हां दो वर्ण आर्य थे या चार जब अर्थ शूद्र और आर्य आये तो फिर यह आर्यावर्त्त कैसे हुआ आर्यावर्त होजाता । इससे सिद्ध है कि सनातनसे आर्यावर्त्त है ब्राह्मणो० इसमें छोटे स्वामी पञ्चमीमें प्रत्यय माननेको कहते हैं हम कहतेहैं बाहुआदिमें व्यत्ययसे पंचमी क्यों न मानें ?

करती है तौ वह उनकी जातिके नामवाला नहीं होता किन्तु उसके नामका सम्बन्ध आजाता है फिर जब इस देशको कोई नहीं जानता था, तौ (बुजुर्ग तिब्बतियोंने कैसे जाना) क्या कोई रेलका मार्ग बनाया था पढे थे फलितको तुम मानते नहीं मार्ग महा भयंकर है अनेक प्रकारकी हिमालय महापर्वत बीचमें पडता है ' कदाचित् आप कंधेपर चढाकर लाये होंगे इससे यह बात कभी चित्तमें नहीं लानी चाहिये कि, आर्यलोग कहींसे आये हों किन्तु सदासे इसी देशके रहनेवाले हैं जो कि, प्राचीन कालसे आर्यलोग इस देशमें चले आते हैं इसीसे इस देशको आर्यावर्त कहते हैं जैसा कि मनुजीने लिखा है

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ अ० २ श्लो० २

बंगालके समुद्रसे लेके अरबदेशके समुद्रतक हिमालय और विन्ध्याचलके बीचमें जितना देश है उसको आर्य्यावर्त कहते हैं आर्य्योंका यही देश (आर्य्याणामावर्तः आर्यावर्तः) अर्थात् जन्मभूमि थी आर्य्यावर्तके कुछ भागका नाम ब्रह्मावर्त है:—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् ॥
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥मनु० अ० २ श्लो०१७

सरस्वती नदी जो कि गुजरात और पंजाब देशके पश्चिमभागमें बहती है और दृषद्वती नदी जो कि नयपालके पूर्वभागमें बहती है इन दोनों पवित्र नदियोंके मध्यमें जितना देश है वह आर्य्यावर्तकी अपेक्षासे पुण्य देश है, और देवताओंका निर्मित है उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं सबसे प्रथम ब्रह्माजीने यही देश रचा और उनके द्वारा मनुष्यकी उत्पत्ति यहां ही हुई इसी कारण इस देशका नाम ब्रह्मावर्त रक्खा गया इसके पश्चात् दूसरे देश बसे, सब देशके मनुष्योंने इस देशसे विद्या सीखी जैसा कि मनुजीने लिखा है:—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ मनु०२०अ०२

इस देशके उत्पन्न हुए विद्वानोंसे सारी पृथ्वीके मनुष्य अपने चरित्र (आचार) और विद्याओंको सीखें यहींके लोगोंसे सबने विद्याएँ सीखी, यहां यह सिद्ध हुआ कि, ब्रह्मावर्त ही सबकी सृष्टिका मूलस्थान है और यहींसे और २ देशोंमें विद्या गई यदि आर्य लोग तिब्बती होते तौ तिब्बतसे सब विद्या सीखी जाती,

क्यों कि आपके कथनानुकूल इस देशमें कोइ रहताही नहीं था, तो आर्य्य लोग विद्या अपने साथही तिब्बतसे लाये थे, तो तिब्बतही सब विद्याओंका स्थान होता इससे यही सिद्ध है कि, आर्य्य इस देशमें सदाके हैं और विद्या भी सदासे है और न कभी हिमालयवासियोंने आर्योंपर चढाई करी ॥ और जब एक मनुष्य जाति थी तो 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' इस यजुर्वेदमें चार जाति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रका वर्णन कैसे आया है ॥

स० पृ० २२९ पं० २६

*आर्य्यवाचोम्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ मनु० १०।४५.
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः २ अ० २ श्लो० २३ मनु०

जो आर्य्यावर्तदेशसे भिन्न देश हैंवे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहलातेहैं॥२३७।९

समीक्षा–क्या स्वामीजीने गपोडा लिखा है जो ऊपरके आधे श्लोकका अर्थ गडपही गये हैं सुनिये यह श्लोक मनुजीने यों लिखा है ॥

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ मनु०१०।४५

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी क्रियालोपसे जो अधम जाति उत्पन्न हुई चाहे वे म्लेच्छभाषा करके संयुक्त हों चाहे आर्यभाषा बोलते हों वे सब दस्यु हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि,इससे भिन्न देश दस्युदेश कहाता है इसका यह भाव है कि, आर्य्यावर्त्त देशमें भी कर्महीन क्रियाभ्रष्ट लोगोंका नाम दस्यु प्रचलित था, और यदि आधाही पद प्रमाण मानो तो जितने अपनेको आर्य कहते हैं उन सबकी दस्यु संज्ञा हो जायगी दूसरे श्लोकका अर्थ यह है कि इससे आगे म्लेच्छदेश है देवासुरसंग्राम भी स्वामीजीने मिथ्या ही कल्पना की है यह संग्राम वास्तवमें राजा इन्द्रसे और दैत्योंसे जो उसका सिंहासन लेनेकी इच्छा करते थे अनेकवार हुआ है जो बहुत प्रसिद्ध है और "अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३ " इस अष्टाध्यायी सूत्रके अनुसार वैश्य तो अर्य्य होता है आर्य नहीं तो वैश्य भी दस्यु हुए कारण कि आपके मतसे जो आर्य न हो वह दस्यु ॥

*पांचवीं बारकीमें म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः शुद्धपाठ है। और सत्या० प्र० पृ० २२५ पं० १० 'उत शूद्रे उत आर्ये' ऐसा अथर्ववेदवचन होनेसे शूद्रका नाम भी आर्य नहीं होसकता अब अर्थको बनावें यहां दोवर्ण आर्येके या चार जब अर्थ शूद्र और आर्य आये तो फिर यह आर्यावर्त कैसे हुआ आर्यावर्त होजाता । इससे सिद्ध है कि मनुस्मृतिके आर्यावर्त है भाष्यको० इनसे छोटे इसको यजुर्वेदमें म्लेच्छ माननेको कहते हैं हम कहतेहैं बाहुआदिसे उत्पन्नसे दस्युको क्यों न मानें ।

स० पृ०२२३ पं० ७

प्र० सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये २६७ । २० (उ०) अनेक ॥

समीक्षा--यह स्वामीजीका सृष्टिक्रम लोप होगया पूर्व तौ कहा है यह सृष्टिक्रमको बदल नहीं सक्ता अब उसने बहुत मनुष्य कैसे उत्पन्न करादिये स्वयं विना स्त्रीपुरुष संयोगके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसक्ता फिर परमेश्वरने स्त्री कहांसे मान करी स्त्रियोंकी उत्पत्ति सत्यार्थप्रकाशमें इस स्थलपर लिखी नहीं, जो कहो कि, उसने प्रयोजन पडनेसे ऐसा किया था, तो हमारा यह कहना फिर सिद्धही है कि आवश्यकता होती है तौ वह तुरंत अवतार धारण करलेता है और आवश्यकतासे सब कुछ करसक्ता है परन्तु स्वामीजीका सृष्टिक्रम अब दूरतक दृष्टि नहीं पडेगा और आर्य्योंमेंका तिब्बतमें पहला राजा कौन था यह भी तौ कुछ लिखाहोता ॥ २३४ । १४

स० प्र० पृ० २२६ पं० ९

ब्रह्माका पुत्र विराट् विराट्का मनु मनुके मरीच्यादि दश इनके स्वयंभुवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्तके प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त बसाया है ॥ २३७ । २२

समीक्षा--स्वामीजीके लेखसे विदित होता है कि, इक्ष्वाकुराजासे पहले सब तिब्बतीथे परन्तु मनुस्मृति जो मनुजीने रची है उन्होंने मनुका राज्य भी इसी देशमें होना लिखा है जब कि, ब्रह्मावर्त देश देवनिर्मित और ब्रह्माजीका भूमि निर्माण होनेसे आदि निवास है तो बेटे पोते भी सब यहीं हुए, और स्वामीजी तौ अमिवाघुआदिमें परम्परा लिखते ब्रह्मासे क्यों लिखी क्योंकि महात्माओंने तौ प्रथम अमिवायुकी उत्पत्ति लिखी है और प्रथम एक जाति भी नहीं थी चारोंवर्ण सदासे हैं यथा हि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीदिति यजुर्वेदे) और मनुजी लिखते हैं ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् ॥ मनु० १ । ३१

लोककी वृद्धिके अर्थ मुख बाहु जंघा चरणसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको उत्पन्न किया सृष्टि कर्मानुसार है तौ चारोंवर्ण कर्मानुसार ही उत्पन्न हुए, आदिसृष्टिमें कर्म नहीं इस कारण चारों वर्ण उत्पन्न हुए और शेष नाम परमात्माका है वही पृथ्वीको धारण करते हैं, इसमें शेषजीका पृथ्वीधारण करना सिद्ध है वही पृथ्वीको धारण करते हैं अब आगे और स्वामीजीकी विद्वता देखो ।

उक्षादाधारपृथिवीउतद्याम् ऋ०स०पृ०२२७।२६

स० पृ० २२८ पं०१ से उक्षा वर्षाद्वारा भूगोलके सेचन करनेसे सूर्यका नाम है उसने अपने आकर्षणसे पृथ्वीको धारण कियाहै और पं०२१ में ॥ २३९ ।१३॥

* सदाधारपृथिवीमुतद्याम् ।

यह यजुर्वेदका वचन है जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकलोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थोंका रचन धारण परमात्मा करता है जो सबमें व्यापक हो रहा है यह सब जगत्का कर्ता और धारण करने-वाला है ॥ २० । ९ ॥

समीक्षा–चार पांच पंक्तियोंके ही अंतरमें स्वामीजीकी स्मरणशक्ति लोप होगई वहां लिखा कि, सूर्य धारण करता है यहां कहा ईश्वर, कौनसा वाक्य आपका सत्य माना जावे, विना ही पढे अंग्रेजी विद्याका इतना असर है कि, सारी यूरूपियनोंकी बातें ग्रहण करें। हैं किसी इंग्लेण्डवासी अंगरेजने बहुत सत्य कहा है कि, यदि दयानंदसरस्वती अंग्रेजी पढे होते तौ जैसा वेदको ईश्वर वाक्य कहते हैं और भी जो मतविषयक बातें कहते हैं उन सबको तिलांजलि दे देते यह बहुत ही सत्य कहीथी अनुमानसे ही विदित होता है ॥

स० पृ० २२८ पं० २९ पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर (उत्तर) घूमते हैं (प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि, सूर्य घूमता है पृथिवी नहीं घूमती दूसरे कहते है सूर्य नहीं घूमता इसमें कौन सत्य वाक्य माना जाय (उत्तर) यह दोनों हीं आधे झूंठे हैं क्यों कि, वेदमें लिखा हैः–

आयंगौःपृश्निरक्रमीदसदन्मातरंपुरः॥पितरंचप्रयन्त्स्वः अ.३मं.६

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है ॥ २४० । १३

पृ०२२९ पं० २४ सन् १८८४

पृ० २४१ पं० १९ संवत् १९६९ की छपीमें अभःसूर्य पृथिवीसे लाखगुना बडा और करोडों कोस दूर है–

समीक्षा–कैसा सुन्दर अर्थ है यदि अभःके अर्थमें सब अंग्रेजी भूगोल लिख देते तौ भी चेले मानजाते पर उनके मतमें तो तेरहलाखगुना बडा लिखाहै ।

* मा० प्र० कर्ताजी इस श्लोकमें सदासे जाति बताई निर्बर्मा सिद्ध नहीं किये हैं तनक आंखसे काममें लाओ । १ सदाधारपृथिवीमुतेमाम् यजु०। १३ । ४ पांचवीं बारमें पाठ शुद्ध किया है ।

स०प्र०पृ० २९२ पं. १८ छापा सम्वत् १९६९

युञ्जन्तिब्रध्नमरुषंचरन्तंपरितस्थुषः।रोचन्तेरोचनादिवि। यजु०२३।५

इस मंत्रका अर्थ मेक्समूलरने घोडा किया है इससे तो जो सायणाचार्यने सूर्य अर्थ कियाहै वह अच्छा है परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है मेरी बनाई भा० भूमिकामें देखो ॥

समीक्षा--यदि कोई न्यायदृष्टिसे सत्यार्थप्रकाश पढे तो उसमें सब ही पूर्वापर विरुद्ध है पीछे पृ० २४१ में ब्रध्नः के अर्थ सूर्य जमीनसे लाखगुना बड़ा कियाहै सायणाचार्यने भी सूर्यके अर्थ किये हैं तो यहां दोनों अर्थ मिलते हैं और जब इसके ठीक अर्थ परमात्माके हैं तो फिर आपने ब्रध्नः के अर्थ सूर्य कैसे किये और आपके अर्थमें थेगडी लगानेवाले छोटे स्वामी बतावें कि दोनोंमें कौनसा अर्थ ठीक है या परस्पर विरुद्ध होनेसे दोनों असत्य हैं ।

स० पृ० २२९ पं० ३

आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृतंमर्त्यंच । हिरण्ययेनसवितारथेनादेवोयातिभुवनानिपश्यन् ॥ यजु० अ० ३३ मं० ४३

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादिका कर्ता प्रकाशस्वरूप तेजोमय रमणीय स्वरूपके साथ वर्तमान सब प्राणी अप्राणियोंमें अमृतस्वरूप वृष्टि या किरणद्वारा अमृतका प्रवेश करता और सब मूर्तिमान् द्रव्योंको दिखलाता हुआ सब लोकोंके साथ आकर्षण गुणसे सहवर्तमान अपनी परिधिसे घूमता रहता है किन्तु किसी लोकके चारों ओर नहीं घूमता वैसे ही एक २ ब्रह्माण्डमें एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य हैं पुनः पं० २९ जैसे राईके सामने पहाड घूमें तो बहुत देर लगती है और राईके घूमनेसे बहुत समय नहीं लगता है वैसे ही पृथ्वी घूमनेसे दिनरात होता है सूर्यके घूमनेसे नहीं और जो सूर्यको स्थिर कहते हैं वे ज्योतिर्विद्यावित् नहीं क्यों कि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक स्थानमें [illegible] राशिको प्राप्त न होता और गुरुपदार्थ विना घूमें आकाशमें नियमस्थानार [illegible] नहीं रहसकता ॥ २४० । २१

समीक्षा–स्वामीजीपर विना ही अंग्रेजी पढे बहुत कुछ अंग्रेजी विद्याका [illegible] सोचनेकी बात है यदि पृथ्वी घूमती होती तो जिस प्रकार ग्रह बारह राशियों [illegible] घूमते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी राशियोंमें घूमती और इसकी ग्रहमें संख्या [illegible] होती, और यदि लोक घूमनेहीसे स्थिर रहते तो ध्रुवका तारा नहीं घूमता इस बा[illegible] को सभी मानते हैं और इसी कारण इसका नाम ध्रुव है कि यह घूमता नहीं, [illegible]

ध्रुव तारा भी गिर पडना चाहिये तथा और भी तारागण हैं जो नहीं घूमते वे भी गिर पडैं तौ यह आकाश शून्य होजाय इस कारण यह कहना ठीक नहीं कि, जो नहीं घूमते हैं वे गिर पडैं और जो पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है तो गरमियोंके दिनोंमें सूर्यके निकट होनेसे यत्किंचित् सूर्य बडा दृष्टि आना चाहिये, ऐसा अंग्रेजीवाले मानते हैं सो ऐसा भी नहीं होता और राईका जो दृष्टान्त दिया है वह भी अशुद्ध है क्यों कि आपने लिखा है कि, राईको पहाडके सामने घूमते देर लगती है यह कहना ही हास्ययुक्त है आपने सूर्यको पृथ्वीसे लाख गुना बडा कहा और करोडों कोस दूर माना है देर तो जब लगै जब राईके बराबर घूमना पडे और राईका लाखगुना पहाड नहीं हो सकता यदि आठ राईको एक चावलकी बराबर ही मानले तो तोलाभर राईमें ६१४४* दाने हुए तो १७ ही तोलेमें १०४४४८ लाखसे भी अधिक दाने होजायंगे जिनका बोझ पाव भरकाभी नहीं हो सक्ता, इस कारण राई पर्वतक दृष्टान्त सम्पूर्णतः अशुद्ध है फिर एक पृथिवी ही तो नहीं अनेक ब्रह्माण्डोंमें यही सूर्य प्रकाश करता और दूर होनेसे क्या परमात्माके प्रतापसे अधिक वेगसे गमन करता है क्यों कि, (सूर्य एकाकी चरति) यजु० २३ । ७ और (हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्) यजु० ३३ । ७९ अर्थात् " सूर्य असहाय चलता है" सुवर्णके रथमें सूर्य देवलोकोंको देखते जाते हैं यह यजुर्वेदके वाक्य हैं जिससे सूर्यका लोकोंके चारों ओर घूमना सिद्ध होता है और जो पृथ्वी चलती होती तौ एक मिनटमें ५६ मील ७ ‍ गज पृथ्वी घूमती है पृथ्वीका व्यास अंगरेजोंमें ७९२६ मीलका लिखा है, स्वामीजीने लिखा तौ नहीं पर उन्हीं कैसा माना होगा और जो अधिक मानेंगे तो अधिक ही चाल होगी इस हिसाबसे जब घंटेभरमें ३३० ½ मील पृथ्वी घूमती है तौ जो कबूतर सवेरेको उडते हैं और दुपहरको आते हैं तौ वे घरपर न आने चाहिये क्यों कि छः घंटे घरमें पृथ्वी १९८१ ½ मील निकल जाती है कबूतर इतना चल नहीं सकता यदि कहो कि पृथ्वीकी कशिश उसे खैंचले जाती है तो ऐसी बडी पृथ्वीके घूमनेसे हवाका बहुत बडा धक्का लगना चाहिये और उडनेवाले अस्ताव्यस्त हो जाने चाहिये, और सदा आंधी ही चला करनी चाहिये जैसे कि जब रेल वेगसे चलती है तो उसके निकट कितना हवाका वेग होता है और जहां तहां निकटके तृणादि अस्ताव्यस्त हो जाते हैं, इसी प्रकार पृथ्वीके चलनेसे उडनेहारे जीवोंकी गति होनी चाहिये किन्तु जीव सर्व निर्विघ्न उडते हैं, फिर पृथ्वीके चलनेके वायुके रुखको जीव चलते

* छोटे स्वामीपर क्या गुणा भी नहीं आता जो तोलेके ७६८ चावलोंमें ६१४४ राईके दानोंको शंका की है यदि ८ राईका एक चावल माने तो ७६८ + ८ = ६१४४ ही होतेहैं यह तो बालकोंके निकालनेका गुणा है इसमेंभी-धरता।

परन्तु सो भी नहीं इच्छाचारी उड़ते हैं फाशेश होती तो खींचते मालूम पड़ते सो गुब्बारेपे चढनेवालोंको अनुभव होना चाहिये सो भी नहीं होता और पृथ्वीसे तिगुना जल है यह विखर जाय क्यों कि, आकर्षण शक्ति अपनेसे न्यूनको आकर्षण करसक्ती है, विशेषको नहीं यदि कहो कि, पुरुएम जल भरके फिरानेसे बोह नहीं गिरेगा तद्वत् पृथ्वी मानो सो भी नहीं हो सक्ता क्यों कि पुरुषके भीतर पानी भरा होता है मुख छोटा होता है पृथ्वीके भीतर पानी नहीं ऊपर है, इससे दृष्टान्त ठीक नहीं विना आडके वर्तनमें पानी नहीं ठहरसक्ता, यदि पृथ्वीमें आकर्षणशक्ति समवाय संबंधसे रहती है तो एक मिट्टीका गोला बनाकर उसमें तीन गुने गड्ढे करके पानी भरे यदि पानी ठहर जाय तो पृथ्वीमें भी ठहर जायगा सो ऐसा नहीं होता इस प्रकारसे पृथ्वीका घूमना सिद्ध नहीं होता अब वेदमंत्रोंसे पृथ्वीका स्थिर होना सिद्ध करते हैं, औरको स्वामीजी आधे झूंठे बताते हैं परन्तु आप यहां सारे ही झूंठे हैं मंत्रमें गौ शब्द देखकर पृथ्वीका चलना सिद्ध कर दिया निरुक्तमें इस शब्दका इस प्रकार व्याख्यान: किया है (गौरिति पृथिव्या नामधेयम् यद्दूरंगता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति गातेर्वौकारो नामकरणः) जो अन्त प्राणियोंसे दूर होतीहै जिस कारणसे कि इसपर प्राणी चलते हैं इससे पृथ्वीका नाम गौ है वा 'गीयते स्तूयते असाविति' यह स्तुति कीजाती है इससे गौ कहलाती है यथा-गौर्जगार यद्ध पृच्छान् अ० १० । ३१ । १० निघंटु निरुक्त २ ७ में पृथ्वीका नाम निर्ऋतिः लिखा है [निर्ऋतिः निरमणात्] 'निश्चलत्वेनावस्थानात्' जिसमें गति नहीं होती अर्थात् जो स्थिर हो उसे निर्ऋति कहते हैं जैसे ऋग्वेदमें (बहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेश १ । १६४ । ३२) उदाहरण है जो पृथ्वी चलती होती तो क्यों निर्ऋति नाम होता क्यों कि जिसमें गति नहीं वह निर्ऋति है स्वामीजीने 'आयंगौः' इसको तीसरे अध्यायका ९ मंत्र लिखा है परन्तु यह छठा मंत्र है नवमा नहीं* इस मंत्रका सर्पराज्ञी कद्रूऋषिः गायत्रीच्छन्दः अग्नि देवता है यह भी जान रखनेकी बात है कि जिस मंत्रका जो देवता होता है उस मंत्रमें उसीका गुण कथन होता है जब इस मंत्रका अग्निदेवता है तो अग्निके ही गुण इसमें कथन किये हैं यहां गौ नाम अग्निका है यथा हि-

(आयम्) इस (गौः) यज्ञसिद्धिके अर्थ यजमानके घर आने जानेवाले (पृश्नि) श्वेतरक्त-आदि बहुप्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त अग्निने (आ) सब ओरसे आहवनीय गार्हपत्य दाक्षिणाग्निके स्थानोंमें (अक्रमीत् अतिक्रमण किया (पुरः पूर्वदिशामें (मातरम्) पृथ्वीको (असदत्) प्राप्त किया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्गमें चलते अग्निने (पितरम्) स्वर्गलोकको (असदत्) प्राप्त किया ॥ ६ ॥

* पांचवीं वारमें शुद्ध है ।

सायणाचार्यने "आयंगोः" सर्पराज्ञ्यात्मदैवतंसौर्यं वेति

इस अनुक्रमणिकाके अनुसार सूर्यपरत्व व्याख्यान किया है यथा 'गौर्ग-मनशीलः मातृवर्णः भासतेजाः अयं सूर्यः आक्रान्तवान्' इत्यादि गमनशील तेजसम्पन्न यह सूर्य उदयाचलसे गमन करताहै इत्यादि इसमें भी भूमिका गमन नहीं है ।

इस मंत्रमें कहीं यह बात नहीं निकलती कि, पृथ्वी चलती है अब दूसरे मंत्रका अर्थ सुनियेः-

(सविता) सूर्य (देवः) देवता (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मय (रथेन) निज मंडलरूप रथके द्वारा (आवर्तमानः) मेरुपर्वतको परिक्रमण करता (कृष्णेन) अंधकार और (रजसा) ज्योतिसे (अमृतम्)देवताआदि (च)और (मर्त्यम्) मनुष्यादिको (निवेशयन्) अपने व्यापारमें स्थापन करता (भुवनानि)भुवनोंका (पश्यन्) देखता अर्थात् साधु असाधु कर्मोंको विचारता (आयाति) गति करता है और देखिये यजुर्वेदमें-

येनद्यौरुग्रापृथिवीचंदृढायेनस्वस्तभितं येननाकः योऽअन्तरिं क्षेरजसोविमानःकस्मैदेवायहविषाविधेम-यजु० अ० ३२ मं० ६

पदार्थः-(येन) जिसने (द्यौः) द्युलोक (उग्रा) जलपूर्ण अर्थात् वृष्टि दायक कीहै (च) और(पृथिवी) भूमि (दृढा) निश्चल वृष्टिग्रहण और अन्ननिष्पादनमें दृढ कीहै (येन) जिसने (स्वः) स्वर्लोक जहां आदित्यमंडल तपताहै सो और (येन) जिसने (नाकः)दुःख रहित स्वर्ग लोक (स्तभितम्) स्तंभित किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षमें (रजसः) वृष्टिरूप जलका (विमानः) निर्माताहै (कस्मैदेवाय) उस प्रजापति देवताके निमित्त (हविषा आविधेम) हवि देतेहैं ।

सिद्धान्तशिरोमणिगोलाध्याय ।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि ।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः ॥ ५ ॥

अर्थ-जैसे सूर्य और अग्निमें उष्णता चन्द्रमामें शीतलता जलमें गति पाषाणमें स्वभावसे कठिनता है ऐसे ही स्वभावसे पृथिवी अचल है वस्तुओंकी शक्ति विचित्र है ।

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन्मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोयम् ॥
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥

भूमि पिण्ड चन्द्र बुध शुक्र रवि मंगल बृहस्पति शनि और नक्षत्रोंकी कक्षासे आवृत है मिट्टी अग्नि जल वायु आकाश तेजसे गठित है यह विना आधारके अपनी परमेश्वरकी ही शक्तिके बलसे सदा शून्यमें स्थित (अचल) है असुर मनुष्य देव दैत्य इसपर निवास करते हैं इस प्रकार विश्व इसपर निवास करता है 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' धातुसे तिष्ठति रूप बन्ताहै जिसके अर्थ अचलके हैं और भी सिद्धान्तशिरोमणिमें पृथिवी न घूमनेकी कितनी ही युक्तियां हैं देखने वाले देखसकतेहैं अस्तु पृथिवी चल और अचल माननेसे हमारे फलमें कोई हानि नहीं आती दोनों प्रकारसे दिन रात आदि होते हैं फिर वेद जो कहे सोई सत्य है। वेदका सिद्धान्त लिखदिया इस विषयमें हमको विशेष विवाद इष्ट नहीं है विकल्प तौ सिद्ध ही है ।

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गताष्टम-
समुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ २२ । ८ ॥ ९०

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतनवमसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यते ।

मुक्तिप्रकरणम् ।

स्वामीजीने इस समुल्लासमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है प्रथम इसके कि, मुक्तिके विषयमें कुछ लिखें यह भी दिखा देना अवश्य है कि, स्वामीजीने भाष्य-भूमिका पृ० १११, और ११२ आर्य्याभिनय पृ० १६, ४२, ४९, वेदान्त-ध्वान्तनिवारण पृ० १० । ११ वेदविरुद्धमतखंडन पृ० १४ सत्यधर्मविचार पृ० २९ में यह लिखा है कि मुक्ति कहते हैं छूट जानेको अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे छूटकर एक सच्चिदानंद परमेश्वरको प्राप्त होकर सदा आनन्दमें रहना और फिर जन्म मरणादि दुःखसागरमें नहीं गिरना इसीका नाम मुक्ति है फिर न मालूम कौनसे कारणसे मुक्तिसे लौटना मान लिया सो यही विषय लिखा जाता है-

स० पृ० २३३ पं० ४ (प्रश्न) बंधमोक्ष स्वभावसे होता है या निमित्तसे (उत्तर) निमित्तसे, क्योंकि जो स्वभावसे होता तौ बंधमोक्षकी निवृत्ति कभी नहीं होती ॥ २४९ । १०

समीक्षा—स्वामीजीको घरका मार्ग भी विस्मृत होगया जब कि बंध मोक्ष निमित्तकारणसे होता है तो जब निमित्त मोक्ष हुई तो फिर कौनसे निमित्तसे उसे जन्म लेना पढेगा इससे तो यही सिद्ध होता है कि उसका जन्म नहीं होता ॥

स० पृ० २३३ पं० ६

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ॥
न मुमुक्षुर्न वैमुक्तिरित्येषा परमार्थता॥गौडपा०कारि०२प्र०का०३२

यह माण्डूक्यपर कारिका है पं०,११ में इसका अर्थ किया है यह नवीन वेदान्तियोंका कहना सत्य नहीं क्यों कि जीवस्वरूप अल्प होनेसे आवरणमें आता शरीरके साथ प्रगट होनेरूप जन्म लेता पापरूप कर्मोंके फल भोगरूप बन्धनमें फँसता उसके छुडानेका साधन करता दुःखसे छूटनेकी इच्छा करता है दुःखसे छूटकर परमानन्द परमेश्वरकी प्राप्ति होकर मुक्तिभी भोगता है ॥ २४९ । १९.

समीक्षा—स्वामीजीके इस वाक्यको तो देखिये आप तो प्राचीन वेदान्ती बनते हैं और दूसरोंको नवीन वेदान्ती कहते हैं और सरासर उल्टी ही धोगते हैं यह कारिकाही असत्य बताते हैं इसका आशय यह नहीं जैसा कि, स्वामीजीने कथन किया है अर्थ तो इसका यह है कि, जब अपने स्वरूपका ज्ञान होजाता है तब निरोध उत्पत्ति बन्धसाधक मुमुक्षु मुक्ति कुछ शेष नहीं रहता है केवल स्वयंप्रकाश लक्षित होने लगता है उपरोक्त बातोंमेंसे कुछ भी नहीं रहता इसीका नाम परमार्थता है यथा—

> नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् बृह० उप० ४ ब्रा० ३ कं० २३ ।
>
> अत्रपिताऽपिताभवतिमाताऽमाताल्लोकाअलोकादेवाअदेवा वेदाअवेदाः कं० २२ अ० ४ ब्रा० ३
>
> अथयत्र ॥ देवइवराजेवाहमेवेद[१] सर्वोऽस्मीतिमन्यते सोऽस्यपरमोलोकः बृ० उ० कं० २० अ० ४ ब्रा० ३

मोक्षावस्थामें जब अपने स्वरूपका ज्ञान होजाता है तो वहां कोई दूसरा नहीं है जिसको अपनेसे पृथक् देखे स्वयंप्रकाश एक वही है ॥

मुक्तिमें पिता अपिता, माता अमाता, लोक अलोक, देव अदेव, वेद अवेद होते हैं अर्थात् उसके सिवाय दूसरा है ही नहीं ॥

१ पांचवीं वारमें न व मुक्त इत्येषा० पाठ है ।

जब यह राजाकी नाईं यह जानता है यह सब कुछ मैं ही हूँ सोई इसका परम लोक अर्थात् मुक्ति है जब कि सत्य एक ब्रह्म तद्व्यतिरिक्त सब अनित्य हैं जब ऐसा ज्ञान हुआ तो बन्धयुक्त अविद्याज्ञान कुछ नहीं रहता इससे ब्रह्ममें कुछ दोष नहीं।

स० पृ० २३६ पं० १८ मुक्तिमें जीवका लय होता है या विद्यमान रहता है ॥ (उत्तर) विद्यमान रहताहै (प्रश्न) कहां रहताहै (उत्तर) ब्रह्ममें (प्रश्न ब्रह्म) कहां है और वह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरताहै (प्रश्न) मुक्तजीवका स्थूल शरीर होता है या नहीं (उत्तर) नहीं रहता (प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्दभोग कैसे करता है (उत्तर) उसके सत्यसंकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक संग नहीं रहता जैसे—

शृण्वञ्छ्रोत्रंभवतिस्पर्शयनत्वग्भवतिपश्यंश्चक्षुर्भवतिरसयन् रसनाभवतिजिघ्रन्घ्राणंभवतिमन्वानोमनोभवतिबोधयन्बुद्धिर्भवतिचेतयंश्चित्तंभवत्यहंकुर्वाणोऽहंकारोभवति शतपथकां० १४ *

मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साधन नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहताहै तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखनेके संकल्प करनेके समयसे चक्षु, स्वादके अर्थ रसन गन्धके लिये घ्राण, संकल्प विकल्प निश्चय करनेके लिये बुद्धि, स्मरण करने लिये चित्त और अहंकारके अर्थ अहंकाररूप अपनी शक्तिसे जीवात्मा मुक्तिमें जाता है और संकल्पमात्र शरीर होजाताहै जैसे शरीरके आधार रहकर इन्द्रियों गोलकद्वारा जीव स्वकार्य करता है वैस अपनी शक्तिसे मुक्तिमें सब आनन्द भोग लेता है ५० २४९ पं० २३ तक—

समीक्षा—यह स्वामीजीका मिथ्या लेख है इसमें सारार्थ केवल इतना है कि मुक्तिमें स्थूलशरीर रहित होता है और अपनी शक्तिसे श्रोत्रादि रूप होकर आनन्दको भोगताहै और उसको भौतिक पदार्थका संग नहीं रहता परन्तु जो श्रुतिप्रमाण लिखी है सो मोक्षप्रकरणकी नहीं है और इस अर्थका साधक भी नहीं तथा हि—

* पांचवीं बारके सत्यार्थप्रकाशतक इस श्रुतिका पता न लगा न भास्कर प्रकाशके कर्ताको पता लगा यह श्रुति चौदहवें काण्डमें नहीं है दयानन्दी बतावें कहां है ।

सएपइहप्रविष्टआनखाग्रेभ्योयथाक्षुरःक्षुरधानेऽवहितःस्याद्विश्वंभरोवाविश्वंभरकुलायेतंनपश्यंत्यकृत्स्नोहिसप्राणन्नेवप्राणो नामभवतिवदन्वाक्पश्यंश्चक्षुःशृण्वञ्छ्रोत्रंमन्वानोमनस्तान्यस्यैतानिकर्मनामान्येवसयोऽतएकैकमुपास्तेनसवेदाकृत्स्नोह्येषोऽतएकैकेनभवत्यात्मत्येवोपासीतात्रह्येतेसर्वएकंभवन्ति ।

बृह० उप० अ० १ ब्रा० ४ कं० ७

इसी श्रुतिके आशयको स्वामीजीने श्रुति लिखी है परन्तु स्वामीजीके अर्थकी सिद्धि नहीं होती, इस पूर्ण श्रुतिका अर्थ यह है (-सो यह आत्मा पूर्व जो अव्यक्तका अधिष्ठानरूपसे निर्णीत है वह अव्यक्तकार्य शरीरमें नखाग्रपर्यन्त प्रविष्ट हुआ और प्रवेश भी विशेषरूपसे तथा सामान्यरूपसे हुआ)इसमें दृष्टान्त कहते हैं (यथा क्षुरधानेक्षुरोऽवहितः स्यात्) जैसे नाईके बरतनमें क्षुर प्रविष्ट होता है अर्थात् जैसे नाईके शस्त्रोंके पात्र (किस्वत) में क्षुरा आदि एकदेशमें प्रविष्ट होते हैं वैसे ही परमात्मा प्राणादि विशेषस्थानमें प्रविष्ट होकर विदित हुआ अथवा "विश्वंभरकुलाये" काष्ठोंमें जैसे अग्नि प्रविष्ट होती है सामान्यरूपसे इसी प्रकार सामान्यरूपसे सब देहमें प्रविष्ट हुआ तिस स्पष्टप्रविष्टको भी नहीं जानते (हि) जिस कारणसे यह आत्माका रूप (अकृत्स्न) सम्पूर्ण नहीं क्यों कि, यह आत्मा प्राण उपाधिक होकर प्राणन क्रियाको करता हुआ प्राणनामवाला होता है और वदन क्रियाको वागुपाधिक होकर करता हुआ वाङ्नामवाला होता है और चक्षुउपाधिक होकर दर्शनक्रियाको करता हुआ चक्षुनामवाला इसी प्रकार मननक्रियाका कर्ता होकर मननामवाला होता है इसी प्रकार जब शास्त्रान्तरीयपाठ होवे, तो रसना घ्राण बुद्धि चित्त अहंकार नामवाला होता है परन्तु यह सब आत्माके कर्म नाम अर्थात् औपाधिक क्रियाजनित नाम हैं इस कारण जो एक एकको आत्मरूपसे उपासना करता है सो नहीं जानता क्यों कि इन एक एक करके यह आत्मा असंपूर्ण होता है इस कारण सबको आत्मा इस रीतिसे ध्यान कर क्यों कि इस आत्मामें ही सर्व प्राणादि नामवाले एकताको प्राप्त होते हैं। अब स्वामीजीकी मिथ्या कल्पना देखनी चाहिये कि मोक्षमें शरीरभाव अथवा अपनी शक्तिसे मुक्त जीवको श्रोतृत्वादि रचना करना इस श्रुतिमें कहां सिद्ध होसक्ता है क्यों कि आगेकी श्रुति देखनेसे यह प्रसंगके विरुद्ध प्रतीत होताहै ॥

यद्वैतन्नजिघ्रतिजिघ्रन्वैतन्नजिघ्रतिनहिघ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयज्जिघ्रेत् ॥ १ ॥

यद्वैतन्नरसयतेरसयन्वैतन्नरसयते नहिरसयितूरसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयद्रसयेद् २॥ यद्वैतन्नवदातिवदन्वैतन्नवदति नहिवक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्वितीयमस्तियतोन्यद्विभक्तंयद्वदेत् ॥ ३ ॥ यद्वैतन्नशृणोतिशृण्वन्वैतन्नशृणोतिनहिश्रोतुःश्रुतेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयच्छृणुयात् ४ यद्वैतन्नमनुतेमन्वानोवैतन्नमनुतेनहिमन्तुर्मतेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयन्मन्वीत ॥५॥ यद्वैतन्नस्पृशतिस्पृशन्वैतन्नस्पृशतिनहिस्प्रष्टुःस्पृष्टेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्स्पृशेत् ६॥ यद्वैतन्नविजानातिविजानन्वैतन्न विजानातिनहिविज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते विनाशित्वान्नतुतद्वितियमस्तियतोन्यद्विभक्तंयद्विजानीयात् ॥७॥ बृ० अ० [illegible] ब्रा० ३ कं० २४ से ३० तक

भावार्थ—मुक्तिको प्राप्त होकर न वह सूंघता है या सूंघता हुआ भी नहीं सूंघता सूंघनेवालेको सुगंधिसे विपरिलोप "विभक्तता" नहीं है अविनाशी होनेसे जब यहां कोई दूसरा है ही नहीं तो क्या सूंघेगा अर्थात् उसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है इसी प्रकार रसन बोलना मनन छूना जानना इत्यादि मुक्तमें कुछ भी नहीं है जब कि, दूसरा कोई है ही नहीं तो उपरोक्त विचार कैसे कर सकता है, इत्यादि सातों श्रुतियोंका अर्थ इसी प्रकार सरल है इससे सिद्ध हुआ कि, मुक्तिमें ब्रह्म जीवकी एकता हो जाती है इच्छादिक करना बन ही नहीं सक्ता इस कारण स्वामीजीकी उपरोक्त श्रुति इस विषयमें नहीं है मुक्तिमें जीव अपने शुद्ध चेतन स्वरूपको प्राप्त होता है ॥

स० पृ० २३७ पं० ८

उसकी शक्ति के प्रकारकी और कितनी है (उत्तर) मुख्य एक प्रकारकी शक्ति है परन्तु बल पराक्रम आकर्षण प्रेरण गति भीषण विवेचन क्रिया उत्साह स्मरण निश्चय इच्छा प्रेम द्वेष संयोग विभाग संयोजक विभाजक श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन और गंधग्रहण तथा ज्ञान इन चौबीस प्रकार सामर्थ्ययुक्त जीव है इससे मुक्तिमें भी आनन्दकी प्राप्तिभोग करता है ॥ २४५ पं० २१ मे

समीक्षा–इसमें यह विचार करना चाहिये कि क्रियाशब्दार्थ यदि गमन है तौ गतिका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है यदि धात्वर्थमात्रका नाम क्रिया है तो जैसे बल प्राणने इस धातुका अर्थ बल है वैसे ही परिक्रमादि सर्व ही किसी न किसी धातुके अर्थ हैं इनका पृथक् ग्रहण करना असंगत है और यदि ज्ञानका ग्रहण किया था तब निश्चय स्मरण श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन गन्धग्रहण इन सबका ग्रहण होगया था फिर इनका ग्रहण करना निष्फल है और भी विचारनेकी बात है जो स्वामीजीने पृ० २३६ पं० ७ में दुःखसे छूटनेका नाम मुक्ति है यह लिखा है और अब २३७ पं० १० में भीषण इच्छा प्रेम द्वेष यह गुण तब कहे इनका यही अर्थ होगा किसीसे भयभीत होना अथवा किसीको भय देना इसका नाम भीषण है यह दोनों भी दुःखरूप हैं और इच्छा तृष्णाका नाम है सो महाक्लेशकारी सर्वथा प्रसिद्ध है, यद्यपि मुक्त आत्मा अपनी इच्छा निवृत्त करसक्ता है तथापि उसके पीछे दुःख तौ लगेई हैं प्रेम नाम रागका है और द्वेष नाम क्रोधका है सो यह बद्धजीवमें होसक्ते हैं, मुक्तजीवमें किसी प्रकार हो नहीं सक्ते इससे स्वामीजीको मोक्षमें बड़ा ही भ्रम है, सो मिथ्या ज्ञानसे यह भ्रम उत्पन्न हुआ है ॥

स० पृ० २३७ पं० १६

अभावंबादरिराहह्येवम् वेदा० ४ । ४ । १०

जो बादरि व्यासजीका पिता है वह मुक्तिमें जीवका और उसके साथ मनका भाव मानता है अर्थात् जीव और मनका लय पराशरजी नहीं मानते ॥ २९० । ४

समीक्षा–यह भी सूत्रार्थ स्वामीजीने अशुद्ध ही लिखा है सूत्रके अक्षरार्थतककी भी स्वामीजीको खबर नहीं यह स्वामीजीका अर्थ प्रकरण और श्रुतिविरुद्ध है क्यों कि इस सूत्रके अभावम् बादरिः आह हि एवम् यह पद हैं इसमें बादरिः कर्ता है और अभाव कर्म है मन्यते क्रियाका अध्याहार होताहै तब यह अर्थ होगा कि, बादरि आचार्य अभाव मानते हैं सो किसका अभाव मानते हैं इसका उत्तर इस सूत्रके विषयकी श्रुतिमें है (सो आगे लिखेंगे) (हि) जिस कारणसे कि, (एवम्) ऐसे (आह) श्रुति कहतीहै इस कारण इस सूत्रमें जीव और मनका भाव अर्थ नहीं और आह हि एवम् इन तीनों पदोंके अर्थकी तौ स्वामीजी चटनी-कर गये इससे यह अर्थ ठीक नहीं ॥

स० पृ० २३७ पं० २१

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात् । ४ । ४ । ११

और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुषका मनके समान सूक्ष्मशरीर इंद्रिय प्राण आदिको भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं ॥ २९० । ७

समीक्षा–यह भी अर्थ असंगत है क्यों कि इस सूत्रमें सूक्ष्मशरीर इन्द्रिय प्राण आदिका सद्भाव माना इसमें यह असंगत है कि सूक्ष्मसे पृथक् इन्द्रिय प्राणको कहा क्यों कि इन्द्रिय प्राण तो सूक्ष्मान्तर्गत हैं और मन भी सूक्ष्म अन्तर्गत है, पहले सूत्रमें मनका सद्भाव माना है और मन प्राण इन्द्रियसे विना नहीं रहसका तो पहले मतमें इन्द्रिय और प्राणभी मानने होंगे, तो बादरिके और जैमिनिके मतमें अंतर ही क्या रहा तो उनका मतभेद ही क्या रहा जिन्हें सूक्ष्मशरीरकी खबर नहीं सो व्यास सूत्रोंका क्या अर्थ करेंगे इस सूत्रमें विकल्पामननात्का अर्थ नहीं लिखा है फिर अर्थ कहांसे बने ॥ पं० २४ ॥

द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः ४ । ४ । १२

व्यासमुनि मुक्तिमें भाव और अभाव इन दोनोंको मानते हैं अर्थात् शुद्ध सामर्थ्य युक्त जीव मुक्तिमें बना रहता है अपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादिका अभाव मानते हैं ॥

समीक्षा–इस लेखमें भी सूत्रार्थका पता नहीं द्वादशाहवत् उभयविधं बादरायणः अतः इतने पद इस सूत्रमें हैं स्वामीजीने इसमें आदि अन्तके पद छोडके (उभयविध) का अर्थ किया है कि शुद्ध सामर्थ्य युक्त हो पापाचरणादि विशिष्ट न होना यह कथन भी पूर्व दो मतोंका साधक नहीं क्यों कि पूर्वमतोंमें भी पापाचरणादि नहीं माने, शुद्ध सामर्थ्य ही मानेंगे जब पूर्व मतोंमें भी यह अर्थ हुआ तो तीन मतोंका पृथक् लिखना असंगत है और स्वामीजी तो प्रेम द्वेप इच्छादि क्लेश मानते हैं सो यह अपवित्रता है वा और कुछ है फिर अपवित्रताका मोक्षमें अभाव कथन करना बादरायणके मतमें असंगत है क्यों कि स्वयं स्वामीजी अपवित्र मानचुके हैं और स्वतः प्रमाण संहिताके मन्त्र लिख व्याससूत्र क्यों लिखे अब हम अच्छी प्रकारसे इन सूत्रोंको पूर्वापर सहित लिखते हैं जिससे सज्जन पुरुषोंका निर्णय होजायगा कि, स्वामीजीने सूत्रोंका अर्थ बिगाड दियाहै ॥

मुक्ति तीन प्रकारसे शास्त्रमें कथन करी है कैवल्यमुक्ति ब्रह्मलोकप्राप्ति और ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रममुक्ति प्रथम कैवल्यमुक्तिवर्णन करते हैं ॥

सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दात्–शारीरक अ० ४ पा० ४ सू० १

विषयवाक्य　**अशरीरोवायुरभ्रंविद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थायपरंज्योतिरुपसंपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते, एवमेवैषसम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्था·**

यपरंज्योतिरुपसम्पद्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः छां० उ० प्र० ८खं० १२। कं० २। ३

सूत्रार्थ–सम्पद्य नाम अविद्यातिरोहितरूपके आविर्भावका है क्यों कि श्रुतिमें स्वेन ऐसा शब्द देखा जाता है और स्वरूपनाम पूर्वसिद्ध अपने रूपका है इससे अविद्यातिरोहितरूपका अविद्यानिवृत्तिसे आविर्भाव ही कैवल्य है विषयवाक्य श्रुतिका अर्थ किसी निमित्तसे स्वस्वरूप तिरोधान होकर पश्चात् निमित्तान्तरमें स्वस्वरूपप्राप्तिमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे वायु सूक्ष्म मेघ विद्युत् स्तनयित्नु, अर्थात् स्थूलमेघ यह सम्पूर्ण पदार्थ वर्षाकालसे भिन्न कालमें शरीर अर्थात् तिरोहित-शरीर होते हैं, आकाशके साथ एकताको प्राप्त होते हैं, वे कालरूप निमित्तसे आकाशमें तिरोहित रहते हैं, और वर्षाभिन्नकाल निमित्तके अभाव होते ही आषाढके ज्योतिरूप तेजको प्राप्त होकर आकाशसे समुत्थित हो अपने पूर्वसिद्ध चातुर्मासिक रूपसे प्राप्त होते हैं तैसे ही यह चैतन्य जीव इस शरीररूप निमित्तसे देहादितादात्म्यभावको प्राप्त होकर अपने स्वतःसिद्ध रूपके भान होते ही ज्ञानसे देहतादात्म्यभावको त्याग अपना स्वतः सिद्ध परंज्योतिस्वरूप आत्मा है तिसको प्राप्त होकर विराजमान होता है और मुक्तात्मा ही उत्तम पुरुष अर्थात् परमात्मरूप है ॥

मुक्तः प्रतिज्ञानात्–शा० अ० ४ पा० ४ सू०२

श्रुतिमें जो अभिनिष्पद्यते यह कहा है वह सर्वबंधरहित शुद्धस्वरूप करके अवस्थान ज्ञानरूप जो मुक्तावस्था तिसको प्राप्त होता है ॥

आत्माप्रकरणात्–अ० ४ पा० ४ सू० ३

इस श्रुतिमें ज्योतिःशब्द भौतिक ज्योतिका बोधक नहीं आत्माका प्रकरण होनेसे मुक्तिमें कैसा स्वरूप हो जाता है परमात्मासे पृथक् हो रहता है अथवा रूप हो जाता है इसपर अगला सूत्र है ॥

अविभागेनदृष्टत्वात्–अ० ४ पा० ४ सू० ४

मुक्त ब्रह्मसे अभिन्न स्थित होता है ऐसी श्रुति कहती है मुक्तका ब्रह्मके साथ भेद नहीं है " स उत्तमः पुरुष इति" इस वाक्यमें जो सः शब्द है उसने अभिनिष्पन्नरूप मुक्तस्वरूपका परामर्श कर मुक्तको ही उत्तमशब्दवाच्य ब्रह्मस्वरूप कहा है तिससे मुक्त स्वरूपसे ब्रह्म भिन्न नहीं है अविभक्त ही परसे मुक्त रहता है तथा हि–

यत्रनान्यत्पश्यतिनान्यच्छृणोतिनान्यद्विजानातिसभूमा छां० प्र० ७ खं० १४

नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् । बृह० अ० ६ ब्रा० ३ कं २३

जिस भूमा ब्रह्ममें अन्य किसी वस्तुको अन्य द्रष्टा वा श्रोता देखता वा सुनता नहीं तथा अन्य किसी वस्तुको अन्य विज्ञाता जानता नहीं सो भूमा है जो भूमाको प्राप्त होकर पृथक् रहता तौ पृथक् द्रष्टा होकर देखता इससे अभेदरूपसे ही मुक्तिमें स्थिति होती है और जब दूसरा है ही नहीं तौ अन्य क्या देखेगा और एकमें भी आधारान्तर निषेधके हेतु स्थिति कही जाती है यथा–

सभगवः कस्मिन्प्रतिष्ठितः स्वेमहिम्नीतिहोवाच–छां० प्र० ७ खं० २४

नारदजीने सनत्कुमारसे पूछा हे भगवन् ! सो भूमा किसमें स्थित है (उत्तर) अपनी अखण्डैकरसमहिमामें स्थित है रूपान्तरसे स्थितिका निषेध किया है ॥

अब यह प्रश्न है कि स्वस्वरूप इसका चेतनमात्र है वा सत्यकामत्वादि धर्मविशिष्ट है प्रथम इसमें जैमिनिआचार्यका मत कथन करते हैं ॥

ब्राह्मेणजैमिनिरुपन्यासादिभ्यः–शा० अ० ४ पा० ४ सू० ५

जो ब्रह्मका सत्यकामत्वादि विशिष्ट रूप है तिसी रूपसे मुक्तिमें जैमिनिजी स्थिति मानते हैं वाक्यके प्रारम्भमें अयमात्मापहतपाप्मा इत्यादि सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्व विशिष्टका उपन्यास नाम कथन करा है ॥

सतत्रपर्य्येतिजक्षत्क्रीडन्रममाणः–छां० प्र० ८ खं० १२।३

सो मुक्त मोक्षपदमें वर्त्तमान हास क्रीडा रमण करता हुआ सब प्रकारसे जानता है इन प्रमाणोंसे ईश्वर सत्यकाम सत्यसंकल्प है किसी रूपसे मुक्तका आविर्भाव होता है ॥

चितितन्मात्रेणतदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः–शा० अ० ४ पा० ४ सू० ६

चैतन्यमात्रस्वरूपसे मुक्तकी स्थिति होती है क्यों कि, (तदात्मकत्वात्) चैतन्यस्वरूप है केवल ज्ञानमात्र ही आत्माका स्वरूप है तिसी रूपसे मोक्षमें स्थिति होती है और जो श्रुतिमें सत्यकामत्वादि कथन करा है सो असत्यकामत्वादि जो बंध कालमें प्रसक्त थे तिनका निषेध करा है बृहदारण्यकमेंभी केवल ज्ञानमात्रस्वरूप आत्माका निर्णय करा है ॥

सयथासैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नोरसघनएवैवंवाअरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यःकृत्स्नःप्रज्ञानघनएव–बृ० अ०४ ब्रा० ५ कं० १२

जैसे सैंधेका टुकडा अन्तरबाहरसे मैलरहित सम्पूर्ण रस घन है, इसी प्रकार यह सर्वानुभवसिद्ध आत्मा अन्तर बाहरसे पदार्थान्तर मैलरहित सम्पूर्ण प्रज्ञानघन है इस कारण आत्मा चैतन्यरूप है मोक्षावस्थामें चैतन्यमात्ररूपसे स्थित है यह औडुलोमि आचार्य मानते हैं ।

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधंबादरायणः ॥
शा० अ० ४ पा० ४ सू० ७

यद्यपि श्रुतिप्रमाणसे चैतन्यमात्र स्वरूपका रहे तो भी पूर्व श्रुतिप्रतिपाद्य ब्राह्म ऐश्वर्यका निषेध न होनेसे भी विरोध नहीं है यह बादरायण ऋषि मानते हैं भाव यह है मुक्त पुरुषमें चैतन्यमात्र स्वरूप है श्रुतिभी ईश्वर धर्मका कहना बद्ध पुरुषोंकी अपेक्षासे सत्यकाम सत्यसंकल्पादि करती हैं विद्वान् मुक्त पुरुषका रूप चैतन्यमात्र है तो अखण्ड चैतन्यसे अन्यत्र सत्यकाम सत्यसंकल्प जक्षन् क्रीडन् रममाणादि नहीं है इससे व्यासजीके मतमें दोनों वाक्योंका अविरोध है यह सिद्धान्त पक्ष है यह ज्ञानसे कैवल्यमुक्ति कथन करी अब सगुण उपासनासे ब्रह्मलोकमतिद्वारा मुक्तिनिरूपण करते हैं ॥

संकल्पादेवतुतच्छ्रुतेः–शा० अ० ४ पा० ४ सू० ८

सयदा पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ।
अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ।
छां० प्र० ८ खं० २

भावार्थ–जो उपासक उपासनाके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुआ है उसे सर्व काम भोगपवर्ग आनन्दके कारण संकल्पमात्रसे ही प्राप्त होजाते हैं, सो उपासक जब पितृलोककी कामनावाला होता है तब संकल्पमात्रसे ही इसके पितर समुत्थित होते हैं, उनसे पितृलोकमें प्राप्त हुआ पूजित होता है इसी प्रकार मातृलोककी इच्छासे वोह भी उपस्थित होता है (प्रश्न) उपासकमें सत्यसंकल्पताकी दृढता सम्भव नहीं क्यों कि वोह ईश्वराधीन है (उत्तर)

अतएवचानन्याधिपतिः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ९

सत्यसंकल्प होनेसे ही सगुण ब्रह्म विद्वान् उपासक (अनन्याधिपतिः) पराधीनतावर्जित है भाव यह है ईश्वरका धर्म सत्यसंकल्प ही उपासकमें आविर्भावको प्राप्त हुआ है क्यों कि, कार्यउपाधि जीवमें भी सत्यकामादि तिरोभूत थे उपासनाबलसे प्रादुर्भाव होतेहैं, अब यह विचार कर्तव्य है ब्रह्मलोकमें प्राप्त उपासकका श्रुति प्रमाणसे संकल्पका साधन माने तो सिद्ध ही है शरीर वा बाह्य इंद्रिय ऐश्वर्य प्राप्त विद्वान्के होते हैं या नहीं इसमें मतभेद है तथा हि-

अभावंबादरिराहह्येवम्-शा० अ० ४ पा० ४ सू० १०

बादरि आचार्य्य ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान्के शरीर इन्द्रियोंका अभाव मानते हैं क्यों कि इसमें श्रुति प्रमाण है ॥

मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते; यएतेब्रह्मलोके-छां०प्र०८खं०१२

ब्रह्मलोकमें शरीरेन्द्रियसे विना केवल मनसे ही भोग साधन है यह ब्रह्मलोकमें जो विषय है तिनको मनसे अनुभव करता रमण करता है स्वामीने प्रकरण छोड मनसहित जीवका मोक्षमें होना लिखा है और मोक्षका निर्धारण नहीं करा कि कौनसी मुक्तिमें जीव मन सहित है ॥

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात्-शा० अ० ४ पा० ४ सू० ११

जैमिनि आचार्य ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मुक्तिमें मनसहित इन्द्रियके शरीरका भाव मानते हैं (विकल्पामननात्) नानात्वभावका अभ्यास श्रुतिमें देखा जाता है यथाहि-

सएकधाभवतित्रिधाभवतिपञ्चधासप्तधानवधाचैवपुनश्चैकादशस्मृतःशतंचदशचैकश्चसहस्राणिचविंशतिः-छां०७ खं०२६

सो मुक्त पुरुष एक प्रकारका, तीन प्रकारका, पांच सात नव पुनः ग्यारह सौ दश फिर एक फिर सहस्र बीस इत्यादि प्रकारके भावको प्राप्त होता है इस श्रुतिप्रमाणसे मोक्षमें सहित इन्द्रिय शरीरका होना जैमिनि मानते हैं ॥

द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः-शा०अ०४पा० ४ सू०१२

इन दो प्रकारमें व्यासजी कहते हैं कि, जब सशरीर कल्पना करता है तब तौ सशरीर होता है और जब अशरीरता कल्पना करता है तब अशरीर होता है, यह दोनों प्रकार ही होते हैं क्यों कि ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान् सत्यसंकल्प है इससे संकल्पकी विचित्रतासे उभयविधभाव होसक्ता है (द्वादशाहवत्) जैसे दो प्रकारकी श्रुति पूर्वमीमांसामें द्वादशाह यागको सत्रत्व तथा अहीनत्व यह दोनों प्रकार

मानते हैं तैसेही मुक्त पुरुषको सशरीरत्व तथा अशरीरत्व दो प्रकारकी श्रुतिसे मानते हैं ॥

तन्वभावेसंध्यवदुपपत्तेः—शा० अ० ४ पा० ४ सू० १३

देहके अभावमें जैसे स्वप्नमें मातादिककी उपलब्धि होती है ऐसे ही मोक्षमें मातादि विषयकी उपलब्धि सिद्ध है मनसे कल्पित विषयोंका स्वप्नमें भोग साक्षी भास्य है तब तो सन्ध्यनाम स्वप्नवत् पित्रादि विषय तथा अपना शरीर भी स्वप्न-तुल्य प्रतीत मात्र जानने ऐसे ही भोगकी उपपत्ति होसकती है अन्यथा नहीं ॥

भावेजाग्रद्वत्—शा० अ० ४ पा० ४ सू० १४

शरीरके भावमें मुक्तको जाग्रत्के तुल्य भोग होता है ॥

प्रदीपवदावेशस्तथाहिदर्शयति—शा० अ० ४ पा० ४ सू १५

एक आत्मा अनन्त शरीरोंमें कैसे प्रवेश करेगा तहां व्यासजी कहते हैं प्रदीपवत् आवेश होता है जैसे प्रदीप अनेक बत्तियोंमें प्रविष्ट होता है वैसे मुक्त भी विद्यायोग बलसे अनेक शरीरोंमें प्रविष्ट होजाता है क्यों कि उसका लिंगशरीर विद्याबलसे व्यापक होजाता है, एकधा भवति त्रिधा भवति इत्यादि पूर्व दिखा दिया है ॥

जगद्व्यापारवर्जंप्रकरणादसंनिहितत्वाच्च—शा०अ०४ पा०४ सू०१७

जगत्की उत्पत्ति पालन संहारको छोडकर मुक्त पुरुषका ऐश्वर्य है महाप्रलयके अनन्तर सृष्टिमें ईश्वरसे विना और किसी पुरुषका संनिधान नहीं होसक्ता ॥

स० पृ० २३९ पं० ४ (प्रश्न) जीव मुक्तिको प्राप्त होकर पुनः जन्ममरण दुःखमें कभी आते हैं वा नहीं क्योंकि—

नचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते—उपनिषद्वचनम् छान्दो०प्र० ८खं०१५

अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिःशब्दात्—शारीरक अ०४ पा० ४ सू०२२

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ भ० गी० *

इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि, मुक्ति वही है जिससे निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेदमें इस बातका निषेध किया है ॥

* यं प्राप्य न निवर्तन्ते भ० गी० ८।२१ मुद्रापाठ इस प्रकार है पांचवें देखे भी शुद्ध न होसका। ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें भा० प्र० कहते हैं अनावृत्तिका शब्द और ही है, ब्रह्मलोक पर्यन्त ही है तब 'कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः' इत्यादि भाष्य ही यह निरर्थक होजांयगे, ब्रह्मलोक भी फिर न रहेगा तब ब्रह्मलोककी प्रशंसा क्यों अनावृत्तिका अर्थ कभी भी खैंचातानी करो लौटनेका नहीं होसकता।

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम
कोनोमह्याअदितयेपुनर्दात्पितरंचदृशेयंमातरंच ॥ १ ॥
अग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम
सनोमह्याअदितयेपुनर्दात् पितरंचदृशेयंमातरं च २ *
ऋ० मं० १ सू० २४ मं १।२

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः—सांख्यसूत्रम् अ० १०सू० १५९

हम लोग किसका नाम पवित्र जानें कौन नाशरहित पदार्थोंके मध्यमें वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्तिका सुख भुगाकर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता तथा पिताका दर्शन कराता है? (उत्तर) हम इस स्वप्रकाशरूप अनादि सदा मुक्त परमात्माका नाम पवित्र जानें यह हमको मुक्तिमें आनंद भुगाकर पृथ्वीमें पुनः माता पिताके सम्बन्धमें जन्म देकर माता पिताका दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्तिकी व्यवस्था करता सबका स्वामी है जैसे इस समय बंध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्तिका कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा रहती है ॥ २५१ पं० २६ से

समीक्षा—धन्य है स्वामीजीकी बुद्धिको कि, उपनिषद् और शारीरकके वचन वेदविरुद्ध कहते हैं यहाँ स्वामीजीने ब्राह्मण और शारीरको अप्रमाण ठहरा और आप परम विद्वान् बने कौन मान सक्ता है कि, ब्राह्मण और शारीरक तो वेदकी विरुद्धता हुई उनमें यथार्थ न लिखा और दयानंदजी अपने वेदभाष्य वेदके यथार्थ आशयको समझे और उसे ठीक ठीक प्रगट किया स्वामीजीने वि यार्थ पृ० ८ पर व्याख्यान छपवाया था कि, यह वेदभाष्य अपूर्व होता है इसमें कुछ कपोलकल्पित नहीं है शिक्षासे लेकर शाखान्तर पर्यन्त ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रंथ जो वेदके सत्यार्थयुक्त व्याख्यान हैं ऋषि मुनियोंके किये उन सनातन सत्यग्रंथोंके वचनोंके लेख प्रमाणसे सहित यह वेदभाष्य रचा जाता है ॥

अब, पाठकगण विचारें कि, ब्रह्मासे जैमिनितक जो वेदवचनोंसे यथावत् जानने वाले थे, उनको सत्यवक्ता मानकर उनकी व्याख्या स्वामीजीने सत्य स्वीकार की फिर यह उनका हट दुराग्रह वा अज्ञान नहीं तो और क्या है जो उपनिषद्के वचन और शारीरकसूत्रका निरादर करते हैं यह सांख्य शास्त्रका सूत्र मुक्ति विषयका नहीं

---

* जब छोटे स्वामी यहां इन मंत्रोंका अग्नि और प्रजापति देवता स्वयं मानते हैं तब यहां इनका विषय होना चाहिये तब यह दोनों मंत्र किसी प्रकार भी मुक्तिविषयक नहीं हो सके।

है यह तत्वके निर्णयमें है इसका अर्थ आगे करेंगे मुक्तिविषयमें वो ही सांख्यकर्ता यों लिखतेहैं ॥

नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः-सां० अ० ६ सू० १७

मुक्तको फिर बंधका योग नहीं है (अनावृत्ति) नहीं लौटना यह श्रुति होनेसे यदि कपिलदेवजी मुक्तका जन्म मानते तौ ऐसा सूत्र क्यों बनाते क्या वे भी दयानंदजीके सदृश भ्रमजालमें पडेथे, कि, अपने ग्रंथोंमें परस्पर ऐसा विरुद्ध लेख कर बैठते जैसा कि, सत्यार्थप्रकाश संन्यासप्रकरणमें लिखा है, कि मुक्तिरूप अक्षय आनंदका देनेवाला संन्यासधर्म है, कहिये यहां अक्षय शब्दका क्या अर्थ है, जिन्हें अपने दो चार पंक्तियोंके लेखमें भी परस्पर विरोधका ज्ञान नहीं वे ब्राह्मण और शारीरक शास्त्रके लेखको वेदविरुद्ध ठहरावें ॥

वेदमंत्रोंकी व्यवस्था सुनिये प्रथम तौ मूल श्रुतिमें ऐसा कोई पद नहीं है जिससे प्रार्थना करनेवाला मुक्त जीव होना सिद्ध हो, दूसरे यह अर्थ स्वामीजीका सम्पूर्णतः प्रकरणविरुद्ध है ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकारसे इसका निर्णय है।

सोऽसिंनिःशानरायायाथहशुनःशेपईक्षांचक्रेऽमानुपमिववै माविशसिष्यन्तिहंताहंदेवताउपधावामीतिसप्रजापतिमेवप्रथमंदेवतानामुपससारकस्यनूनंकतमस्यामृतानामित्येतयर्चातंप्रजापतिरुवाचाग्निर्वैदेवानांनेदिष्ठस्तमेवोपधावेतिसोग्निमुपससार अग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चातमग्निरुवाचेत्यादिऐतरेयब्रा० सप्तमपंचिका खं० १६

इसका अर्थ यह है अजीगर्त नाम एक राजर्षि असि (खड्ग) को तीक्ष्ण करके शुनःशेपके पास आया तब शुनःशेप विचारनेलगा कि यह पशुकी नाई मुझे मारेगा मैं इस समय देवताओंका आराधन करूं यह विचार प्रथम हुए प्रजापतिकी शरण हुआ और कस्य नूनं इत्यादि मंत्रका उच्चारण किया तब प्रजापतिने शुनःशेपको बताया अग्निही देवताओंके मध्यमें समीप है इसकारण अग्निको स्मरण कर, तब वह शुनःशेप अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्यादि मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करने लगा, तब अग्नि बोले सविता देवताकी आराधना करो यह राजसूय यज्ञके प्रकरणमें ऐतरेय ब्राह्मणमें वर्णित है मुक्तका संसारबंधनमें आनेका कोई प्रसंग इसमें नहीं है अब मंत्रार्थ दिखाते हैं ॥

कस्यनामप्रजापतेःअमृतानांदेवानांमध्येकतमस्यश्रेष्ठत्वेननि-धारितस्यदेवस्यचारुउत्तमंनाममनामहे अभ्यस्यामः मह्यै पृथ्वीरूपायैअदितयेमातृरूपायपुनर्दात्कःप्रजापतिःतदापि-तरंचमातरंचदृशेयंपश्यामि ॥ १ ॥

पदार्थः-(अमृतानाम्) देवताओंके मध्यमें (नूनम्) निश्चय कर (कस्य) कि (कतमस्य देवस्य) कौन देवताके (चारुनाम) उत्तमनामको (मनामहे) अभ्यास करें (अदितये मह्यै) भूमिरूप माताके निमित्त (नः) हमको (कः) कौन प्रजापति (पुनः) फिर (दात्) दे जहां (पितरञ्च) पिताको भी (च) और मातरम्) माताको (दृशेयम्) देखें। इसमें मुक्तोंका वर्णन कहीं नहीं जब संकल्पसिद्ध मुक्त जीव है तो तुम्हारे मतसे फिर संसारमें क्यों आवेगा.

शुनःशेपका आशय यह है कि, पुनर्जन्ममें विलक्षण गुणयुक्त माता पिताको प्राप्त हूं जो इन मातापिताकी माई लोभी न हों ॥

अब दूसरा अग्निकी प्रार्थनामें मंत्र है तिससे निरूपण करते हैं ॥

पद । अग्नेः वयम् प्रथमस्य अमृतानाम् मनामहे चारु देवस्य नाम सः नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरम् च दृशेयम् मातरम् च ॥ ऋ० मण्ड० १ सू० २४ मं० २

पदार्थः-(अमृतानाम्) देवताओंके मध्यमें (प्रथमस्य) पहले (अग्नेःदेवस्य) अग्नि देवताके (चारुनाम) उत्तम नामका (वयम्) हम (मनामहे) स्मरण करते हैं (सः) वह प्रजापति अग्नि (नः) हमको (मह्यै अदितये) भूमिरूप माताको (पुनः) फिर (दात्) देगा (च) और (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माताको (दृशेयम्) देखेंगे ।

और भी कुछ आगेके मंत्रमें शुनःशेपका संवाद है ॥

शुनःशेपोह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यंद्रुपदेषुबद्धः ।
अवैनंराजावरुणः ससृज्याद्विद्वाँअदब्धोविमुमोक्तुपाशान् ॥
ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १३

भाषार्थः-(गृभीतः) बांधनेके निमित्त ग्रहण किया हुआ (त्रिषु) तीन (द्रुपदेषु) काष्ठविशेषोंके मध्यमें (बद्धः) बंधा हुआ (शुनःशेपः) शुनःशेप (आदित्यम्) अदितिके पुत्र वरुणको (अह्वत) आह्वान करता हुआ (हि) कारण कि (राजा वरुणः) राजा वरुण (एनम्) इस शुनःशेपको (अवससृज्यात्)

बन्धनसे मुक्त करें (विद्वान्) छोडनेका प्रकार जाननेवाला (अदब्धः) किसीसे हिंसाको प्राप्त न होनेवाला (पाशान्) रज्जुपाशोंको (विमुमोक्तु) विच्छेद कर इसे मुक्त करो ॥ *

और वरुणने प्रसन्न होकर शुनःशेपको मुक्त किया ऐसा इससे अगिले मन्त्रमें स्पष्ट लेख है इसमें मुक्तजीवोंका बन्धनमें आना नहीं पाया जाता किन्तु बद्ध मुक्ति चाहते हैं ॥

प्रथम तो स्वामीजी भाष्यभूमिकामें लिखचुके हैं कि मुक्तिसे नहीं लौटते अब कहते हैं कि संसारसागरमें आपडते हैं, कहिये परस्पर विरोध है वा नहीं शोक है स्वामीजीकी बुद्धिपर और उनके किये अर्थोंपर कि, संसारके तुच्छ जीवभी जानते हैं कि परमेश्वर उपास्य स्मरणीय है और स्वामीजीके विचारानुसार मुक्त जीवोंको भी यह ज्ञान नहीं कि कौनसा देव उपास्य है, और यह भी विचारना चाहिये कि संपूर्ण सुखोंकी सीमा मुक्ति है जिसे परम गति कहते हैं उससे बढकर कोई आनन्द नहीं और संसारबन्धन सदा दुःखकी खान है फिर मुक्तजीवोंपर क्या विपत्ति पड़ी और कैसे अज्ञानी होगये जो सर्वानन्द सर्वोत्तम पदसे दुःखरूप संसारमें आनेकी इच्छा करने लगे, सब ही सुखप्राप्ति दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करते हैं कोई महामूर्ख भी सुखसे दुःख भोगनेकी इच्छा नहीं करता, क्या कोई धनी पुरुष निर्धन होनेकी इच्छा करता है वा राजा होकर नौकर बना चाहता है वा हाथीपर चढकर गधेपर चढना चाहता है कदापि नहीं क्या मुक्तव्यक्ति हमारीसी भी बुद्धि नहीं रखते जो परम पद मुक्तिसे दुःखसागरमें आनेके लिये प्रार्थना करते हैं यह भी ध्यान रहे कि, सब लोग अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिये यत्न किया करते हैं प्राप्तवस्तुकी प्राप्तिके लिये कोई यत्न नहीं करता, मुक्त जीवोंको कोई पदार्थ अलभ्य नहीं संकल्पमात्रसे ही सब उत्पन्न हो जाता है जैसा पूर्व लिख आये हैं (एकधा भवति आदि) जब कि सगुण उपासी मुक्तजीव संकल्पमात्रहीसे अनन्त शरीर धारण करसक्ता है तो उसकी बुद्धिपर क्या अज्ञान छाया है कि जो ऐसे भ्रमजालमें पडे (कि हम देवतोंके मध्यमें जन्में संसारमें जाय) पहले तो स्वामीजीने यह लिखा कि ब्रह्ममें जीव अव्याहत गति अर्थात् बेरुकावट विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है * फिर पृ० २३८ पं० २४ में लिखा है कि जीव

* ग्यारहवीं वार पृ० २४९ पं० ६ ।

* भा० प्र० के यहां जो अर्थ हैं उनके देखनेसे हँसी आतीहै मुक्तिका प्रकरण भी मानते हैं और मुक्तजीवोंको प्रार्थनामें पापाचरणबन्धनोंसे विशेषकर छुडावे ऐसा भी लिखते क्यों न हो मुक्तजीव भी पापाचरणी दयानन्दके मतमें है एक ही स्थानपर एक ही प्रसंगमें दो अर्थ हैं एक जगह शुनःशेप ऋषि मन्त्रमें वहीं विज्ञानवान् पुरुष क्या विचित्र अर्थ है इन बातोंको कौन मानसकता है ।

जो संकल्प करते हैं वह २ लोक और वह वह काम उनको प्राप्त होता है ॥ पृ० २९ । १ पं० १६

पृ०२४९पं०सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म योवेदनिहितंगुहायां परमेव्योमन् सोऽश्नुतेसर्वान्कामान्सहब्रह्मणाविपश्चितेति–तैत्तिरीय० आनं० वल्ली अनु० १

ब्रह्मके साथ सब कामोंको प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनंदकी इच्छा करता है वह २ उसको प्राप्त होता है (२६६।१७) पुनः पृ० २५० पं० ९ मुक्तजीव अनंतव्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता शुद्ध ज्ञानसे सब सृष्टिको देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें घूमता है सब पदार्थोंको देखता है मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित और असन्निहित पदार्थोंका ज्ञान और (भान) यथावत् होता है इत्यादि ॥ २६७।२

जब कि मुक्त जीवको कहीं कुछ रुकावट नहीं और वह आनंदपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है दुखोंसे छूट आनंदमें रहता जो जो संकल्प करता वह वह लोक वह वह काम उसे प्राप्त होता है सब लोकान्तरोंमें घूमता संसारका सुख दुःख स्पर्श नहीं होता सदा आनंदमें रहता ब्रह्मके साथ कामोंको प्राप्त होता निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी सन्निहित असन्निहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है तो किस प्रकार होसक्ता है कि, मुक्त जीव ऐसी प्रार्थना करें कि हम किस देवताका नाम पवित्र जान जो हम मुक्त जीवोंको फिर पृथ्वीमें जन्म दे जिससे माता पिताको फिर देखें ऐसी प्रार्थना मुक्त जीव कभी नहीं करसक्ते क्यों कि पूर्णज्ञानी और अवाप्तसमस्तकाम हैं किन्तु दुःखी जीव जो संकटमें पडे होते हैं वे ऐसी प्रार्थना करसक्ते हैं क्यों कि वे पंडित हैं अब यह भी विचारना है कि, जन्म मरनका कारण क्या है इस विषयमें सब विद्वानोंका यही मत है कि, जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंसे जन्म होता है मुक्त जीवके शुभाशुभ कर्मोंका सर्वथा नाश हो जाता है यथाहि–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे १ मुण्ड० २ खं० २ मं० ८
यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णकर्तारमीशंपुरुषंब्रह्मयोनिम् ।
तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरंजनःपरमंसाम्यमुपैति २
मुंडक ३ खं० १ मं० ३

तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रंथिभ्यो
विमुक्तोऽमृतोभवति–मुण्डा० ३ खं० २ मं० ९
यआत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽ-
पिपासःसत्यकामःसत्यसंकल्पः ४ छां० प्र० ८ खं० ७
नजरानमृत्युर्नशोकोनसुकृतंनदुष्कृतंसर्वेपाप्मानोऽतोनि-
वर्तन्ते–छां० प्र० ८ खं० ४ । अपहतपाप्माऽभयंरूपम्
बृहदारण्यके ५ अ० ४ ब्रा० ३ कं० २१
ज्ञात्वादेवंमुच्यतेसर्वपाशैः ६ श्वेता० अ० १ । ८
ज्ञात्वादेवंसर्वपाशापहानिः–श्वेताश्वेतरे ७ अ० १ मं० ११

अर्थ–इस परमेश्वरका पूर्ण ज्ञान होनेसे ज्ञानीके हृदयकी गांठ खुल जाती है सारे संशय निवृत्त होजाते हैं और पापपुण्य सारे कर्म नष्ट होजाते हैं १ जब यह प्रकाश स्वरूप जगत्कर्ता वेदके कारण ईश्वरको देखताहै तब पुण्य पापको छोड-कर निरंजन होता हुआ ईश्वरकी परम समताको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूप होता है २ शोक और पापरूपी नदीको तरकर हृदयकी गांठोंसे वियुक्त होकर अमृत होता है ३ यह मुक्त पुरुष पापशून्य होता हुआ जरा मृत्यु शोक भोजन पान इच्छासे निवृत्त होता है सत्यकाम सत्यसंकल्पवाला होता है ४ मुक्त जरा मृत्यु शोक सुकृत दुष्कृत रहित होता है उसके सारे पाप नष्ट होजाताते हैं । मुक्त होकर पापशून्य भयरहित होता है ५ ज्ञानी परमात्माको जानकर पाप पुण्यरूप सब बंधनोंसे छूटता है ६ परमात्माको जानकर ज्ञानीसे पुण्यरूप सारे बंधनोंका नाश होता है ७ इससे स्पष्ट है कि, मुक्ति होनेपर पापपुण्य शुभाशुभ कर्मोंका नाश होजाता है जब कि, उनके कर्म ही न रहे तो उनका पुनर्जन्म किस प्रकार होसक्ता है क्यों कि, जन्म मरणका कारण शुभाशुभ कर्म ही है मुक्त होकर फिर जन्म मरणोंसे छूटजाता है यह वेद और उपनिषदोंसे प्रगट है ॥ और भी–

वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात् ।
तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय ॥
१ यजु० ३१ । १८
यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामायेऽस्यहृदिश्रिताः
अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते॥२॥बृ.अ.४ब्रा.४कं.७

यएतद्विदुरमृतास्तेभवंति--बृह० ३ अ० ४ ब्रा० ४ कं० १४
नपश्योमृत्युंपश्यतिनरोगंनोतदुःखतांसर्वहपश्यः
पश्यतिसर्वमाप्नोतिसर्वशः--छां० प्र० ७ खं० २६
धीराःप्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवंति--तलवकारे ॥४॥
खं० १ मं० २

यएतद्विदुरमृतास्ते भवंति ॥ ५ ॥ कठ० अ० २ व० ६।९
यज्ज्ञात्वामुच्यतेजंतुरमृतत्वंचगच्छति ॥ ६ ॥
कठ० अ० २ वल्ली ६।८

यदासर्वेप्रभिद्यन्तेहृदयस्येहग्रंथयः ।
अथमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥
कठ० ॥ ७ ॥ व० ६ मं. १५
क्षीणैःक्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणि ॥ ८ ॥
तंज्ञात्वाऽमृताभवंति ॥ ९ ॥

अर्थ–मैं इस महान् पुरुषको जानताहूं जोप्रकाशरूप अंधकारसे परे है उसीको जानकर यह प्राणी मृत्युको अतिक्रमण करता है अर्थात् जन्म मरणसे छूटता है परमपद प्राप्तिके निमित्त और कोई मार्ग नहीं है ॥ १ ॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी कामना हैं वे सब छूट जाती हैं तब वोह अमृत होता है ॥ २ ॥ जो कोई इस (परमात्मा) को जानते हैं वे अमृत होते हैं ॥ ३ ॥ ज्ञानी मृत्यु और रोगको नहीं देखता इसीसे दुःखको नहीं देखता ज्ञानी सबको देखता है और सब प्रकारसे सबको प्राप्त होता है । ज्ञानी इस शरीर त्यागनेके अनंतर अमृत होते हैं ॥ ४ ॥ जो कोई इस परमात्माको जानते हैं वे अमृत होते हैं ॥५॥ जिसको जानकर मनुष्य संसारबंधनसे छूटता है और अमृतत्वको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी कामना हैं वे सब छूट जाती हैं तब वोह अमृत होता है तब वोह अमर होजाता है इतना ही अनुशासन है ॥ ७ ॥ अविद्यास्मितादि पंचक्लेशोंके नाश होनेसे मनुष्य जन्ममरणसहित होजाता है ॥ ८ ॥ परमात्माको जानकर अमृत होते हैं ॥ ९ ॥

इन वचनोंसे यह बात सम्यक् सिद्ध होती है कि मुक्तजीवोंको जन्म मरण नहीं है क्यों कि, वोह तो उसमें प्रवेश कर जाते हैं आश्चर्यकी बात है कि सच्छास्त्रोंमें

तो स्पष्ट लिखा है कि मुक्त जीवोंका पुनर्जन्म मरण नहीं है दयानंदजी उनका पुनर्जन्म सिद्ध करते हैं शास्त्रोंमें ऐसे वचन हैं कि मुक्तिसे फिर नहीं लौटते ॥

एतस्मान्नपुनरावर्तन्ते ॥ १ ॥ प्रश्नोपनिषदि १ । १०

ब्रह्मलोकमभिसंपद्यतेनचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते ॥ २॥

छान्दो० प्र० ८ खं० १५

तेषुब्रह्मलोकेषुपराः परावतोवसंतितेषांनपुनरावृत्तिः ॥ ३ ॥

बृहदा० अ० ६ ब्रा० २ कं० १५

नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः ॥ ४ ॥ सांख्य० अ० ६ सू० १७

तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः न्याय० ॥ ५ ॥अ.१ आह्नि० १ सूत्र २२

अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिःशब्दात्॥६॥शा०अ०४पा०४सू०२२

भाषा–यहांसे फिर नहीं लौटते ॥ १ ॥ ब्रह्मको प्राप्त होकर इस जन्म मरणरूप चक्रमें नहीं लौटते नहीं लौटते ॥ २॥ ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर फिर नहीं लौटते फिर नहीं लौटते ॥ ३ ॥ मुक्तको फिर बन्धका योग नहीं अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटना यह श्रुति होनेसे ॥ ४ ॥ दुःख जन्मप्रभृति दोष मिथ्याज्ञानकी अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं ॥ ५ ॥ मुक्तका फिर जन्म नहीं होता यह वेदसे सिद्धान्त है ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त व्यासजीने और कुछ नहीं लिखा ॥

यदि कोई कुशाग्रबुद्धिसे न आवृत्तिः नावृत्तिः न नावृत्तिः अनावृत्तिः ऐसे व्युत्पत्ति करैं तौ उनको यह सोचना चाहिये कि उपनिषदोंमें जो दक्षिणायन उत्तरायण दो मार्ग लिखे हैं जिसमें कर्मकाण्डी दक्षिणायन मार्गसे चन्द्रलोक होते हुए फिर लौटते हैं और ज्ञानी सूर्यलोक होकर फिर नहीं लौटते (तद्येहवै तदिष्टापूर्तेकृतमित्युपासतेते चन्द्रमसमेव लोकमभिजायन्ते त एव पुनरावर्तन्ते) यही पितृयान है इष्टापूर्ति आदि कर्मकाण्डी चन्द्रलोक जाकर फिर लौटते हैं और ज्ञानी सूर्यलोक मार्गसे जातेहैं (एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते) जहांसे फिर नहीं लौटते तौ कहिये ये इसका अब क्या अर्थ

* तुलसी० खैंचातानी बहुत की पर कहीं इतनाभी न दिखासके कि (पुनरावर्तते) पर भा० पृ० ३३४ सम्वत् १९७० में उलटा यह सिद्ध किया जैसे दुःखी मनुष्य महामृत्युञ्जय मन्त्र जपते हैं वैसे यह मन्त्र है तो क्या मुक्तिरूपकारागारमें दयानन्दके सिद्धान्ती जीव ' कस्यनू० ' यह मन्त्र पढ २ कर दुःखसे चिल्लाते हैं क्या सुन्दर मुक्ति है ।

करेंगे यदि दोनोंका अर्थ लौटनाही करेंगे तौ इन दो मार्गोंमें अन्तर ही क्या रहा इस कारण यह उनका कथन ठीक नहीं और जीव कभी निश्शेष नहीं होते क्यों कि वे अपार हैं और यह प्रश्न आत्माके प्रकरणसे विरुद्ध है क्यों कि सब कुछ आत्मा ही है ॥

स० पृ० २३९ पं० २७ प्रश्न–

तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ।
दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदन्तरापायादपवर्गः–न्या० सू० १ आ० २ सू०२

जो दुःखका अत्यन्त विच्छेद होताहै वही मुक्ति कहाती है क्यों कि, जब मिथ्याज्ञान लोभादि दोष दुष्ट व्यसनोंमें प्रवृत्त जन्म और दुःखका उत्तरके छूटनेसे पूर्व २ के निवृत्ति होनेसे मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है (उत्तर) यह आवश्यक नहीं कि अत्यन्त शब्दका अत्यन्ताभावहीका नाम है जैसे (अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्तते) बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्यको है इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख या दुःख है इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्दका अर्थ जानना चाहिये ॥ २५२ पं० २१ –

समीक्षा–इस सूत्रमें अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभावहीका वाचक है स्वामीजीको अपना लेख भी स्मरण नहीं रहा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० १८४ में इन सूत्रोंका अर्थ लिखा है (दुःखजन्म) जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती तब जीवके सब दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्मका अभ्यास विषयासक्ति आदिकी वासना दूर हो जाती है, उसके नाश होनेसे जन्म अर्थात् फिर जन्म नहीं होता दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानंद मोक्षमें सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनंद ही आनंद भोगनेको बाकी रह जाता है इसीका नाम मोक्ष है १ (तदत्यन्त) फिर उस दुःखके अत्यन्त अभाव और परमात्माके नित्य भोग करनेसे जो सब दिनके लिये परमानन्द प्राप्त होता है इसीका नाम मोक्ष है, और वेदान्तध्वान्तनिवारणमें इस सूत्रका यही अर्थ स्वामीजीने किया है कि, त्रिविध प्रकारकी पीडा उसका नाम दुःख है उसकी अत्यन्त निवृत्ति होनेसे जीवको अपवर्ग जो मोक्ष ईश्वरके आधारमें अत्यानंद सो सदाके लिये प्राप्त होता है यह स्वामीजीके ही लेखसे प्रगट है कि मुक्तिसे फिर नहीं लौटता ॥

सं० पृ० २४० पं० ९

ते ब्रह्मलोकेहपरान्तकालेपरामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे *

यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है वे मुक्तिजीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनंदको तबतक भोगके महाकल्पके पश्चात् मुक्ति सुखको छोडके संसारमें आते हैं॥

समीक्षा-दयानंदजी जब अपनी इच्छानुसार कोई बात प्रचार करना चाहते हैं तौ कोई श्रुति लिखकर उसके अर्थमें अपना प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं जिससे अज्ञानी लोग जानै कि यह बात सत्य है परन्तु यह लेख जब बुद्धिमानोंके दृष्टिगोचर होता है तौ प्रगट होता है कि श्रुतिमें स्वामीजीके अभिप्रायकी गन्ध भी नहीं, नहीं जानते स्वामीजीने यह अर्थ कौनसे पदोंसे किया है यद्यपि स्वामीजीने यह श्रुति बदली है तौ भी इसका यह अर्थ नहीं बनता जो वे करते हैं इसका यह अर्थ होता है कि-

वे सब विद्वान् संन्यासी ब्रह्मलोकमें (ह) निश्चय (परान्तकाले) ब्राह्म महाप्रलयमें (परामृतात्) परामृत ब्रह्मज्ञान जन्म मुक्तिको प्राप्त होकर (परिमुच्यन्ति) विदेहकैवल्यको प्राप्त होते हैं जैसे (प्रासादात्प्रेक्षते) इसका अर्थ यह है कि प्रासादपर आरोहण करके देखता है ऐसे ही "परामृतात्परिमुच्यन्ति" का अर्थ पूर्वोक्त है इसमें लौटना तो किसी भी पदसे नहीं विदित होता ॥

और अब यह भी विचारना है कि यहां जो ब्रह्माका महाकल्प माना है तौ वह ब्रह्मा देवता है या मनुष्य है वा ईश्वरका विशेष विग्रह है ईश्वरका विग्रह माननेसे तौ स्वामीजीका मतभंग होता है और मनुकी सृष्टिसे बाह्य होनेसे मनुष्य भी नहीं है क्यों कि ब्रह्माजीके मनु पोते हैं तौ देवता हैं जिनकी महाकल्पतककी आयु है तौ अब यह बात यहां खंडन होगई कि विद्वानोंहीका नाम देवता है अब श्रुति लिखते हैं ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाःसंन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे ॥ १ ॥
गताःकलाःपंचदशप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु ।
कर्माणिविज्ञानमयश्चआत्मापरेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति ॥ २ ॥
यथानद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय ।

* पांचवीं बारमें ॥ ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे मुण्डक ३ खं० २ मं० ६ ऐसा शुद्ध पाठ है पृ० २६६ पं० ९

तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥ ३ ॥ मुंड० खं० २ मं० ६ । ७ । ८

भावार्थः-जिन्होंने विज्ञानसे वेदान्तके अर्थोंका निश्चय किया है और वे यत्नशील सर्वस्व त्यागरूप संन्यासयोगसे शुद्ध चित्तवाले होगये हैं वे सम्पूर्ण विदित वेद्य ब्रह्मलोकमें यावज्जीव वर्तमान परान्तकाल अर्थात् विद्वद्देहपातकालमें जीवन्मुक्ति दशाहीमें (परामृताः) परम अमृत मोक्षको प्राप्त हुए मुक्त हो विदेहकैवल्यको प्राप्त होते हैं, यद्यपि ब्रह्मस्वरूप लोक एक है तथापि महात्माओंकी स्थितिकी अपेक्षासे अनेकवत् प्रतीत होताहै इस कारण ब्रह्मलोकेषु यह बहुवचनका प्रयोग करा है १ जो कि महात्मा विद्वानोंकी पंचदश कला हैं वे अपने २ कारणमें लीन हो जाती हैं वे कला यह हैं प्राण श्रद्धा आकाश वायु तेज जल पृथ्वी इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मंत्र कर्म लोक यह पंचदश कला हैं और धर्माधर्मरूप कर्म तथा विज्ञानोपाधिनिवृत्तिपूर्वक घटोपाधिनिवृत्तिपूर्वक घटाकाशवत् विज्ञानोपाधिक जीवपर अव्ययमें एकीभावको प्राप्त होते हैं २ अब दृष्टान्त कहते हैं जैसे नदी सम्पूर्ण स्यन्दायमान समुद्रमें लीन होजाती है तैसे मुक्त भी नामरूपको त्यागकर पर जो सूक्ष्म समष्टिहिरण्यगर्भ तिससे भी पर परमात्माको प्राप्त होता है क्यों कि, जो परब्रह्मको जानता है वह परब्रह्म ही होता है ३ इससे भी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता ॥ पृ० १२७ श्रुति यही लिखकर अपना प्रयोजन पड़ने पर श्रुति बदल डाली धन्य है संन्यासीजी ॥

पृ० २४० पं० २१ जो मुक्तिमेंसे कोई भी लौटकर जीव इस संसारमें न आवे तो संसारका उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये ॥ पृ० २६१ पं० २१

समीक्षा-यह वही आक्षेप है जो दयानंदजीपर किसी यवनने कियाथा और उसके संमुख निरुत्तर होकर मुक्तिसे पुनरावृत्ति मान बैठे और अर्थ उलटे कर दिये जीवोंको संसारमें न आनेसे उच्छेद कभी नहीं होसक्ता क्यों कि, जीव असंख्य हैं पहले स्वामीजी भी जीवोंको अनन्त मानतेथे जबसे मुक्तिसे लौटना माना तबसे सान्त कहने लगे उच्छेद इस प्रकार नहीं होसक्ता जैसे कि, अज्ञात कालके स्रोत नदियोंके चले आते और समुद्रमें मिलजाते हैं परन्तु उन स्रोतोंका उच्छेद नहीं होता इसी प्रकार जीव भी निश्शेष नहीं होसक्ते और वास्तविक विचारमें तो जगत् मिथ्या ही है इसमें सार ही क्या है ज्ञानीकी दृष्टिमें संसार ही नहीं है जीव आत्मस्वरूप है, फिर आप संसारके उच्छेदसे क्यों डरते हो॥

पृ० २४० पं० २७ मुक्तिके स्थानमें बहुतसा भीड भड़का होजायगा क्यों

कि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ नहीं होगा बढतीका पारावार न रहेगा ॥ २९३ । २७ *

समीक्षा–दयानंदजीके विचारमें मुक्तिका स्थान कितना लंबा चौडा है जो आपको जीवोंकी पुनरावृत्ति न होनेसे वहां भीड भडका होजानेका भय हुआ सत्यार्थप्रकाशमें आपने लिखा है ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं फिरते हैं जब कि मुक्तजीव ब्रह्ममें रहते हैं और ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है मुक्तिके स्थानमें भीडभडका होनेकी शंका बुद्धिविरुद्ध है आप तो गोलोकादिपर आक्षेप करते थे पर आपने भी यहां कोई मुक्तिका स्थान माना है जहां कोई चौतरासा होगा ॥ *

स० पृ० २४१ पं० १ कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंके भोगनेवालेको होता है जो ईश्वर अन्तवाले कर्मोंका अनन्त फल दे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय ॥ २९४ पं० ३

समीक्षा–इस दृष्टान्तके लिखनेसे स्वामीजीका अभिप्राय यह है कि, कोई मनुष्य एक दशामें चाहें वह कैसी ही सुखरूप हो सर्वदा रहना पसन्द नहीं करता, कोई मनुष्य यह नहीं जानता कि सम्पूर्ण रसोंमें मधुर रस ही सर्वोत्तम है, किन्तु षड्रस, में उत्तम और निकृष्ट दोनों प्रकारके पदार्थ होते हैं जो षड्रसयुक्त नानाप्रकारके उत्तम पदार्थोंका भोजन करनेवाला होता है उसकी रुचि निकृष्ट पदार्थोंके भोगनेकी कभी नहीं होती, अर्थात् पेडा कलाकंदका खानेवाला शीरा, तंदुल और गोधूमादिका खानेवाला यवादिकके खानेकी कभी इच्छा नहीं करता, इसी प्रकार जो रेशमके अच्छे वस्त्र बहुमूल्य पहरता है वह कभी फटे पुराने धोतर गजीके

* छोटे स्वामी भीडका नाम एकान्ताभाव मानते हैं, आपका प्रयोजन है मुक्तमें एकाध दयानन्दी जीव फिरता रहे और नहीं भीडकी आप भी संभावना करते हैं तो आपका मुक्त लोक भी दो चार गजका होगा आप भी और क्या करते आखिर तो गुरुके पीछे ही चलना है ।

* यदि स्वामीजीको जगत्के उच्छेदका डर है कि मुक्त होनेसे एक दिन सब वहीं पहुँच जायँगे तो फिर यही बात आवागमनमें भी सम्भव होगी एक दिन सब यहीं आजायँगे तो फिर भीडका दोनों जगह स्वामीजीको धक्का खाना होगा वह यह कि कोई मनुष्य एक घेरेको पांच मिनटमें कोई दश मिनट कोई पन्द्रह मिनट कोई बीस मिनटमें घूमता है तो वे घूमनेवाले सब एक समय एक स्थानमें इकट्ठे होजायँगे यथा—

५।५।१।०।१५।२०
२।१।२।१।४
१।१।२।२। ५+२+१+१+२+२=६० मिनट

इसी प्रकार दयानन्दजी जीव मुक्तिमें या कभी मृत्युलोकमें इकट्ठे होगये तब क्या बढतीका पारावार न रहेगा तथा मुक्त होनेपर भी मृत्युलोकके खाली होजानेकी सम्भावना होगी तब क्या करोगे इससे जीव अनन्त हैं मुक्तिमें अपने ब्रह्मरूपको प्राप्त होजाते हैं वास्तवमें जगत् मायारचित है ।

पहरनेकी इच्छा नहीं करता जिसको राज्याधिकार प्राप्त है वह कभी नौकर बननेकी इच्छा नहीं करता, जो पालकीमें चलता है वह कहार बनकर उठाना नहीं चाहता, जो आरोग्य है वह रोगकी इच्छा नहीं करता, प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित होना नहीं चाहता, मुक्त बंदीगृह जानेकी इच्छा नहीं करता, कौन विद्वान् मूर्ख बननेकी इच्छा करता है, कोई मनुष्य पशुपक्षी कीट पतंगादिकी योनिको पसंद करता है? कोई नहीं, उसी प्रकार कोई मुक्तिके आनंदसे दुःखमें आनेकी इच्छा नहीं करता इन दृष्टान्तोंसे यही विदित होता है कि, उत्तम पद छोड़कर कोई बुद्धिमान् निकृष्ट पद ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, ऐसी बातको दयानंदजीकी बुद्धि जो इनके शरीरसे भी अति स्थूल है, स्वीकार करै तौ आश्चर्य नहीं मुक्त पुरुष जिनको बड़े परिश्रमसे सर्वोत्तम पद अर्थात् आत्माकी प्राप्ति होती है जिससे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति प्राप्त हुई है क्या वह संसाररूप बंधन जन्ममरणादि अनेक दुःखोंके स्थानकी चाह करेंगे कदापि नहीं करेंगे, परन्तु ईश्वरके न्यायके कारण मुक्ति लगानी पड़ी ॥

स० पृ० २४१ पं० ४ जो जितना भार उठासके उतना उसपर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एक मनभर उठानेवालेके शिरपर दश मन धरानेसे भारधरनेवालेकी निंदा होती वैसे अल्प सामर्थ्यवाले जीवपर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं ॥ २५४ । ६

समीक्षा-स्वामीजीकी बुद्धिकी कोई कहांतक बड़ाई करै क्या सुखका भी कोई बोझ है जो जीवपर धराजायगा क्या सुखकी गठरी है या बोरी है गाड़ी भरी हुई है जो ईश्वर जीवके ऊपर धर देगा बस यह बुद्धिमानी स्वामीजीने बुद्धिमानोंहीके ऊपर छोड़ देते हैं ॥

स० पृ० २४१ पं० ११ मुक्तिमें जाना वहांसे आना ही अच्छा है क्या थोड़ेसे कारागारसे जन्मकारागार दंडवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है अन्तर इतना ही होगा कि यहां मजूरी नहीं करनी पड़ती ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है ॥ २५४ । १२*

समीक्षा-सुनिये पाठकगण जो कोई मुक्तिको कारागार और फांसीके समान कहता है उससे अधिक नास्तिक कौन है, स्वामीजीके मतमें मुक्ति कारागार अथवा फांसी है इससे प्रगट है कि, स्वामीजीका अभिप्राय गुप्त रीतिसे वैदिक धर्म नष्ट करनेका था, और लोगोंके धर्म भ्रष्ट करनेकी इच्छा थी जैसा कि पहले स० प्रकाशके ४५. पृष्ठमें सायं प्रातः मांससे हवन करना लिखा है नियोगादिप्रचार लिखा है और लय होनेको कहता कौन है यहां तो ब्रह्मस्वरूप होजानेका कथन है

* भास्करप्रकाशमें इनका कुछ लिखने भी न बना ।

अब समझे मुक्त जीव बिना मजदूरीके बेमशक्कतकी सजावाले हैं आगेके पदमें इच- नेसे बचें कभी स्वरूपको न प्राप्त हों यही चेलोंको आज्ञा है ॥

स० पृ० २४४ पं० ३० (प्र०) पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास (सारूप्य) जैसे उपासनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके समीप रहना (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना यह चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं वेदान्तीलोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समझते हैं (उत्तर) पृ० २४५ पं० ११ पौराणिक लोगोंसे पूछना चाहिये जैसी तुम्हारी मुक्ति वैसी कीटपतंगादिकोंकी भी स्वतःसिद्ध है क्यों कि यह सब जितने लोक हैं ये सब ईश्वरके हैं इन्हींमें सब जीव रहते हैं इसलिये सालोक्य मुक्ति अनायास प्राप्त है सामीप्य ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होनेसे सब उसके समीप हैं इसलिये सामीप्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है सायुज्य जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इससे सायुज्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है ॥ २४८ पं० ११ से १९ तक फिर पं० २२ से।

समीक्षा-स्वामीजीको यह खबर नहीं कि, यह आक्षेप हमपर भी आताहै जब आपका यह लेख है कि जीव मुक्तिमें ईश्वरमें रहकर विचरते हैं तौ ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे सबकी मुक्ति स्वतः ही सिद्ध है फिर क्यों इतने झगडे डाले परन्तु इसमें यह जानिये कि, उपरोक्त चार प्रकारसे जीवोंकी जो मुक्ति कही है उनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है वे दुःखादिसे पृथक् रहते हैं और सबको इसी तरहसे मानें तौ सबको दुःख रहताहै भक्तजीवको दुःख नहीं होता यही मुक्तिमें विशेषता है चारों प्रकारके मुक्तजीवोंकी पुनः आवृत्ति नहीं होती और ज्ञानी लोगोंका तौ कथन है कि-

> मोक्षस्य नहि निवासोस्ति ग्रामान्तरमेव वा।
> अज्ञानहृदयग्रंथिमुक्तो मोक्ष इति स्मृतः ॥

मोक्षका कोई स्थान नहीं है अथवा कोई ग्राम नहीं है जब अज्ञानकी ग्रंथि हृदयकी टूट गई तभी मोक्ष है और सांख्यशास्त्रकर्ताके सूत्रका आशय भी यह नहीं है अर्थ यह है-

> इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः-सां० अ० १ सू० १६०

यदि सर्वकालमें बन्धका अत्यन्त नाश नहीं होता वर्तमानकालवत् तौ यह अनुमान फलित हुआ (सर्वकालः मोक्षशून्यः कालत्वात् वर्तमानकालवत्) सो यह वार्ता मोक्षवादीको अनिष्ट है क्यों कि जबतक जो मोक्षाभाव मानता है तबतक शास्त्रका फल ही क्या है मुक्ति तौ शास्त्रोंमें प्रतिपादन हो करी है क्यों कि, कपि-

पहरनेकी इच्छा नहीं करता जिसको राज्याधिकार प्राप्त है वह कभी नौकर बननेकी इच्छा नहीं करता, जो पालकीमें चलता है वह कहार बनकर उठाना नहीं चाहता, जो आरोग्य है वह रोगकी इच्छा नहीं करता, प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित होना नहीं चाहता, मुक्त बंदीगृह जानेकी इच्छा नहीं करता, कौन विद्वान् मूर्ख बननेकी इच्छा करता है, कोई मनुष्य पशुपक्षी कीट पतंगादिकी योनिको पसंद करता है? कोई नहीं, उसी प्रकार कोई मुक्तिके आनंदसे दुःखमें आनेकी इच्छा नहीं करता इन दृष्टान्तोंसे यही विदित होता है कि, उत्तम पद छोडकर कोई बुद्धिमान् निकृष्ट पद ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, ऐसी बातको दयानंदजीकी बुद्धि जो इनके शरीरसे भी अति स्थूल है, स्वीकार करै तो आश्चर्य नहीं मुक्त पुरुष जिनको बडे परिश्रमसे सर्वोत्तम पद अर्थात् आत्माकी प्राप्ति होती है जिससे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति प्राप्त हुई है क्या वह संसाररूप बंधन जन्ममरणादि अनेक दुःखोंके स्थानकी चाह करैंगे कदापि नहीं करैंगे, परन्तु ईश्वरके न्यायके कारण मुक्ति लगानी पडी ॥

स० पृ० २४१ पं० ४ जो जितना भार उठासके उतना उसपर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एक मनभर उठानेवालेके शिरपर दश मन धरानेसे भारधरनेवालेकी निंदा होती वैसे अल्प सामर्थ्यवाले जीवपर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं ॥ २५४ । ६

समीक्षा--स्वामीजीकी बुद्धिकी कोई कहांतक बडाई करै क्या सुखका भी कोई बोझ है जो जीवपर धराजायगा क्या सुखकी गठरी है या बोरी है गाडी भरी हुई है जो ईश्वर जीवके ऊपर धर देगा बस यह बुद्धिमानी स्वामीजीकी बुद्धिमानोंहीके ऊपर छोडे देते हैं ॥

स० पृ० २४१ पं० ११ मुक्तिमें जाना वहांसे आना ही अच्छा है क्या थोडेसे कारागारसे जन्मकारागार दंडवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है अन्तर इतना ही होगा कि वहां मजूरी नहीं करनी पडती ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है ॥ २५४ । १२*

समीक्षा–सुनिये पाठकगण जो कोई मुक्तिको कारागार और फांसीके समान कहता है उससे अधिक नास्तिक कौन है, स्वामीजीके मतमें मुक्ति कालापानी अथवा फांसी है इससे प्रगट है कि, स्वामीजीका अभिप्राय गुप्त रीतिसे वैदिक धर्म नष्ट करनेका था, और लोगोंके धर्म भ्रष्ट करनेकी इच्छा थी जैसा कि पहले सत्यार्थप्रकाशके ४५ पृष्ठमें सायं प्रातः मांससे हवन करना लिखा है नियोगादिव्यवस्था लिखी है और लय होनेको कहता कौन है वहां तो ब्रह्मस्वरूप होजानेका कथन है

* भास्करप्रकाशमें इनपर कुछ लिखते भी न बना ।

अब समझे मुक्त जीव बिना मजदूरीके बेमशक्कतकी सजावाले हैं आगेके पदमें इस-नेसे बचें कभी स्वरूपको न प्राप्त हों यही चेलोंको आज्ञा है ॥

स० पृ० २४४ पं० ३० (प्र०) पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास (सारूप्य) जैसे उपासनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके समीप रहना (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना यह चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं वेदान्तीलोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समझते हैं (उत्तर) पृ० २४५ पं० ११ पौराणिक लोगोंसे पूछना चाहिये जैसी तुम्हारी मुक्ति वैसी कीटपतंगादिकोंकी भी स्वतःसिद्ध है क्यों कि यह सब जितने लोक हैं वे सब ईश्वरके हैं इन्हींमें सब जीव रहते हैं इसलिये सालोक्य मुक्ति अनायास प्राप्त है सामीप्य ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होनेसे सब उसके समीप हैं इसलिये सामीप्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है सायुज्य जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इससे सायुज्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है ॥ २९८ पं० ११ से १९ तक फिर पं० २३ से।

समीक्षा-स्वामीजीको यह खबर नहीं कि, यह आक्षेप हमपर भी आताहै जब आपका यह लेख है कि जीव मुक्तिमें ईश्वरमें रहकर विचरते हैं तो ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे सबकी मुक्ति स्वतः ही सिद्ध है फिर क्यों इतने झगडे डाले परन्तु इसमें यह जानिये कि, उपरोक्त चार प्रकारसे जीवोंकी जो मुक्ति कही है उनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है वे दुःखादिसे पृथक् रहते हैं और सबको इसी तरहसे मानें तो सबको दुःख रहताहै मुक्तजीवको दुःख नहीं होता यही मुक्तिमें विशेषता है चारों प्रकारके मुक्तजीवोंकी पुनः आवृत्ति नहीं होती और ज्ञानी लोगोंका तो कथन है कि-

मोक्षस्य नहि निवासोस्ति ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रंथिमुक्तो मोक्ष इति स्मृतः ॥

मोक्षका कोई स्थान नहीं है अथवा कोई ग्राम नहीं है जब अज्ञानकी ग्रंथि हृदयकी टूट गई तभी मोक्ष है और सांख्यशास्त्रकर्ताके सूत्रका आशय भी यह नहीं है अर्थ यह है-

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः-सां० अ० १ सू० १६०

यदि सर्वकालमें बन्धका अत्यन्त नाश नहीं होता वर्तमानकालवत् तो यह अनुमान फलित हुआ (सर्वकालः मोक्षशून्यः कालत्वात् वर्तमानकालवत्) सो यह वार्ता मोक्षवादीको अनिष्ट है क्यों कि जबतक जो मोक्षाभाव मानता है तबतक शास्त्रका फल ही क्या है मुक्ति तो शास्त्रोंमें प्रतिपादन ही करी है क्यों कि, कपि-

लदेवजीने वामदेवकी मुक्ति सां० अ० १ सू० १५७ में मानी है तो इस सूत्रसे मुक्ति न होनी चाहिये सो कपिलदेवजीका यह तात्पर्य नहीं कि, मुक्तिमें बन्ध रहता है यह अनुमान सूत्र लिखा है सिद्धान्त नहीं क्यों कि, वोह पहले ही लिख चुके हैं ॥

अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः--सां० अ० १ सू० १

तीन प्रकारके दुःखकी जो अत्यन्त निवृत्ति नाम स्थूल सूक्ष्मरूपसे सर्वथा निवृत्ति सो अत्यन्त पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष है सो देखना चाहिये कौनसे दुःखकी निवृत्ति होनी चाहिये वर्तमान तो थोडी देर पीछे अपने आप ही निवृत्त हो जायगा अतीत कालका निवृत्त हो गयाहै परिशेषसे भावी दुःखकी निवृत्ति ही मोक्ष है सो इससे भी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता ॥

स० पृ० २९४ पं० २० जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा क्षत्रिय वर्णस्थ राजाओंके पुरोहित वादविवाद करनेवाले प्राड्विवाक (वकील) बैरिष्टर युद्ध विभागके अध्यक्षके जन्म पावते हैं ॥ २९८ । ९८

समीक्षा—खूब स्वामीजीने वकीलोंकी तारीफ करी है अंगरेजी विद्या अंगरेजी शब्द शास्त्रोंमें मिलाये विना स्वामाजीकी तृप्ति नहीं हुई, मनुजीके ग्रन्थमें भी बैरिष्टर घूसपडे जो विलायत पास करनेसे होते हैं ॥

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ॥
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ मनु० अ० १२।४६

अभिषेकको प्राप्तहुए राजा क्षत्रिय राजपुरोहित जो वाणीके युद्धमें प्रधान हैं उनकी राजसी गति है स्वामीजीने वकील बैरिस्टर लगादिये ॥

इति श्रीमद्दयानंदतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत-
नवमसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् । १२ सि० १८९०

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतदशमसमुल्लासस्य खण्डनं प्रारभ्यते ।

भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ।

इस समुल्लासमें दयानन्दजीने भक्ष्याभक्ष्य आचार अनाचारका वर्णन किया परन्तु कुछ विशेष प्रमाण न देकर केवल बुद्धिके ही घोडे दौडाये हैं इस कारण इनका खण्डन करना अवश्य है और मनुजीने जो कुछ शास्त्रमें लिखा है सो प्रमाण ही है वे लिखते हैं ॥ स० २६७ । १ (२७१) ९

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ अ० । १२ मनु०

वेद स्मृति और सत्पुरुषोंका आचरण और जो अपनी आत्माका प्रिय अर्थात् स्वर्गलोकका ले जानेवाला हो यही साक्षात् धर्मके लक्षण हैं इस कारण आचारादिकी व्यवस्था मनुजीने की है यह वहां देखलेनी परन्तु अब सत्यार्थप्रकाशका लेख दिखलाते हैं ॥

स० प्र० २५८ पं० ११ जो अति * उष्णदेश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्यों कि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढी मूछ रखनेसे भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालोंमें रह जाता है ॥ २७२ । १९

समीक्षा—वाह स्वामीजी अब आपको कोई वेदनिन्दक कहे तो उसका कहा अनुचित नहीं होगा अथवा आप संन्यासी होकर शिखा डाढी मूंछ नहीं रखते वैसे ही आप चाहते हैं कि, सब घोटमघोट हो जायें और इस आर्यावर्त देशमें भी छः महीने अधिक उष्णता होती है प्रत्यक्ष लिख दिया होता कि, छः महीनेको शुटिपातक मुंडवा देनी चाहिये, विशेष करके अपने शिष्योंको तो आप यही आज्ञा देते कि, तुम लोग तो शिखासहित शिरके बाल मुंडवा दो, क्यों कि गरमीसे बुद्धि कम हो जायगी परन्तु स्वामीजीने सत्यार्थप्रकाश शिरमें उसी वस्त्र बांधकर लिखी होगी तभी बुद्धिहीनताकी बहुत बातें लिखी हैं, भला डाढी मूंछवालोंका तो खानपान अच्छी तरह नहीं होसक्ता, इस कारण डाढी मूंछ

* तु० रा० भास्करप्रकाशमें लिखते हैं गो० गृह्य० सूत्रमें यज्ञोपवीतसे पहले भी सब शिखासहित मुण्डन लिखा है ठीक है [illegible] क्या उस अवस्थामें डाढी मूंछें भी होती हैं और क्या गरमदेश भी उसी समय होता है कुछ तो सोचा करो ।

न रक्खैं परन्तु शिखासे क्या बिगडता है यह तौ भोजन पानमें बाधा नहीं डालती कदाचित् एक बातका भय है कि, लडाईमें कोई चुटिया पकडलेगा इस कारण चुटिया कतरवानेकी आज्ञा दी, परन्तु इतना और भी लिख देते कि लडाईमें कान भी पकडे जाते हैं तौ कान भी कतरवा देनेकी आज्ञा लिख देते फिर शिखा सूत्रका संस्कारविधिमें धारण करना वृथा ही लिखा है और यज्ञोपवीत भी धारण करना वृथा है तौ यह संस्कार उडाकर वेदपर भी हरताल फेरदी होती यह न सूझा कि यदि डाढी मूंछमें जूठन लगजायगी तो क्या पानीसे नहीं धुलसक्ती बस यह मनुष्योंको भ्रष्ट करनेको स्वामीजीने ढंग निकाला था क्योंकि आर्योंके यह दो ही विशेष चिह्न हैं, शिखा और सूत्र सो स्वामीजीने यही दूर करनेका विज्ञापन कर दिया, इस कारण इनकी बात माननी ठीक नहीं संन्यासको छोडकर और किसी समय भी शिखाका त्याग करना नहीं चाहिये यही वेदकी आज्ञा है और स्त्रियोंके बाल मुंडवाने चाहिये या नहीं, गरमियोंमें तो उनकी बुरी दशा होगी नियोगियोंको मुंडा खूब रहैंगी–

पृ० २६४ पं० ३

आर्याअधिष्ठितावाशूद्राःसंस्कर्तारःस्युः।प्र०२पटल०२खं०२सूत्र

यह आपस्तंबका सूत्र है आर्योंके घरमें शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्रीपुरुष पाका सेवाको करैं ॥ २७९ । ७

समीक्षा–स्वामीजीकी बुद्धि जानै कौन उडाकर लेगया मूर्ख स्त्री पुरुष भ: रसोई क्या करसकैगा, जब कि सूपशास्त्र भी ग्रंथ संस्कृतमें विद्यमान है तथा भी भी भोजन बनानेके कितने ही ग्रंथ हैं, विना उनके जाने धनी पुरुषोंके घरोंमें विवि प्रकारके व्यंजन बनाये जाते हैं, यह किस प्रकार बनासकैंगे और भोजन बना भी एक बडी चतुरताका काम है बहुधा अब तो यह कर्म स्त्रियां करती हैं औ पूर्वकालमें भी स्त्री बहुधा रसोई बनातीथी पढी भी होतीथीं और व्यंजन विवि प्रकारके बनातीथीं और बनाती हैं केवल बडे २ राजाओं और धनियोंके घ रसोइये होते हैं, आगे भी होतेथे सो यह कर्म शूद्र नहीं करतेथे जो ब्राह्मण वेदादि शास्त्र नहीं जानतेथे और सूपशास्त्र ही जानतेथे वे रसोईका कार्य करतेथे और सूत्र तुम्हारे प्रकारसे ही करैं तौ यह अर्थ होगा कि, आर्योंके यहां शूद्र संस्कार करने वाले अर्थात् बुहारी देना चौका बर्तन मांजना टहल सेवा आदि संशोधनके कार्य शूद्र करतेथे और अब भी यह काम कहारादि करतेही हैं परन्तु भोजन बनाना खाना ऐसा तौ इस सूत्रमें कोई शब्द नहीं है ॥

पृ० २६४ पं० १० जिन्होंने गुड चीनी घृत दूध पिसान शाक फल कृत हाद

उन्होंने जानो सब जगत्‌के हाथका खाया और उच्छिष्ट खाया ॥ २७९ । १४

समीक्षा-स्वामीजीके इस वचनसे क्या प्रतीत होता है ? यही कि, सब जातिके हाथका भोजन करले सब जगत् एक जाति होजाय पहले चुटिया कटवाई अब सब जाति एक बनाई, यह तो गुप्त अभिप्राय ही था कि, सब जाति एक करदेनी स्वामीजी भी रोज बूरा खाते ही थे इससे एक बबरची नौकर रखलेते तो बड़ा सुभीता होजाता क्यों कि आप तो यवन चमार कुम्हार सबको एक ही बनाना विचारते हैं, क्यो कि गुड़ चीनी तो: प्रायः सभी खाते हैं तो सब ही भ्रष्ट हुए और आपहीने यह भी लिखाहै पृ० २६४ पं० २ कि शूद्रके पात्र और उसके घरका पका हुआ अन्न आपत्कालके विना न खावे जब सब ही एक होगये घरा घी आदि खानेसे तो शूद्रके यहांका फिर क्या दोष रहा और हुका पीनेकी त न लिखी ॥

स० पृ० २६६ पं० २० और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ जिनका शरीर मद्यमांसादिकोंके परमाणुओंसे पूरित है उनके हाथका न खावे ॥ २८१ । २

समीक्षा-पीछे लिख आये हैं कि, घी आदि खानेवालेने सबके हाथका खाया अब म्लेच्छके हाथके खानेका निषेध करते हैं, म्लेच्छोंका शरीर मांसके परमाणुओंसे पूर्ण है और शूद्र भी तो मांस ही खाते हैं उनके हाथका भोजन करनेसे वोह बात जो म्लेच्छोंके हाथके भोजन करनेमें होती है क्या नहीं होगी शोच है ऐसी बुद्धिपर कहीं कुछ कही कुछ लिखते हैं इसीसे तो कहते है स्वामीजीकी बुद्धि भी इसी कारण विपरीत होगई है शूद्रके हाथका बनाया भोजन कभी करना न चाहिये ॥

स० पृ० २६६ पं० २६ यह राजपुरुषोंका काम है कि, जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हो उनको दंड देवे और प्राण भी वियुक्त करदे (प्रश्न) क्या उनका मांस फेंकदें (उत्तर) चाहें फेंकदे चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियोंको खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसारकी कुछ हानि नहीं होसकती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है ॥ २८२।८

समीक्षा-क्या स्वामीजीने मनुष्योंके खानेकी भी परिपाटी निकाली ? क्या मनुष्य भी खाये जाते हैं ? हिंसक जीव, शेर, भेड़िया चीता आदिका मारना राजाओंका काम है परन्तु इनका मांस तो कोई मनुष्य नहीं खाता फिर मनुष्यका मांस भी मनुष्य नहीं खाते यह दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध है, और जब मांस खानेसे मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है तो इसकी हानि कैसे नहीं ? बहुत बड़ी हानि है यह मांस विधि स्वामीने अलौकिक लिखी है ॥

स० पृ० २६७ पं० ८ (प्रश्न) एक साथ खानेमें कुछ दोष है या नहीं (उत्तर) दोष है क्यों कि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खानेसे मनुष्यका रुधिर विगडता है वैसे दूसरेके साथः खानेसे भी कुछ विगाड होही जाता है ॥ २८२ । २०

समीक्षा--जब कि साथ भोजन स्वभाव प्रकृति आदिमें अन्तर पडता है तो भला जो भोजन बनावैगा तो उसके हाथसे आटा मीडना आदि होनेसे क्या स्वभावमें विकृति नहीं होगी बेशक होगी इस कारण शूद्रादिकोंके हाथका भोजन करना न चाहिये अब और देखिये-

स० प्र० पृ० २६८ पं० ६ मनुष्यमात्रके हाथकी पकी हुई रसोई खानेमें क्या दोष है (उत्तर) दोष है क्यों कि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोषरहित रजवीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्धयुक्त परमाणुओंसे भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीचके हाथका नहीं खाना ॥ २८३ । १७

समीक्षा--कदाचित् स्वामीजीने यह समुल्लास शूद्रके हाथका भोजन करके ही लिखा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं परस्पर विरुद्धतासे यह समुल्लास पूरित है पूर्व तो शूद्रके हाथका भोजन करना लिखा कहीं एक जाति होनेका आशय झलकाया, कहीं मनुष्यादिकोंका मांस भक्षण करना लिखा, अन्तमें सब बातोंका निचोड सत्य बात ही मुखसे निकली सिद्धान्त यह हुआ कि, नीचके हाथका भोजन करना नहीं चाहिये क्यों कि, नीचके हाथका भोजन करनेसे उनके शरीरकी दुर्गन्धि आदिसे भोजन हानि और रोगकारक होकर स्वभावको विगाडता है इसी कारण ब्राह्मणादि वर्णोंको शूद्रके हाथका बनाया भोजन करना नहीं चाहिये और यही कारण है कि, धान्यकुधान्य आदिसे अब भी संतान बुद्धिहीन दरिद्री और मूर्ख होती है, मनुजीने लिखा है--

> राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
> आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ २१८ ॥
> कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥
> गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृंतति ॥ २१९ ॥
> नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः॥
> आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम्॥२२३॥म०अ०४।

अर्थात् राजाका अन्न तेजका नाश करता है, शूद्रका अन्न ब्रह्मसंबन्धी तेजक नाश करता है, सुनारका अन्न आयुका और चमारका अन्न यशका नाश करत है १ बढ़ईका अन्न संततिका नाश करता है, धोबीका बलको, गणिकाका अन स्वर्गादिलोकोंके फलोंको नाश करता है २ विद्वान् ब्राह्मणादि शूद्रके हाथक बनाया हुआ पकान्न भोजन न करै और जब कहीं आपदा आन पडे और भोज न मिलता होय तौ एक दिनके निर्वाहमात्र (कच्चा सीधा दाल आटादि) ले लें यहां भी यही विदित है कि, शूद्रके हाथका बना भोजन नहीं करना जब उनक अन्न भी वर्जित है तौ हाथका बना कैसे खाय ॥

स० प्र० पृ० २८४ पं० १ ग्यारहवीं बारका ।

प्रश्न–जो गायके गोबरसे चौका लगाते हो तो अपने गोबरसे चौका न लगाते (उत्तर) गायके गोबरसे वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य मलसे गोमय चिकना होनेसे शीघ्र नहीं उखडता न कपडा बिगडता मलीन होता है ॥

समीक्षा–छिः छिः कैसे घिनौने प्रश्नोत्तर हैं मनुष्योंके मलमें दुर्गन्ध न होत तौ दयानन्दजी इसीसे चेलोंके घरका चौका लगवाते धन्य है ऐसे प्रश्नोत्तर बिना सत्यार्थप्रकाश अधूरा रहजाता ॥ यहां कई ऐसे घृणित प्रश्न हैं *

पृ० २८४ पं० २३ जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने चौका दे बर्तन भांडे मांजने आदि बखेडेमें पडे रहैं तो विद्यादि शुभगुणोंकी वृद्धि कभी होसके । ग्यारहवीं बार ।

समीक्षा–पाठकगण समझें दयानन्दजीका प्रयोजन क्या है जब रसोई बना चौका देना आदि बखेडा है और वर्णाश्रमी इन कर्मोंको न करैं तो फिर यही बव चीखाना परपरमें करानेका विचार है कि वर्णाश्रमी तो इनको झगडा समझें अ इनको त्यागदें जब विद्यादि शुभगुणोंके यह विघ्न है तो कर्मकांड वा गायत्रीजप भी विरोधी होंगे, और मनुके 'अन्नदोषाच्च' इस श्लोकपर भी आपने चौका लगाय

इस प्रकार इस दशम समुल्लासके साथ सत्यार्थप्रकाशके पूर्वार्द्धका खंडन कि गया क्यों कि, इन्ही दशमसमुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मत स्थापन किया इसको जो कोई मन लगाकर पक्षपातरहित हो विचार करैगा वह दयानंद लीलासे बचकर परमपदका अधिकारी होगा क्योंकि, इसमें यथास्थानपर वेदोक्त

---

* भा० प्र० तो विचारे मौन ही रहगये केवल यही लिखा शास्त्रानुसार शूद्र मांसाहारी और वेदानुसार कैसे है कोई प्रमाण तो बताया होता ।

स० पृ० २६७ पं० ८ (प्रश्न) एक साथ खानेमें कुछ दोष है वा नहीं (उत्तर) दोष है क्यों कि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खानेसे मनुष्यका रुधिर विगडता है वैसे दूसरेके साथ खानेसे भी कुछ विगाड होही जाता है ॥ २८२ । २०

समीक्षा--जब कि साथ भोजन स्वभाव प्रकृति आदिमें अन्तर पडता है तो भला जो भोजन बनावेगा तो उसके हाथसे आटा मीडना आदि होनेसे क्या स्वभावमें विकृति नहीं होगी वेशक होगी इस कारण शूद्रादिकोंके हाथका भोजन करना न चाहिये अब और देखिये--

स० प्र० पृ० २६८ पं० ६ मनुष्यमात्रके हाथकी पकी हुई रसोई खानेमें क्या दोष है (उत्तर) दोष है क्यों कि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोषरहित रजवीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्धयुक्त परमाणुओंसे भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीचके हाथका नहीं खाना ॥ २८३ । १७

समीक्षा--कदाचित् स्वामीजीने यह समुल्लास शूद्रके हाथका भोजन करके लिखा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं परस्पर विरुद्धतासे यह समुल्लास पूरित है पूर्व शूद्रके हाथका भोजन करना लिखा कहीं एक जाति होनेका आशय कहकाय कहीं मनुष्यादिकोंका मांस भक्षण करना लिखा, अन्तमें सब बातोंका निचो सत्य बात ही मुखसे निकली सिद्धान्त यह हुआ कि, नीचके हाथका भोजन कर नहीं चाहिये क्यों कि, नीचके हाथका भोजन करनेसे उनके शरीरकी दुर्गन्धि आदिसे भोजन हानि और रोगकारक होकर स्वभावको विगाडता है इसी कारण ब्राह्मणादि वर्णोंको शूद्रके हाथका बनाया भोजन करना नहीं चाहिये और यह कारण है कि, धान्यकुधान्य आदिसे अब भी संतान बुद्धिहीन दरिद्री और मूर्ख होती है, मनुजीने लिखा है--

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ २१८ ॥
कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥ २१९ ॥
नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः॥
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम्॥२२३॥म०अ०४।

अर्थात् राजाका अन्न तेजका नाश करता है, शूद्रका अन्न ब्रह्मसंबन्धी तेजका नाश करता है, सुनारका अन्न आयुका और चमारका अन्न यशका नाश करता है १ बढ़ईका अन्न संततिका नाश करता है, धोबीका बलको, गणिकाका अन्न स्वर्गादिलोकोंके फलोंको नाश करता है २ विद्वान् ब्राह्मणादि शूद्रके हाथका बनाया हुआ पकान्न भोजन न करै और जब कहीं आपदा आन पड़े और भोजन न मिलता होय तौ एक दिनके निर्वाहमात्र (कच्चा सीधा दाल आटादि) ले लेवें यहां भी यही विदित है कि, शूद्रके हाथका बना भोजन नहीं करना जब उनका अन्न भी वर्जित है तौ हाथका बना कैसे खाय ॥

स० प्र० पृ० २८४ पं० १ ग्यारहवीं बारका ।

प्रश्न–जो गायके गोबरसे चौका लगाते हो तो अपने गोबरसे चौका नहीं लगाते (उत्तर) गायके गोबरसे वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्यके मलसे गोमय चिकना होनेसे शीघ्र नहीं उखड़ता न कपड़ा बिगड़ता न मलीन होता है ॥

समीक्षा–छिः छिः कैसे घिनौने प्रश्नोत्तर हैं मनुष्योंके मलमें दुर्गन्ध न होती तौ दयानन्दजी इसीसे चेलोंके घरका चौका लगवाते धन्य है ऐसे प्रश्नोत्तरके बिना सत्यार्थप्रकाश अधूरा रहजाता ॥ यहां कई ऐसे घृणित प्रश्न हैं *

पृ० २८४ पं० २३ जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने चौका देने बर्तन भांडे मांजने आदि बखेडेमें पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणोंकी वृद्धि कभी न होसके । ग्यारहवीं बार ।

समीक्षा–पाठकगण समझें दयानन्दजीका प्रयोजन क्या है जब रसोई बनाना चौका देना आदि बखेडा है और वर्णाश्रमी इन कर्मोंको न करें तो फिर वही बबरचीखाना घरघरमें करानेका विचार है कि वर्णाश्रमी तो इसको झगडा समझैं और इनको त्यागदें जब विद्यादि शुभगुणोंके यह विघ्न हैं तो कर्मकांड वा गायत्रीजपके भी विरोधी होंगे, और मनुके 'अन्नदोषाच्च' इस श्लोकपर भी आपने चौका लगाया।

इस प्रकार इस दशम समुल्लासके साथ सत्यार्थप्रकाशके पूर्वार्द्धका खंडन किया गया क्यों कि, इन्हीं दशमसमुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मत स्थापन किया है इसको जो कोई मन लगाकर पक्षपातरहित हो विचार करैगा वह दयानंदीलीलासे बचकर परमपदका अधिकारी होगा क्योंकि, इसमें यथास्थानपर वेदवेदा-

---

* भा० प्र० तो विचारे मौन ही रहगये केवल, यहीं लिखा शास्त्रानुसार शूद्र मांसाहारी नहीं और वेदानुसार कैसे हैं कोई प्रमाण तो बताया होता ।

न्तोंके व्याख्यान भी किये गये हैं, जिससे ज्ञानकी प्राप्ति होगी मेरा परिश्रम इस कारण है कि, लोग सत्यासत्यका निर्णय करें मैंने इस ग्रंथमें जो कुछ भी लिखा है बहुत निर्णय और विचारसे लिखा है, और वेदादि वही शास्त्र जो दयानंद-सरस्वतीने माने हैं सिवाय उनके प्रमाणोंके और कोई अक्षर भी अपनी तरफसे नहीं लिखा, अब इसके आगे ११ समुल्लासमें जो आर्यावर्तके मतोंका स्वामीजीने खंडन किया है उसमें स्मार्तमतका मंडन किया जायगा क्यों कि, श्रुति स्मृति प्रतिपादित धर्म ही सनातन धर्म है उसीका अनुष्ठान करना योग्य है उसीका मंडन किया जायगा और धर्मवाले अपना उत्तर आप दे लेंगे ॥

इति श्रीदयानन्दतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशांतर्गतदशम-समुल्लासखण्डनम् ॥ १४ सि० १८९० रविः.



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ दयानंदतिमिरभास्करस्योत्तरार्द्धप्रारम्भः ।

भूमिका.

यह वार्ता सब पर विदित है कि, महाभारतसे पूर्व इस देशमें वेदमतसे भिन्न और कोई मत नहीं था जब महाभारतके पश्चात् अविद्या फैली तब जहां तहां अनेक मत दृष्टिगोचर होने लगे और जिसके मनमें जो आया सो मत चलाया इसी कारण इस देशकी एकता नष्ट होगई और विविधक्लेशोंसे भारतवर्ष व्याप्त होकर धनहीन हो अधोगतिको प्राप्त हुआ और जब बहुतसे मत प्रचलित हुए तौ इस आधाधुन्धमें स्वामीजी दयानंदजीने भी एक मत अपना नवीन खडा किया जिसमें सम्पूर्णतः वेदविरुद्ध ही वार्ता प्रचलित की है और वेदमन्त्रोंके अर्थ बदल कर अपने प्रयोजनानुसार कल्पना कर लिये हैं तथा पुराण मूर्तिपूजन तीर्थ श्राद्धादिक सबहीको वृथा कथन किया है इस मतका मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश है जिसके दश समुल्लासोंका खंडन इस ग्रन्थके पूर्वार्धमें करचुके हैं यह एकादश समुल्लासका खंडन इस ग्रन्थके उत्तरार्द्धमें लिखते हैं ग्यारहवें समुल्लासमें स्वामीजीने पुराण तीर्थ मूर्तिपूजनका खंडन किया है तथा अन्यमतोंका भी खंडन किया है जो इस समय प्रचलित हो रहे हैं परन्तु मेरा तात्पर्य उन मतोंको अच्छा बुरा कहनेका नहीं है इस बातको सम्पूर्ण आर्यगण मानते हैं और मुझे भी निर्भ्रान्त स्वीकार है कि, जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें आज्ञा है उसे मानना परम धर्म है और जो उन ग्रन्थोंके विपरीत है वह अधर्म है इस कारण मैं इस स्थानमें केवल उन्हीं बातोंकी चर्चा करूंगा जिनका वेदसे सम्बन्ध है और मतवालोंको यदि अपना मत सत्य सिद्ध करना हो तौ वह अपना जवाब देलेंगे मैं उनकी ओरसे उत्तरदाता नहीं क्यों कि मैं तो सनातन वैदिक धर्मको ही श्रेष्ठ मानताहूं और वास्तवमें यही मत श्रेष्ठ भी है इस पुस्तकके लिखनेसे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि, किसीका चित्त दुःखी हो किन्तु मेरा आशय यह है कि, इस ग्रन्थको विचारकर सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करें यही इस संसारमें मनुष्यजन्मका फल है कि श्रेष्ठकर्मोंका अनुष्ठान कर मोक्षके भागी बनें ॥

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतैकादशसमुल्लासस्य खंडनं प्रारभ्यते ।



मन्त्रप्रकरणम् ।

स० पृ० २७९ पं० ३ यह सब बातें जिनसे अस्त्रशस्त्रोंको सिद्ध करतेथे वे मन्त्र अर्थात् विचारसे सिद्ध करतेथे और चलातेथे और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और जो कोई कहै कि मन्त्रसे अग्नि उत्पन्न होती है तो वह मन्त्र जप करनेवालेके हृदय और जिह्वाको भस्म कर देवें मारने जाय शत्रुको और मर रहे आप मन्त्र नाम हैं विचारका ॥ २९१ । ९

समीक्षा–धन्य है स्वामीजी खूब मन्त्रोंकी रेढ लगाई भला यह तो कहियें महाभारतमें लिखा है जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग कियाथा तो उस समय जिसने अस्त्र नहीं खोले वह अस्त्र उसीके ऊपर टूटकर गिरने लगा अब विचारिये कि विना मन्त्रके जडवस्तुमें क्या सामर्थ्य है कि कुछ समझसके और अश्वत्थामाने जो पाण्डववंश निर्वंश करनेको अस्त्र त्यागन कियाथा तो वो उत्तराके गर्भमें भी मारनेको प्रविष्ट हुआ तो क्या वहां उत्तराके गर्भमें विचार वा सलाहसे बाण छोडाथा जो परीक्षित् गर्भहीमें मृतक होगया पीछे श्रीकृष्णने जिवाया यह मन्त्रहीका तो प्रभाव था, सर्प अवतक मन्त्रोंको मानते हैं मन्त्र पढनेसे बीछू उतरजाता है यदि मन्त्रका प्रभाव न होता तो एक बाण छोड-नेसे पत्थर वा पानी बरसने लगै और जन्मेजयके यज्ञमें ब्राह्मणोंने मन्त्र पढके सर्पोंका आह्वान कियाथा, और इन्द्रसहित तक्षकका सिंहासन उड आया और जिस मन्त्रमें अग्नि उत्पादन करनेकी शक्ति होगी वह उसी स्थानमें अग्नि उत्पन्न करैगा, जहां कि प्रेरककी इच्छा होगी प्राचीनऋषि मन्त्रद्वारा देवताओंको बुलाले-तेथे, और यह जो स्वामीजीने कहा है कि शब्दमय मन्त्र होता है उससे द्रव्य उत्पन्न नहीं होता यह भी असत्य है फिर वेदवाक्य तो कहते हैं 'स्वर्गकामो यजेत' यदि केवल मन्त्र शब्दमय है तो स्वर्ग कैसे होसक्ता है यदि कुछ शब्दसे नहीं होता तो परीक्षित्, वेन, सगरपुत्रोंको वाणीमात्रसे ही तो शाप दियाथा, और यह सत्य हुआ तथा कश्यपजीके भेजेहुए वैद्यने तक्षकके भस्म कियेहुए वृक्षको दो घडीमें पूर्ववत् करदिया इससे मन्त्रकी सामर्थ्य न मानना स्वामीजीकी अविद्या है एक जर्मनी कई सहस्रको इस देशके अस्त्रविद्याकी पुस्तक खरीदकर लेगया है मन्त्रका वर्णन मन्त्रशस्त्रोंमें विशेष है तथा पहले लिखचुके हैं ॥

स० पृ० २७७ पं २७

"ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" पाण्डवगीता ।

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणोंके मुखसे वचन निकलता है वह जानों साक्षात् भगवान्के मुखसे निकला ॥ २९४ । ९

समीक्षा-स्वामीजीने इसका अर्थ नहीं जाना तभी तो उलटा लिख दिया इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः-यह प्रयाण मुहूर्तके विषयमें एक कोई श्लोक है " उषः प्रशंसते गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः ॥ अंगिरा मनउत्साहं ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः " ॥ इससे गर्ग, बृहस्पति और अंगिरा इन्होंके अभिप्राय जैसे भिन्न २ कहे वैसे जनार्दन नामक ज्योतिर्वेत्ताका अभिप्राय यह है कि, ब्राह्मणका वचन लेकर प्रयाण करना-इससे जिसको जो इष्ट मालूम हुआ उसने अपना २ सिद्धान्त कहा, इसमें स्वामीजीका कहा अर्थ कहां सिद्ध होता है, अशुद्ध अर्थ करके "स्वयं नष्टः परान्नाशयति" यह स्वामीजीकी लीला उनको ही सोहती है कारण, बाबावाक्यं प्रमाणंका गपोड़ा तो तुम्हारा ही है आपकी लकीर पर चेले फकीर हुए फिरते हैं और महात्मा ब्राह्मणोंका वाक्य जनार्दनका वाक्य इस कारण होसकताहै कि वे अपनी ओरसे कुछ नहीं कहते जो वेद आज्ञा देता है सोई कहते हैं जैसे आपके अग्नि आदिके मुखसे निकले वेद ब्रह्मवाणी ही कहाये ॥

स० प्र० पृ० २७८ पं ११ तो हम कौन हैं (उत्तर) तुम पोप हो; (पुनः पं० १४ में) छल कपटसे दूसरोंको ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवालेको पोप कहते हैं ॥ २९४ । २१

समीक्षा-यह स्वामीजीने संस्कृतछोड अब रूमनभाषाका आश्रय लिया यह पोप शब्द ही रूमनभाषाका स्वामीजीके मतका नाशक है क्यों कि, आप ही १४ पंक्तिमें पोपके अर्थ बड़ा और पिता लिखते हैं जब रूमनभाषामें तो इसके अर्थ पिताके लिखे हैं तो छली कपटीके अर्थ कौनसी भाषामें हैं किसीमें नहीं तो स्वयं कल्पना करना धूर्तता है या नहीं और फिर कहते हैं कि हमने कोई शब्द अपनी ओरसे नहीं लिखा क्या स्वामीजीको कोई संस्कृतका शब्द नहीं मिला और वास्तवमें यह पोपशब्दका कल्पित अर्थ तुम्हींमें घट सकता है कि, (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्)इत्यादि वेदमंत्रोंका जहां तहां अर्थ बदल दिया है अपना मत चलानेके लिये वेदभाष्यके नामसे चंदा बटोरना तथा पुस्तकोंकी कीमत चौगुनी करके रजिष्टरी करना इत्यादि यह ठगाई नहीं तो और क्या है तथाच तुम्हारे मतके एक आनन्द रुपया गडाप गये, एक आनंदने जाटनीकी कन्याका हरण की गूजर गौओंका रुपया गडाप गये इससे तुम चेलोंसहित पोप हो जिस

मतके आचार्य ही पोप हैं तौ चेलोंकी क्या ठीक वे तौ महापोप कहे जांय तौ ठीक है ॥

स० प्र० पृ० २८७ पं० १३ शंकराचार्यकेपूर्व शैवमत भी थोडासा प्रचलित था उसका भी खंडन किया पुनः पं० १९ उन दोनों जैनियोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि, उनकी क्षुधा मन्द होगई पश्चात् शरीरमें फोडे फुनसी होकर छः महीनेके भीतर शरीर छूट गया ॥ ३०४ । १४

समीक्षा—शंकराचार्यने शैवमतका खंडन नहीं किया वे स्वयं शिवके उपासक थे उनके बनाये हुए बहुत स्तोत्र विद्यमान हैं शिवापराधभंजन स्तोत्र उन्हींका बनाया हुआ है फिर यह भी कहना असत्य है कि, शंकराचार्यको विषैली वस्तु दीगई विषैली वस्तुसे क्षुधा मन्द हो गई यह कहांका लेख है यह सब कुछ असत्य है और यदि विचारा जाय तौ यह सब कुछ आपहीके ऊपर हुआ है आपको विष दिया गया शरीरमें फलक पडगये अतीसार संग्रहणीने भी दुःख दिया स्वामीजीकी ही यह दशा हुई जो उनके लिये किसी स्वार्थीने ऐसा किया जिसका हमको भी दुःख है ॥

स० प्र० पृ० २८७ पं० २९ जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निज मत था तौ वह अच्छा नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा हो (३०४ । २४) और पृ०२८७ पं० १० अन्तमें युक्ति और प्रमाणसे जैनियोंका मत खंडित और शंकराचार्यका मत अखंडित रहा ॥ [३०३ । २९]

समीक्षा—स्वामीजीकी बुद्धिकी कहांतक ठीक लगाई जाय पहले लिखा कि युक्ति और प्रमाणोंसे शंकराचार्यका मत अखंडित रहा अब कहते हैं कि जो शंकराचार्यका निज मत था तौ अच्छा नहीं, भलाजी जो यह सप्रमाण और युक्तियुक्त था तौ निज मत कैसा और अच्छा क्यों नहीं और जब कि शंकराचार्यने जैनियोंके जीतनेको यह मत स्वीकार किया तौ यह तौ छल किया और वैदिक मतमें हीनता आगई कारण कि, सत्यमतसे तौ न जीतसके बनावटसे जीता तौ यह सिद्ध हुआ कि, स्वामी शंकराचार्यने छलसे जीता तौ वैदिकमत कच्चा प्रतीत होता है फिर शंकराचार्यको आप विद्वान भी बतलाते हैं जब विद्वान् थे तो सत्य शास्त्रानुसार ही जय पाई बनावट नहीं किन्तु यह बात स्वामीजीने ही कीहै कि, ईसाई यवनोंके शास्त्रार्थको अर्थ ही बदल दिये तथा जब आद तोंने मूर्तिपूजनमें यवनादिकोंका आग्रह देखा तौ इसे छोडकर वेदमें रेल तारकीही भरदी इससे यह बात दयानंदजीमें ही प्रतीत होतीहै शंकराचार्यने कुछ बनावट नहीं की फिर आगे इसके स्वामीजीने अद्वैतवाद लिखा है जो अत्यन्त पस्तु है इधर उसका पूर्व लिख चुके हैं ॥

स० पृ० २९४ पं० २०

१ नेतरोनुपपत्तेः अ० १ पा० १ सू० १६

२ भेदव्यपदेशाच्च अ० १ । १ । १७

३ विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांच नेतरौ अ० १ । २ । २

४ अस्मिन्नस्यचतद्योगंशास्ति अ० १ । १ । १९

५ अन्तस्तद्धर्मोपदेशा त् अ० १ । १ । २०

६ भेदव्यपदेशाच्चान्यः अ० १ । १ । २१

७ गुहांप्रविष्टावात्मानौहितद्दर्शनात् १ । २ । ११

८ अनुपपत्तेस्तुनशारीरः । १ । २ । ३

९ अन्तर्याम्यधिदैवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् १ । २ । १

१० शारीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते १।२।२० व्यासह

ब्रह्मसे इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्यों कि इस अल्पज्ञ अल्प साम जीवमें सृष्टिकर्तृत्व नहीं घटसक्ता इससे जीव ब्रह्म नहीं १ "रसं ह्येवायं नन्दी भवति" यह उपनिषद्का वचन है जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्यों दोनोंका भेद प्रतिपादन किया है जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्द ब्रह्मको प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्रा वाले जीवका निरूपण नहीं घटसक्ता इस कारण जीव ब्रह्म एक नहीं २ " ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो अक्षरात्परतः मुं० २ खं० १ मं० २ दिव्यशुद्ध मूर्तिमत्त्वरहित सबमें पूर्ण बाहर भीतर व्यापक जन्म मरण शरीर धारणादि रहित श्वासप्रश्वास शरीर मनके प्र रहित प्रकाशरूप इत्यादि परमात्मामें विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृ अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है प्रकृ जीवसे ब्रह्मको भेद प्रतिपादनरूप हेतुओंसे प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्म भिन्न लेख क्या ही स्वामीजीके पांडित्यका बोधक है) ३ इसी सर्वव्यापक जीवका योग वा जीवमें ब्रह्मका योग प्रतिपादन करनेसे जीव और ब्रह्म क्यों कि, योग भिन्न पदार्थोंका हुआ करता है ४ इस ब्रह्मके अन्तर्यामि धर्म कथन किये हैं और जीवके भीतर व्यापक होनेसे व्याप्य जीव व्यापक भिन्न है क्यों कि व्याप्य व्यापक संबन्ध भी भेदसे संघटित होता है ५ जैसे प जीवसे भिन्न स्वरूप वैसे इन्द्रिय अन्तःकरण पृथ्वी आदि भूत दिशा वायु

दिव्य गुणोंके भोगसे देवतावाच्य विद्वानोंसे भी परमात्मा भिन्न है (यहां तो सूत्र ही विद्याका परिचय दिया) ३ "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके " इत्यादि उपनिषद्के वचनोंसे जीव और परमात्मा भिन्न हैं वैसा ही उपनिषदोंमें बहुत ठिकाने दिखलाया है ७ शरीरे भवः शारीरः शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है (अशरीरधारी होगा) क्यों कि ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव जीवमें नहीं आते ८ (अधिदेव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियां पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादिभूत (अध्यात्म) सब जीवोंमें परमात्मा अन्तर्यामी रूपसे स्थित है क्यों कि उसी परमात्माके व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदोंमें व्याख्यात है ९ शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्यों कि ब्रह्मसे जीवका भेद स्वरूप सिद्ध है १० इत्यादि शारीरिक सूत्रोंसे भी स्वरूपसे ब्रह्म और जीवका भेद सिद्ध है और उपसंहार और आरम्भ भी अशुद्ध है क्यों कि जब कोई दूसरी वस्तु ही नहीं उत्पत्ति प्रलय भी ब्रह्मके धर्म होजाते ह ॥ ३१२ । १ से.

समीक्षा–यह बात तौ प्रगट है कि, स्वामीजीका वेदान्तमें कैसा कुछ अभ्यास है और जीवब्रह्मकी एकता पूर्व प्रतिपादन कर चुके हैं अब इन सूत्रोंके यथार्थ अर्थ दिखलाते हैं कि, यह सूत्र कौनसे प्रकरणके हैं और कौनसे स्थलके हैं ॥

आनन्दमयाधिकरण.

नेतरोनुपपत्तेः अ० १ पा० १ सू० १६

आनन्दमयके प्रकरणसे सुना है कि, एकने बहुतकी इच्छा की इच्छासे विश्व सजा है सो यह काम जीवका नहीं है तिससे जीव आनंदमय नहीं है अथवा आनंदमयका मुख्य वर्णन नहीं है क्यों कि ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो ब्रह्म असत् जानता सो असत् ऐसे आगे पीछेके संदर्भके विरोधसे संसारी जीव या प्रधान आनन्दमय नहीं है किन्तु ईश्वर ही है "सोमकायत बहुस्यां प्रजायेयेति सतपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदंकिंचेति" जो कुछ कार्य है सो सब ईश्वरने देखके रचा है ॥

भेदव्यपदेशाच्च १७

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवतीति (अर्थ)जीव ब्रह्मके लाभसे आनंद होता है यहां प्राप्य ब्रह्म और प्रापक जीव है यह भेदका कहना है अविद्याकल्पित देह कर्ता भोक्ता विज्ञानात्मासे ईश्वर अन्य है जैसे खड्गधारी मायावी सूत्रपर चढकर आकाशको जातासा दिखाई देता है और वास्तवमें वह मायावी भूमिपर ही खडा है जैसे व्योम घटादि उपाधिसे भिन्न अनुपाधिक है तैसे ही जीव ब्रह्मका भेद है वास्तव नहीं ॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १९

इस आनन्दमयके प्रकरणमें जीवका योग आनन्दमय ब्रह्मके साथ वेद उपदेश करता है उससे उपचारकी इच्छासे भी आनंदमय वाक्यका अर्थ प्रधान या जीव नहीं है (यथा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येनात्म्येऽनिरुक्ते निलयेऽभयं प्रतिष्ठां विंदतेऽथ सोऽभयङ्गतो भवति तदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवतीति) अर्थ–तादात्म्यसे ईश्वरको देखै सो देखना परमात्माके ग्रहणसे बनता है न जीव या प्रधानके ग्रहणमें, इससे आनन्दमय परमात्मा है न कि विज्ञानात्मा श्रुति– "सवाएष पुरुषोऽन्नरसमयस्तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयस्तस्मादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः" इति । अर्थ–यहांपर भी विकारार्थकी परम्परासे आत्मा अर्द्धजरतीय है च हेतुमें है जिससे आनन्दमयको आनन्दमयका सम्बन्ध वेदने उपदेश किया है तिससे उपासनाके लिये भी आनन्दमय प्राधान्य नहीं है और आनन्द प्रचुर कहनेसे दुःख अल्प भी मत समझो अद्वितीयसे " श्रुतिः " " रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवतीति ॥"

हिरण्मयाधिकरण.

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् २०

'परमेश्वरस्य धर्मा इहोपदिश्यन्त इति सौत्रोऽनुवादः' छांदोग्यके प्रथम प्रपाठकमें उद्गीथ उपासनाओंके बीच गौण उपास्योंको उपदेश किया है यह यह कि सूर्यके बीचमें हिरण्यमय पुरुष है और ऋक् साम उक्थ यजुः जो ब्रह्म धर्म है और ब्रह्म सब पापोंसे मुक्त अद्वितीय ईश्वर कहा है यह अर्थ इन श्रुतियोंसे लिया है " सैवर्कतत्सामतदुक्थन्तद्यजुस्तद्ब्रह्मेति १ उदेति हवै सर्वेभ्यः पाप्मभ्य इति अथ यएषोऽन्तरादित्य हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते" इत्यादिमें (स इति) संशय है कि विद्या कर्मकी अतिशयसे बड़ा होके सूर्यादि प्राप्त उपास्य कहा है या नित्य सिद्ध ईश्वर है फिर रूपी सुननेसे संसारी है न कि ईश्वर नीरूपसे निरूपका रूप उपासनाके लिये मान लिया है "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इस श्रुतिसे और ईश्वर अपनी सत्तासे ही निराधार ठहरा है "सभगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वेमहिम्नीति" इस वाकोवाक्यरूप श्रुतिसे निर्विकार अनन्त है " आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इस श्रुतिसे कभी २ विकारोंसे भी कहा है सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस इत्यादि, श्रुतिसे तात्पर्य यह है कि जो बाहर गंध रसादि देखते हैं सो सब ईश्वरकी सत्ता ही है और न कि मृदु द्रुत कठिनादि वस्तु कुछ ही है तिससे ईश्वर ही सूर्य और नेत्रके बीच उपदिष्ट है "सोऽसावहम्" वह मैं हूं ॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः २१

जो सूर्यमें है इससे ईश्वर अन्य है इस भेदसे सूर्य आधार और ईश्वर आधेय जानपड़ता है यह अर्थ इस श्रुतिमें लिया है "य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरोय-मादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं यआदित्यमन्तरोयमयत्येपत आत्मान्तर्याम्य-मृतः" इति । इससे यह सिद्ध हुआ कि, हिरण्मय ईश्वर ही है न कि, देवतादि इसका अर्थ भी स्वामीजीने गडबडमें लिखा है ॥

मनोमयाधिकरण.

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः-अ १ पा० २ सू० ३

मनोमय ब्रह्म है और जीवमें सत्यसंकल्पादि गुणोंका असंभव है तिससे मनो-मयादि धर्मोंसे उपास्य नहीं हैं यहां कईएक सूत्र देकर पीछे सिद्धान्तसूत्र लिखा है कि—

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्चनेतिचेन्ननिचाय्यत्वादेवंव्योमवच्च ७

अर्भकं बाल्यम् अल्पं वा ओको नीडं हृत्स्थानं निचाय्यत्वादेव हत्पुण्डरीके द्रष्टव्यः वा उपास्यः व्योमवत् यथा सर्वगतमपिसत् व्योम सूची पाशाद्यपेक्षया अर्भकौके अणीयश्च व्यपदिश्यते इति एवमेव ब्रह्मापि ॥ धानयवसे भी छोटा कहा है अणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वेति आराग्रमात्र इति । ईश्वर ही जीव यहां कहा है जैसे सब पृथ्वीका पति अधिपति कहाता है बालकके हृदयसा और धान जैसे छोटा इत्यादि उपाधियोंके भेदसे ब्रह्म उपासनाके लिये कहा है न कि, स्वरूपसे जैसे अनन्त व्योम घटाकाश मठाकाशादिकोंसे छोटा कहा है इसीसे एषम आत्मान्त-र्हृदय इति ॥ इस प्रकार श्रुतिमें कहा है ॥

संभोगप्राप्तिरितिचेन्नवैशेष्यात् ८

सर्वगत ब्रह्मका सब प्राणियोंके हृदयमें सम्बन्धसे और चेतनरूपसे और एक-त्वसे और शारीरके अभेदसे सुखदुःखादिकी प्राप्ति सम्यक् हो अन्य संसारीके न होनेसे "नान्यतोस्ति विशतीति" इससे फिर सोपाधिक माननेसे उपाधिधर्म दुःखा-देकी प्राप्ति न होगी क्यों कि, उपाधि बिम्बमें नहीं होती है इससे ब्रह्ममें भोगकी न्ध भी नहीं है जीव ब्रह्मका भेद मिथ्या ज्ञानसे है और ज्ञानसे अभेद है इसमें अनश्नन्न्योअभिचाकशीति " कर्ताभोक्ता धर्माधर्म साधन सुख दुःखादिमान एक और दूसरा अपहतपाप्मादि माना है इस विशेष अर्थात् भेदसे जो सम्बन्धमात्र कार्य होता है तो व्योमादिको भी दाहादि होना चाहिये, सर्वगतानेकात्मवा-कोंको भी उक्त चोद्यपरिहार समान है और जो शास्त्र जीवपरकी एकता कहते वे एकताके द्वारा संयोगकी निवृत्ति भी कहते हैं तैसे "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्म

स्मीति " इत्यादि जैसे किसीने व्योमको मलिन कहा तो क्या वह मलिन हो सक्ता है तिससे वेदमें जीव उपास्य नहीं कहा किन्तु ब्रह्म ही तैसे मिथ्या ज्ञानसे योग्य और सम्यक् ज्ञानसे ऐक्य है यही विशेष है तिससे ईश्वरमें भोगगन्ध भी नहीं कल्प सक्ते हैं इत्यादि यहां मनोमयादिप्रकरण है जीव ईश्वर भिन्न अधिकरण नहीं है ॥

गुहाधिकरण.

गुहांप्रविष्टावात्मानोहितद्दर्शनात् ११

कठवल्लीसे सुना है कि सुकृतका फल नरदेह है और वही परब्रह्मकी प्राप्तिका स्थान है विद्याशमादिके सम्भवसे फिर देहमें या हृदयमें ब्रह्म जीव ठहरे हैं और कर्मफलको पाता है और न कि, बुद्धि जीव है जड और अजडके विरोधसे जड बुद्धि सुकृतपान नहीं करसक्ती है चेतना क्षेत्रज्ञ करसक्ता है एक छत्री. अन्य अच्छत्री इनको देख कह सक्ते हैं कि, छत्री चलते हैं उपचारसे जैसे, तैसे जीव पाता और ईश अपाता दोनों संगसे पाता कहे हैं तिससे जीव ईश है, या जीव पीता ईश पिवाता है छाया और आतपकी नाई जीव हृदयमें प्रत्यक्षमें और ब्रह्म श्रुतिसे दिखाता है "गुहाहितंगह्वरेष्ठंपुराणं यो वद निहितं गुहायां परमेव्योमन् आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टमिति" जैसे लोकमें इस गौको दूसरा लाओ यह कहनेसे न घोडा न भैंसा लाता है किन्तु गौ ही लाता है तैसे चेतन जीव ब्रह्म सम स्वभाववाले हैं और न कि, विषम स्वभाववाले जड चेतन बुद्धि जीव हैं और समान धर्म होनेसे एक हैं केवल उपाधिसे पृथक् भासते हैं (ऋतं पिबन्तौ) इस श्रुतिकी व्याख्या पूर्व कर चुके हैं ॥

अन्तर्याम्यधिकरण.

अन्तर्याम्यधिदेवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् १८

अन्तर्यामी परमात्मा अधिदेवादिषु पृथिव्यादिषु भवितुमर्हति कुतः तत् तस्य परमात्मनः धर्माणां गुणानां व्यपदेशनात् ॥ भावार्थः-बृहदारण्यके पांचवें अध्यायमें याज्ञवल्क्यने उद्दालकसे कहा कि, पृथिव्यादिमें अन्तर्यामी ईश्वर है क्यों कि पृथिवीमें रहता है पर उसको पृथ्वी नहीं जानती है फिर ज्ञान और अमृतादि गुणोंका उसीमें सम्भव है इससे " यइमंचलोकं परंचलोकं सर्वाणि भूतानि योन्तरोयमिति" फिर कहा कि " यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरः यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः " इत्यादि ऐसा वाक्योंमें है न कि अधिदैवादिका अभिमानी देवता या योगी या अपूर्व संज्ञा है किन्तु परमात्मा है अन्तर्यामी अमृतत्वगुणसे ॥

शारीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते २०

कण्व और माध्यन्दिन ये दोनों जीवसे अलग ईश्वरको पढते हैं तिससे जीव भी अन्तर्यामी नहीं है और न प्रधान है किन्तु अन्तर्यामी ईश्वर है काण्वः " यो विज्ञाने तिष्ठन् " इति ॥ माध्यन्दिनः " य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानंमन्तरो भवति" अणुसे अणु और महान्से महान् पृथ्वीव्योमादि सब वस्तुमें अन्तर्यामीको कहनेसे परमात्मा ही सर्वव्यापक है अन्तर्यामी है और विज्ञानमय शरीर है इत्यादि सब कुछ ब्रह्महो है यह अधिकरण ब्रह्महीको कहते जाते हैं जीव अज्ञानतक है जब यथार्थानुभव हुआ तो सब कुछ वही है अब आगेका सूत्र भूतयोनिप्रकरणका है ॥

अदृश्यत्वादिगुणकोधर्मोक्तेः २१

सूत्रमें मुण्डकमें जो भूतोंका कारण सुना है सो ब्रह्म है सर्वज्ञादिगुणके यहां योनिनिमित्तोपादानकारणका नाम है भूतयोनि प्रधान और जीव है करीसे जाला पृथ्वीसे औषधी और देहसे केशलोमादि होते हैं तैसे ही प्रधानका जन्म है सो यह ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर ही भूतयोनिधर्मयुक्त सुना है ॥

" यःसर्वज्ञःसर्वविद्यस्यज्ञानमयंतपस्तस्मादेतद्
ब्रह्मनामरूपमन्नंचजायते इति"

नाम रूप अन्न उसीसे होता है तिससे अदृश्यादिगुणी ईश्वर ही भूतयोनि है।

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांचनेतरौ २२

इतश्चपरेशएवभूतयोनिर्नशारीरः प्रधानंचेति ।

। भूतोंका कारण नहीं होसकता है क्यों कि अमूर्तपुरुष बाहर भीतर इत्यादि ोंसे व्यापक ब्रह्म ही कहा है न कि, परिच्छिन्न जीव इससे "दिव्यो ह्यमू इत्यादि और प्रधान भी भूतोंका कारण नहीं हो सकता है क्यों कि प्रधा ोंका कारण अलग कहा है, इससे "अक्षरात्परतः पर इति अक्षरम् अव्या मरूपबीजशक्तिरूपं भूतसूक्ष्ममीश्वराश्रयं तस्यैवोपाधिभूतं सर्वस्माद् विका न अविकारस्तस्मात्परतः पर इति भेदेन व्यपदेशात्परमिह विवक्षितं दर्शय ' इससे ब्रह्म ही भूतयोनि है ॥

रूपोपन्यासाच्च ॥ २२ ॥

ा सिद्धान्तसूत्र भूतयोनिका रूप सब विश्व कहा है तिससे भूतयोनि ईश्व नसे "पुरुष एवेदंविश्वंकर्मेति, अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्वो

भूतांश्चवेदा, वायुः प्राणो हृदयंविश्वमस्यपद्भ्यांपृथिवीह्येपसर्वभूतान्तरात्मेति ” अग्नि उसका शिर, चन्द्र सूर्य नेत्र, दिशा कान, वेद वाणी, वायु प्राण, विश्व हृदय, पृथिवी पाद सो ही सब भूतोंका अन्तरात्मा है, हिरण्यगर्भः समवर्ततांग्रे इत्यादि वाक्योंसे यही निश्चित है कि, यह सब कुछ ब्रह्म ही है ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे ॥

वेदान्तसूत्रोंका अर्थ स्वामीजीने उलटदियाहै वास्तवमें वे इस ग्रंथको समझे ही नहीं कि, कौनसा उत्सर्ग शंका सिद्धान्त सूत्र है सो कुछ नहीं लिखा इसमें वेदान्तके विषयमें स्वामीजीने जो कुछ भी लिखाहै वोह सब असत्य है विशेष देखना हो सो शारीरकमें देखलो ॥ समाप्तं चेदं वेदान्तप्रकरणम् ॥

कालिदासप्रकरणम्.

स० पृ० २९६ पं० २० जिसके राज्यमें कालिदास बकरी चरानेवाला भी रघुवंशकाव्यका कर्ता हुआ ॥ ३१४ । ४

समीक्षा—यहां तो दयानंदजीने निधडक ही लेखनी चलाई है भला कौनसी पुस्तक इतिहास भोजप्रबन्ध आदिमें यह लिखाहै कि, कालिदास बकरी चरानेवाला (गडरिया) था स्वामीजीने शत्रुतासे कालिदासको गडरिया बतायाहै क्यों कि इन महाकविके ग्रंथोंको “ जिसका नाम इंगलैंडीय मान्यपुरुष भी गौरवके साथ लेतेहैं ” पढनेका निषेध कियाहै और भोजप्रबन्धमें कहीं भी कालिदासको गडरिया नहीं लिखा है, किंतु राजाकी सभामें नवरत्नोंमें यह भी था, और स्वामीजी तो जाति कर्मसे मानतेहैं तो उनके मतानुसार पण्डित होनेसे वोह बकरी चरानेवाला नहीं रहा, और जो पण्डित होकर भी गडरिया जाति रही तो स्वामीजीके ही ग्रंथोंसे स्वामीजीका खण्डन होगया ॥ तिब्बतसे मिले बहुत पुराने रघुवंशमें मिश्रकालिदासकृतो पाठ देखनेसे यह ब्राह्मण विदित होतेहैं ॥ तथा कालिदास राजा विक्रमकी सभामें थे न कि भोजकी हमारे टीका किये रघुवंशकी भूमिका तथा कालिदाससम्बन्धी दूसरे निबन्ध देखिये स्वामीजीको साहित्यका कुछ भी ज्ञान न था ।

स० पृ० २९७ पं० १

रुद्राक्षप्रकरणम्.

धिग्धिग्कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम् ॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे

१ भास्कर प्र० के कर्ता लिखते हैं, कि स्वामीजीने गडरिया नहीं लिखा यदि आंखें हों तो ग्यारहवीं बारके स० प्र० पृ० ३१४ पं० ४ देखो बकरी चरानेवाला लिखाहै या नहीं बकरी चरानेवाले गडरिये होते हैं या स्वामी या दुम्बे ।

पट्पट्कर्णप्रदेशे करयुगलगतान्द्वादशद्वादशैव ॥
बाह्वोरिन्दोःकलाभिःपृथगितिगदितमेकमेवं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥१॥

जिसके कपालमें भस्म और कण्ठमें रुद्राक्ष नहीं हैं उसको धिक्कार है ॥

जो कण्ठमें ३२, शिरमें ४०, छः छः कानोंमें, १२-१२ करोंमें, सोलह सोलह भुजाओंमें, १ शिखामें, और हृदयमें १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वोह साक्षात् महादेवके सदृश है ॥ ३१४ । १४

समीक्षा-स्वामीजीसे पूछे कि भस्म लगानेमें कौनसी बुराई है यह शिवके भक्तोंका चिह्न है कि, भस्म धारण करना, रुद्राक्ष पहरना, जिस प्रकार आप संन्यासी रंगेहुए वस्त्र पहरते हैं इसी प्रकार यह शिवके भक्तोंका चिह्न है जो संन्यासी होकर संन्यासके धर्म और चिह्न धारण नहीं करता उसे नामका संन्यासी जैसे शास्त्रोंने लिखा है वैसे ही शिवका धर्म धारण करनेवाला जो इन चिह्नोंका धारण नहीं करता उसे धिक्कार है क्यों कि रुद्राध्यायमें शिवजीकी महिमा अधिक वर्णन की है 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' यह भस्म लगानेका मंत्र है रुद्राक्षधारण करनेसे शंकरकी प्रीतिके सिवाय शीतलारोगकी विशेष बाधा नहीं होती ।

स० पृ० २९८ पं० ३ राजा भोजके राज्यमें व्यासजीके नामसे कि मार्कण्डेय और शिवपुराण बनाकर खडा कियाथा उसका समाचार राजाको वि होनेसे उन पंडितोंको हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि, जो नया ग्रंथ बनावे वोह अपने नामसे बनावे यह बात राजा भोजके बनाये स बना नामक इतिहासमें लिखी है कि जो ग्वालियरके राज्य भिण्डनामक न तिवारी ब्राह्मणोंके घरमें है जिसको लधुनाके रावसाहब और उनके गुमास्ते दयाल चौबेजीने अपनी आंखसे देखाहै उसमें लिखा है कि, व्यासजीने चारस चारसौ और उनके शिष्योंने पांचसहस्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दशस श्लोकोंके प्रमाण भारत बनाया था वोह महाराजा विक्रमादित्यके समयमें वी सहस्र महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताके समयमें पचीस अब मेरी आ उमरमें तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारतका पुस्तक मिलता है जो ऐसे ही ब चला तो भारतका पुस्तक एक ऊंटका बोझा होजायगा ॥ ३१५।२० *

* यहीं मेरठी स्वामीने मिश्रवलदेवप्रसादपर आक्षेप कियाहै कि वे तो तंत्रशास्त्रके आचा मद्यमांसका क्या अर्थ करोगे, तु० रा० जी जो लोग मांसपार्टीके उनको मांसाहार छुडानेके तंत्रशास्त्रकी प्रवृत्ति है देखो नित्यतंत्र वा महानिर्वाण तंत्र जहां इनके मुख्य अर्थ है ।

समीक्षा-राजा भोजके बनाये संजीवक ग्रंथका पता और उन मनुष्योंका वृत्तान्त कहांतक लिखें हमने कई रजिस्टरी चिट्ठी भिण्डस्थानको ब्राह्मणोंके पास भेजीथी जिसमें ऊपर लिखा ब्यौरा स्पष्ट लिख दिया था उसमेंसे दो स्थानोंसे उत्तर आया है कि यह बात सब मिथ्या है यहां कोई ऐसी पुस्तक हमारे पास नहीं जिसमें ऐसी बातें लिखी हों इस कारण स्वामीजीका कहना और चौबेजीका कहना दोनों अप्रमाण हैं भोजके समय जितने ग्रंथ बने हैं वोह अद्यावधि उन्हींके नामसे विख्यात हैं जो उनके कर्ता हैं सहस्रों श्लोकोंको व्यासजीके नामसे रचनेसे उन्हें क्या लाभ था पहले स्वयं दयानंदजी कहते थे व्यासजीने २४,००० सहस्र श्लोकका महाभारत बनाया अब चार सहस्रहीका वर्णन किया है फिर व्यासजीने प्रतिज्ञा की है कि मैं इस ग्रंथमें ८८०० कूट श्लोक कहूंगा " अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि चेति " जिन्हें मैं और शुकदेव जानता हूं संजय अर्थ करसक्ताहै या नहीं जिसके अर्थमें क्षणमात्र गणेशजी विचार करते थे इस अवसरमें व्यासजी बहुत श्लोक बना लेते थे वैशंपायनने इसकी प्रशंसा की है जो इसमें है वोह अन्यस्थानमें मिलसक्ता है जो इसमें नहीं है वोह और कहीं नहीं मिलैगा यह ग्रंथ लक्षश्लोकसे पूर्ण है स्वर्गारोहणपर्वके अन्तमें लेख है कि इसके पाठसे अष्टादश पुराणके श्रवणका फल होता है तथा अनुक्रमणिकामें प्रत्येक पर्वका वृत्तान्त और उसके अध्याय श्लोकोंकी संख्या लिखी है चार सहस्रमें तो इसका युद्ध भी नहीं समासका और इसके विना इतिहास कहांसे आवैंगे क्या सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकलैंगे ॥

और देखिये प्रत्येक पुराणोंमें अष्टादश पुराणोंका वर्णन है और उनके श्लोकोंकी संख्या है इससे स्पष्ट विदित है कि, यह सब एक समयके बने हैं राजा भोजके समय पुराण बनना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं पुराणप्रकरणमें यह बात पीछे लिख चुकेहैं ॥

स० पु० २९९ पं० २ इन लोगोंने जैनियोंके सदृश अवतार और मूर्त्तियां बनाईं ॥ ३१६ । १९

समीक्षा-मूर्तिपूजन इस देशमें क्या सनातनसे समस्त भूमण्डलमें चला आता है और हमारे यहांके अवतारोंको देख जैनियोंने २४ सिद्ध माने जैसे आपने तर्कसंग्रहके स्थानमें सत्यार्थप्रकाशमें एक सूत्रावलि बनाई है यवनोंकी पुस्तकोंमें " दीयायचा " देखकर वेदभाष्यभूमिका गढी इससे स्वयं तुम्हीं नकल बनानेहारे हो ॥

स० पृ० २९९ पं० १७ देवीभागवतमें देवीने सब जगत् बनाया यह लिखा है ॥ ३१७ । ६

समीक्षा--देवीभागवतमें जो देवीसे जगत्की उत्पत्ति मानी है सो यथार्थ है क्यों कि देवी परमेश्वरकी माया अर्थात् शक्ति है जिसे सामर्थ्य भी कहते हैं और यह सब संसार उसकी सामर्थ्यसे ही हुआ है वोह माया ही प्रकृतिको प्रगट करके संसारको सूक्ष्मसे स्थूलरूप करदेती है इसीसे देवीसे जगत्की उत्पत्ति हुई है ऐसा लिखा है जिस पुराणमें ईश्वरके जौनसे नामके गुणोंका वर्णन किया है वोह उसी नामसे प्रसिद्ध है और जिस नामसे जिसको विश्वास है वोह उसी देवताका ध्यान उसी पुराणद्वारा कर अन्तमें सब ईश्वरहीको प्राप्त होगा जैसे समुद्रमें नदी. और आप भी इसे मानचुके हैं कि यह सब नाम परमात्माके हैं तौ भी फिर क्या दोष है यथा--

स० पृ० ३०१ पं० १३

" शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः,
विष्णोः परमात्मनोयं भक्तः वैष्णवः,
गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोयं भक्तः सेवको गाणपतः,
भगवत्या वाण्या अयं सेवकः भागवतः,
सूर्यस्य चराचरात्मनोयं सेवकः सौरः "

यह सब रुद्र शिव गणपति सूर्यादि परमेश्वरके और भगवती सत्य भाषणयुक्त वाणीका नाम है ॥ ३१९ । ९

इन्हीं बातोंमें यह सिद्धि है कि यह सब ईश्वरके नाम हैं तौ इन्हीं नामोंकी महिमा पुराणोंमें कथन कीहै और उसी नामसे वोह पुराण विख्यात है तौ इनमें भेद मानना भूलकी बात है ॥ *

नाममाहात्म्यप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३०६ पं० २१ नामस्मरणमात्रसे कुछ भी फल नहीं होता जैसे मिशरी मिशरी कहनेसे मुँह मीठा और नीम २ कहनेसे कडुवा नहीं होता ॥ ३२४ । २६

समीक्षा--धन्य है, स्वामीजी एक नामहीकी महिमा शेष थी सो वोह भी मेट दी एक नाम ही पतितपावन तारनतरन है सो आपने इसे भी साफ कर दिया क्या ईश्वरका नामस्मरण भी निरर्थक जब नामग्रहण करनेसे भी कुछ लाभ नहीं तो क्या सत्यार्थप्रकाश रटनेसे सद्गति होगी ? यजुर्वेदमें नामका माहात्म्य यों लिखा है ॥

* विशेष विवरण हमारे बनाये अष्टादश पुराण दर्पणमें देखो ।

यस्य नाम महद्यशः—यजुर्वेद । अ० ३२ मं० ३

कि जिसके नामका बहुत बडा यश है बस यही वाक्य ऐसा बडा है
प्रगट करता है कि, उस परमात्माके नामका ऐसा माहात्म्य है कि बडे २ पात
उस नामके लेनेसे जाते रहते हैं इसीसे उसका बडा यश विख्यात है ॥

पुनः ऋग्वेदे—

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम मं० १सू.२४ मं.

यह वेदमें लेख है कि, हम किसका नाम ग्रहण करें और हम किसके द्वा
पितामाताका दर्शन करें इत्यादि इस मंत्रका व्याख्या पूर्व भी लिखचुके
मुक्तिप्रकरणमें देख लेना इससे यही सिद्ध होता है कि, नामसे सब कार्य बन
है और ऐसे ही शुनःशेपको हुआ था ॥

गीतामें भी लिखा है ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥ मुच्यते सर्व-
पापेभ्यो० ८ । १३

श्रीकृष्णजी कहते हैं जो " ओम् " इस मन्त्रका जप ध्यान करता है व
सब पापोंसे छूट जाता है ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत— छान्दो० प्र १ मं० १

ओम् जिसका नाम है जो अविनाशी है उसकी उपासना जप करना चाहिये

"यन्मनसानमनुतेयेनाहुर्मनोमतंतदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदं
यदिदमुपासते" केन० उ० खं० १ मं० ५

जो मनसे इच्छा करके मनमें नहीं आता जो मनको जानता है उसी ब्रह्म
तू जान, उसीकी पूजा उपासना नामस्मरण तू कर ॥

फिर मनुस्मृतिमें गायत्रीका जप करनेसे पाप दूर होना लिखाहै सो पूर्व लि
आये हैं जैसे विद्यामें अभ्यास करनेसे वोह कण्ठस्थ होजाती है और वोह विद्य
गुणोंसे भूषित होता है उसी रीतिसे परमेश्वरके नामोंको स्मरण करता हु
मनुष्य पवित्र होता है और पवित्र होनेसे पापरहित होकर सुख भोगते हैं, उ
कुसंगतमें बैठने या बुरी बातोंके ध्यान करनेसे मनुष्य विषयासक्तिमें फँसकर
होजातेहैं अथवा जैसे बुरी बातोंका ध्यान करनेसे मनमें दुर्वासना उत्पन्न होजाति
कडवी या घृणायुक्त वस्तुके नामसे ही मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर थूक भरि आ
है. खट्टी चीजके ध्यानसे जीभपर स्वाद विदित होने लगता है और वह मुख
नहीं आता पर उसका गुण होजाता है मिष्टान्नादि सुन्दर पदार्थोंसे चित्त प्रसन्न

जाताहै दुःखके समाचार सुननेसे दुःख, मंगलके समाचार सुननेसे प्रसन्नता होती है, इसी प्रकार परमेश्वरके पवित्र नामस्मरण करनेसे चित्त निर्मल हो जाता है जैसे दुर्गन्धित पवन सुगन्धित स्थानमें जाकर सुगन्धित हो जाती है, और उसमें दुर्गन्ध नहीं रहती इसी प्रकार परमेश्वरके नामस्मरणमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, और परमेश्वरके नामोंका असर अन्तःकरणमें पडकर पवित्र हो जाता है, इत्यादि परमेश्वरके नामकी महिमा शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक लिखी मनुजीने कई मन्त्र प्रायश्चित्तके उद्धारमें लिखे हैं जिसमें जप लिखा है अघमर्षण सूक्तका जप, गायत्रीका जप इत्यादि जप करनेका बहुत बडा विस्तार है जब परमेश्वरके नाम लेनेहीसे कुछ लाभ नहीं तो परमेश्वर किस अर्थका है, यह बात आपकी यही सिद्ध करती है कि, परमेश्वरका नामग्रहण करना वृथा है. अब इसके आगे मूर्तिपूजनके विषयमें लिखा जायगा ॥

अथ मूर्तिपूजनमहाप्रकरणम् ।

प्रथमतः उन युक्ति और प्रमाणोंको लिखेंगे जिसको स्वामीजीने आश्रय कर लिखा है कि, मूर्तिपूजन नहीं करना चाहिये फिर क्रमानुसार उनके उत्तर लिखे जायँगे ॥

स० पृ० ३०९ पं० १ मूर्तिपूजा कहांसे चली (उत्तर) जैनियोंसे और जैनियोंने अपनी मूर्खतासे चलाई ॥ ३२३ । ७

स० पृ० ३०६ पं० ४ जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्ति ही नहीं बनसक्ती और जो परमेश्वरके दर्शनमात्रसे परमेश्वरका स्मरण होवे तो परमेश्वरके बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वरने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथ्वी पहाडादि परमेश्वररचित मूर्तियां कि जिन पहाड आदिसे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं उसको देखकर परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता, और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वरके स्मरण न होनेसे मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करनेमें प्रवृत्त भी हो सक्ता है, क्यों कि वह यह जानताहै कि, इस समय यहां मुझको कोई नहीं देखता इससे अनर्थ करे विना नहीं चूकता ॥ ३२४ । ११

स० पृ० ३०७ पं० १७ जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तुमें परमेश्वरकी भावना करना, अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजाको सब राज्यकी सत्तासे छुडाकर एक छोटीसी झोपडीका स्वामी बनाना और जब व्यापकहै तो वाटिकासे पुष्प पत्र तोडके क्यों चढाते, चन्दन पीसके क्यों लगाते, क्यों कि उनमें भी तो व्यापक है हम परमेश्वरकी पूजा करतेहैं ऐसा झूंठ बोलतेहो हम पाषाणादिके पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते, अब कहिये भाव सचा है या झूंठा जो कहो सचा है तुम्हारे भावके अधीन है परमेश्वर पद

जायगा और तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि पाषाणमें हीरा पन्ना आदि समु
नमें मोती जलमें घृत दधि आदि और धूलिमें मैदा शक्कर आदिकी भाव
र वैसा क्यों नहीं बनातेहो, तुम लोग दुःखकी भावना कभी नहीं करते
यों होता अंधा पुरुष नेत्रकी भावना करके क्यों नहीं देखता, मरनेकी भाव
हीं करते क्यों मरजातेहो इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्यों कि जैसे
सा करनेका नाम भावना है जैसे अग्निमें अग्नि, जलमें जल जानना और जल
ग्नि अग्निमें जल समझना अभावना है ॥ ३२५।१७

समीक्षा-यह मूर्तिमें पूजन बडी सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानमें आता है जैसा ईश्वर
क्ष्म विचार है ऐसा ही इसका सूक्ष्म व्यवहार है यह ज्ञानचक्षुसे ध्यानमें आ
. स्वामीजीने जो कुछ इसके खंडनमें युक्ति और प्रमाण लिखेहैं उत्तर क्रम
या जाता है ॥

१ यह बात कहना सर्वथा विरुद्ध है कि, मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली जब
दोंमें मूर्तिमें पूजन पाया जाताहै तो कैसे होसक्ता है कि यह जैनियोंने चला
ह वेदोंके प्रमाण आगे लिखेंगे मूर्तिपूजा सनातन नित्य है जैसा कि, कृष्ण
जुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकके ४ प्रपाठके ५ अनुवाकमें लिखा है

मासि प्रमासि प्रतिमा असि तैत्ति० प्र० ४ अनु० ५

हे महावीर तुम ईश्वरकी प्रतिमा हो इत्यादि और-

सहस्रस्य प्रतिमा असि यजु० अ० १५ । ६५

हे परमेश्वर आप सहस्रोंकी प्रतिमा हैं ।

संवत्सरस्यप्रतिमायांत्वारात्र्युपास्महे ॥ सानआयुष्म-
तींप्रजारायस्पोषेण संसृज-अथर्व ३ । सू० १०मं० ३

हे राज्याभिमानी देव ईश्वर संवत्सरकी प्रतिमा जिस तुझको हम उपास
करते हैं वह तुम आयुष्मती संतानको धनपुष्टिसहित दीजिये और ब्राह्मणवा
भी देखिये-

स ऐक्षत प्रजापतिःइमं वा ऽआत्मनः प्रतिमामसृक्षियत्संव
त्सरमितितस्मादाहुः प्रजापतिः संवत्सर इत्यात्मनोह्येत

१ भास्कर प्र० प्रतिमाका अर्थ सायणभाष्यसे न करके मा प्रमाका अर्थ कर चुपगये
सायणकी शरणमें क्यों जातेहो अदोयदारु० इस ऋचामें वह स्वयं जगन्नाथका पूजन मानवे
आप महावीरस्थानको परिधि कहतेहो भला इसमें कोई परिधिवाक है ।

प्रतिमामसृजत यद्वेवचतुरक्षरःसंवत्सरश्चतुरक्षरः प्रजापति-स्तेनो हैवास्यैषप्रतिमा–श० ११ । १ । ६ । १३

भाषार्थः ।

ईश्वरने अपनी प्रतिमा संवत्सर नामको उत्पन्न किया इसी कारण कहते हैं कि, ईश्वर संवत्सर है देखो संवत्सर चार अक्षर हैं और प्रजापतिमें भी चार अक्षर हैं इसी कारण संवत्सर ईश्वरकी प्रतिमा है यह शतपथ ब्राह्मणका लेखहुआ॥

अब यह तो सिद्ध हो चुका कि, वेदमें प्रतिमा शब्द है और जब वेदमें प्रतिमा और उसकी विधि है तो जैनियोंसे मूर्तिपूजा चली यह कहना असंगत है अब दूसरा समाधान करते हैं ॥

२ जब कि आप निराकारकी मूर्ति नहीं मानते तो निराकारसे साकार जगत् कैसे बन गया यदि कहो कि, प्रकृतिसे जगत् हुआ तो प्रकृति जड है कुछ नहीं करसक्ती, जब ईश्वरने इच्छा करी तो मन बुद्धि चित्तादि हो गये ईश्वर साकार होगया साकार होनेसे इसमें मूर्तिभी सिद्ध होगई और यदि ईश्वरका कुछ भी आकार न हो और आकाशसे भी सूक्ष्म बताते हो तो ईश्वरमें शून्यापत्ति दोष आजायगा क्यों कि जब आकाशही कुछ पदार्थ नहीं तो ईश्वर आकाशसे भी सूक्ष्म होनेसे कब कोई पदार्थ ठहर सक्ता है वह तो शून्य हो जायगा इससे ईश्वरको केवल निराकार मानना और निराकार भी कैसा शून्य अर्थात् कुछ नहीं बडी भूल है क्यों कि वह कैसा ही सूक्ष्म क्यों न हो पर कुछ तो है ही बस यही होना ईश्वरका साकारता युक्त है यदि वह कुछ नहीं है तो तुम्हारे कथनानुसार यह प्रगट होता कि, ईश्वर है ही नहीं (शून्य) होनेसे सुनिये ईश्वर कोई आकारवाला भी अवश्य है जिससे संसार प्रगट होता है वेद प्रादुर्भाव होते हैं यह शास्त्रकारोंने दो प्रकारसे कहा है सगुण और निर्गुण जब प्रलयकाल होता है तब उसे कोई नहीं जानता बस यही लोप रहजाता है उस कालमें वेदवचनसे उसको निर्गुण कहते हैं निराकार कहते हैं और जब वह यह सृष्टि रचना करना चाहता है तब आप ही अनेक रूप धारण कर साकारसंज्ञक होता है यथा हि-

---

१ इसके अर्थमें भा० प्र० देखो प्रतिमा शब्दसे परमेश्वरका बैठना बतावैंहैं क्या अब स्वामीजी ! ईश्वरका बैठना भी प्रतिमा बनी भा० प्र० पृ० ३७८ । पं० १९

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्मता आपः स प्रजापतिः–यजुः–अ० ३२ मं० १

यही ईश्वर अग्नि है वही आदित्यरूप है वायु चन्द्र संसारका बीज प्रसिद्ध जल प्रजापति आदित्यरूप उसीका है अब निराकारको वेद ही कहता है कि, वही ईश्वर-अग्न्यादिरूपवाला है और आदित्यका आकार भी दीखता है "योसावादित्येपुरुषः" "हिरण्यगर्भ इत्येषः" जो सूर्यमंडलमें पुरुष है जो कि, हिरण्यगर्भ है वह यही ब्रह्मकी मूर्ति है यही उपनिषदोंमें भी लिखा है "द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्तश्चामूर्तश्चेति" ईश्वरके दो रूप हैं, एक निराकार और एक मूर्तिमान् और देखिये–

तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ।

तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये–यजु० अ० ३१ मं० ९.

जो साध्य देवता और ऋषि हैं उन्होंने सृष्टिके पूर्व उत्पन्न उस यज्ञसाधनभूत यज्ञपुरुष ईश्वरको इस लोकमें प्रोक्षण किया तिसी करके यज्ञ करतेहुए ।. इसपर शतपथ–

अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत–श० ११ । १ । ८ । ३

ईश्वरने अपनी प्रतिमा यज्ञनामको उत्पन्न किया इस कारण कहते हैं कि, ईश्वर यज्ञस्वरूप है (यज्ञोवैविष्णुः) अब वेदसे यह बात निश्चय हुई कि, यज्ञरूप ईश्वर है तो जो कुछ यज्ञकी मूर्ति हुई, वह ईश्वरकी मूर्ति हुई अब वेदसे ईश्वरकी प्रतिमा निश्चित हो गई, अब यह विचार कर्तव्य है कि, यज्ञपुरुषकी मूर्ति कैसी होतीहै ॥

ॐ देवा ह वै सत्रं निषेदुः अग्निरिन्द्रः सोमो मखो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम् ॥ १ ॥ तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति तस्माद्यत्र क्वच कुरुक्षेत्रस्य निगच्छति तदेव मन्यत इदं देवयजनमिति ताद्धि देवानां देवयजनम् ॥ २ ॥ त आसत श्रियं गच्छेम यशः स्यामान्नादाः स्यामेति तथोऽएवेमे

सत्रमासतेश्रियंगच्छेमयशः स्यामान्नादाः स्यामेति ॥ ३ ॥ तेहोचुःयोनःश्रमेण तपसाश्रद्धयायज्ञेनाहुतिनाहुतिभिर्यज्ञस्यो दृचंपूर्वोऽवगच्छात्सनःश्रेष्ठोऽसतदुनःसर्वेषांसहेतितथेति॥४॥ तद्विष्णुः प्रथमः प्रापसदेवाना२श्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहुर्विष्णुर्दे- वाना२ श्रेष्ठइति ॥ ५ ॥ सयःसविष्णुर्यज्ञःसःसयः सयज्ञोसौ सआदित्यस्तद्धेदंयशोविष्णुर्नशशाकसंयन्तुंतदिदमप्येतर्हिने- वसर्वइवयशःशक्नोतिसंयन्तुम् ॥६॥ सातिसृघन्वमादायापच- क्रामसधनुरात्न्यांशिरउपस्तभ्यतस्थौतंदेवाअनभिधृष्णुवन्तः समन्तंपरिण्यविशन्त॥७॥ताहवम्रयऊचुःइमावैवम्रयोयदुपदी- कायोऽस्यज्यामप्यद्यात्किमस्मैप्रयच्छेतेत्यन्नाद्यमस्मै प्रयच्छे- मापिधन्वन्नपोधिगच्छेत्तथास्मैसर्वमन्नाद्यं प्रयच्छेमेतितथेति ॥८॥ तस्योपपरासृत्यज्यामपिजक्षुस्तस्यांछिन्नायांधनुरात्न्यौविस्फु- रन्त्यौविष्णोः शिरः प्रचिच्छिदतुः ॥ ९ ॥ तद्घृङ्ङितिपपात तत्पतित्वासावादित्योभवदिति । ब्राह्मणं श० १४ । १ । १ १०

भापार्थः ।

अश्विनीकुमारके विना अग्नि इन्द्र सोम विश्वेदेवादिक देवता विष्णुके संग २ करनेमें प्रवृत्त हुए १ उनका देवयजनस्थान कर्मभूमि कुरुक्षेत्र था जहां देवयज स्थान निर्मित हो वही कुरुक्षेत्राख्य कर्मभूमि कहाता है २ उन्होंने बैठकर कहा हम श्री और यशको प्राप्त करें अन्नके भोक्ता होवें और जो मनुष्य यज्ञ करते वे भी ऐसी ही इच्छा रखते हैं ३ उन्होंने कहा कि, हम सबमेंसे जो कोई श्रम त श्रद्धा यज्ञ आहुतिके द्वारा यज्ञसिद्धिको प्राप्त करै वही सबमें श्रेष्ठ और हमार सखा हो इसको सबने अंगीकार किया ४ विष्णुजीनेही सबमें ही मुख्य उस सबक प्राप्त किया वही सबमें श्रेष्ठ हुए इसी कारण कहते हैं विष्णु सब देवताओं श्रेष्ठ है ५ जो विष्णु है वही यज्ञपुरुष है जो यज्ञपुरुष है वही सूर्य है विष्णु यज्ञाभिमानी देवता इस यज्ञरूपतेजके रोकनेमें समर्थ न हुए इसी प्रकार दूसरेभी समर्थ नहीं हुए ६ वह यज्ञाभिमानी देव संकल्पमात्रसे धनुष धारण कर स्थित हुए और उसकी अरत्नी नोंकपर शिरको धर स्थिर हुए तब देवता उनके चारों त- रफ स्थिर होके उनका कुछ नहीं कर सके (किन्तुक्लेश माना) ७ उन्होंने उप-

जिह्वका अर्थात् दीमकसे कहा कि, इस धनुषकी ज्याको काटो उन्होंने कहा कि, हमको क्या लाभ उत्तर दिया कि, जहां तुम मट्टी निकालोगे वहां जल स्वयं प्रगट हो जायगा ८ यहां यज्ञाभिमानी देवने विचारा कि, हमको देवता धर्षणा नहीं करसके यह विचार हँसी आई तो तेज प्रादुर्भूत हुआ वह देवताओंने औषधियोंमें नियुक्त किया और हास्यके तेजसे श्यामाक अन्न जिसे समा कहते हैं प्रगट किया उसका वाक्य नीचे लिखा है ॥

(तस्यसिष्मियाणस्यपाकामततद्देवाओषधीषुन्यमृजुः । तेश्यामाका अभवन् स्मयाकावैनामैते-तैत्तिरीय०)

यह बात उपजिह्वकाओंने अंगीकार करली और धनुषके नीचेकी कोटीको काटलिया उसके कटजानेसे दोनों कोने खुल यज्ञपुरुषाभिमानी देवका तेजरूपी शिर उडगया और वह सूर्य हुआ जो सूर्य यही है-

सचे यत्रयत्रयज्ञस्यन्यक्ततत स्ततःसम्भरति । श० १४।१।२।१

यज्ञका शिर छिन्न होजानेसे वैष्णवतेज मापामें गिरा उसका रस जहां जहां गिरा वहांसे लेकर उसी रससे मूर्ति व्यापक ईश्वरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है श० आगे ऐसा लेख है जब शिर नहीं रहा तो यजमान स्वर्ग फल और आशिष नहीं प्राप्त करसके तब सब देवताओंने अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग देना निश्चित करके यज्ञपुरुषके शरीरपर शिर जोड ज्योंका त्यों करदिया और यजमानोंने फल पाये इसीको प्रवर्ग्य कहते हैं और शिर कटनेमें धनुषसे जो " घ्रां " यह शब्द हुआ इसीको घर्म कहते हैं महान् यज्ञपुरुषका सारभूत शिर पतित हुआ इसी कारण महावीर नाम है इन्हीकी मूर्ति यज्ञमें बनाते हैं ॥

" प्रश्न " देवताओंके आकार कैसे होते हैं (उत्तर) निरुक्तमें लिखा है पुरुषोंकैसे आकार होते हैं देखिये-

अथाकारचिन्तनंदेवतानांपुरुषविधाःस्युरित्येकंचेतनावद्धिस्तुतयो भवन्तितथाभिधानान्यथापिपौरुषविधिकैरङ्गैःसंस्तूयन्ते-निरु० ऋष्वातइन्द्र स्थविरस्य बाहू यत्सङ्गृभ्णामघवन्काशिरित्ते (अथापिपौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः-)

आद्वाभ्यांहरिभ्यामिन्द्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणंगृहेते । (अथापिपौरुषविधिकैःकर्मभिः) अद्धीन्द्रपिबचप्रस्थितस्याश्रुत्कर्णश्रुधीहवम्-निरु० उत्तरषट्क अ० १ । ६

महाभाग्यवाले होनेसे देवताओंके आकारमें नियम नहीं है नियममें ए
व्याघात होनेसे देवताओंका महाभाग्यपन जाता है इस कारणसे अवश्य दे
ओंका आकार है और कृत्रिमताको विना देखे विकरण नाम कोई देवताधर्म
हैं इस कारण देवताओंकी प्रकृति और स्वभावका चिन्तन करना अवश्य है
कि, ईश्वर और देवता उभय भावी है इस कारण उनका स्वभाव आकार
नकी इच्छा है ॥

जो आत्मवित् हैं वह सृष्टिके पूर्व परमेश्वरको आकाररहित मानते हैं और
सृष्टिकी उत्पत्ति पालन करता है तब आकृतिवाला है संहार उपरान्त अना
ही होता है इस कारण निराकार कहते हैं ॥

नैरुक्त कहते हैं कि, यही ईश्वर सदैव अग्नि वायु सूर्यादि नाम धारण करत
तौ भी प्रत्यक्ष विषय होनेसे इस पक्षमें " आकार " चिन्ता विषयके अभा
होती है ॥

याज्ञिकपक्षवाले कहते हैं यह सब देवता पक्षवादी अग्नि सूर्य इन्द्रादि यह
प्रत्यक्ष अर्थसे सम्बन्ध रखते हैं क्यों कि, लोकमें नाम देखे हुए पदार्थोंके हों
इस कारण यह रुद्रादि शब्द मनुष्यादिवत् आकारवाले होनेसे अर्थवाले हैं ॥

उन देवताओंका कैसा आकार है अथवा है या नहीं जो है तौ कैसा है आ
रके अर्थ यहां दो हैं, अचेतन चेतन, चेतन मनुष्यादि अचेतन पाषाणादि अब
विचार हुआ कि, इनमें मनुष्यादिवत् चेतना है या पाषाणादिवत् अचेतन
द्रव्यमात्र है इसपर लिखते हैं कि "पुरुषविधाः स्युः" इति मंत्रोंसे देवताओं
होना पाया जाता है (यत्काम इत्युपक्रम्य तद्देवतः समंत्रो भवतीति) जिसका
नावाला देवता हो उसका वैसाही मंत्र होता है अर्थात् वही विषययुक्त होता
वह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है जो विषय मंत्रका वही उसका देवता है
जब मंत्रोंके साथ देवता देखे जाते हैं तौ मंत्रोंमें देवत्व होना निश्चय है यदि
ही आकार हो तौ उसका प्रत्यय (विधान) होना चाहिये और इसी प्रकार पुरु
भावसे युक्त मंत्रोंमें देवताओंका संबंध है इसीसे निरुक्तकार कहते हैं कि पुरुष
आकारवाले हैं वा पुरुषोंकेसे शरीरवाले हैं इसी हेतुसे " चेतनावद्विस्तु
भवन्ति" जिससे कि, चेतनोंके अर्थ स्तुतियें होती हैं वा चेतनोंको ही स्तु
मंत्र कहते हैं इससे पुरुष विग्रह कहा यदि कहो कि, चैतन्यता तौ गौ आदि
पशुओंमें भी होती है तौ उसका उत्तर यही है कि, उन्हें ज्ञान नहीं होता
संसारमें भी जिस हिताहित जाननेकी सामर्थ्य नहीं होती उसको कहते हैं कि
मूढ अचेतन है इसी प्रकार यह पशु है चैतन्यता होनेमें भी लोक अलोक आदि

ान नहीं होता इससे इनकी अचेतनकी नाईं उपेक्षा करी है क्योंकि पशु भवि-
ष्यत्की पूरी चिन्ता नहीं करते मनुष्य सब कुछ समझते हैं लोक अलोक जानते
मर्त्यधर्मसे अमृततत्त्वकी इच्छा करते हैं इस कारण हिताहित जाननेसे (सिषा-
यिषितत्वादनपेक्ष्य सामान्यं विशिष्टचैतन्यः पुरुषो नियम्यते) पुरुष ही नियो-
न किया जाताहै जैसे विद्वान् पुरुष अर्थयुक्त वाणियोंको सुनते हैं तैसे ही देवता
इस कारण देवताओंके आकार पुरुषोंकेसे हैं और इसी प्रकार पुरुषोंकी नाईं
रस्पर संवाद सूक्तोंमें देखा जाता है ॥

कयाशुभासवयसः (और) कुतस्त्वमिन्द्रेत्येवमादीनि
ऋ० मं० १ अ० २३ मं० १ । ३

इन सब मंत्रोंमें इन्द्र और मरुत्का संवाद है इससे भी देवता पुरुषाकारवाले
द्ध हैं और पुरुषसम्बन्धी अंगोंसे स्तुति किये जाते हैं देखिये--

उरुं नो लोकमनुनेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता-
ऋ० मं० ४ । ७ । ३२ । ८

(उरुं) विस्तीर्णं (लोकं) यः त्वम् (नः) अस्मान् (अनुने-
षि) अनुनयसि स्वेन सुकृतेन कर्मणा गच्छतां गमनानुग्रहे व-
र्तसे (सर्वज्योतिः) आदित्यसमानं प्रकाशेन लोकं (अभ-
यम्) (स्वस्ति) स्वस्त्ययनाय तस्य (ते) तव वयम् (इन्द्र)
(ऋष्वा) ऋष्वौ एतौ रेपणौ शत्रूणाम् (स्थविरस्य) महतः
(बाहू) हस्तौ (बृहन्ता) बृहन्तौ महान्तौ (शरणा) शरण
आश्रयणीयौ नित्यम् (उपस्थेयाम) उपतिष्ठेमेत्येतदाशास्महे *

भाषार्थः ।

बडे लोक जो तू हमारे अर्थ प्राप्त करताहै अपने कर्मसे जाननेवालोंपर अनु
से वर्तताहै सूर्यसमान प्रकाश संसारके अभय और कल्याणके वास्ते है इन्द्र
शत्रुओंकी मारनेवाली बडी दोनों बाहु हमें नित्य आश्रयमें रक्खें शरण दे

* यहां स्पष्टदेवता प्रकरण है परंतु तु० रा० लिखतेहैं यहां राजाको मनुष्यकारदेवता मानक
ा की है, क्या आपके मतमें राजा मनुष्याकार नहीं होते और आपके मतमें भी देवता मनुष्योंसे
हैं जो राजाको देवता मानाहै खूब निरुक्त समझा ।

यही हम चाहते हैं (यत् संगृभ्णाइत्यादि) इन दोनों मंत्रमें बाहु और मु
सम्बन्ध दर्शनसे इन्द्रपुरुष विधिसे स्तुति कियागया है नहीं तो मंत्रोंका अभिधा
झूठा हो जायगा और भी प्रमाण सुनिये–

आद्वाभ्यांहरिभ्यामिन्द्रयाह्या चतुर्भिरापड्भिर्हूयमानः ।
अष्टाभिर्दशभिःसोमपेयमयंसुतः सुमुख मामृधस्कः–
ऋ० मं० २ । ६ । २२ । ४

हे भगवन् (इन्द्र) यदि तावत् तव द्वौ हरी सन्निहितौ ततस्तावेव रथे युक्त्वा ताभ्याम् (हरिभ्याम्) आयाहि अथ चत्वारः ततस्तैः (चतुर्भिः) अथ षट् ततस्तैः (षड्भिः) अथाष्टौ ततस्तैः (अष्टाभिः) अथ दश ततस्तैः (दशभिः) आयाहि इदं (सोमपेयं) सोमपानकर्म प्रतिकिम् इति एवं ब्रूमहे (अयंसुतः) सोमोभिषुतः त्वदर्थम् सत्वं हे (सुमुख) सुधन (मा) केनचित् (मृधः) संग्रामं (कः) कार्षी अविलम्बितमागच्छेत्यभिप्रायः ॥

भाषार्थः ।

हे भगवन् ! इन्द्र यदि आपके रथमें दो घोडे जुते हों या चार अथवा छः या आठ या दश हैं तो उसमें सवार होकर आओ इस सोमपान कर्मके निमित्त और यह भी हम कहते हैं कि यह सोमरस तुम्हारे वास्ते है सो हे सुधन ! तुम आओ और किसीसे संग्राम मत करो शीघ्र आओ ॥

अपाः सोममस्तामिन्द्रप्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणंगृहेते
यत्रारथस्यबृहतोनिधानंविमोचनंवाजिनोदक्षिणावत्–
ऋ० मं० ३ । ३ । २० । ६

हे भगवन् इन्द्र (अपाः) पीतवानसि (सोमम्) एतास्मिन् कर्मणि (सत्वं पुनः) (अस्तं) गृहं (प्रयाहि) यस्मात् तव (कल्याणीः जायाः) (तत्रबृहतः) च रथस्य (निधानं) रथशाला (विमोचनं) च (वाजिनः) जित्वा संग्राममागतस्य (दक्षिणावत्) अन्यदपि (सुरणं) यद्यद्रमणीयं तत्सर्वं ते तव गृहे वर्तते तस्मात् पुनरस्तं प्रयाहि ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! आपने इस कर्ममें सोमपान कर लिया है अब गृहको जाओ जिससे तुम्हारी सुन्दर कल्याणी जाया और बडे रथके रखनेवाली रथ शाला और घुड़ शाला संग्रामसे जीत पाकर आयेहुए प्रयोजनकी जो जो रमणीय वस्तु होती हैं वह सब तेरे यहां हैं इन मन्त्रोंसे पुरुषाकारवाले देवता होते हैं इत्यादि औरभी मन्त्र हैं जिनसे इन्द्रको अपने वचन सुनाने और पुरोडाश भोजन करनेको बुलाया है विशेष इस पर निरुक्तमें विचार हुआ है अपेक्षा हो देख लीजिये–

अब दूसरा पक्ष कहते हैं कि, देवताओंके आकार अपुरुष विधिके भी होते हैं॥

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपितुयद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवीचन्द्रमा इति उभयविधाः स्युरपिवापुरुषविधानामेवसतां कर्मात्मान एतेस्युर्यथायज्ञोयजमानस्यैषचाख्यानसमयः–निरु० उत्तरप० १ । ७ *

देवताओंको विधान अपुरुष विधिकाभी कहते हैं यह देखा जाता है कि अपुरुषाकार भी देवता हैं जैसे अग्नि वायु आदित्य पृथ्वी चंद्रमा यह अपुरुषाकारवाले हैं निरुक्तकार कहते हैं "उभयविधाः स्युः" दोनों प्रकारके होते हैं क्योंकि, दोनोंमें वेदोंका प्रमाण है यह तीसरा पक्ष है पृथ्वीजलादिक अभिमानी देवता होते हैं अथवा जैसा यजमानका यज्ञ हो वैसा ही आकार देवताओंके चिंतन करना क्यों कि आख्यानोंमें ऐसा है कि, पृथ्वी गौरूप धर ब्रह्मलोकको गई इत्यादि अग्नि ब्राह्मणरूप धर अर्जुन और श्रीकृष्णके निकट आया था यह देवता महाभाग्यवान् होनेसे मूर्तिमान् पुरुषाकार अपुरुषाकार एकधा द्विधा बहुधा हो जाते हैं देवताओंकी परमशक्तिका वर्णन अवतारविषयमें करचुके हैं इत्यादि विशेष देखना हो तौ निरुक्तमें देखिये यहांतक मन्त्रों और युक्तियोंसे आकार सिद्ध हो चुका, अब सुनिये. पृथ्वीके देखनेसे ईश्वरका ऐसा स्मरण नहीं होता जैसा कि, एक विशेष चिह्न माननेसे होता है और तुम तो आकाशादिकोंको नित्य मानते हो जब यह ईश्वरकी. रचना नहीं तौ इनसे ईश्वरका क्या सम्बन्ध फिर इनके देखनेसे ईश्वरका स्मरण कैसे हो सक्ता है सनातन धर्मानुसार यह ईश्वरके बनाये हैं पर इनमें वैसा स्तुतिप्रार्थनाका विधान नहीं है कपडेको देखकर यह बोध होता है कि, कोई इसका बनानेवाला है.

---

* इसके अर्थमें भा० प्र० देवता मनुष्याकार नहीं भी होते जैसे अग्नि वायु आदि अब वह राजप्रकरण कहां चलागया और अब तो आपके मनमें अग्नि वायु आदि भी देवता होगये और आपने इनकी स्तुतियें मानलीं ।

कुछ कपडेसे प्रार्थना स्तुति नहीं होती और न कोई यों कहता है कि, हे पत्थर! तू हमें अमुक सुख धन पुत्र दे किन्तु मूर्ति परमेश्वरकी उपासनाका एक प्रधान चिह्न है, जैसे कि ॐकार प्रधान नाम है जैसे मुमुक्षु संन्याससियों ॐकार उपास्य है इसी प्रकार गृहस्थोंको प्रतिमामें ईश्वराराधन कर्तव्य है यह एक ऐसा चिह्न है कि, जिसके दर्शनमात्रसे ही यह स्मरण हो जाता है कि ईश्वरकी उपासना करणीय है और तुरत ही ईश्वरका नाम दर्शन करनेवाले उच्चारण करते हैं और जब नामस्मरण और प्रार्थना करेगा तो प्रेम होनेसे ईश्वरका ध्यान सदा बना रहेगा और वोह एकांत पाकर चोरी आदि नहीं करसक्ता, क्यों कि मूर्तिविधान होनेसे कुछ यह नहीं कहा है कि, ईश्वर सर्वव्यापी नहीं किन्तु एक विशेष स्मरण प्रतीक शास्त्रार्पित है जिससे कि, सम्पूर्ण गुण ईश्वरके विदित हो जाते हैं जैसे किसीकी तसवीर देखनेसे यदि उसके गुण पूर्व श्रवण करे हों तो वोह सब स्मरण हो आतेहैं इसी प्रकार ईश्वरकी मूर्ति है परन्तु यह एक ऐसी वस्तु है कि एक अनिर्वचनीय भक्ति ईश्वरमें उत्पन्न कर देती है जैसे ऋषि मुनियोंके चित्र देखनेसे उनके गुण स्मरण हो आते हैं और उनका चरित्र चित्तमें कई दिनतक उपस्थित रहता है इसी प्रकारसे जो तीनोंकाल ईश्वरका अर्चन वन्दन करते हैं और स्तोत्र पाठ करके उसके गुणोंका कीर्तन करते हैं तो उनके मनमें कभी दुष्कर्मोंका प्रादुर्भाव नहीं होता जो वे दुष्कर्म करैं, जो उसका पूजन स्मरण प्रतिदिन करता है वोह सम्पूर्ण बुराइयोंसे बच जाता है और दयानन्दानुयायियोंमें यह स्वयं ही देखा है कि, ईश्वरका नाम निष्प्रयोजन समझकर नहीं लेते रातदिन निन्दा झूंठ मिथ्या वितंडा करते हैं यह स्वामीजीके उपदेश और निर्भक्तिका फल है ॥

अब तीसरे भावका उत्तर सुनिये परमेश्वरकी भावना कोई ऐसी नहीं करता है कि, मूर्तिमें है अन्यत्र नहीं है किन्तु मूर्तिमें भावना करते हुए भी यही करते हैं कि, परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक होनेसे इस मूर्तिमें व्यापक है और विकाररहित होनेसे उसमें विशेष स्मरण होता है जैसे आज दिन महाराणीकी बीसियों मूर्तियां बनी हैं और सबमें उनकी भावना है कुछ मूर्ति बननेसे उनका राज्य नहीं घटगया किन्तु प्रजाभक्ति अधिक बढ जातीहै और यह कहना तो स्वामीजीका प्रलाप है कि, जब व्यापक तो फूल पत्ते चंदन क्यों चढाते हो, पुष्पादि निवेदन करना विधान और आदरका सूचक है व्यापक होनेसे पुष्पादि न चढाये जायें तो आप भी तो व्यापक मानते हैं क्या रोटी दाल भात भोजनमें व्यापक नहीं है यदि कहो कि, है, तो आप भोजन करने समय ईश्वरको भी रोटी या पूरीके साथ भक्षण करानेवाले हुए हम पत्थरकी पूजा नहीं करते यदि

करते तो पत्थर २ जपते और पुष्पादि चढाने व्यर्थ होजाते हम लोग तो उस मूर्तिको विधानसे प्राणादिप्रतिष्ठा करके उनमें देवता वा ईश्वरकी भावनासे पूजा करते हैं स्तुतिपाठादि सब ईश्वरका नाम ग्रहण कर करते हैं, धूपदीपादि सब ईश्वर-हीके उद्देश्यसे करते हैं और स्तुति प्रार्थना करते हैं, आपको वोह पत्थर दीखता होगा क्यों कि, ईश्वरको उसमें व्यापक कदाचित् तुम न मानते होगे भला भावसे ईश्वर कैसे बंध जायगा क्या ईश्वर मूर्तिके सिवाय अन्यत्र नहीं योह सब स्थानमें है यदि एक ही स्थानमें हो तो लखों करोडों मूर्तिमें क्यों उसका भाव होसक्ता व्यापक होनेसे वह सब स्थानमें है परन्तु भाष्यभूमिकाके नियमोंमें तो ईश्वरको आपहीने बांधा है, कि, अवतार नहीं लेता सृष्टिक्रमके प्रतिकूल कुछ नहीं करसक्ता शक्तिहीन ईश्वर तुम्हाराही है जो भक्तोंकी प्रार्थना सुनकर तनक पाप भी नहीं क्षमा करता अन्य धातुमें अन्यधातुकी भावना नहीं होसक्ती भावना ईश्वरकी है जो सर्वशक्तिमान् चेतन व्यापक है (भावे हि विद्यते देवः) सर्वज्ञ होनेसे वह भावमें विद्यमान है यदि इसकी समान कोई दूसरा हो तो उसकी भावना हो सक्ती है दुःखसुखकी भावना नहीं होसक्ती भावना ईश्वरहीकी होती है सुखदुःख कमाका फल है इनमें भाव नहीं पडसक्ता ईश्वरका भाव सर्वव्यापी होनेसे जिसमें चाहें बनसका है जडपदार्थका भावना जडमें नहीं बनसक्ती रागादिकी निवृत्ति अंधे आदिकी नेत्र लाभकी संभावना नहीं होसक्ति क्यों कि वह कर्मानुसार प्राप्त हुए हैं और समयान्तरमें जाते रहेंगे ईश्वरकी भावना सर्वज्ञ होनेसे सब स्थानमें करसक्ते हैं और वह सर्वशक्तिमानादि गुण जैसा है वैसा ही जानते हैं इस कारण हमारी भावना ठीक है ॥

सत्या० प्र० पृ० ३०० पं० २८

रुद्राक्ष भस्म तुलसी कमलाक्ष घास चन्दनादिको कंठमें धारण करनाहै वह सब जंगली पशुवत् मनुष्यका काम है ॥ ३१८ । १७

समीक्षा-जब चन्दनादिके धारण करनेसे जंगली होते हैं तो यह तो कहिये कि, वार्षिकोत्सवसे जो समाजी माथेपर चित्रकबुरा चन्द नलगातेहैं वह कौन हुए और आप जो वर्षों गंगारजमें लोटतेरहे और वही शरीरमें लगायेरहे तो आप कौन हुए, कालाग्निरुद्रोपनिषद्में यह सब प्रमाण लिखे हैं, आप उसे रखोडियेका बनाया कहतेहैं नहीं मानते इसमें प्रमाण क्या जब कि, वह भस्म चन्दनादिके विधान कहनेसे अप्रमाण है तो आपकी पुस्तक उसकी विरोधिनी होनेसे अप्रमाण क्यों नहीं, रामचन्द्र लाल चन्दन लगातेथे कुब्जाने श्रीकृष्णको चन्दनसे चर्चित किया इत्यादि चन्दनके इतिहासादि भी अनेक प्रसिद्ध हैं" त्र्यायुषं जमदग्नेः" यह विभूतिधारणका मन्त्र है ॥

कुछ कपडेसे प्रार्थना स्तुति नहीं होती और न कोई यों कहता है कि, हे प
नू हमें अमुक सुख धन पुत्र दे किन्तु मूर्ति परमेश्वरकी उपासनाका एक
चिह्न है, जैसे कि ओंकार प्रधान नाम है जैसे मुमुक्षु संन्यासियों ओंकार उप
इसी प्रकार गृहस्थोंको प्रतिमामें ईश्वराराधन कर्तव्य है यह एक ऐसा चिह्न है कि,
दर्शनमात्रसे ही यह स्मरण हो जाता है कि ईश्वरकी उपासना करणीय है
तुरत ही ईश्वरका नाम दर्शन करनेवाले उच्चारण करते हैं और जब नाम
और प्रार्थना करेगा तो प्रेम होनेसे ईश्वरका ध्यान सदा बना रहेगा और
एकांत पाकर चोरी आदि नहीं करसक्ता, क्यों कि मूर्तिविधान होनेसे कुछ

प्रायश्चित्त होता है " इदंविष्णुर्विचक्रमे इति " इस मंत्रसे हवन कर पांच व्याहृतियोंसे होम करै इसमें चक्रपाणि आदिशब्दसे ईश्वर साकारसिद्ध होता है इससे यही सिद्ध है कि, जबतक यह मूर्ति स्थिर रहती है तभीतक शान्ति है चलायमान होते ही वैकारिकगुणयुक्त होती है ईश्वरके अवतारोंकी मूर्ति वेदानुसार प्रतिष्ठा करके पूजन करते हैं परन्तु ईश्वरको आने जानेवाला किसीने नहीं कहा ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे आताजाता नहीं और मूर्तिप्रतिष्ठा करनेसे क्यों चलायमानहो, प्रतिष्ठाके अर्थ हैं सदा स्थित रहनेवाली, प्रतिष्ठा होते ही निरन्तर पूजनीय हो जाती है जैसे कोई मनुष्य घरमें बैठाहै तो क्या वोह घर चलने लगेगा कभी नहीं और 'स्था गतिनिवृत्तौ' धातुसे प्रतिष्ठा शब्द सिद्ध होता है जो चलायमान न हो अचल रहे सो ही प्रतिष्ठा की जाती है और जो चलै तो हाला चाला होजाय यह तो एक देवताओंके विग्रह हैं उनमें देवता आनकर प्रविष्ट होजाते हैं जैसे एक स्थान टूट जानेसे मनुष्य और स्थानमें चले जाते हैं इसी प्रकार जब मूर्ति अशुद्ध होजाती है या टूटजाती है तो देवता और मूर्तिमें प्रवेश करजाते हैं महाभाग्य होनेसे एक अनेक होजाते हैं, यवनादिकोंके स्पर्शसे देवता नहीं रहते उनका निवास बडे पवित्रस्थानमें होताहै जैसे घर हलनेसे बडा उत्पात होता है इसी प्रकार मूर्ति आदिमें भी विकार होनेसे प्रायश्चित्त है पुत्रादिकोंमें प्राण डालनेका विधान नहीं है उनका आत्मा सर्वज्ञ नहीं, एक अनेक नहीं होसक्ता, मृतक होनेपर कर्मानुसार दूसरे तनुको प्राप्त होताहै जो पितर आदि किसी योनिको प्राप्त होता ही है फिर कैसे प्राण आवें और वोह कैसे रहें पिता पुत्रकी आत्माको बुलावे और उसको और बुलावे तो जगत्की व्यवस्था नष्ट होजावे यह सामर्थ्य देवताओंको ही है प्रत्येक मूर्तिमें अपना आत्मा प्रवेश करसके हैं ॥

स० प्र० पृ० ३०८ पं० १८ प्रश्न

प्राणाइहागच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा आत्मेहागच्छतु सुखं चिरंतिष्ठतुस्वाहा इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा ।

इत्यादि वेदमंत्र है क्यों कहतेहो नहीं हैं (उत्तर) भाइ बुद्धिको थोडीसी काममें लाओ यह वाममार्गियोंकी वेदविरुद्ध तंत्रग्रंथोंकी पोपरचित पंक्तियां हैं (प्रश्न) क्या तंत्र झूंठा है (उत्तर) हाँ सर्वथा झूंठा है जैसे आवाहन प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्तिविषयक वेदोंमें एक मंत्र भी नहीं वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादिमूर्तिं रचयित्वा मंदिरेषु स्थाप्य गंधादिभिरर्चयेत् " अर्थात् पाषाणादिकी मूर्ति बना मंदिरोंमें स्थापन कर चन्दन अक्षतादिसे पूजै ऐसा लेशमात्र भी नहीं ॥ ३२७ । १

स० पृ० ३०८ पं० ११ जो मन्त्र पढकर आवाहन करनेसे देवता आजाती है तौ मूर्ति चेतन क्यों नहीं होजाती और विसर्जन करनेसे चली क्यों नहीं जाती और वह कहांसे आता कहां जाता है परमात्मा न आता है न जाता है जो तुम मन्त्रबलसे परमेश्वरको बुलातेहो तौ उन्हीं मन्त्रोंसे अपने मरेहुए पुत्रके शरीरमें जीवको क्यों नहीं बुलालेते हो और शत्रुके शरीरमें जीवात्माका विसर्जन करके क्यों नहीं मारसक्त यह पोपजीकी ठगई है ॥ ३२६ । २९

समीक्षा–देवता और ईश्वरका मंत्रोंसे सम्बंध है वेदविधान होनेसे और देवता सामर्थ्ययुक्त होनेसे सहस्रों शरीर धारण करलेते हैं जो कि, हमारे नेत्रपथसे अतीत हैं देवता मन्त्रोंके प्रभावसे उस स्थानमें प्राप्त होजाते हैं परन्तु अलक्ष्य रहतेहैं देवता परोक्षप्रिय हैं देवता क्या पितरोंका भी आवाहन है यथा "आयन्तु नः पितरः" और "अग्नआयाहि" इत्यादि अनेक मन्त्र देवतापितरोंके आवाहनके हैं और शुद्धान्तःकरण मुनिगणोंको यह सामर्थ्य है जैसा कि, जन्मेजयके यज्ञमें तक्षकादि सर्प और इन्द्र आवाहन करते ही उपस्थित होने लगे थे और मन्त्रबलसे सहस्रों सर्प आन २ कर अग्निकुंडमें भस्म होगये थे महाभारतका आदिपर्व देखो ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें देवताओंका आवाहन है जो उस विधानको जानते थे बुलालेतेथे और जाननेवाले अब भी बुलासक्ते हैं मूर्तिमें देवताओंका आवाहन विसर्जन नहीं करते हां प्राणप्रतिष्ठा करते हैं और इसका विधान भी है अब भी जिस मूर्तिकी प्रतिष्ठा अच्छे प्रकार हो उसमें चमत्कार होता है और लोगोंको इष्टप्राप्ति होती है उनके चमत्कारकी विधि सामवेदके षड्विंश ब्राह्मणमें लिखी है ॥

यदादेवतायतनानिकम्पन्तेदैवतप्रतिमा हसन्तिरुदन्ति नृत्यन्तिस्फुटंतिस्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्तितदाप्रायश्चित्तं भवतीदंविष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकꣳ हुत्वा पञ्चभिराहुतिभिराभिजुहोति विष्णवेस्वाहासर्वभूताधिपतयेस्वाहा चक्रपाणयेस्वाहेश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वाहेति व्याहृतिभिर्हुत्वाथ सामगायेत ॥ *

जब देवताओंके स्थान कांपतेहैं देवताओंकी प्रतिमा रोती हैं, हँसती हैं नाचतीहैं एकदेशसे स्फुटनको प्राप्त होती हैं पसीने युक्त होतीहैं नेत्र खोलतीहैं मींचतीहैं तब

* भा० प्र० को यहां यही कहते बनैहै कि यह ब्राह्मण प्राचीन नहीं सो हां क्यों न कहते स्वामीजीकी यातोंके आगे कुछ प्रमाण नहीं आप इसका अर्थ करते हैं देवताओंके स्थान कांपते हैं इत्याकार कहिये तो सूर्यादिदेवता जो यहां मनन्तेहो उनके टेक कोनने हैं।

अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोरदुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत्में व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाणसादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥ २ ॥ जो वाणीका इयत्ता अर्थात् जल है लीजिये वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसको ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वे उपासनीय नहीं जो मनसे इयत्ता करके मनमें भी नहीं आता जो मनको जानता है उसी ब्रह्मको तू जान और उसीकी उपासना कर और जो उससे भिन्न जीव और अंतःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मत कर २ जो आंखसे नहीं दीख पडता और जिससे सब आँखें देखती हैं उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य विद्युत् और अग्नि आदि जड पदार्थ हैं उसकी उपासना मत कर ॥ ३ ॥ जो श्रोत्रोंसे नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसीको तूं ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर उससे भिन्न शब्दादिकी उपासना उसके स्थानमें मत कर ॥ ४ ॥ जो प्राणोंसे चलायमान नहीं होता जिससे प्राण गमनको प्राप्त होता है (फिर मूर्ति उसके आगमनसे क्यों कर चलायमान होगी क्यों कि मूर्ति उसकी है और वह प्राणोंसे चलायमान नहीं होता इससे मूर्ति भी नहीं चलती) उसी ब्रह्मको तू जान उसीकी उपासना कर जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर ॥ ५ ॥ ३२७ । १६

समीक्षा—यह संपूर्ण स्वामीजीका लेख असंगत है यहां यह विचार कर्तव्य है कि इन यजुर्वेदके मंत्रोंकी किसी पूर्व अथवा उत्तर मंत्रसे संगति है अथवा नहीं जो यह कहें कि, विना संगत ही कार्यकारण उपासनाका निषेध किया है तौ यह कहना चाहिये कि, " ब्रह्मके स्थानमें " यह अर्थ किस पदका है मंत्रोंके अक्षरोंसे तो असंभूति–उत्पत्तिरहित और संभूति उत्पत्तिमत् वस्तुकी जो उपासना करता है सो नरकमें पडता है यही अर्थ प्रतीत होता है तो यह निर्णय करना चाहिये कि, ब्रह्म असंभूति पदार्थ है अथवा नहीं जो उत्पत्तिरहित होनेसे ब्रह्म भी असंभूति पदार्थ है तौ उसकी उपासना करनेसे भी नरक होगा और जो असंभूति पदार्थ ब्रह्म नहीं तो संभूति शब्दका अर्थ होगा इसमें दो दोष हैं ब्रह्मको कार्यत्वापत्ति और ब्रह्मकी उपासनासे नरकभी होगा क्यों कि संभूतिकी उपासनामें नरकरूप फल मंत्रप्रतिपाद्य है जब पूर्व उत्तर संगति विना मंत्रके अक्षरोंके यह अर्थ करेंगे सो "ईशावास्य" इस मंत्रसे लेकर "अन्धंतमः" इस मंत्रतक कोई ऐसा पद नहीं कि जिसका अर्थ यह है कि, ' ब्रह्मके स्थानमें इसकी संस्कृत 'ब्रह्मणः स्थाने' अथवा ' ईश्वरस्य स्थाने ' यह कहीं भी नहीं सज्जन पुरुष यजुर्वेदका ४० वां अध्याय देखकर विचारलेंगे कि, क्या प्रकरण है कुछ मंत्र पूर्व भी लिख आये हैं इस कारण

समीक्षा–यहां स्वामीजीने प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्र स्वयं ही लिखकर कहदिया कि यह वेदवाक्य नहीं मत हो हम आगे मन्त्रभागहीके वचन प्राणप्रतिष्ठामें लिखेंगे और क्रमानुसार मूर्तिका बनाना लिखा जायगा वहीं प्राणप्रतिष्ठामें लिखेंगे और तन्त्र सब सचा है करनेवाला हो विधानसे करे तो निश्चय सिद्ध होगा जिसे पूछना हो हम बतासक्ते हैं श्रद्धासे करैगा तो बेशक सिद्ध होगा ।

स० प्र० पृ० ३०९ पं० १ जो वेदोंमें विधि नहीं तो खंडन भी नहीं और जो खंडन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्तिके होनेहीसे खंडन होसक्ता है (उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वरके स्थानमें किसी अन्यपदार्थको पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है क्या अपूर्वविधि नहीं होती सुनो यह है ॥

अन्धंतमःप्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते ततोभूयइवतेतमो
यउसंभूत्यां रताः–यजु० अ० ४० मंत्र ९
न तस्यप्रतिमा अस्ति यजु० अ० ३४ मंत्र ४३
यद्वाचानभ्युदितं येनवागभ्युद्यते ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुतेयेनाहुर्मनोमतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ २ ॥
यच्चक्षुपानपश्यतियेनचक्षूंपिपश्यन्ति ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेणनशृणोतियेन श्रोत्रमिदंश्रुतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ४ ॥
यत्प्राणेननप्राणितियेनप्राणःप्रणीयते ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ५ ॥ केनोपनि०

भाषार्थः ।

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणको ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुखसागरमें डूबते हैं और संभूति जो कारणसे उत्पन्नहुए कार्यरूप पृथ्वी आदिभूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीरकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें करते हैं वे उस अन्धकारसे भी

अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोरदुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत्में व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाणसादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥ २ ॥ जो वाणीका इयत्ता अर्थात् जल लीजिये वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसको ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वे उपासनीय नहीं जो मनसे इयत्ता करके मनमें भी नहीं आता जो मनको जानता है उसी ब्रह्मको तू जान और उसीकी उपासना कर और जो उससे भिन्न जीव और अंतःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मत कर २ जो आंखसे नहीं दीख पडता और जिससे सब आँखें देखती हैं उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य विद्युत् और अग्नि आदि जड पदार्थ हैं उसकी उपासना मत कर ॥ ३ ॥ जो श्रोत्रोंसे नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसीको तूं ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर उससे भिन्न शब्दादिकी उपासना उसके स्थानमें मत कर ॥ ४ ॥ जो प्राणोंसे चलायमान नहीं होता जिससे प्राण गमनको प्राप्त होता है (फिर मूर्ति उसके आगमनसे क्यों कर चलायमान होगी क्यों कि मूर्ति उसकी है और यह प्राणोंसे चलायमान नहीं होता इससे मूर्ति भी नहीं चलती) उसी ब्रह्मको तू जान उसीकी उपासना कर जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर ॥ ५ ॥ ३२७ । १९

समीक्षा–यह संपूर्ण स्वामीजीका लेख असंगत है यहां यह विचार कर्तव्य है कि इन यजुर्वेदके मंत्रोंकी किसी पूर्व अथवा उत्तर मंत्रसे संगति है अथवा नहीं जो यह कहैं कि, विना संगत ही कार्यकारण उपासनाका निषेध किया है तो यह कहना चाहिये कि, " ब्रह्मके स्थानमें " यह अर्थ किस पदका है मंत्रोंके अक्षरोंसे तो असंभूति–उत्पत्तिरहित और संभूति उत्पत्तिमत् वस्तुकी जो उपासना करता है सो नरकमें पडता है यही अर्थ प्रतीत होता है तो यह निर्णय करना चाहिये कि, ब्रह्म असंभूति पदार्थ है अथवा नहीं जो उत्पत्तिरहित होनेसे ब्रह्म भी असंभूति पदार्थ है तो उसकी उपासना करनेसे भी नरक होगा और जो असंभूति पदार्थ ब्रह्म नहीं तो संभूति शब्दका अर्थ होगा इसमें दो दोष हैं ब्रह्मको कार्यत्वापत्ति और ब्रह्मको उपासनासे नरकभी होगा क्यों कि संभूतिकी उपासनामें नरकरूप फल मंत्रप्रतिपाद्य है जब पूर्व उत्तर संगति विना मंत्रके अक्षरोंके यह अर्थ कैसे करेंगे सो "ईशावास्य" इस मंत्रसे लेकर "अन्धंतमः" इस मंत्रतक कोई ऐसा पद नहीं कि जिसका अर्थ यह है कि, ' ब्रह्मके स्थानमें इसकी संस्कृत 'ब्रह्मणः स्थाने' अथवा ' ईश्वरस्य स्थाने ' यह कहीं भी नहीं सज्जन पुरुष यजुर्वेदका ४० वां अध्याय देखकर विचारलेंगे कि, क्या प्रकरण है कुछ मंत्र पूर्व भी लिख आये हैं इस कारण

उनका दुबारा लिखना ठीक नहीं ब्रह्मके स्थानमें कारण प्रकृति और कार्य पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें गिरता है यह अर्थ प्रकरणविरुद्ध है और यह भी विचारना चाहिये कि, ब्रह्मके स्थानमें इसका भावार्थ क्या है ब्रह्मका स्थान कौन है ब्रह्मकी उपासनाका स्थान वा ब्रह्मका निवास स्थान वा ब्रह्मरूपस्थान यह अर्थ है प्रथम पक्षमें तो ब्रह्मकी उपासना स्थान कोई दूसरा पदार्थ स्वामीजीके मतमें नहीं है क्यों कि यदि ब्रह्मकी उपासनाका स्थान कोई पदार्थ मानैंगे तो प्रतीको उपासना सिद्ध होगी क्यों कि, ब्रह्मबुद्धिसे किसी पदार्थकी उपासना ही प्रतीकोपासना है और यदि ब्रह्मके निवासस्थानको ब्रह्मस्थान मानै तौ ब्रह्मको व्यापक होनेसे सर्व ही वस्तुमात्र ब्रह्मका निवासस्थान है तिस स्थानम कारण कार्य उपासना करता ही कौन है, जो नरकको प्राप्त होगा क्यों कि, कारण प्रकृति और कार्य पृथिवी आदि भी तो ब्रह्मका निवासस्थान है तिससे कार्य कारण दृष्टि सबको प्राप्त है क्यों कि कारणको कारण और कार्य्यको कार्य्य सब ही जानते हैं परिशेषसे ब्रह्मरूप स्थानमें जो कारण प्रकृतिकी और कार्य्य पृथिवी पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें पडता है यह अर्थ दयानन्दजीको विवक्षित होगा आशय यह है जो कारण प्रकृतिबुद्धिसे और कार्य पाषाणादि मूर्तिबुद्धिसे ईश्वरकी उपासना करता सो नरकमें पडता है जब यह अर्थ इष्ट हुआ तो विचारिये कि, मूर्तिपूजक आचार्य ब्रह्ममें मूर्तिबुद्धि करके पूजन उपासना करते हैं अथवा मूर्तिमें ब्रह्मबुद्धि करके पूजनादि करते हैं प्रथम पक्ष तो कोई विचारशून्य भी ग्रहण न करैगा दूसरा पूर्व आचार्य मार्गरूढ पुरुष सर्वव्यापक ब्रह्मको वा भक्तवात्सल्यादि गुणविशिष्ट कैलासवासी वैकुण्ठवासी देवको केवल मूर्तिरूप कैसे मानेगा, इस कारण मूर्तिमेंही ब्रह्मबुद्धि दृढ करके पूजन करते हैं स्वामीजीका यह विपरीत ज्ञान है जो कहते हैं कि, ब्रह्मके स्थानमें कारण कार्य बुद्धि कर्ताको नरक होता है ऐसी बुद्धि तौ इन्हींकी है प्रतिमापूजकोंकी नहीं प्रतिमापूजक तो प्रतिरूप अधिष्ठानमें ब्रह्मबुद्धिकरके ब्रह्मका पूजन करते हैं इसी अर्थको व्यासजी सूत्रसे कथन करते हैं ॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्–शा० अ० ४ पा० १ सू० ५

इस सूत्रमें प्रतीकोपासनाबोधक वाक्य उदाहरण है प्रतीककी दृष्टि ब्रह्ममें कर्तव्य है अथवा ब्रह्मदृष्टि अधिष्ठानमें करनी योग्य है इस संशयकी निवृत्तिके वास्ते व्यासजी कहते हैं ब्रह्मदृष्टि ही प्रतीकमें कर्तव्य है ब्रह्मको उत्कर्ष होनेसे ऐसे उत्कृष्ट ब्रह्मदृष्टि करनेसे उत्कृष्ट ब्रह्म ही पूज्य होगा, इस सूत्रसे भी स्वामीजीका मत निर्मूल प्रतीत होता है अब इस नवम मन्त्रका अर्थ लिखते हैं इसकी संगति दशम और एकादश मन्त्रके साथ है ॥

अन्धंतमःप्रविशन्तीति-

प्रथम तो कारण कार्य्य उपासनाके समुच्चयकी इच्छाकर एक एक उपासनाक निन्दा करते हैं जो कारण जड प्रकृतिकी उपासना करते हैं वे अन्धतममें प्रवे करते हैं और जो कार्यकी उपासना करते हैं वे तिससे भी अधिक अन्धकार प्रवेश करते हैं

अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।
इतिशुश्रुमधीराणांयेनस्तद्विचचक्षिरे-यजुः अ० ४० मं० १

सम्भवात् अर्थात् ब्रह्मदृष्टिसे कार्य मृन्मयमूर्ति उपासनासे अन्य ही विशुद्धि प्राप्तिरूप फल आचार्य कहते हैं और अन्य ही फल असम्भवात् अर्थात् कार रूप प्रकृति उपासनासे प्रकृतिलयरूप फल कहते हैं ऐसे धीराणाम् वेदार्थ उप शके आचार्योंका वचन हम लोग सुनते हुए जो आचार्य्य हमारे प्रति का कारण उपासनाका व्याख्यान कर चुके हैं ॥

संभूतिंचविनाशंचयस्तद्वेदोभयं २७ सह ।
विनाशेनमृत्युंतीर्त्वासंभूत्यामृतमश्नुते-यजु० अ० ४० मं० १

इस मन्त्रमें सम्भूति शब्दकी आदिमें आकारका लुप्त उच्चारण जानना क्योंकि विनाश शब्द कार्यका वाचक है और संभूति शब्द भी कार्य्यका वाचक होने पुनरुक्ति होगी और नवम दशम मन्त्रमें आकारका उच्चारण है इससे इस स्था अकार है तब यह वाक्यार्थ हुआ जो पुरुष असंभूति कारणकी और विनाश व वत् कार्यकी एककालमें उपासना करता है सो पुरुष कार्य उपासनासे मृत्यु तरकर कारण उपासनासे अमृतको प्राप्त होता है आशय यह है कि, प्रतिमा ब्रह्मदृष्टि पूजन ध्यान करता हुआ स्वभाव प्राप्त निषिद्ध कर्मोंको उत्तीर्ण हो कारण उपासनासे ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रममुक्तिको प्राप्त होता है यह तीन मन्त्रो एक महावाक्य है निन्दा कुछ निन्दा करनेकी नहीं प्रवृत्त हुई किन्तु विधानयो न्यकी स्तुति करनेके वास्ते प्रवृत्त हुई है इस न्यायसे नवम मन्त्रसे कारण क उपासनाकी निन्दा समुच्चयके अर्थ की है और दशम मन्त्रसे एक एकका फल बोधन किया है, क्यों कि निष्फलका समुच्चय नहीं होता जैसे कृषिकर्म वाणिज्य प्रत्येक सफल होवें तो उनदोनोंका समुच्चय करके एकपुरुष सेवन क है इससे दशम मन्त्रमें एक एक सफल कहा और एकादशमें समुच्चय कहा है रीतिसे तीन मन्त्रोंकी एक वाक्यता होनेसे प्रतीकोपासना स्पष्ट सिद्ध है ॥

अब दूसरे " न तस्य प्रतिमा अस्ति " इस वेदवचनका पूरा मन्त्र क्य नहीं लिखा इसका अर्थ तो इतना ही है कि, उसकी प्रतिमा नहीं सो यहां य विचार कर्तव्य है कि, तत् शब्दार्थ क्या है निराकार है वा साकार सर्व जगत्मे व्यापक है वा परिच्छिन्न और प्रतिमाशब्दार्थ क्या है सो बात विना प्रकरणके और पूरे मन्त्रके निश्चित नहीं होसक्ती और विना प्रकरणके विचारे जो स्वामीजी व्यापक निराकारका वाचक तत्शब्द कहते हैं तो हम कहते हैं साकार ही तत्-शब्दका अर्थ क्यों न हो और प्रतिमा शब्दका अर्थ सादृश्य मानकर उस साकार विश्वरूप परमात्माका सादृश्य किसीमें नहीं ऐसा अर्थ करनेमें क्या हानि इस कारण प्रकरण और पूरे मन्त्रका जानना अत्यावश्यक है इससे पहले (तदेवाग्नि) इस ३२ । १ मन्त्रमें अग्न्यादिरूपसे परमात्माकी स्थिति कही है दूसरा मन्त्र ॥

सर्वे॑ निमे॒षा ज॑ज्ञिरे वि॒द्युतः॒ पुरु॑षा॒दधि॑ ॥ नैन॑मू॒र्ध्वं न ति॒र्यञ्चं॒ न मध्ये॒ परि॑ जग्रभत् ॥ २ ॥

स्वयंज्योतिःस्वरूप पुरुषमें सब ही निमेषादिरूप खण्डकाल उत्पन्न होता हुआ और इस पूर्ण पुरुषको "ऊर्ध्व वातिर्यञ्च " चारों दिशाओंमें वा मध्यमें कोई ग्रहण नहीं करसक्ता, सर्वका कारण होनेसे। आशय यह है कि, पूर्वमन्त्रमें अग्निआदिभाव कहनेसे ग्राह्यता प्रसक्तिका निवारण कर दिया अवास्तव स्वशक्ति निर्मित अग्नि-आदिभावसे वास्तव ग्राह्यत्व कारणात्मामें नहीं होसक्ता ॥

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ ॥ हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इत्ये॒षः मा मा॑ हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इत्ये॒षः-यजु० अ० ३२ मन्त्र० ३

प्रतिमा शब्दके अर्थ दो हैं एक तो तुल्यरूपान्तरप्रतिमाशब्दार्थ तिसको तो निषेध करते हैं जिस परमात्माका नाम महत् है तथा यश कीर्ति महत् बडी है तिसका तुल्यरूपान्तर नहीं है और द्वितीय जो प्रतिमाशब्दार्थ है सो स्वयं मन्त्र अंगीकार करते हैं "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे " इन चार मन्त्रोंका जो अनुवाक है सो भी इसीका रूपान्तर न्यूनरूप है तथा "मामाहिंसीः" इत्यादि मन्त्रवाच्य भी इसीका रूप है इसी रीतिसे हिरण्यगर्भादि परमेश्वर कार्य होनेसे सूर्य प्रतिबिम्बको सूर्य्यप्रतिमावत् न्यून मणिका अधिकमणिकी प्रतिमावत् उत्तमसुवर्ण मुद्रिकाकी निकृष्ट सुवर्णमुद्रिकाकी प्रतिमावत् प्रतिमा है और हिरण्यगर्भसे जो स्वामीजीने निराकारके अर्थ लिये हैं सो प्रसंगविरुद्ध है और यहां यह अर्थ नहीं है कि, उस परमेश्वरकी मूर्ति नहीं है क्यों कि, परमेश्वरको प्रतिमारूप ऋग्वेद कहता है ॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यंकिमासीत्परिधिः
कआसीच्छन्दः किमासीत् प्रउगंकिमुक्थंयदेवादेवमय-
जन्तविश्वे-ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १८ मं० ३

अर्थ-सबकी यथार्थ ज्ञान बुद्धि कौन है, और प्रतिमा मूर्ति कौन है और सब जगत्का कारण कौन है और घृतके समान सार जानने योग्य कौन है और सब दुःखोंका निवृत्तकारक और आनंदयुक्त प्रीतिका पात्र परिधि (सीमा) कौन है और इस जगत्का पृष्ठावरण कौन है और स्वतंत्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है, यहांतक तो इसमें प्रश्न हैं अन्तमें सबका उत्तर इसमें है कि, (यत् देवम् विश्वेदेवाः अयजन्त) जिस परमेश्वरको इंद्रादिकोंने पूजा पजते हैं और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमादिसर्व रूपसे जगत्में स्थित है और वो ही सारभूत घृतवत् स्तुति करनेके योग्य है तो ऊपर लिखे मंत्रका यह अर्थ नहीं होसक्ता कि, उसकी मूर्ति नहीं क्यों कि यह ऋग्वेदका मंत्र ही कहता है कि वोह प्रतिमारूप है बस यही अर्थ है कि, उस परमेश्वरके समान कोई नहीं इससे अगले मंत्रमें भी प्रजापतिको सर्वरूप कहा है ॥

मामाहिंसीज्जनिताय पृथिव्यायोवादिवंसत्यधर्माव्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोजजानकस्मै देवायहविपाविधेम-
य० अ० १२ मं० १०२

(यः) जो प्रजापति (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधारण करनेवाला (दिवम्) द्युलोकको (व्यानट्) सूजनकर व्याप्त है (च) और (यः) जो (प्रथमः) आदिपुरुष प्रथमशरीर (आपश्चन्द्राः) जगत्के आह्लाद और तृप्तिसाधक जलको (जजान) उत्पन्न करता हुआ या मनुष्योंका रचनेवाला है वह प्रजापति (मा) मुझे (माहिंसीत्) मत मारो (कस्मै) उस प्रजापतिके निमित्त (हविषा विधेम) हवि देते हैं ।

यस्मान्नजातः परोअन्यो अस्ति य आविवेशभुवनानिविश्वा ।
प्रजापतिः प्रजयास रराणस्त्रीणिज्योतींषि सचतेसषोडशी-
य० अ० ८ मं० ३६

पदार्थः-(यस्मात्) जिस पुरुषसे (अन्यः) दूसरा कोई उत्कृष्ट (न) नहीं

(जातः) प्रादुर्भूत हुआ (अस्ति) है (यः) जो (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकोंमें (आविवेश) अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है (सः) वह (षोडशी) षोडशकलात्मक सब भूतोंका आश्रय (प्रजापतिः) जगत्का स्वामी (प्रजया) प्रजारूपसे (संरराण) सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालनके निमित्त (त्रीणि) अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन (ज्योतींषि) ज्योतियोंको अपने तेजसे (सचते) उज्जीवन करताहै ।

(न तस्य प्रतिमा०)

वादी इसी मंत्रपर बडा बल रखतेहैं परन्तु यह नहीं विचारते कि, न तो कल्पने इस मंत्रको मूर्तिखण्डनमें विनियुक्त करा और न इसके ब्राह्मणसे यह अर्थ सिद्ध होताहै प्रत्युत यह मंत्र मूर्तिमंडनमें युक्त है कारण कि, इस स्थलमें प्रतिमा शब्द उपमावाचक है मूर्तिवाचक नहीं कारण कि उत्तरार्धमें मूर्ति विधेय है जिस स्थानमें उद्देश्य और विधेयकी एकार्थतामें विरोध प्रतीत हो उस स्थानमें विधेयके अनुसारी उद्देश्यका अर्थ होताहै, जैसे किसी पुरुषने कहा इसे दक्षिणा दीजिये और उसके नियोज्य पुरुषने उसको प्रहार किया तो अवश्य प्रतीत होताहै कि नियोक्ताका दक्षिणा उद्देश्य अंगसे प्रहारका ही सूचक है यथा " उद्देश्यविधेययोर्विरोधे सति विरोधेनोद्देश्यं नेयमिति न्यायात् शा० भा० " अर्थात् उद्देश्य और विधेयकी विरोधता प्रतीतिमें विधेयका विरोधी अर्थ उद्देश्यका होताहै इससे, यहां प्रतिमाशब्द मूर्तिका निषेधक नहीं किन्तु उपमाका वाचक है इसी मंत्रके उत्तरार्धमें । "हिरण्यगर्भ इत्येषोमामाह * सीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः" इसमें तीन मंत्रोंकी प्रतीक हैं हिरण्यगर्भः १।३४ इसमें प्रजापतिको सोनेकी मूर्तिका विधान है, "मा माहि *सीः " यजु० १२।१०२ इसमें प्रजापतिको प्रथम शरीरी कहकर मूर्तिपन दिखायाहै और यस्मान्न जात ८।३६ यजुमें प्रजापतिको अग्निवायुसूर्यरूप कहा है. इसमें विधेय तो मूर्ति है और उद्देश्य प्रतिमा है तो यह मंत्रके पूर्वार्धगत प्रतिमा शब्द उत्तरार्धगत विधेयमूर्तिका निषेधसूचक कैसे हो सकता है इससे यहां प्रतिमाका अर्थ उपमा ही है शंकराचार्यने भी शा० २।३ । ७ के भाष्यमें न तस्य प्रतिमास्तीति ब्रह्मणोनुपमानत्वं दर्शयति अर्थात् न तस्य० इस मंत्रमें प्रतिमासे परमात्माको अनुपमेयत्व कहाहै "निरुक्त० उत्तरष० अ०७खं०२ न इन्द्रशतं दिवः शतं भूमयः प्रतिमानानि स्युर्न" अर्थात् हे देव यदि अनन्त भूमियें और सूर्य तुम्हारे उपमानार्थ दिखाये जाय तो भी तुम्हारी उपमा नहीं होसकती, अब हिरण्यगर्भ० इस मंत्रका कल्प विनियोग और ब्राह्मण देखिये "ब्रह्मजज्ञानम्-यजु०१३।३" इस मंत्रसे कमलपत्रके ऊपर वर्तुलाकार और एकविंशति उत्तान विन्दुयुक्त सुवर्ण फलक धरे । अथ

रुक्ममुपदधाति श०७।४।१।१०। तस्मिन् रुक्ममभःपिण्डं ब्रह्मज्ञानमितिकात्या०
श्रौ० सू० १७।४।२ इसके अनन्तर ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम १३।४

अर्थ यह कि हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है वह प्रजापति सर्व प्राणिजातिकी उत्पत्तिसे प्रथम स्वयं ब्रह्माण्डशरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवाले जगत्का स्वामी हुआ वह प्रजापति अन्तरिक्ष द्युलोक और भूमिको धारण किये हुएहै, उस प्रजापतिकी हम हविसे परिचर्या करते हैं.

तात्पर्य यह है कि पृथ्वीकी प्रतीक तो पुष्करपत्र है आदित्यकी प्रतीक सुवर्णफलका है, और आदित्य अन्तर्गत पुरुषकी प्रतीक सुवर्ण पुरुष है इसीका नामप्रतीकोपासना है यह सुवर्णका पुरुष स्थापन शतपथ कां०७।४।१। १९ से चलताहै.

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति, ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृत ७ हिरण्यममृतमग्निःपुरुषो भवति पुरुषोहि प्रजापतिः १ उत्तानम्प्राञ्चा ७ हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति कात्यायनकल्पसू० १७।४।३

रुक्मके ऊपर हिरण्मय पुरुषको स्थापन करै अर्थात् पूर्वाभिमुख उत्तिष्ठमान हिरण्यपुरुषको हिरण्यगर्भः इस मन्त्रसे सुवर्णफलकके ऊपर स्थापन करै कात्या० का अर्थ हुआ.

स्थूल प्रपंचाभिमानी विराट् पुरुषही अग्निरूप है और सूक्ष्म प्रपंचाभिमानी हिरण्यगर्भ है यह हिरण्यगर्भरूप ही यजमान है, और चयनको प्राप्त अग्नि पुरुषरूपसे संस्कृत होती है उसीका प्रतिकृतिरूपहिरण्य पुरुष है इस कारण यह पुरुषाकृतिके योग्य है उभय प्रतीकमें एकध्येयको प्रतिकृति कहते हैं इसका व्याख्यान स्वयं ही ब्राह्मण करता है जो ज्योति हिरण्य है, ज्योति अग्नि है, वही अमृत है, वही अग्नि पुरुष विधि होती है और पुरुष ही प्रजापति है "हिरण्यं कस्माद्धियते आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हितरमणं भवतीति वा हृदयरमणं भवतीति निरु० २।१०।" शिल्पियोंसे विस्तारित होनेसे हिरण्य कहा जाता है दुर्भिक्षादिमें हित है तथा सदा सबको रमण करनेसे हिरण्य सोनेका नाम है ऋं० २। सू० ३९ मन्त्र १० हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक् सुवर्णमय-

शरीरी और सुवर्णका इन्द्रियवाला है, इससे इस मन्त्रमें प्रतिमामें पूजाका निषे[illegible] नहीं किन्तु विधान है आगे प्राणप्रतिष्ठामें—

नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यो नमः १३ । ६

जो लोक पृथिवी और अन्तरिक्षमें हैं जो द्युस्थानमें हैं तिनको नमस्कार है यह प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्र हैं प्राणप्रतिष्ठासे मूर्तिमें शक्ति उत्पन्न होती है इस अर्थको ब्राह्मणभाग कहता है ॥

अथ साम गायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् २२ ते अब्रुवन् उपतनानीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वा व तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति २३ ते चेतयमाना एतत् सामापश्यँस्तदगायँस्तदस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयात्तेनमायममिहि न सदिति २४ । अथ सर्पनामैरुपातिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः

श० ७ । ४ ।२२-२४

जब देवताओंने हिरण्मय पुरुषको सुवर्णफलकके ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि यह सुवर्ण पुरुष चेतनासे रहित शुष्क फलककी समान है ॥ २२ ॥ तब फिर सब बोले कि इस हिरण्यपुरुषमें शक्तिप्रादुर्भावके निमित्त परामर्श करो सब देवताओंने इस बातको अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें यह देवता मीमांसा करते हुए तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मन्त्ररूप सामकी उपलब्धिको प्राप्त हुए और इस तीन मन्त्ररूप सामको गाया तब इस हिरण्मय पुरुषमें वीर्य अर्थात् पराक्रमदायक शक्तिको स्थापन किया, इसी प्रकार यह यजमान भी इसी सामसे वरमें इस पुरुषमें सामर्थ्यका विधान करता है, तात्पर्य यह ऊपरके तीन मन्त्र पढनेमें इस काम पुरुषमें सामर्थ्य प्रगट होती है चित्रं देवानाम् इत्यादि यजु० ७ । ४२ का है वहां जो धर्मरूपतामें सूर्य और अग्निकी एकता प्रतिपादन करे यह [illegible] है और हिरण्यगर्भ चित्ररूप होताही है, इससे यहां हिरण्यपुरुषका शरीर है इस से हिरण्-

पुरुषका विधान करके यजमान इनके आगे गमन न करै ऐसा करनेसे अनिष्ट होता है सर्व नाम तीन मंत्रोंसे यजमान हिरण्य पुरुषका उपतिष्ठमान करै आवा-हनके मंत्र वेदोंमें अनेक हैं यथा–

तान्पूर्वया निविदाहूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्य्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगामयस्करत् ॥

ऋग्वे० भा० १ अ० ६ व० १५ मं० ३

हम पूर्वकालीन नित्या वाणीसे भग मित्र अदिति दक्ष अर्यमा वरुण सोम अश्विनीकुमार सरस्वतीको आवाहन करते हैं हमको सुखकारक हों (आह्वानं च निविदाम्) आश्व० श्रौ० सू० १९ अ० ५ कं० ९ वेदमंत्रोंकी देवता आवाहनमें सामर्थ्यता है. और इसी हिरण्मय पुरुषके नैवेद्यार्थ पांच मंत्रोंसे अग्निमें पांच आहुति दीजाती हैं, वे मंत्र कृणुष्वपाज० यजु० अ० १३ मं०९।१०।११।१२।१३ तक हैं उनका अर्थ हमारे यजुर्वेद भाष्यमें देखो इनका ब्राह्मण–

अथैनमुपविश्याभिजुहोति आज्येन पंचगृहीतेन तस्योक्तो बंधुः सर्वतः परिसर्प ७ सर्वाभ्य एवैनमेतद्दिग्भ्योऽन्नेन प्रीणाति श० ७।४।१।३२

इसीका कात्याय० श्रौ० सू० अ० १७ कं० ४ । सू० ७

उपविश्य पञ्चगृहीतं जुहोति पुरुषे कृणुष्वपाज
इति प्रत्यृचं प्रतिदिशमपरिसर्पम् ।

कृणुष्वपाज इत्यादि पांच मंत्रोंसे पंचधा गृहीत घृतसे होम करे चार मन्त्रोंसे चार दिशामें पंचम मंत्रसे अग्निमें आहुति दे जिस दिशामें अग्निमें आहुति दे स्वयं भी उसी दिशामें चले इन मंत्रोंसे हिरण्मय पुरुषको नैवेद्य लगाया जाता है कारण कि पूर्वमें हिरण्यगर्भ० इसमें ' कस्मै देवाय हविषा विधेम ' ऐसा कहा है कि हम प्रजापतिके आहुतिसे हविसे उपासना करते हैं इससे नैवेद्य प्रदान है प्रतीकमें अर्च-नका मंत्र लिखते हैं ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

हे अध्वर्यादि तुम परमात्मा इन्द्रका (अर्चत) पूजन करो (प्रार्चत) स्तुति विशेषसे पूजन करो (प्रियमेधासः) प्रियमेधस सम्बन्धी वा प्रियमेधा के गोत्रवाले

तुम (अर्चत) पूजन करो (उत) और (पुत्रकाः) पुत्र भी (अर्चन्तु) विशेष कर इन्द्रको पूजें (उत) और (पुरं न) जैसे पुरुषको (धृष्णु) धर्षणशीलको (अर्चत) अर्थात् जैसे धर्षणशीलपुरुषको पूजते हैं तैसे तुम पूजो । इससे पूजा सिद्ध है ॥

इसीके अनुसार शाकल शाखामें कहा है (प्रियव्रताः पूजयन्तु प्रार्चयंत्विति वांच्छितम् । बालकाः पूजयंत्विन्द्रं धीराः सन्त इति श्रुतिः) अर्थ पूर्व कथनानुसार है, रही यह बात कि देवताओंके लिये मन्दिर बनाये जाते थे इसका भी अनुमान प्रमाण दोनों मौजूद हैं ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ᳪ सृजेथामयञ्च
यजु० अ० १५ मं० ५४

हे अग्ने ! तुम 'उद्बुध्यस्व' सावधान हो जागृत हो इस यजमानको सावधान करो (इष्टापूर्ते) श्रौत स्मार्त मन्दिर कूपादि कर्ममें (अयं च) इस यजमानसे भी (संसृजेथाम्) संगति प्राप्त करो । इष्टापूर्त किसको कहते हैं इसमें स्मृति ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामुपलम्भनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ १ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ २ ॥

अग्निहोत्र तप सत्य वेदपाठ आतिथ्य वैश्वदेवकर्म इष्ट कहाता है १ बावडी कूप सरोवर देवमन्दिर निर्माण अन्नदान बगीचा लगाना यह कर्म पूर्त कहाता है २ जब वेदमें इष्टापूर्त शब्द आता है तब उसीसे यह सब बातें स्वतः सिद्ध होगई फिर और आवश्यकता क्या है फिर बारह वर्ष सहस्रों वर्षोंके देवपूजन होते थे तब बराबर मन्दिर थे इसमें कहना ही क्या है यह सुवर्णादिमूर्तिके प्रमाण कहे अब दूसरी काष्ठमयी मूर्तिके प्रमाण देखिये ।

अदो यद्दारु प्लवते सिंधोः पारे अपूरुषम् ।
तदारभस्व दुर्हणोतेनगच्छपरस्तरम्—ऋ० ८ । ८ । १३ । ३

(अदः) विप्रकृष्टदेशमें वर्तमान (अपूरुषम्) पुरुषनिर्माण रहित (यत्) जो (दारु) दारुमय पुरुषोत्तम शरीर (सिन्धोः पारे) समुद्रके तटमें (प्लवते) वर्तमान है (तत्) सो (दारु) शरीरको (आरभस्व) अवलम्ब वा उपासना करो जो (दुर्हणः) किसीसे भी हनन नहीं होता (तेन) उस दारुमय देवकी उपासना

करनेसे (परस्तरम्) अतिशय उत्कृष्ट वैष्णवलोकको (गच्छ) प्राप्त हो ! यही सायणाचार्यका भी आशय है ॥

इसी मंत्रमें शाकल शाखाका प्रमाण है (यद्दार्वमानुषं सिन्धोस्तीरे तीर्णं प्रदृश्यते । तदालम्ब्याथ परं पदं प्राप्नोति दुर्लभम्) शाकलशाखा ८।८।१३।३

जो यह अमानुष दारुमय पुरुषोत्तममूर्ति समुद्रके तटमें जगन्नाथ नामसे दृश्यमान है उसकी उपासनासे दुर्लभ परंपद अर्थात् क्रममुक्ति प्राप्त होती है। यह प्रमाण बहुत है जिसे अधिक देखना हो वह वेद शास्त्रोंमें अवलोकन करले. और देखो यदि कोई किसीके मस्तकका पूजन करै तौ वह यह नहीं मानता कि इसनें मेरा मस्तक पूजा किन्तु यह मानता है कि इसने मेरा पूजन किया इसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र है जहां उसका विग्रह कल्पना कर पूजोगे वहां वह आपना पूजन मानेगा. और मंत्रार्थ तो कर्माधिष्ठातृ देवताके स्वरूपका प्रकाशक होता है कर्तव्य अर्थको स्वयं नहीं कहता कर्तव्य अर्थका बोधक कल्प और नियोजक ब्राह्मण होताहै और मंत्रार्थरूप लिंगसे नियोजक ब्राह्मणभाग श्रुतिको बलिष्ठता है यथा–श्रुतिलिंगवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवायेपारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति पूर्वमीमांसा अ० ३।३।१४ इसमें श्रुतिको लिंगसे ,बलिष्ठता कथन करी है जैसे संध्यामें प्राणायामके निमित्त नियक्त मंत्र लिंगसे पूरक कुम्भक रेचकवाले कैसे सिद्ध होते हैं इसी प्रकार सोलह संस्कारवाली क्रिया भी कल्पानुसार ही सिद्ध होतीहैं इससे मन्त्र ब्राह्मण और कल्पक असाधारण कार्यमें मंत्र ब्राह्मण कल्प ही प्रमाण हैं, दूसरेका कार्य दूसरेसे लिया जाय तो वही निदर्शन होगा यथा मुखका श्रोत्रसे, यद्यपि पुरुषके शरीरमें नव छिद्रोंकी छिद्रता समान ही है तथापि कार्यानुसारी क्रियाकी निष्पत्तिके अर्थ अपने २ कार्यमें वह परोक्ष नहीं है इससे विधि कल्पानुसार ही होतीहै यथा बौधायनकल्प परिचर्य्या प्रक० सू० २. (स्नात्वा शुचौ गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत्) अर्थात् स्नान कर पवित्रदेशमें गोबरसे लिपी भूमिमें देवताकी प्रतिकृति (मूर्ति) स्थापन कर गन्धाक्षतसे पूजे इससे भी मूर्तिका अर्चन सिद्ध है इससे कल्पादिके अनुसार मन्त्रनियोजन करना ही सत्यफल देनेवाला होताहै अन्यथा अर्थमें गड–बड होगी कर्म बिगडैगा शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष यह वेदांग हैं प्रकरण अनुसार ही मन्त्रोंका अर्थ कहना (प्रकरणतो हि प्रबलो विषयी स्यादिति गोपथपू० भा० १।३ ।१६) इस कारण वेदमन्त्रोंके अर्थमें प्रकरणका भी विचार करना चाहिये ॥

अब सज्जन पुरुष देखें इस प्रकरणमें केवल निराकार प्रतिपाद्य नहीं किन्तु सर्व प्रपंचगत यावत् रूपवाला और वास्तवसे स्वसदृश रूपान्तरवर्जित ब्रह्म प्रतिपाद्य

हैं और स्वामीजीने इसी अध्यायके दो मन्त्र पूर्व छोडकर और तीसरे मन्त्रमें एक टूक काटकर प्रतिमापूजनका निषेध किया है परन्तु इससे क्या उनका मनोरथ सिद्ध हो सक्ता है अब केन उपनिषद्के वाक्योंका अर्थ देखिये ॥

(यद्वाचा०) यहां भी यह विचार है कि, यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कौनसे पदका अर्थ है इस अर्थका वाचक श्रुतिमें कोई पद नहीं, और उपासना कर उससे भिन्न उपासनीय नहीं यह भी किसी पदका अर्थ नहीं, इस प्रकरणमें तौ उपासनाकी विधि वा किसीकी उपासनाका निषेध नहीं किन्तु जो सर्व प्रमाणोंका अविषय स्वप्रकाश जो सर्व प्रमाणोंका प्रकाशक है तिसको ब्रह्मरूपता कही है यह तो ज्ञेय वस्तुका विवेचन है सो अक्षरार्थको देखिये ॥

जो वाक्करके प्रकाशित नहीं होता वाणीका अविषय वस्तु है आशय यह कि, जो वस्तु शब्दजन्य वृत्तिज्ञानसे प्रकाशित होता है सो वाचाभ्युदितं ऐसे कहा जाता है और ज्ञेय वस्तु ब्रह्म शब्द और शब्दजन्य अन्तःकरणकी वृत्ति और वृत्तिविषय जड पदार्थ इन सर्वको प्रकाशता है, जिससे वाणी प्रकाशित होती है हे शिष्य ! तिसे ही तूं ब्रह्म जान जिसे उपासक इदं रूपसे उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं आशय यह है जिसको वृत्तिविषय करके पश्चात् ध्यान करते हैं सो ब्रह्म नहीं किन्तु वोह दृश्य कोटिमें प्रविष्ट है, ऐसे सर्व प्रकाशकको ब्रह्मता कहकर उपास्य मात्रको मुख्य ब्रह्मताका निषेध किया है, एक वस्तुको उपासनीयत्व और दूसरीका अनुपासनीयत्व कहना प्रकरण अनुकूल और श्रुतिके अक्षर अनुकूल श्रुत्यर्थ नहीं हो सक्ता, और वेदसिद्धान्तमें दो पदार्थ है दृक् और दृश्य तिसमें यह विचारणीय है कि, दयानन्दजीने जो यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कहकर उसको उपासनीय कहा सो दृक् पदार्थको अन्तर्गत है, या दृश्यके, यदि दृक् है तौ उपासनीय नहीं, अविषय होनेसे यदि उपासनीय है तौ दृश्य है, तिसको ब्रह्मत्व नहीं, ऐसे ध्येय विलक्षण दृक् वस्तुके प्रकरणकी यह श्रुति किसीको उपासनीयत्व और किसीको अनुपासनीयत्व नहीं बोधन करती, किन्तु उपास्यमात्रको ब्रह्मत्वके निषेध द्वारा दृग्वस्तुको ब्रह्मत्व जनाताहै सो यह अर्थ इस श्रुतिके पूर्व तीन मन्त्रोंमें संपादन किया है, विषय भिन्न होताहै ॥ १ ॥

(यन्मनसा०) इस मन्त्रका भी अर्थ दयानन्दजीने अशुद्ध ही लिखा है यह जानिये कि, जिस अधिष्ठानमें दूसरी वस्तुकी उपासना करी जाती है सो अधिष्ठान प्रत्यक्ष होताहै जैसे विष्णुकी मूर्तिमें वैकुण्ठवासी विष्णुकी उपासना होती है, इस स्थानमें अधिष्ठान प्रत्यक्ष है और आरोप्य करने योग्य विष्णु अप्रत्यक्ष है, और स्वामीजी कहते हैं कि, ब्रह्मके स्थानमें जीव और अन्तःकरणकी उपासना मत कर और ब्रह्मको कैसा कहा जो मनमें नहीं आता, जब मनमें भी ब्रह्म न आया तौ

अप्रत्यक्ष हुआ, तो अप्रत्यक्ष अधिष्ठानमें उपासना कैसे होगी जीव और अन्तःकारणकी, और यह भी विचार करना कि, ब्रह्मके स्थानमें अन्तःकरण और जीवकी उपासनाका फल ही क्या है, और करता ही कौन है क्यों कि, उपासनाका फल तौ उपास्य साक्षात्कार है (सो तौ अन्तःकरण और जीवका साक्षात्कार पूर्वसिद्ध है) और जो उपासना है तौ जीवके स्थानमें प्रत्यक्ष ब्रह्मकी उपासना होती है ब्रह्म भी किंचित् उपाधिविशिष्ट हो अथवा साक्षी आत्मामें अब्रह्म वासना निवृत्तिके अर्थ स्वतःसिद्ध ब्रह्मकी उपासना होती है अप्रत्यक्ष ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें प्रत्यक्ष सिद्ध किसी पदार्थकी उपासना लोक वेदमें अप्रसिद्धका निषेध करना केवल विद्याहीनताका कारण है । अर्थ यह है कि–

मनका अविषय हुआही जो मनका प्रकाशक है तिसको ब्रह्म जान और इदं उपासना करा जाता है सो ब्रह्म नहीं २

(यच्चक्षुषा०) एक तौ इस श्रुतिका पाठ ही अशुद्ध है क्यों कि येन चक्षूंषि पश्यति ऐसा शुद्ध पाठ है और स्वामीजीने (पश्यन्ति) लिखा है इससे उनका अर्थ ही क्या ठीक होगा; अर्थ यह है–चक्षुजन्य वृत्तिकरके जिस चैतन्य ज्योतिको विषय नहीं करता लोक और अन्तःकरण वृत्तिसंयुक्त जिस चैतन्य ज्योतिसे अन्तःकरणवृत्तियोंके भेदसे भिन्न चक्षुवृत्तियोंको देखता है तिस चैतन्य ज्योतिको तू ब्रह्म जान और इदंरूपसे उपासना किया जाता है सो ब्रह्म नहीं और इस मंत्रमें सूर्य अग्नि विद्युत् जड कहा है सो भी बुद्धिहीनता है क्यों कि, इसी उपनिषद्के तृतीय खण्डमें अग्नि वायु इंद्रको ब्रह्मके साथ संवाद निरूपणसे देवत्व कहा है, और अग्नि आदित्य वायुको धर्मस्वरूप मार्ग निरूपणके प्रसंगमें उपास्यता निरूपित है और गायत्री अर्थ निरूपणके प्रसंगमें आदित्यको ब्रह्मरूपता निर्णीत है और विद्युत् भी ब्रह्म है ॥

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानात्–बृ० उप० अ० ७ ब्रा० ७

विद्युत ब्रह्म है ऐसे वेदविद्या उपदेशका आचार्य कहते हैं ॥

अब स्वामीजीका इस मंत्रमें भी अज्ञान प्रगट हो गया जो आदित्यादिको जड कहते हैं ॥ ३ ॥ दिग्देवतानुगृहीत आकाश कार्य्य मनोवृत्तिसंयुक्त श्रोत्र करके जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जान सकता जिस चैतन्य ज्योतिसे मनोवृत्ति सहित श्रोत्रजन्य वृत्तिको विषय करा जाता है तिसको तू ब्रह्म जान और जो इदंकर उपासनीय वस्तु है सो मुख्य ज्ञेयकोटिप्रविष्ट ब्रह्म नहीं ॥ ४ ॥

पंचममन्त्रमें प्राणशब्दार्थ प्राण है क्यों कि प्राणमें क्रियाशक्ति है ज्ञानशक्ति

नहीं तब यह अर्थ हुआ कि, पृथ्वी देवतानुगृहीत मनोवृत्ति सहित घ्राण जन्यवृत्ति करके जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जानता और जिस चैतन्य ज्योतिसे मनोवृत्तिसहित घ्राणजन्य वृत्ति जानी जातीहै तिसको तू ब्रह्म जान जो कि इदं करके उपास्य वस्तु है सो मुख्य ब्रह्म नहीं ॥ ९ ॥ अब इस प्रकारसे प्रतीकोपासना तो सिद्ध होगई और " न तस्य प्रतिमा अस्ति " इसका अर्थ भी निर्णीत होगया ॥

स० प्र० पृ० ३११ पं० ४

नास्तिको वेदनिन्दकः

मनुजी कहते हैं वेदोंकी निन्दा अर्थात् अपमान त्याग विरुद्धाचरण करता है वोह नास्तिक कहाता है ॥ ३११ । २१

समीक्षा-यह स्वामीजी मानचुके जो वेदविरुद्धाचरण करता है वोह नास्तिक कहाता है सो यह बात स्वामीजीपर ही लगी क्यों कि मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमान है और यह उसके विपरीत हैं कि, मूर्तिपूजा मत करो तो यह शब्द उन्हींपर लगता है यदि कहो कि वेदमें तो मूर्तिका निषेध है " न तस्य प्रतिमा अस्ति " यद्यपि इसका अर्थ पूर्व लिखचुके हैं परन्तु अभी कुछ और कहना है जब वेदमें हम इस मंत्रका स्वामीजीका किया ही अर्थ मानलें तो यह स्पष्ट होता है कि पहले मूर्तिपूजा थी तभी तो इसकी मनाई लिखी " प्राप्तौ सत्यां निषेधः " प्राप्ति होनेसे निषेध होता है तो मूर्तिपूजन वेदसे भी पूर्वका सिद्ध हुआ यदि कहो कि कहीं विना प्राप्तिके भी निषेध कियाजाता है जैसा कि पिता पुत्रको समझाता है पुत्र चोरी मत करना, जुआ मत खेलना तो अभी बालक चोर नहीं हुआ जुआ नहीं खेला परन्तु पिता उसे निषेध करता है इससे विना प्राप्तिके भी निषेध होताहै यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं यद्यपि बालक अभी चोर जुवारी नहीं हुआ है परन्तु चोरी जुआ यह दोनों विद्यमान हैं पहलेहीसे उनका ग्रहण करना बुरा जान पिताने उसे निषेध किया है, विना कोई बात हुए उसका निषेध नहीं होसका इस कारण जो इस मंत्रमें प्रतिमाशब्द मूर्तिवचक मानो तो वेदसे पूर्व भी मूर्ति पाई जाती है तो वेद भी पीछेका हुआ सो ऐसा है नहीं वेद सबसे पूर्वका है इस कारण यहां " प्रतिमा " शब्द मूर्तिका वाचक नहीं किन्तु प्रतिमान उपमानका अर्थ है तो अब वेदप्रतिपाद्य वस्तुको न मानना नास्तिकता है या नहीं ॥

१ स० प्र० ३११ पं० २१ मूर्तिपूजा सीढी नहीं किन्तु एक गहरी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर होजाता है पुनः उस खाईसे निकल नहीं सका किन्तु उसीमें मरजाताहै मूर्तिपूजा करते २ कोई ज्ञानी तो नहीं हुआ किन्तु मूर्ख होगये ॥ ३३० । ११

पृ० ३१२ पं० ६ साकारमें मन स्थिर कभी नहीं होसक्ता क्यों कि उसको मन झट ग्रहण करके उसीके एक एक अवयवमें घूमता और दूसरेमें दौड जाता है और निराकार परमात्माके ग्रहणमें यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौडता है तौ भी अन्त नहीं पाता निरवयव होनेसे चंचलभी नहीं रहता, किन्तु उसीके गुण कर्म स्वभावका विचार करता आनंदमें मग्न होकर स्थिर होजाता है, और जो साकारमें स्थिर हो तो सब जगत्का मन स्थिर होजाता क्यों कि जगत्में मनुष्य स्त्री पुत्र धन मित्र आदि साकारमें फँसा रहता है परन्तु किसीका मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकारमें न लगावे क्यों कि, निरवयव होनेसे उसमें मन स्थिर होजाता है इसलिये मूर्ति पूजन करना अधर्म है ॥ ११० । २४

२ दूसरे उसमें करोडों रुपये व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है ॥

३ तीसरे स्त्रीपुरुषोंका मंदिरोंमें मेला होनेसे व्यभिचार लडाई बखेडा और रोगादि उत्पन्न होते हैं ॥

४ चौथे उसीको धर्म अर्थ काम और मुक्तिका साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है ॥

५ पाँचवाँ नानाप्रकारकी विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियोंके पुजारियोंका ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मतमें चलकर आपसमें फूट बढाके देशका नाश करते हैं ॥

६ उसीके भरोसे शत्रुका पराजय और अपना विजय मानके बैठे रहते हैं उनका पराजय होकर राज्य स्वातंत्र्य और धनका सुख उनके शत्रुओंके स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारेके टट्टू और कुम्हारके गदहेके समान शत्रुओंके वशमें होकर अनेकविधि दुःख पाते हैं ॥

७ सातवाँ जब कोई कहे कि, हम तेरे बैठनेके आसन वा नामपर पत्थर धरैं तो जैसे वह उसपर क्रोधित होकर मारता वा गाली देताहै वैसेही जो परमेश्वरके उपासनाके स्थान हृदय और नामपर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालोंका सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करै ॥

८ आठवाँ भ्रांत होकर मंदिर २ देशान्तरोंमें घूमते २ दुःख पाते हैं धर्म संसार और परमार्थ काम नष्ट करते चोरादिकोंसे पीडित हो ठगोंसे ठगाते रहतेहैं ॥

९ नवमा दुष्ट पुजारियोंको धन देते हैं वे उस धनको वेश्या परस्त्रीगमन मद्य मांसाहार लडाई बखेडोंमें व्यय करते हैं जिससे दाताके सुखका मूल नष्ट होकर दुःख होता है ॥

१० माता पिता आदि माननीयोंका अपमान कर पाषाणादिमूर्तियोंका मान करते हैं ॥

११ ग्यारहवाँ उन मूर्तियोंको कोई तोड डालता वा चोर ले जाता है तब हा हा कर रोते रहते हैं ॥

१२ बारहवाँ पुजारी परस्त्रियोंके संग और पुजारिन परपुरुषोंके संगसे प्रायः दुःखित होकर स्त्री पुरुषके प्रेमके आनन्दको हाथसे खो बैठते हैं ॥

१३ स्वामी सेवककी आज्ञाका पालन यथावत् न होनेसे परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं ॥

१४ जडके ध्यान करनेवालोंका आत्मा भी जडबुद्धि हो जाता है क्यों कि, ध्येयका जडत्व धर्म आत्मामें अन्तःकरणद्वारा अवश्य आता है ॥

१५ पन्द्रहवाँ परमेश्वरने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जलके दुर्गन्धि निवारण और आरोग्यताके लिये हैं उनको पुजारीजी तोड तोडकर न जाने उन पुष्पोंकी कितने दिनोंतक सुगन्धि आकाशमें चढकर वायु जलकी शुद्धि पूर्ण सुगंधके समयतक उसका सुगन्ध होता उसका नाश मध्यहीमें करदेते हैं, पुष्पादि कीचके साथ मिल सडकर उलटी दुर्गन्धि उत्पन्न करते हैं क्या परमात्माने पत्थरपर चढानेके लिये पुष्पादि सुगंधियुक्त पदार्थ रचे हैं ॥

१६ सोलहवां पत्थरपर चढे हुए पुष्प चंदन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिकाके संयोग होनेसे मोरी वा कुंडमें आकर सडके इतना उससे दुर्गन्ध आकाशमें चढता है कि, जितना मनुष्यके मलका और सहस्र जीव उसमें पडते उसीमें मरते सडते हैं ऐसे ऐसे अनेक मूर्तिपूजाके करनेमें दोष आते हैं इस लिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगोंको त्यक्तव्य है और जिन्होंने पाषाणमय मूर्तिकी पूजा की है और करते हैं वा करेंगे वे पूर्वोक्त दोषोंसे न बचे बचते न हैं न बचेंगे ॥

समीक्षा–यह सोलह अंक स्वामीजीने मूर्तिपूजाके विरुद्ध बडे बल और क्रूर वचनयुक्त लिखे हैं और गालिप्रदान करनेमें भी बडी सखी बघारी है जिसका वर्णन इसीमें है परन्तु यह सोलह वाक्य उन्मत्त पुरुषकेसे वचन हैं जिसे थोडी भी बुद्धि होगी यह ऐसी बातें न लिखेगा बस यही स्वामीजीकी सभ्यता है अब क्रमानुसार इनके उत्तर लिखते हैं ॥

१ विना स्थूलके देखे सूक्ष्मका ज्ञान नहीं होता विना सीढीके महलपर नहीं चढ सक्ता विना अक्षराभ्यास किये कोई ग्रन्थ नहीं पढसक्ता इसीसे विना साकारकी उपासनाके निराकारकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती जैसे हमको पृथ्वीका स्थूलरूप देखकर इसके परमाणुरूप सूक्ष्म शरीरका ज्ञान होता है ऐसे ही साकारको देखकर निराकारका ज्ञान होता है, इसी कारण पहले विराटादि रूपकी उपासना कही है, विना आधारके आक्षेप नहीं ठहरता इसी कारण विना साकारमें लगाये मन स्थिर

नहीं हो सक्ता क्यों कि, साकारके किसी एक अंगकी शोभा देखकर मन उसमें लग जाताहै और अपना चंचलपना भूल जाताहै, वही ध्यान रहनेसे वही प्रतीत होने लगता है, उसीके आकारमें मग्न रहता उसीके गुणकर्म स्वभावको विचारता है, क्यों कि साकार होनेसे अवतारोंकी भी अनिर्वचनीय शोभा है, जैसे श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रादि इनके गुण कर्मस्वभाव और प्रत्येक अंगमें मनका दौडना तो क्या एक ही अंगमें निश्चल होजाताहै, जब सगुण उपासनामें मन निश्चल हुआ तो अभ्यास होते होते निराकारमें भी मन ठहर सकता है, क्यों कि, मन दौडे कहां देखे क्या ? कौन निशाना है, शून्यमें क्या टटोले इस कारण साकारमें ही पहले मन दृढ होकर पीछे निराकारमें स्थिर होसकता है, पहले थोडे जलमें पैरना सीखे तो गहरेमें भी पैर सकता है, जो थोडे जलमें स्थिर नहीं रह सकता वह गहरे जलमें कूदनेसे डूब जायगा और पता भी न लगैगा, ऐसेही साकार निराकारमें मनकी धृति जानलीजिये, ऐसे ही कुटुम्बादिमें मनुष्योंके मन लगे हैं और स्थिर हो रहे हैं यदि जगत्में कुटुम्बादिकोंमें मन नलगै तो सब ही विरक्त हो जायँ और फकीर हो जंगलमें जा रहें, यह आकारका ही प्रताप है जिसके द्वारा मनुष्य प्रेममें मनको स्थिर किये हैं, ऐसेही प्रथम साकाररूप परमात्मामें मन लगजाय तब निराकारमें पहुँचकर स्थिर होता है, मूर्तिपूजा बडी उपयोगी है इसके करनेसे बडे बडे ऋषि मुनि मुक्तिपदवीके अधिकारी हुए हैं, यह मूर्ति ही परमेश्वरमें मनको आकर्षण करती है, युधिष्ठिरादिने मूर्तिपूजन करके ही सिद्धि पाई है यही परमेश्वरमें प्रीति कराती है और यही निराकारतक पहुंचाती है नाम ही नामीको मिला देता है इस कारण मूर्तिपूजन वेदविधान होनेसे धर्म है ॥

२ दूसरे मन्दिरोंमें जो रुपया लगता है उसमें बडा लाभ होता है हानि नहीं होती परदेशी महात्मा लोग आकर ठहरते हैं और भक्तजन उसमें आकर बैठते और प्रातःसन्ध्या और भगवान्का नामस्मरण करते हैं, तथा उनके गुणकथनसे चित्तमें सत्त्वगुण प्रगट होता है, और जो कोई उस ओरको निकलतेहैं वे नारायणका नाम लेकर दंडवत् करते हैं, बहुत मंदिरोंमें विचारे परदेशी सदावर्त भी पाते हैं, बनवानेवालेका धर्मके सिवाय नाम भी चिरस्मरणीय होताहै ॥

३ तीसरे मन्दिरमें सदा मेला नहीं होता वर्षमें एक वा दो वार होता है केवल मन्दिरके भीतर वेही स्त्रीपुरुष जाते हैं जो कि, व्रत धारणकर पूजन करते हैं, जो सारे दिन व्रत धारण कर भक्तिपूर्वक नाम स्मरण करते हैं वे व्यभिचारमें क्योंकर प्रवृत्त होसके हैं उनका चित्त तो सत्त्वगुणमें प्रवृत्त होताहै और पूजन करनेवालोंको रोग भी बहुत नहीं होते, दोनों समय स्नान करते धूप, कपूर घृत बालते हैं तथा व्यभिचार एकान्तमें होताहै देवालयमें दो चार महात्मा प्रतिक्षण विद्यमान रहते

हैं, मलेयोल बाहरसे खडे होकर देखते हैं, इससे व्यभिचार उत्पन्न नहीं होता और जिनके मन व्यभिचारमें लगे हैं न वे भक्ति करते हैं और निराकारसाकारका उन्हें विवेक नहीं रहता, वे तो दोनों पक्षमें एकसे हैं और मन्दिरमें दो चार लोग रहते ही हैं और मन्दिरमें ईश्वरकी विशेष सान्निध्यता होनेसे पापाचरणका भय रहताहै इस कारण मन्दिर अवश्य बनवावे ॥

४ चौथे मूर्तिपूजनसे धर्मादिपदार्थोंकी प्राप्ति होती है और पुरुषार्थ बढताहै जब कि, पूजामें भक्ति होगी तो सत्यभाषणादि शुभकर्म करेगा, और ईश्वरके चरित्रोंके स्मरणसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी, और ज्ञान होनेसे मुक्तिका अधिकारी होताहै क्यों कि ईश्वरके नामसे और ज्ञानसे सम्बन्ध है और यही मनुष्यजन्म लेनेका फल है कि ईश्वरके चरित्र हृदयमें दृढ होजायँ, सो प्रतिदिन मूर्तिमें अर्चन वन्दनसे दृढता आजाती है ॥

५ पुजारीलोग तो मन्दिरमें सेवा करनेको नौकर होते हैं वे कभी नहीं लडते न आजतक कहीं पुजारियोंकी लडाई होती सुनी बहुधा मन्दिरोंमें श्रीकृष्ण वा रघुनाथजीकी मूर्ति होती हैं, सो उनके स्वरूप भी ऐसे मनोहर हैं कि देखते ही मन निश्चल होजाताहै, शिवमूर्ति भी सब मंदिरोंमें एकसी ही होती हैं कोई यह नहीं कहता कि, इस मंदिरके अतिरिक्त सब मंदिर निकम्मे हैं, जिससे लडाई होह बढे, किन्तु सब मंदिरोंके पुजारी परस्पर मेल रखते हैं और उत्सवोंमें एक दूसरेके मंदिरमें आते जाते रहतेहैं और उत्सवोंमें भगवान्‌की मूर्तिका विशेष शृंगार करनेसे यह लाभ होताहै कि ईश्वरमें मनुष्योंकी भावभक्ति अधिक हो जाती है, ईश्वरके भयसे वे कुकर्मके साहसी नहीं होते इससे देशकी भलाई होती है ॥

६ छठे मूर्तिमें ईश्वर पूजन करनेके वास्ते है न कि हमारे संग टहलुओंकी भांति डंडा लिये फिरे, इस कारण जयपराजयके निमित्त बैठ रहना बुद्धिमत्ता नहीं ईश्वरने यह शरीर उद्योग करनेको दिया है इसे पाकर आलसी हो बैठे रहना उचित नहीं है यदि तुम्हारी पूर्ण भक्ति है और सामर्थ्य नहीं है तो वह इच्छानुसार बहुत सहायता करताहै और आगे भी करै ही गा परन्तु हस्तपादादि पुरुषार्थ ही करनेको दिये हैं, और जो भजनानंदी हैं उन्हें शत्रु मित्रसे क्या काम वे तो जो कुछ करते हैं उसे ईश्वरकी इच्छा और प्रेरणा मानते हैं, फिर कौनसा उनका राज्य बिगडगया है ईश्वरने यह नहीं कहा है कि, तुम अजगरसे एक स्थानपर पडे रहो किन्तु पुरुषार्थ करनेको कहता है जितनी सहायता निराकार उपासनामें करता है उतनीही सगुण उपासनामें करताहै, और जो विशेष ज्ञानी हैं उनके कोई शत्रु मित्र नहीं हैं उनकी समान दृष्टि होती है इस कारण वे मुक्तिके अधिकारी होते हैं ॥

७ सातवें यह बात तो लोकमें भी प्रसिद्ध है कि, जब कोई किसीके नामपर कोई स्थान बनवावे और उसकी मूर्ति बनाकर उसकी मान बडाई प्रतिष्ठा करै तो वोह जिसकी वोह मूर्ति वा मंदिर है अधिक प्रसन्न होताहै क्यों कि जब उसके नाम और मूर्तिकी इतनी प्रतिष्ठा करते हैं यदि वोह स्वयं उपस्थित हो तो कितनी प्रतिष्ठा हो "यदि उसके नाम वा मूर्तिका तिरस्कार करैं तो चाहैं बुरा माने, परन्तु मूर्तिमें परमेश्वरकी उपासना करनेहारे कभी मूर्तिका तिरस्कार नहीं करते" देखनेमें आताहै कि, आजदिन विक्टोरियामहारानीकी मूर्ति शतशः स्थानोंमें विद्यमान हैं बडे बडे मंदिर (हाल) बने हैं तथा जब कोई गवर्नरजनरल वा प्रिन्स (राजकुमार) आते हैं तो उनके स्मरणीय चिह्न अबतक बनाते हैं, कहीं २ मूर्ति भी स्थापन करते हैं, उसको आदरसे देखते हैं, परन्तु वोह मनुष्यकी मूर्ति है, इस कारण उसका पूजन नहीं होता कहिये क्या इन मूर्तियोंसे महारानी और लाट प्रिन्सादि कुछ बुरा मानते हैं प्रत्युत प्रसन्न होते हैं क्या कुछ उनका प्रताप घटता है, नहीं घटता, किन्तु अधिक बढता है सब लोग देखते हैं मनमें अधिक ध्यान करते हैं कि, यह हमारा राजा है बुरा काम मत करो दंड देगा, इसी कारण सिक्कोंतकमें मूर्ति रहती है इससे क्या कुछ तिरस्कार होता है इसीसे पहले राजा बादशाह आदि अबतक सिक्कोंमें नाम मूर्ति आदि रखते हैं, जिसे देखते ही उनका झट स्मरण होजाता है, इसी प्रकार यदि कोई किसीकी मूर्ति बनाकर उसकी बडी भक्ति कर पूजा प्रार्थना करै यदि वोह मूर्तिका प्रतिनिधि जीवित हो तो निश्चय अधिक प्रसन्न होता है और आकर पूछताहै कि, कहो क्या चाहतेहो मैं प्रसन्न हूं इसी प्रकार व्यापक ईश्वरकी प्रार्थना करै तो क्या वोह प्रसन्न न होगा निश्चय प्रसन्न हो अपने भक्तोंका भला करैगा इस कारण मूर्तिपूजनसे ईश्वर प्रसन्न होता है फिर समाजोंमें आपकी फोटो लटकाई जाती घडीके साथ विकती है जीतेजी आपकी तस्वीर खिंची उस समय आपने क्रोध क्यों न किया आपकी गाली आपहीपर पडी इस लेखसे तो आपने ईश्वरको क्रोधी भी मनुष्य जैसा मानलिया ॥

८ आठवाँ जब लोग दूर देशमें दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं, उनके मनमें ईश्वरकी भक्ति अधिक उत्पन्न होती है, और देशदेशान्तरोंके चरित्र मनुष्यादिकोंकी भेंटसे मनकी यह इच्छा भी निवृत्त होजाती है कि, हमने अमुक स्थान नहीं देखा इससे भी मनमें निश्चलता प्राप्त होती है और वोह पुरुष जो दूर देश दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं वे कोई कार्य धर्मविरुद्ध नहीं करते, क्यों कि वे जानते हैं कि, यदि हम कुछ पाप करैंगे तो यह यात्रा दर्शनोंका फल द्रव्यादि सब वृथा होजायगा, इससे उनके सब कार्य सधर्म होते हैं और धर्मसे परमार्थ बनता है, यात्री लोग देशान्तरमें इकट्ठे होकर जाते हैं, इस कारण चोरोंका भी विशेष डर नहीं होता, यदि विदेश

जानेमें दुःख है तो स्वामीजीके कथनानुसार व्यापार भी बंद होना चाहिये क्यों कि व्यापारमें भी चोरादिकका भय है और व्यापार क्या प्रत्येक ही यात्रामें चोरादिकका भय होता है और जहाजकी यात्रामें प्राण जानेका भय और रेलकी यात्रामें गाडी लड जानेसे प्राणोंका दान, पैदल जानेमें चोरोंका भय तो बस स्वामीजी एक नोटिस रेल जहाजमार्ग इन सबका सत्यानाश कर देते, तो भी देशका उनकी दृष्टिमें उपकार ही होता, परन्तु स्वामीजीने पूर्वमें दूर देशमें व्याह करनेकी क्यों अनुमति देदी उसमें भी तो चोरादिकका भय है और भला जब किसीके घरमेंसे ही कोई चोरी कर लेजाय तो क्या तुम्हारे सत्यार्थप्रकाशके पत्रोंमें अपना घर बनाकर बैठ जाय इसी भरोसे परदेशके हितकारी बनने चले जब परदेशमें जायँगे तो ठगोंको पहचानकर उनसे सब प्रकारकी चतुरता जान जायँगे और जो कोई घर बैठे ही रसायन बना लेजाय तो क्या करो ॥

९ नयमें बहुधा पुजारी ब्राह्मण होते हैं केवल दो चार रुपयेके नौकर होते हैं कुटुम्बी होते हैं, इन लोगोंका इतनेमें गुजारा नहीं होता जैसे तैसे गुजरान करते हैं, जो कुछ चढावा चढता है वोह भी कुछ ऐसा बहुत नहीं होता, और रोज नहीं चढता केवल त्योंहारोंमें ही आताहै. ऐसे समयमें द्रव्यकी उनको भी आवश्यकता रहती है, जब कि उदरसे अधिक उनको प्राप्ति ही नहीं होती तो मांस मदिरा वेश्यादिकमें दो रुपये रोज कहांसे आवे, क्या कोई समाजका पोपाध्यक्ष उनको द्रव्य दे देता होगा और जहां बडे २ मंदिर हैं अधिक चढावा चढताहै वोह मंदिरके कोषमें जमा होता है और वोह ठाकुरजीके भोग वस्त्रादिमें व्यय होता है, पुजारीजीको केवल वेतन मिलता है और कुछ नहीं यदि साधु पुजारी हुए तो तीसरे छठे महीनेमें भंडारा करते रहते हैं, आये गयेका सन्मान करतेहैं तुम्हारे यहां तो एक रात ठहरनेकी भी जुगत नहीं है कोरी बातें हैं पुजारियोंपर दोष देना वृथा है और यदि कोई किसीको कुछ वस्तु प्रदान करैं तो दाताका तो फल हो चुका वोह उस द्रव्यका जो चाहे सो करै और यदि यही है तो गरीबखाने मोहताजोंको दान फोडीखाना शफाखाना आदि सबमें द्रव्य दिया हुआ वृथा होजाय, क्यों कि, विषयी समझतेहैं कि, कुकर्म करनेसे यदि रोग होजाय तो शफाखाना मोजूद है आराम होजायगा, पास नहीं रहेगा तो मोहताजखानेमें जा पडेंगे, इत्यादि इन स्थानोंमें दियाहुआ द्रव्य भी वृथा ही होजायगा और आप इन स्थानोंकी बडाई करते हैं इससे यह कथन वृथा है यदि ऐसा हो तो कोई कौडी भी न दे, देनेवाला ईश्वरके नामपर देता है कुछ उससे नहीं देता वीसा कर्म लेकर द्रव्यका जो चाहे सो करै वोह द्रव्य उसको देना ही पडेगा ऐसे ही दानकी व्यवस्था है इससे मूर्तिपूजनका निषेध और पुजारियोंपर दोष नहीं होसकता ॥

१० दशवाँ जो मूर्तिका मान करते ईश्वरकी आज्ञा मानते हे वे अपने बड़ोंकाभी मान करतेहैं माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करते हैं क्यों कि यह किसी धर्मग्रन्थमें नहीं लिखा कि, मूर्तिमें पूजन करनेवाले अपने माता पिताकी आज्ञा मत मानो, किन्तु जो मूर्तिमें ईश्वरको पूजन करतेहैं वे धर्मके भयसे अपने माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करतेहैं यह स्वामीजीकी भूल है जो कहतेहैं मान नहीं करते रामचन्द्रकी मूर्ति वा चरित्र श्रवण करतेही माता पिताकी आज्ञा पालन भाई भक्तिका चमत्कार कैसा कुछ हृदयमें छा जाता है ॥

११ पुजारियोंपर तो परस्त्रियोंके संगका दोषारोप करतेहो और आप प्रगट एक स्त्रीको ग्यारह पति बनानेकी आज्ञा देते हो जो कर्म ठीक वेश्याकी नाई है और मंदिरमें पुजारी व्यभिचार नहीं करसक्ता क्यों कि स्त्रीपुरुष सायंप्रातः मंदिरमें दर्शन करनेको आतेहैं और दो चार साथही आते हैं इससे व्यभिचार नहीं होसक्ता और जिनके मनमें ईश्वरका प्रेम है यह दर्शन करनेसे अधिक बढता है और भक्ति तीव्र होती है कुमार्गसे बचते हैं और जिनके मन बुरे हैं उन्हें पुजारी पुजारन क्या चाहैं जहां जो चाहैं सो करसकतेहैं, जिन्हें परमेश्वरका भय नहीं वे चाहैं सो करैं, और पुजारिन परपुरुषोंका संग क्योंकर करसकती हैं क्या पुजारी उनके पास नहीं जाते हैं दिनमें भोजन करने घरको जाते, रात्रिमें संध्याके उपरान्त जो गृहस्थी हैं वे घर घर चले आतेहैं यदि इतनेहीमें वे परपुरुषगामिनी हो जायँ तो यह दूकानदार और व्यापारी लोग अपने रोजगार छोड स्त्रियोंकी रखवाली करैं और क्या सब स्त्री अकेली रहतीहैं तो बस सब ही स्त्री व्यभिचारिणी हो जाँय तो चाहिये कि, सब लोग स्त्रियोंको गांठमें बांधे फिरा करैं, यह तो स्वामीजीने बडी कठिनताईसे विचारी होगी । पहले तो पतिकी अनुपस्थितिमें नियोग ठहरायाथाः अब क्या होगया ॥

१२ बारहवाँ मूर्तिको कोई चुरा लेजाय या तोडे तो रोवें नहीं तो क्या हँसे जिसका सब कुछ खो जाता है या टूट जाता है तो यह क्या । हानि होजानेवाले सब ही दुःखी होते हैं, फिर जा वस्तु जिससे अपने इष्ट देवका स्मरण करतेहैं खो जाय तो क्यों दुःखी हों, क्यों कि और स्थापन करनेसे द्रव्यका खर्च होहीगा यदि मूर्ति लेजानेके दुःखसे मूर्तिपूजन करना बुरा है तो जिस वस्तुके चुरा ले जाने वा टूटजानेका भय हो यह कुछ भी पास न रखनी चाहिये तो यह सारी धनदौलत जो आपके अनुयायियोंके पास हैं वह सब फिकवा देना चाहिये मकानोंके टूटनेका डर है, द्रव्यका चुराये जानेका, कपडेके गल जानेका, तो इस आपके वचनके विश्वासियोंको उचित है कि घरबार छोड वस्त्र त्याग दें,

नग फिरें और आपसे तो स्थिरताकी कहां आशा मुंशी इन्द्रमणिके मुकदमें क्या आपने थोडी हाय २ मचाई थी ॥

१३ स्वामी सेवककी आज्ञा नहीं पालन होनेमें स्वामीजीने कौनसा हेतु निकाला है पूजन करनेमें स्वामी सेवकमें क्या विरुद्धता होगी जो विदेशीय जनोंके नौकर हैं वे पूजा ऐसे समयमें करते हैं कि, जिससे अपने स्वामीके काममें बाधा न पड़े, क्यों कि, जानते हैं आज्ञा उल्लंघन करनेसे नौकरी जायगी, और जो पुजारियों पर आक्षेप है तो उनके स्वामीकी आज्ञा तो मंदिरके स्वच्छ रखने और भगवन्मूर्तिके शृंगार करनेकी होती है, सो यह करतेही हैं, यदि न करें तो नौकरी कहां, इससे भी स्वामी सेवकका विरोध नहीं होसक्ता, पूजन करनेवालोंको यह आज्ञा नहीं कि, स्वामीसे लडपडो, यदि ईश्वरके स्वामिभावमें न्यूनता आवे सो भी नहीं क्यों कि उसमें तो ईश्वरको स्वामी मानना भक्ति स्तुति करना विधान है. हां एक बात है कि, यदि कोई यवन अपने यहांके सनातन धर्मावलम्बी नौकरसे यह कहै कि, तुम पूजन करना छोडदो इससे तो विरोध होसक्ता है परन्तु यह बात इसीमें नहीं वह यह भी कहसक्ता है कि, वेदको मत मानो, तो इसमें भी वह दोष आसक्ता है, अंग्रेजोंमें यह बात नहीं मुसलमान इन लोगोंको नौकर नहीं रखते हां यह बात आपहीमें है कि जो दयानंदी न हो उसे अपने यहां जगह मत दो ईश्वरके पूजनमें तो यह शिक्षा होती है कि जैसे मेरी भक्ति करतेहो वैसे ही अपने स्वामी सेवकसे बरतो ॥

१४ मूर्तिमें ईश्वरका पूजन करनेवाले कभी जडका ध्यान नहीं करते जो स्तोत्र पढे जाते हैं किसीमें यह नहीं लिखा है हे परमेश्वर! तुम जड हो अशक्त हो पत्थर हो परन्तु उन स्तुतियोंमें तो परमेश्वरके सर्वज्ञादि गुण वर्णन किये हैं, इस कारण मनमें कभी जडत्व धर्म नहीं आता परन्तु जैसे शून्यवादी आप हैं ऐसेका ध्यान करनेसे मनमें शून्यता धर्म प्रगट होता है, नाम तुम्हारे कल्पित हैं नामी कोई नहीं उपासनाके अर्थही समीपमें पूजन करनेके हैं फिर शून्यमें क्यों पूजन करै बस शून्यही अन्तःकरण होगा ॥ *

१५ पहले तो आपने हवन विषयमें हवनसे वायु शुद्धि मानी है अब फूलोंसे वायु शुद्धि मानी है (पहले तेल फुलेलका निषेध किया था) यदि पुष्पोंकी सुगन्धिसे ही परमात्माको वायुशुद्धि करनी इष्ट थी तो विलायतादि देशोंके पुष्प सुगन्धिहीन क्यों बनाये वहां हवन भी नहीं होता तो बस प्रजा घोर रोगोंसे पीडित होना चाहिये पानी नहीं बरसना चाहिये, सो ऐसा नहीं होता, मृतकदाहसे भी वायुमें दुर्गन्धि फैलती है इसका भी निषेध करते जैसे और देशोंमें

* भा० प्र० यहां चुप लगागये हैं ।

रोग होते तैसे यहां भी होते हैं यहां हवन और सुगन्धियुक्त पुष्प रहनेसे भी रोग शान्त नहीं होता, इस भारतवर्षके बागोंमें सहस्रों मन पुष्प उत्पन्न होते हैं, उन-मेंसे थोडेसे पूजनको आते हैं प्रायः माली लोग पुष्पादिकोंको बेचते हैं, उनकी आजीवका भी चलती है, और फिर भी जो फूल खिलते हैं वे ही पूजनमें काम आते हैं जो कि, एक दिनमें ही वृक्षपर रहनेसे सूखकर गिरजाते हैं कुछ मंदिरोंमें आनेसे उनकी सुगन्धि कमती नहीं हो जाती, सुगन्धियुक्त ही चढाये जाते हैं, इससे सुगन्धि ज्योंकी त्यों फैलती रहती है दूसरे दिन वे अलग कर दिये जाते हैं, यदि उनका तोडना ही मन है तो यह इतर फुलेल हारादि सब वृथा ही हैं जिनका प्रचार प्राचीन कालसे चलाआता है, और इनके तोडनेसे हानि भी नहीं होती किन्तु लाभ होता है बाग बहुधा नगरसे बाहर होते हैं उनकी सुगन्धिसे बाहरकी वायु पवित्र रहती है यदि यह प्रत्येक मंदिर वा पुरुषोंके स्थानमें आवें तो भीतरकी वायु शुद्ध होजाती है आर्य्यावर्तदेश तो वन उपवनके पुष्पोंसे परिपूर्ण जिन्हें कोई तोडनेको नहीं जाता वे सब वायुको शुद्ध कर सक्ते हैं चंदनके वृक्ष कपूर कर्पूरादि यह सब सुगन्धित द्रव्य हैं, इस कारण पुष्पोंसे परमेश्वरकी पूजा भली श्रेष्ठ है जहां मूर्तिपूजन नहीं होता उस देशकी पृथ्वीमें अधिक सुगन्धित पुष्प नहीं होते यह इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

१६ सोलहवां मंदिर सब पक्के बने हुए होते हैं बडी मूर्तियोंको स्नान नहीं कराया जाता छोटी मूर्तियोंका कटोरोंमें स्नान कराते हैं, उसमें चंदन तुलसीदल आदिक होता है उसीका चरणामृत लेते हैं, वह जल पुण्यदायक और तुलसीदल पड जानेसे हाजिम भी हो जाता है परन्तु दयानंदजीका यह आक्षेप शिवजीके ऊपर है क्यों कि, शिवालयके पीछे ही जलहरी होती है सब पूजन करनेहारे जानते हैं कि, जलहरीमें जल ही जाता है बेलपत्र वा पुष्पादिक नहीं जाते एकाध जानेकी कोई बात नहीं यह बेलपत्र वा पुष्प जो शिवजीपर चढाये जाते पुजारी दूसरे दिन उन्हें लेजाते हैं कहीं नदीमें बहा आते वा और कहीं डाल हैं जलहरी रोज भरजाती हैं कुछ कुआ तो है ही नहीं जो मुद्दतोंमें भरे सडे यदि दूसरे दिन पुजारी जलहरीका पानी न निकाले तो पानी सब स्थानमें फैलगे और लोग उस पुजारीकी निन्दा करें इस कारण यह नित्यप्रति जल डाल डालताहै मंदिरोंमें यह बात होती ही नहीं विदित होता है कि, स्वामी-जीने इस प्रसंगके लिखनेमें या तो किसी सडे हुए चौबच्चेके धोरे बैठे थे या कहीं बच्चेका स्वप्न देखा होगा सोलह दोष जो उन्होंने मूर्तिपूजनपर किये हैं इसमें एक भी नहीं घटसकता ॥

१० पृ० ३१४ पं० २६ इस मूर्तिपूजाको लोगोंने इस वास्ते स्वीकार किया है

जग फिरें और आपसे तौ स्थिरताकी कहां आशा सुंशी. इन्द्रमणिके मुक
क्या आपने थोडी हाय २ मचाई थीं ॥

१३ स्वामी सेवककी आज्ञा नहीं पालन होनेमें स्वामीजीने कौनसा हेतु नि
लाहे पूजन करनेमें स्वामी सेवकमें क्या विरुद्धता होगी जो विदेशीय ज
नौकर हैं वे पूजा ऐसे समयमें करते हैं कि, जिससे अपने स्वामीके कार्ममें ब
न पडे, क्यों कि, जानते हैं आज्ञा उल्लंघन करनेसे नौकरी जायगी, और
पुजारियों पर आक्षेप है तो उनके स्वामीकी आज्ञा तौ मंदिरके स्वच्छ रखने
भगवन्मूर्तिके शृंगार करनेकी होती है, सो वह करतेही हैं, यदि न करें तौ नौ
कहां, इससे भी स्वामी सेवकका विरोध नहीं होसक्ता, पूजन करनेवालोंको
आज्ञा नहीं कि, स्वामीसे लडपडो, यदि ईश्वरके स्वामिभावमें न्यूनता आवे
भी नहीं क्यों कि उसमें तौ ईश्वरको स्वामी मानना भक्ति स्तुति करना विध
है. हां एक बात है कि, यदि कोई यवन अपने यहांके सनातन धर्मावलम्बी नौक
रसे यह कहै कि, तुम पूजन करना छोडदो इससे तौ विरोध होसक्ता है परन्तु य
बात इसीमें नहीं यह यह भी कहसक्ता है कि, वेदको मत मानो, तौ इसमें भ
यह दोष आसक्ता है, अंग्रेजोंमें यह बात नहीं मुसलमान इन लोगोंक
नौकर नहीं रखते हो यह बात आपहीमें है कि जो दयानंदी न हो उसे अप
यहां जगह मत दो ईश्वरके पूजनमें तौ यह शिक्षा होती है कि जैसे मेरी भक्ति
करतेहो वैसे ही अपने स्वामी सेवकसे बरतो ॥

१४ मूर्तिमें ईश्वरका पूजन करनेवाले कभी जडका ध्यान नहीं करते जो स्तोत्र
पढे जाते हैं किसीमें यह नहीं लिखा है हे परमेश्वर ! तुम जड हो अशक्त हो पत्थर हो
परन्तु उन स्तुतियोंमें तो परमेश्वरके सर्वज्ञादि गुण वर्णन किये हैं, इस कारण
मनमें कभी जडत्व धर्म नहीं आता परन्तु जैसे शून्यवादी आप हैं ऐसेका ध्यान
करनेसे मनमें शून्यता धर्म प्रगट होता है, नाम तुम्हारे कल्पित हैं नामी कोई नहीं
उपासनाके अर्थही समीपमें पूजन करनेके हैं फिर शून्यमें क्यों पूजन करे बस
शून्यही अन्तःकरण होगा ॥ *

१५ पहले तौ आपने हवन विषयमें हवनसे वायु शुद्धि मानी है अब पुष्पोंसे
वायु शुद्धि मानी है (पहले तेल फुलेलका निषेध किया था) यदि पुष्पोंकी
सुगन्धिसे ही परमात्माको वायुशुद्धि करनी इष्ट थी तो विलायतादि देशोंके पुष्प
सुगन्धिहीन क्यों बनाये वहां हवन भी नहीं होता तो बस मना घोर रोगोंसे
पीडित होना चाहिये पानी नहीं बरसना चाहिये, सो ऐसा नहीं होता, मुर्दा-
दाहसे भी वायुमें दुर्गन्धि फैलती है इसका भी निषेध करते जैसे और देशोंमें

* भा० प्र० यहां चुप लगागये हैं ।

रोग होते तैसे यहां भी होते हैं यहां हवन और सुगन्धियुक्त पुष्प रहनेसे भी रोग शान्त नहीं होता, इस भारतवर्षके बागोंमें सहस्रों मन पुष्प उत्पन्न होते हैं, उनमेंसे थोडेसे पूजनको आते हैं प्रायः माली लोग पुष्पादिकोंको बेचते हैं, उनकी आजीवका भी चलती है, और फिर भी जो फूल खिलते हैं वे ही पूजनमें काम आते हैं जो कि, एक दिनमें ही वृक्षपर रहनेसे सूखकर गिरजाते हैं कुछ मंदिरोंमें आनेसे उनकी सुगन्धि कमती नहीं हो जाती, सुगन्धियुक्त ही चढाये जाते हैं, इससे सुगन्धि ज्योंकी त्यों फैलती रहती है दूसरे दिन वे अलग कर दिये जाते हैं, यदि उनका तोडना ही मन है तो यह इतर फुलेल हारादि सब वृथा ही हैं जिनका प्रचार प्राचीन कालसे चलाआता है, और इनके तोडनेसे हानि भी नहीं होती किन्तु लाभ होता है बाग बहुधा नगरसे बाहर होते हैं उनकी सुगन्धिसे बाहरकी ही वायु पवित्र रहती है यदि वह प्रत्येक मंदिर वा पुरुषोंके स्थानमें आवें तौ घरघरकी वायु शुद्ध होजाती है आर्य्यावर्तदेश तौ वन उपवनके पुष्पोंसे परिपूर्ण है जिन्हें कोई तोडनेको नहीं जाता वे सब वायुको शुद्ध कर सके हैं चंदनके वृक्ष केशर कर्पूरादि यह सब सुगन्धित द्रव्य हैं, इस कारण पुष्पोंसे परमेश्वरकी पूजा करनी श्रेष्ठ है जहां मूर्तिपूजन नहीं होता उस देशकी पृथ्वीमें अधिक सुगान्धित पुष्प नहीं होते यह इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

१६ सोलहवां मंदिर सब पक्के बने हुए होते हैं बडी मूर्तियोंको स्नान नहीं कराया जाता छोटी मूर्तियोंका कटोरोंमें स्नान कराते हैं, उसमें चंदन तुलसीदल आदिक होता है उसीका चरणामृत लेते हैं, वह जल पुण्यदायक और तुलसीदल पड जानेसे हाजिम भी हो जाता है परन्तु दयानंदजीका यह आक्षेप शिवजीके मंदिरपर है क्यों कि, शिवालयके पीछे ही जलहरी होती है सब पूजन करनेहारे जानते हैं कि, जलहरीमें जल ही जाता है बेलपत्र वा पुष्पादिक नहीं जाते एकाध चले आनेकी कोई बात नहीं वह बेलपत्र वा पुष्प जो शिवजीपर चढाये जाते हैं वे पुजारी दूसरे दिन उन्हें लेजाते हैं कहीं नदीमें बहा आते वा और कहीं डाल आते हैं जलहरी रोज भरजाती हैं कुछ कुआ तो है ही नहीं जो मुद्दतोंमें भरे और सडे यदि दूसरे दिन पुजारी जलहरीका पानी न निकाले तो पानी सब स्थानमें फैलनेलगे और लोग उस पुजारीकी निन्दा करें इस कारण वह नित्यप्रति जल निकाल डालताहै मंदिरोंमें यह बात होती ही नहीं विदित होता है कि, स्वामीजी इस प्रसंगके लिखनेमें या तो किसी सडे हुए चौबचेके धोरे बैठे थे या कहीं चौबचेका स्वप्न देखा होगा सोलह दोष जो उन्होंने मूर्तिपूजनपर किये हैं इसमें एक भी नहीं घटसकता ॥

स० पृ० ३१४ पं० २६ इस मूर्तिपूजाको लोगोंने इस वास्ते स्वीकार किया है

कि जो माता पिताके सामने नैवेद्य भेट पूजा धरेंगे तौ वे स्वयं खालेंगे हमारे मुख या हाथमें कुछ न लौगा ॥ ३३३ । २४ *

समीक्षा–गाने स्वामीजीकी बुद्धिपर क्या परदा पड़गया है जो मनमानी गाते हैं जो भोग ईश्वरको लगाया जाता है वोह सबको बांटाजाता है और पूजन करनेहारे गृहस्थी ईश्वरको भोग लगाने उपरान्त भोजन करते हैं एक यहभी लाभ है कि, भोग लगीहुई सुन्दरवस्तु सबको बांटते हैं और ऐसे तो माता पिता बहुत कम होंगे जो अपने पुत्रोंके खाने पीनेसे दुःखी होते हो और जो अपने मातापिताके पालनमें असमर्थ और मातापिताके द्रोही हैं उन्हें पूजामें कब भक्ति होगी क्यों कि, वोह जानते हैं कि, यदि हमने भोग लगाया तौ प्रत्येक मनुष्य इसके लेनेके अधिकारी हो जायँगे, इस कारण वे कहीं एकान्तमें। वस्तु खालेतेहैं औ जो भक्तिमान् हैं वे भोग लगाते अपने माता पिताको देते हैं ॥

अब मृन्मयमूर्तिपूजनप्रतिष्ठादि वेदमन्त्रोंसे लिखते हैं ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्सइमेद्यावापृथिवीऽअगच्छद्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापांचमहावीराःकृताभवन्ति तेनैवैनमेतद्रसेनसमर्द्धयतिकृत्स्नंकरोतीति–ब्राह्मणम् श० १४।१।२।९

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति श० १४ । १ । २ । ८

मृदमादत्ते पिण्डवद्देवी द्यावापृथिवीति का० २६ । १ । ४

भाषार्थः ।

वैष्णवी तेज मायामें गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वीस्वर्गमें व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहते हैं और इन्ही दोनों वस्तुसे महावीर की मूर्ति बनाते हैं इस कारण मूर्ति बनानेके लिये मृत्पिण्डको ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरससे ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है ॥ १४।१।२।९

तस्य मंत्रः ।

देवींद्यावापृथिवीमखस्यवामद्यशिरोराध्यासंदेवयजने

---

* और आपने जो आर्याभिविनयमें ईश्वरके लिये सोमरसपानको तयार किया है उसकी भी सुध है ।

१ यह सब प्रमाण शतपथ अजमेरके वैदिक यंत्रालयवालेमें भी मौजूद हैं दयानन्दजीकी समाज । हमारा काम लौट बदलका नहीं है ।

पृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे-यजु० अ०३७ मं०२ ❀

हे (देवी) दिव्यगुणयुक्तदेव्यौ (द्यावापृथिवी) मृज्जले (अद्य) अस्मिन् समये (पृथिव्याः) वसुधायाः (देवयजने) देवयजन-स्थाने (वां) युवां मृज्जले आदाय (मखस्य) (शिरः) यज्ञस्य शिरोभूतं महावीरस्य मूर्तिं (राध्यासं) साधयेयं (मखाय) यज्ञाय (त्वा) त्वां गृह्णामि (मखस्य शीर्ष्णे) महावीराय (त्वा) त्वां गृह्णामि ॥

भाषार्थः ।

हे मृद् जलरूप देवियो ! अब देवयजनस्थानमें तुम दोनोंको लेकर महावीरकी मूर्तिको साधन करूं मैं यज्ञके हेतु ग्रहण करता हूं और महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं ॥

अथ वल्मीकवपाम् देव्योवम्र्यइत्येतावाऽएतदकुर्वंतयथायथे-तद्यज्ञस्याशिरोऽच्छिद्यततामिरेवैनमेतत्समर्धयतिकृत्स्नंकरो-तीति-ब्राह्मणम् श० १४।१।२।१०

यज्ञपुरुषका तेज पतित होनेसे वल्मीकवपा अर्थात् वमईकी मट्टी हुई इस कारण उसको लेता है और उससे महावीरकी मूर्तिको परिपूर्ण करता है उसका मंत्र ॥

तस्य मंत्रः ।

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्यवोऽद्यशिरोराध्यासन्देव-यजनेपृथिव्याः । मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे-यजुः अ० ३७मं०४

पदार्थः ।

हे (भूतस्य) प्राणिजातस्य (प्रथमजाः) प्रथमोत्पन्नाः देव्यः (वम्र्यः) उपजिह्वकाः (वः) युष्मानादाय (पृथिव्याः)

❀ मेरठीजी इस मंत्रमें शिरोंका अर्थ करते हैं तो क्या इस मंत्रका श्री देवता है और यदि आप कुछ विद्वत्ता रखते हैं तो जैसे हमने मंत्र ब्राह्मणके प्रमाणसहित यह प्रकरण लिखा है आप भी तो इसका ब्राह्मण बतावें सच तो यह है प्रकरणमें महावीरकी मूर्ति कौन हटा सकता है ।

भूम्यः (देवयजने) (मखस्य) यज्ञस्य (शिरः) महावीरम् (अद्य) (राध्यासम्) सम्पादयेयम्–शेषं पूर्ववत् ।

भाषार्थः ।

हे प्राणियोंसे प्रथम उत्पन्न उपजिह्वकाओ तुमको लेकर देवयजन स्थानमें अब महावीरकी मूर्तिको सम्पादन करूं मैं यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं ॥

अथवराहविहितम् इयतीह्वाऽइयमग्रेपृथिव्यासप्रादेशमात्रीता मेमूपइतिवराहउज्जघानसोऽस्याः पतिः प्रजापति-स्तेनैवैनमेतन्मिथुनेन।प्रियेणधाम्ना समर्धयाति कृत्स्नंकरोतीति--ब्राह्मणम् श० १४ । १ । २ । ११

सृष्टिके आरंभकालमें यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको श्री वाराहजीने ऊंचा उठाया वोह वाराहजी इस पृथ्वीके पति और प्रजाके स्वामी हैं इस कारण उस प्रियधाम मिथुनके द्वारा महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है अर्थात् मूर्ति बनानेको वाराह विहित मृत्तिका लेता है ॥

तस्य मंत्रः ।

इयत्यग्रेआसीन्मखस्यतेऽद्यशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः । मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे–यजु० अ० ३७ मं० ५

पदार्थः ।

(अग्रे) आदौ वराहोद्धरणसमये पृथिवी (इयती) एतत्प्रमाण प्रादेशमात्री (आसीत्) हे पृथिवि (अद्य ते पृथिव्याः देवयजने मखस्य) (शिरः) महावीरं (राध्यासम्) (मखाय त्वा) त्वां गृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीराय त्वां गृह्णामि ५ ।

भाषार्थः ।

आदिमें अर्थात् वाराहअवतारके समय यह पृथ्वी प्रादेशमात्रथी हे पृथिवी तेरे देवयजनस्थानमें महावीरकी मूर्तिको संपादन करूं, हे वराहविहित ! यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरकी मूर्तिके लिये तुझे लेताहूं, वराहकी मट्टी ग्रहण करे ।

अथ यत्पूयन्निवाशेत तस्मात्पूतीकास्तस्मादग्नावाहुतिरिवा-
भ्याहिताज्वलन्ति तस्मात् सुरभयोहि यज्ञस्य रसात्संभूता
अथ यदेनं सदिन्द्रओजसापर्यगृह्णात् ब्रा० श० १४।१।२।२२

तस्य मंत्रः ।

इन्द्रस्योजेस्थमखस्यंवोशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः मखा-
यत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे । यजु० अ० ३७ मं० ६

पदार्थः ।

हे पूतीकाः ! यूयं (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य (ओजः) तेजो-
रूपाः (स्थ) (वः) युष्मानादाय (अद्य) अस्मिन्समये
(पृथिव्याः देवयजने मखस्य शिरः) महावीरं (राध्यासम्)
(मखाय) यज्ञाय (त्वा) त्वां गृह्णामि (मखस्य शीर्ष्णे)
महावीराय (त्वा) त्वां गृह्णामि ॥

भाषार्थः ।

सुगन्धित पूतीका वैष्णवतेज (यज्ञरस) से उत्पन्न हुई इस कारण यज्ञका शिर महावीर निर्माणके लिये उनको लेता है । श० १४ । २ । १ । १२

मंत्रार्थः ।

हे पूतिकाओ ! तुम परमेश्वरके तेजरूप हो तुमको लेकर देवयजनस्थानमें महावीरको संपादन करताहूं यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं ॥

एक समय जब इन्द्र वृत्रासुरके मारनेको जहां जहां वज्र स्थापन करता था वहांसे वोह स्खलित होजाता था और इसी कारण भागते हुये वृत्रासुरको ग्रहण नहीं कर सके तब इन्द्रने विचारकर पूतीकास्तम्भके निकट वृत्रासुरके पकडनेको वज्रसे चेष्टा की तब वोह वृत्र पूतीकास्तम्भसे मार्ग रुकजानेके कारण न भागसका तब इन्द्रने उसको पकड वज्रसे मारा और प्रसन्न हो बोला हे पूतीकास्तंभ तुमने मेरी (ऊति) पराक्रम रक्षा (धाः) धारण करी है इसीसे तुम्हारे पराक्रम धारण करनेसे उन पूतीकोंको को पूतीका नाम हुआ इनके ग्रहणसे यज्ञरक्षा होती है तैत्तिरीय०

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशुगुदक्रामत्ततोऽजासमभवत।
तयैवैनमेतच्छुचासमर्धयति कृत्स्नं करोतीति
ब्रा० श० १४।१।२।१३

तस्य मंत्रः।

मखायत्वामुखस्यं त्वाशीर्ष्णे-यजु०अ०३७ मं० ७ का अंत०

भाषार्थः।

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब उसकी दीप्तिसे अजा उत्पन्न हुई इस कारण अजाके दुग्धको लेताहै और उस दीप्तिसे महावीरको समृद्ध और पूर्ण करता है श. १४।१।२।१३

मंत्रार्थः।

हे अजाके दुग्ध! यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहू॥

सर्वानेवास्माऽएतद्देवानभिगोप्तुन्करोतीति-ब्रा०
श० १४।१।२।१९

तस्य मंत्रः।

तुब्रह्मणस्पतिःप्रदेव्येतुसूनृताअच्छावीरन्नर्यम्पंक्तिराधसन्दे-
ायज्ञन्नयन्तुनः-यजु०अ० ३७ मं० ७ इसका शेष ऊपर लिखा है।

पदार्थः।

*(ब्रह्मणस्पतिः) मंत्रस्य पालक ईश्वरः (प्रैतु) प्रथमतो गच्छतु (सूनृता) यज्ञसम्बधिनीमंत्रगतप्रियवाक्यरूपा (देवी) प्रकर्षेण (एतु) गच्छतु किमर्थं तदुच्यते (नर्य) नृभ्यो यजमानेभ्यो हितं (पंक्तिराधसं) पांक्तस्य यज्ञस्य साधकं (वीरं) महावीराख्यं (अच्छ) प्राप्तुं (देवा) सर्वे (नः) अस्मदीयं यज्ञं "नयंतु"

सब देवताओंको मूर्तिका रक्षक करता है ब्राह्म० १४।१।२।१९

* ब्रह्मणस्पतिः = ब्रह्मणः पाता पालयिता वेति निरु० १०।१२

भाषार्थः ।

(ब्रह्मणस्पतिः) वेदके रक्षक परमात्मा (नः) हमारे (अच्छ) यज्ञके सन्मुख (प्रैतु) आगमन करो (सूनृता) त्रयीलक्षणवाली (देवी) दिव्य उनकी वाणी (प्रैतु) आगमन करै (देवाः) देवगण (वीरम्) शत्रुओंको विशेष उन्मूलन करनेवाले महावीर (नर्यम्) मनुष्योंके हितकारी (पंक्तिराधसम्) यज्ञके साधक महावीरको (यज्ञं) यज्ञको (नयन्तु) प्राप्त करैं । वीरोवीरयत्यमित्रानिति निरु० १ । ७

पयआदिसम्भारसमूहं गृह्णाति ॥ तस्य मंत्रः--
दुग्धादि सम्भार समूहको ग्रहण करता है उसका मंत्र ॥

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे-यजु० अ० ३७ मं० ८

यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं ॥

अथमृत्पिण्डमुपादायमहावीरंकरोति, प्रादेशमात्रमिवहिशिरोमध्येसंग्रहीतमथास्योपरिष्टात्त्र्यङ्गुलंमुखमुन्नयतिनासिकामेवास्मिन्नेतद्दधातीति-श्रा० श० १४ । १ । २ । १७

तस्य मंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे-यजु० अ० ३७ मं० ८

मृत्पिण्ड लेकर महावीरका तीन मूर्ति बनाता है जो कि प्रादेशमात्र अर्थात् तर्जनीतकका अंतर और मध्यमें संग्रहीत हो फिर उसमें मुख और नासिकाको धारण करता है श्रा० १४ । १ । २ । १७ ॥

मं०-हे मूर्तियो यज्ञके लिये तुझे निर्माण करताहूं, महावीरके लिये तुझे ग्रहण करताहूं ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्ततएताओषधयोजज्ञिरे तेनैवमेतद्रसेनसमर्धयतिकृत्स्नंकरोतीति--

श्रा० श० १४ । १ । २ । १८

तस्य मंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे ८

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब कुछ रसरूप तेज फैला उससे औषधिय उत्पन्न हुई उसको ग्रहण करता है और उसी रससे महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है १४ । १ । २ । १९

हे औषधे ! यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिय तुझे ग्रहण करताहूं।

अथेनान्धूपयतीति–श्रा० १४ । १ । २ । २०

अश्वस्यत्वा वृष्णःशुक्राधूपयामिदेवयजनेपृथिव्याः–अ०३७ मं०९

हे महावीर (पृथिव्याः देवयजने वृष्णः) धर्मार्थकाममोक्षैः सेक्तुः (अश्वस्य) परमेश्वरस्य असौ वा आदित्य एषोऽश्वः श० ६ । ३ । १ । २९ सूर्यो वै सर्वे देवाः १३ । ७ । १ । ९ शक्राभोगोच्छिष्टेन यथाहाथर्वः ॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा । अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता २१ यच्च प्राणिति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ॥ उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः–अथर्व ११ । ९ । २१ । २३ (त्वा) त्वां धूपयामि ॥

महावीरोंको धूप देता है ब्राह्म० अब मंत्रार्थ लिखते हैं हे महावीर ! देवयजन स्थानमें चारों पदार्थके दाता ईश्वरके पदार्थोंसे तुझे धूप देताहूं अथर्ववेदमें लिखा है कि शर्करा बालू पाषाण ओषधि तृण बादल बिजली वर्षा यह सब ही उच्छिष्टमें आश्रित हैं, जो प्राणी वायुसे श्वास लेता है जो नेत्रसे देखता है और जो स्वर्गवासी देवता हैं ये सब उच्छिष्टमाण ब्रह्मदेवसे उत्पन्न हुए हैं इत्यादि ॥

अथेनाञ्छ्रपयतीति–श्रा० श० १४ । १ । २ । २१

तस्य मंत्रः ।

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे ९

महावीरोंकी मूर्तिको अग्निमें पक करता है यह ब्राह्मण वाक्य हुआ ॥

मंत्रार्थः ।

हे मूर्ति ! (मखायत्वा) तुझे यज्ञके लिये पक करताहूं महावीरके लिये तुझे ॥

उद्वपतीति-ब्रा० १४ । १ । २ । २२

तस्य मंत्रः ।

ऋजवेत्वासाधवेत्वासुक्षित्यैत्वा-य० अ० ३७ मं० १०

पदार्थः ।

(ऋजवे) स्वर्गाय आदित्याय (त्वा) त्वामुद्वपामि (साधवे) वायवे अन्तरिक्षलोकाय च (त्वा) त्वामुद्वपामि (सुक्षित्यै) पृथिवीलोकायाग्नये च (त्वा) त्वामुद्वपामि त्रैलोक्यप्राप्तये त्वामुद्वपामीत्यर्थः ॥

भाषार्थः ।

फिर मूर्तिको अग्निमेंसे निकालता है-ब्रा० १४ । १ । २ ।२२

हे मूर्ति ! स्वर्ग और सूर्यके लिये तुझे निकालताहूं वायु और अन्तरिक्षके हेतु तुझे निकालताहूं, पृथ्वी और अग्निके हितके लिये तुझे निकालताहूं अर्थात् मूर्तिसे सबका हित होताहै ॥

अथैनानाच्छृणत्तिअजायैपयसेति-ब्राह्म० १४ । १ । २ । २५

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे १०

मंत्रार्थः ।

फिर महावीरकी मूर्तियोंको अजाके दुग्धसे सींचता-है-ब्राह्म० ॥

हे मूर्ति ! यज्ञके लिये तुझे सींचताहूं महावीरके लिये तुझे सींचताहूं ॥

प्रोक्षतीति-ब्रा० श० १४ । १ । ३ । ४

तस्य मंत्रः ।

यमायत्वा मुखायत्वा सूर्यस्य त्वा तपसे-य० अ० ३७ मं०११

पदार्थः ।

(यमाय) यमयति नियच्छति सर्वमिति यमः सूर्यः तस्मै (त्वा) त्वां प्रोक्षामि (मखाय) सर्वप्रेरक ईश्वरस्य (तपसे) सूर्याय (त्वा) त्वां प्रोक्षामि ११

मोक्षण करताहै ब्राह्मण १४ । १ । ३ । ४

मंत्रार्थः ।

हे मूर्ति ! सूर्यके हेतु तुझे मोक्षण करताहूं यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझे मोक्षण करताहूं, सबके प्रेरक परमेश्वरके तपरूप सूर्यके लिये तुझे मोक्षण करताहूं ॥

महावीरमाज्येनसमनक्तीति-ब्राह्मणम् ॥ १४ । १ । २ । १२

तस्य मंत्रः ।

देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु- यजु० अ० ३७ मं० ११

पदार्थः-(सविता) (देवः) (मध्वा) मधुना मधुरूपेण सर्वंगन्धरूपेणाज्येन (त्वा) त्वां (अनक्तु) लिम्पतु ११

महावीरको घृतसे लिप्त करताहै ब्राह्मणम् ॥ १४ । १ । २ । ११

मंत्रार्थः ।

हे महावीर सविता देवता तुझे मधुसे युक्त करो ॥ समनक्तीति-ब्रा० १४।१।२।१७

अर्चिरसिशोचिरसितपोसि-अ० ३७ मं० ११

पदार्थः ।

हे महावीर (त्वं)(अर्चिः) ज्वालारूपः प्रकाशरूपः असि (शोचिः) शुचिरूपः असि (ज्योतिः) प्रकाशरूपः सूर्यतारूपः (असि)

मंत्रार्थः ।

यह करके स्थापन करताहै ॥

हे महावीर ! तुम ज्वालारूप प्रकाशरूप हो पवित्ररूप हो महाज्योतिरूप सूर्यरूप हो ॥

अन्नमेवास्मिन्नेतद्दधातीति-ब्रा० १४ । १ । २ । २०

मधु मधु मधु-यजु० अ० ३७ मं० १३

वैश्वदेव्यामेदेतद्रूपमात्मन्यभिर्जितयतीति-ब्राह्मणम्-

१४ । १ । २ । २०

मूर्तिमें प्राणोंको स्थापन करता है ब्राह्मण । *

हे प्राण ! हे व्यान ! हे उदान ! तुम आत्माग्निको प्रज्वलित करो । अथ तीनों प्राण महावीरमें स्थापन करताहूं ।

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्याशिरएतदेवाःप्रत्यदधुर्यदातिथ्यंनह्वास्या-पशीर्ष्णाकेनचनयज्ञेनेष्टंभवतियएवमेतद्वेद-श० १४।२।२।

जो वैष्णवी तेज मायामें गिरा देवताओंने फिर उसको विष्णुहीमें युक्त कि वही आतिथ्य यदि तेजके विना युक्त करनेके यज्ञ करै तो उसमें सिद्धि नहीं होत जो इसको जानता है वही सिद्धिको पाता है ॥

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशुगुदक्रामत्सेमाँल्लोकानाविशत्तयैवैनमे-तच्छुचासमर्धयतिकृत्स्नं करोतीति । ब्राह्मणम् ० १४ । ३ । १ ।

तस्य मंत्रः ।

यातेघर्मदिव्याशुग्यागायत्र्याᳬंहविर्धानेसातआप्यायतान्नि-ष्ट्यायतान्तस्यै ते स्वाहा, यातेघर्मान्तरिक्षेशुग्यात्रिष्टुभ्या-ग्नीध्रे, सातआप्यायतां तान्निष्ट्यायतान्तस्यैतेस्वाहा याते घर्मपृथिव्याᳬंशुग्याजगत्याᳬंसदस्यासातआप्यायतान्नि-ष्ट्यायतान्तस्यै ते स्वाहा-यजुः अ० ३८ मं-१८

हे (घर्म) महावीर (या) (ते) तव (शुक्र) दीप्तिः (दिव्य दिवि भवा (या) (गायत्र्याः) समष्टिप्राणे "प्राणोगायत्री श १२ । ९ । १९" (हविर्धाने) समष्टिस्थूलशरीरे (सा) (ते (आप्यायतां) वर्धतां (निष्ट्यायतां) दृढा भवतु (ते) (तस्यै दीप्तिये (स्वाहा) हे (घर्म) महावीर (या ते शुक्र) दीप्तिः (अं

* मेरठीस्वामी महावीरशब्दसे एक पात्र लेते हैं पर आपको स्मरण रहै कि आंख कान नाक प्राणादि पात्रमें बनाये या स्थापन किये जातेहैं या मूर्तिमें आपके घरके थाली कटोरे आंख कान और प्राणवाले हैं क्या यदि नहीं हैं तो यह वस्तु मूर्तिमें अब भी होती है इस कारण य महावीर एक प्रकारकी यज्ञकी मूर्ति है ।

रिक्षे) (यास्त्रिष्टुभि) आत्मनि "आत्मावै त्रिष्टुप् श० ६ ।४।२।६ (आग्नीध्रे) हार्दान्तरिक्षे (सा ते आप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै) दीप्तये (स्वाहा) हे घर्म महावीर (या ते सदस्या समष्ट्युदरेस्थिता "उदरमेवास्य सदः–श० ३ ।८।२।८ " (शुक् दीप्तिः (पृथिव्यां या जगत्यां) समष्ट्यपाने "योऽयमवाङ् प्राणएपजगती–शत० १० । ३ । १ । १ । "सा ते आप्यायत निष्ट्यायतां ते तस्यै (दीप्तये स्वाहा)

भाषार्थः ।

जब वैष्णवी तेज मायामें प्राप्त हुआ तब उसकी दीप्ति इन लोकोंमें प्रवेश हुई उस दीप्तिसे इस महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है–ब्राह्म०श० १४।३।१।२

मंत्रार्थः ।

हे महावीर ! जो तेरी दिव्य दीप्ति विराट् शरीरमें है और समष्टि प्राणमें है वोह तुझमें वृद्धि पावो, अचल हो, उस दीप्तिके हेतु आहुती दीजाती है, हे महावीर ! जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष हार्दान्तरिक्ष और आत्मामें है, वोह तुझमें वृद्धि पावो अचल हो उस तेरी दीप्तिके लिये आहुति दी जाती है, हे महावीर ! जो तेरी दीप्ति समष्टि उदर पृथ्वी और समष्टि अपानमें है वोह तुझमें वृद्धि पावो अचल हो उस तेरी दीप्तिके लिये आहुति दीजाती है पक्षान्तरमें गायत्री छन्दादिके गायत्री छन्द आदि अर्थभी जानने । यह आध्यात्मिक अर्थ लिखा है ॥

स उपहवमिष्ट्वाभक्षयतीति–ब्रा० १४ । ३ । १ । ३१ ।

तस्य मंत्रः ।

मयि॒त्यदि॑न्द्रि॒यंबृ॒हन्मयि॒दक्षो॒मयि॒क्रतुः॑ ॥ घ॒र्मस्त्रि॒शुग्विरा॑जति वि॒राजा॒ज्योति॑षास॒ह ब्रह्म॑णा॒तेज॑सास॒ह–यजुः अ० ३८ मं० २७

पदार्थः ।

(त्रिशुक्) त्रिर्दीप्तियुक्तः (घर्मः) मूर्तिमयोदेवः (विराजाज्योतिषासह) तथा (ब्रह्मणातेजसासह)(मयि) मम हृदये विराजति (तत्) तस्मात् (यः) समष्टिप्राणः (बृहत्) महत्

इन्द्रियं) बलं (मयि) अस्ति (क्रतुः) संकल्पः (दक्षः) संकल्प-सिद्धिः (मयि) वर्तते २७

भाषार्थः।

होम करके उपह्वयको भक्षण करता है—ब्राह्मणम ॥

तीनों दीप्तिसे युक्त मूर्तिमय देवता विराट्की ज्योतिके साथ युक्त होकर मेरे हृदयमें विराजमान हो इस कारण समष्टि प्राण और महान् बल मुझमें हो संकल्प और संकल्पसिद्धि मुझमें वर्तमान हो अर्थात् इस कार्यके प्रभावसे ब्रह्मज्योतिके सहित हमारी ज्योति संगत हो ॥

यस्यघर्मोविदीर्यते तत्र प्रायश्चित्तिः—श० १४। ३। २। १

पूर्णाहुतिं जुहोति सर्वं वै पूर्णं सर्वेणैवैतद्भिषज्याति यत्किंच विवृढंयज्ञस्येति ब्रा० शत० १४। ३। २।२

तस्य मन्त्रः।

स्वाहाप्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः पृथिव्यैस्वाहा अग्नयेस्वाहा अन्तरिक्षायस्वाहा वायवेस्वाहा दिवेस्वाहा सूर्यायस्वाहा १ दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्रायस्वाहा नक्षत्रेभ्यःस्वाहा अद्भ्यःस्वाहावरु णायस्वाहा नाभ्यैस्वाहा पूतायस्वाहा—अ० ३९ मं० १। २

भाषार्थः।

जिस यज्ञमें महावीरकी मूर्ति फटजाय उसका प्रायश्चित कहते हैं—ब्रा० आहुतिसे चिकित्सा करताहै जो कुछ मूर्तिका अंगभंग हुआ उसकी चिकित्सा है भा० प्राण साधिपति, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, दिव, सूर्य, दिशा, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, वरुण, नाभि पूत नामक देवतोंके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥

मुखमेवास्मिन्नेतद्दधातीति—ब्रा० १४। ३। २। १७

तस्य मन्त्रः।

वाचेस्वाहा-यजुः अ० ३९ मं० ३

नासिकेऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति—ब्रा० श० १७

तस्य मन्त्रौ।

प्राणायस्वाहा २ प्राणायस्वाहा २

अक्षिणीऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति-ब्रा०

तस्य मन्त्रौ।

चक्षुषेस्वाहा २ चक्षुषेस्वाहा २

कर्णावेवास्मिन्नेतद्दधातीति-ब्रा० १७

तस्य मन्त्रौ।

श्रोत्रायस्वाहा २ श्रोत्रायस्वाहा २

मूर्तिमें मुखको धारण करता है-श० १४।३।२।१७

मन्त्रार्थः।

घ्राणाभिमानी देवताके अर्थ श्रेष्ठ होम हो-यजुः अ० ३९ मं० १

घ्राणेंद्रियको इस मूर्तिमें धारण करता है-श०

मं० प्राणके हेतु होम हो प्राणके अर्थ होम हो-यजुः

इस मूर्तिमें चक्षुइन्द्रियको स्थापन करताहै-श०

मं० चक्षुओंके हेतु होम हो चक्षुओंके हेतु होम हो-यजुः

इस मूर्तिमें श्रोत्रइन्द्रियको स्थापन करता है-श०

मं० श्रोत्रके हेतु हवन हो श्रोत्रके हेतु हवन हो-यजुः

मनसावाइदःसर्वमाप्तं तन्मनसैवैतद्विपज्यातियाकिंच

विवृढं यज्ञस्येति-ब्राह्मणम् १४।३।२।१९

तस्यमन्त्रः।

मनसःकाममाकूतिं वाचस्सत्यमशीय। पशूना ५ रूपमन्न

यशःश्रीःश्रयतांमयिस्वाहा-यजुः अ० ३९ मं० ४

पदार्थः।

अहं (मनसा कामम्) अभिलाषं (आकूतिं) आकुंचनप्र

(आशीय) प्राप्नुयाम् (वाचः) सत्यम्) प्राप्नुयाम् (पशूनां)

इन्द्रियाणाम् (रूपं) गोलकं यद्वा पशूनां शोभा (अन्नस्य रसः) स्वादुत्वं (यशः) कीर्तिः (श्रीः) लक्ष्मीश्च (मयि श्रयताम्) तिष्ठतु (स्वाहा)

भाषार्थः ।

यह सब मनसे प्राप्त होता है इस कारण मनके द्वारा ही चिकित्सा करता है जो कुछ यज्ञका अंगभंग हुआ श० १४।३।२।१९ मन्त्रार्थः—मैं मनके द्वारा अभिलाष और प्रयत्नको प्राप्त करूं वचनकी सत्यताको प्राप्त करूं इन्द्रियोंके गोलक वा पशुओंकी शोभा अन्नका स्वादुत्व कीर्ति और लक्ष्मी मुझमें वास करो प्रार्थना-द्योतक यह आहुति स्वीकृत हो ।

प्रश्नः ।

कस्मादेतं मृन्मयेनैवजुहोतीति—श० ब्रा० १४ । २ । २ । ५३

यह ब्राह्मणमें प्रश्न है कि, मट्टीकीही मूर्ति क्यों बनाते और संस्कार करते हैं॥

उत्तरम् ।

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्सइमे द्यावापृथिवीऽअगच्छ-द्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापांचमहावीराः कृताभवन्ति५३ सयद्वानस्पत्यःस्यात् प्रदह्यतेयद्धिरण्मयः स्यात्प्रलीयते यल्लोहम यःस्यात्प्रसिच्येत यदयस्ममयः स्यात्प्रदहेत्परिशासावथैपएवैत-स्माऽतिष्ठत तस्मादेतंमृन्मयेनैवजुहोतीति—ब्राह्म० १४।२।२।५४

भाषार्थः ।

जब वैष्णवी तेज गिरा तो यह दीप्तिरूप रस पृथिवी स्वर्गमें प्रवेश हुआ जो कि मिट्टी जलरूप है इस कारण मिट्टी जलसे महावीरकी मूर्ति बनाते हैं यदि मूर्ति काष्ठकी हो तो (अग्निसंस्कारके समय) जलजाय सुवर्णकी हो तो पिघल जाय पाषाणकी हो तो फटजाय लोहेकी हो तो परिशासोंको भस्म करदे इस कारण यज्ञमें मृन्मय मूर्ति ही बनाते हैं, क्यों कि उसका अग्निमें रखना एक प्रकारकी यज्ञ-विधि है इस कारण मृन्मय मूर्ति बनाकर होम करतेहैं यह तो यज्ञमें मूर्ति विधान कहा अब मन्दिरमें पूजन विधान कहते हैं देवताका आह्वान ।

ऋभोर्दिव्यस्यनोधातरीशानोविष्याद्दतिम्-१ अथर्व० ७ । १८।१

हे (ऊर्म्यः) रात्रेः (दिव्यस्य) दिवसस्य (धातः) ईश्वर (नः) अस्माकम् (ईशानः) ईश्वर त्वं (दृतिम्) दृविदारेवधेआदरेच पाषाणस्य विदारणान्निर्मितां धातूनां ताडनाद्रचितां पूजनीयां च मूर्तिं (विष्याः) प्रविश स्वकीयं देहं कुरु ॥

भाषार्थः ।

हे अहोरात्रके धाता हमारे ईश्वर ! तुम इस मूर्तिमें प्रवेश करो अर्थात् मूर्तिको अपना शरीर कल्पित करो ॥

एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनुः ॥ कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्–अथर्व० २ । १३ । ४

हे इष्टदेव (अश्मानम्) अश्ममूर्तिम् (आतिष्ठ) (आश्मा) अश्ममूर्तिः (ते) तव (तनुः) देहः (भवतु) (विश्वे) सर्वे (देवः) (ते) तव शरीरस्य (आयुः) (शरदःशतं कृण्वन्तु)

हे इष्टदेव ! पाषाणमूर्तिमें विराजमान हूजिये पाषाणमूर्ति आपका शरीर हो सब देवता इस आपके शरीरकी आयु अनन्त वर्षोंकी करो ॥ यह मन्त्र ब्रह्मचारीके अश्मारोहणमें भी आताहै और मूर्ति प्रतिष्ठामें भी है ॥

दृते दृंहमामित्रस्य माचक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम मित्रस्याहञ्चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे–यजुः० अ० ३६ मं० १८

पदार्थः ।

(दृते) हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर महावीर त्वं (मा) मां दृंह (दृढीकुरु) शान्तचित्तं कुरु यथा (सर्वाणि) (भूतानि) ब्रह्मपर्यन्तानि (मा) मां (मित्रस्य) (चक्षुषा समीक्षन्ताम्) मित्रदृष्ट्या मां पश्यन्तु (अहम्) अपि (सर्वाणि) भूतानि समीक्षे) पश्यामि परमेश्वरस्य सर्वव्यापकत्वात्) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे) वयं पश्यामः पुत्रशिष्याद्यभिप्रायेण बहुवचनम् ।

भाषार्थः ।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम मुझे एकाग्रचित्त करो जिस प्रकार ब्रह्मापर्यन्त सब प्राणी मुझे मित्रदृष्टिसे देखें मैं भी: सब प्राणियोंको मित्र देवताकी दृष्टिसे देखूं हम सबको मित्र देवताकी दृष्टिसे देखते हैं ।

दृतेदृꣳहमाज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासञ्ज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासम्--यजु० ३६।१९ पदार्थः ।

(दृते) हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर त्वं (मा) मां (दृंह) एकाग्रचित्तं कुरु (ते) तव सन्दृशि (संदर्शने) (ज्योक्) चिरं (जीवाव्यासम्) अहं जीवेयम् (ते) सन्दृशि (ज्योक्) जीव्यासम् । पुनरुक्तिरादरार्था ।

भाषार्थः ।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम मुझको एकाग्रचित्त करो आपका दर्शन करता हुआ दीर्घ कालतक जीता रहूं आपका दर्शन करता हुआ दीर्घकालतक जीता रहूं ॥

नमस्तेहरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ॥ अन्यांस्तेऽअस्मत्तपन्तुहेतयः पावकोऽअस्मभ्य ꣳ शिवोभव--मं० २०--अ० ३६ य०

पदार्थः ।

हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर (ते) तव (हरसे) हरति सर्वाहिणानि भक्तैर्दत्तानि तस्मै हरतेरसुन्प्रत्ययः (शोचिषे) तेजसे (नमः) (अर्चिषे) स्वमूर्तिप्रकाशकाय तेजसे (ते) तुभ्यं (नमः) (अस्तु) (ते) तव (हेतयः) चक्रत्रिशूलनारायणपाशुपताद्यस्त्राणि (अस्मत्) (अन्यान्) मूर्तिपूजनविमुखान्नास्तिकान् (तपन्तु) (पावकः) पापैः शोधकस्त्वम् (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याणकर्ता (भव) ।

भाषार्थः ।

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर ! तुम भक्तोंके चंदनादि द्रव्य ग्रहण करते हो तुम्हारे

तेजरूपके अर्थ नमस्कार है तुम्हारे मूर्तिव्यापक रूपके अर्थ नमस्कार तुम्हारे शंख चक्रादि अस्त्रोंके अर्थ नमस्कार और जो पूजनसे विमुख नास्तिक हैं उनको तपाओ और हमको कल्याणकारी हो ॥

अग्निनारयिमश्नवत् पोषमेवदिवेदिवे ॥ यशसंवीरवत्तमम्-
ऋ० अ० १ अ० १ मं० ३

(अग्निना) ईश्वरसे अधिष्ठित (रयिम्) मूर्ति "तस्मान्मूर्तिरियरयी-मनो०६" को पूजन करनेको (दिवेदिवे) प्रतिदिन (अश्नवत्) प्राप्त होता है प्रतिदिन (पोषं यशसंवीरत्तमम्) पुष्ट धन यश तथा वीर पुत्रको प्राप्त होता है ॥

अग्नेयत्तेशुक्रंयच्चन्द्रंयत्पूतंयच्चयाज्ञियंतद्देवेभ्योभरामसि-यजुः
अ० १२ मं० १०४

(अग्ने) हे परमात्मन् [तदेवाग्नि यजुः] (यत्तेशुक्रं) जो आपका शुक्ररूप (यच्चंद्रं) मन (यत्पूतं) जो पवित्र गुणकर्म समुदाय आपने (देवेभ्यः) देवता आदि ऋषि मुनि महात्माओंके निमित्त (यज्ञियं) यज्ञसम्बन्धी प्रतिमामें [अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञम् श० ११ । १ । ८ । ३] अर्पण किया है (तत्) उस तुम्हारी प्रतिमाको हम पूजनके निमित्त (भरामसि) धारण वा ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥ *

चन्द्रमा मनसोजातः चक्षोः सूर्योऽजायत-यजु० ३१। १२

इसमें परमात्माके मन नेत्रादि वर्णन किये हैं फिर परमात्माकी मूर्ति बनाय पूजन करैं तो क्या अप्रमाण हो सकता है पूजन वेदप्रतिपाद्य है ॥

यतोयतःसमीहसे ततो नोऽअभयंकुरु ॥ शन्नःकुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः-२२ मं० अ० ३६ यजु०

पदार्थः ।

हे परमेश्वर (यतः)(यस्माद्यस्माद्रामकृष्णादिरूपात्त्वं)(समीहसे) चेष्टसे (ततः) रूपात् (नः) अस्माकं (अभयंकुरु) किञ्च (नः) अस्माकं (प्रजाभ्यः) (शं) सुखं (कुरु)

---

* अथवा (अग्ने) हे देवपरमात्मन् (यत्) जो (ते) आपका प्रतिमारूप अंग (शुक्रम्) शुक्र शुद्ध दीप्तिमान् (यत्) जो अंग (चन्द्रम्) चन्द्रमाकी समान आह्लादकरनेवाला (यत्) जो (पूतम्) पवित्र (यत्) जो (यज्ञियम्) यज्ञ अर्थात् पूजाके योग्य है (तत्) सो सब (देवेभ्यः) देवताओंकी प्रसन्नताके निमित्त (भरामसि) सम्पादन करतेहैं।

भाषार्थः ।

हे परमेश्वर ! तुम जिस जिस अवतारादि रूपसे चेष्टा करते हो उस उस रूपसे हमको अभय करो और प्रजाको सुख करो ॥ नमस्ते अस्त्वश्मने अथर्व० १।१३।१ अश्ममूर्तिमें रहनेवाले आपको नमस्कार है ॥

अश्मवर्ममेऽसियोमाप्राच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात्-अथर्व० ५ । १० । १ । ७

हे इष्टदेव त्वं (मे) मम (अश्मवर्म) मूर्तिव्यापकपरमेश्वररूपं कवचम् अश्म व्याप्तो असि (यः) (अघायुः) पापपुरुषः (मा) मा (प्राच्याः) (दिशः) (अभिदासात्) अभिहन्ति दास हिंसने (स) (एतत्) हिंसनम् (ऋच्छात्) प्राप्नुयात् ऋच्छतिर्गच्छतिकर्मा निघं० १

भाषार्थः ।

हे इष्टदेव ! तुम मूर्तिव्यापक परमेश्वर मेरे कवच हो जो पापपुरुष पूर्व दिशासे मुझे मारे वह इस वधको प्राप्त करै ॥

अश्मवर्ममेऽसियोमादक्षिणायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् २ अश्मवर्ममेऽसियोमाप्रतीच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ३ अश्मवर्ममेऽसियोमोदीच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात्४अश्मवर्ममेऽसियोमाध्रुवायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ५ अश्मवर्ममेऽसि योमोर्ध्वायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ६ अश्मवर्ममेऽसियोमादिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्एतत्सऋच्छात् ७

अथर्व०--भाषार्थः ।

हे इष्टदेव ! मूर्तिव्यापक परमेश्वररूप तुम मेरे कवच हो जो पापपुरुष दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, ऊंची दिशा और अन्तर्दिशाओंसे मुझे मारै वह इस वधको प्राप्त करै इत्यादि बहुत प्रार्थना हैं अब मूर्तिपूजनका फल ॥

नभंसस्तंतापनहिमोजघानप्रनभतांपृथिवीजीरदानुःआपश्चिद स्मैघृतमित्क्षरन्ति यत्रसोमःसदमित्तत्रभद्रम् अथर्व०७।१९।२

पदार्थः-(यत्र) यस्मिन् स्थाने (सोमः) मूर्तिव्यापको देवः " सोमोवै राजायज्ञः प्रजापतिस्तस्यैतास्तन्वोयाएतादेवताः श० १२ ६।१।१" "सर्वंहिसोमः श० ५।१।४।१० " (तत्र) (सदमित्) सदेव (भद्रं) कल्याणं (भंसः) दिनकरः सूर्यः (भंस अद इति-निघं०) (न) (तपाप) (अवृष्ट्या हिमः) उपलवर्षा (न) (जघान) किन्तु (अस्मै) पूजकाय (आपः) (चित्त) अपि (घृतम्) (इत्) एव (क्षरन्ति) क्षीरस्य वहुलत्वात् (पृथिवी) (जीरदानुः) क्षिप्रमन्नानां दात्री भवति हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर (प्रनभताम्) असुरान् हन्यताम् ॥

भाषार्थः ।

जिस स्थानमें मूर्तिव्यापक देवता है वहां सदैव कल्याण है सूर्यका ताप नहीं तपाता है ओलोंकी वर्षा नहीं मारती है किन्तु इस मूर्तिपूजनके लिये जल भी घृतको ही देते हैं घृतकी बहुलतासे घृत बहुत प्राप्त होता है हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर ! असुरोंको मारो॥

इत्यादि शतशः मन्त्र मूर्तिपूजनादिके हैं इससे जहां कहीं तीर्थादिकोंमें मंदिरोंमें पूजन होता है वह सब ठीक है जब वेदमें ही पूजन है तौ अब और ग्रन्थोंके दिखानेसे क्या है इससे यह पूजन सत्य श्रेष्ठ है ॥

जीविकार्थे चापण्ये ५ । ३ । ९९ इस सूत्रपर महाभाष्यमें कन् का लोपविधान करके (वासुदेवः) (शिवः) (स्कन्दः) यह उदाहरण दिये हैं, आशय यह है कि, जो मूर्ति जीविकाके अर्थ हो बेची न जाय उसमें कन्प्रत्ययका लोप हो, अन्यथा नहीं जो बिकनेकी मूर्ति होगी वहां शिवकः ऐसा प्रयोग होगा जैसे शिव कृष्ण स्कन्दकी मूर्ति यहां कन्प्रत्ययका लोप हुआ है, अब बुद्धिमान् विचार सकते हैं कि मन्दिरोंमें इन्हीं देवताओंकी मूर्ति हैं उनपर द्रव्यादि चढता है जब कि मूर्ति देवताओंकी नहीं थीं तो सूत्र क्यों बना, दयानन्दजीने इस सूत्रके मेटनेका प्रयत्न तो किया परन्तु अर्थोंका फेरफार करके भी कृतकार्य न होसके ॥

स० पृ० ३१८ पं० २४ रामचन्द्रके समय उस लिंगके मन्दिरका नाम चिह्न भी न था किन्तु दक्षिण देशस्थ रामनाम राजाने मन्दिर बनवा लिंगका नाम रामे-

श्वर धर दिया है रामचन्द्रजीने तौ आकाश मार्गसे पुष्पक विमानपर बैठे अयोध्याको आते सीतासे कहा है कि ॥

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥

* सेतुबन्ध इति विख्यातम्-वाल्मीकिरामायणे०स. १२५श्लो०२०

हे सीते ! तेरे वियोगसे हम व्याकुल हो घूमते थे और इसी स्थानमें चातुर्मास्य किया था और परमेश्वरकी उपासना ध्यान भी करते थे वह जो सर्वत्र विभु व्यापक देवोंका देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपासे हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख यह सेतु हमने बांधकर लंकामें आके उस रावणको मार तुझको ले आये इसके सिवाय वाल्मीकिने अन्य कुछ भी नहीं लिखा ॥ ३२७ । २८

समीक्षा—धन्य है स्वामीजी वाल्मीकिमेंसे रामेश्वर भी अलग किया रामचन्द्रजीने यह जानकीजीसे परमात्माका स्मरण करना कहा भला इसका कौन प्रसंग था वह तो युद्धभूमि दिखाते थे, चातुर्मास्य ता प्रवषण पर्वतपर किष्किन्धामें किया था यहां यह कहा, जो जो विख्यात वार्ताएं थीं सो सो रामचन्द्रजीने दिखाईं इसी प्रकार महादेवजीका स्थापन विख्यात समझके वर्णन किया, परमेश्वरके ध्यान स्मरण बतानेकी क्या बात थी वाल्मीकिजीने तौ सब कुछ लिखा है आपने १ पौन श्लोक क्यों लिखा पूरा लिखते तौ कलई खुलजाती वाल्मीकिजी तौ ऐसा लिखते हैं कि ॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥ १ ॥
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥ २ ॥

युद्धकाण्ड सर्ग १२५ श्लो० २० । २१

हे जानकि, महात्मा सागरका यह सेतुबन्धतीर्थ दीखता है जो त्रिलोकीमें पूजित होगा यह परम पवित्र और महापापका दूर करनेवाला है पूर्वकालमें इसी तीर्थपर (मेरे स्थापन करनेसे) विभु महादेवजीने मुझपर कृपा कीथी, अब:

---

* सेतुबन्ध इति ख्यातम् पांचवीं बारका पाठ है ।

१ छोटे स्वामीने कहां चातुर्मास्यादिपदोंको ऐसा छिपायाहै कि मानो देखा ही नहीं पक्षपात तो इसीको कहतेहैं आप ही कहिये चौमासा कहां किया और इस श्लोकके आगे (महापातकनाशनम् पद पड़ाह सो महापातक नाश होना तो वहां शंकरके दर्शनमें ही है, ये येगड़ी तो कई जन्ममें भी नहीं लगसकती ।

विचारनेकी बात है कि, पवित्र और पापनाशक क्या है रामचंद्र कहते हैं कि, मैंने यहीं महादेवजीका स्थापन कियाथा जिस कारण उन्होंने मेरे ऊपर कृपा कीथी यह मूर्ति ही पवित्र और पापनाशक है और फिर भी उत्तरकाण्डमें लिखा है॥

यत्रयत्र स याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ॥
जाम्बूनदमयं लिंगं तत्रतत्र स्म नीयते ॥ १ ॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः ॥
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥२ ॥
उत्तर का॰ सर्ग॰ ३१ श्लो॰ ४२-४३

रावण राक्षसेश्वर जहां जहां जाताथा वहां वहां जाम्बूनदमय लिंग साथ ले जाताथा ॥ १ ॥ उस लिंगको वालूकी वेदीके मध्यमें स्थापन करके अमृत गन्धवाले पुष्पोंसे पूजन करताथा ॥ २ ॥

* इत्यादि बहुत स्थानोंमें मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमान है और पुराण शास्त्रों तो सर्व प्रकारसे वर्णन किया है सो सब जानतेही हैं एक- भीलने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनाकर अर्जुनसे अधिक विद्या उससे सीखीथी सो भारतमें विद्यमान है ॥ कोई जानते हैं इस कारण उसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है॥ मूर्तिपूजनमें युक्ति

मूर्तिमें अर्चन करनेमें युक्ति ।

यदि कोई कुशाग्रबुद्धि कहैं कि, मूर्तिमें अर्चन करनेसे भगवान् कैसे सन्तुष्ट होंगे दूसरेके सन्तुष्ट करनेसे दूसरा कैसे सन्तुष्ट होगा यह प्रश्न ही नहीं बनसकता कारण कि, हम दूसरे अर्थात् उससे भिन्नका पूजन नहीं करते प्रमाण "पुरुषऽएवेदं सर्वम्" यजु॰ अर्थात् जो है जो होगा वह सब परमात्मा ही है "स आत्मानं स्वयमकुरुत सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह सब कुछ ब्रह्मही है उसने स्वयं अपनेको किया जब कि, सब वही है तो हम किसी दूसरेकी पूजा नहीं करते किन्तु मूर्ति आदिमें उसीका पूजन करते हैं उस सर्वव्यापकको निराकार समझकर यदि (न्यायकारिणे नमः) कहैं तो आप अक्षरपूजक कहैंगे शिर झुकावें तो आप दिक्पूजक कहैंगे, हाथ जोडनेसे भी वही गति होगी, इस कारण उसके प्रतिनिधि मानकर

---

१ जहां कुछ न बनआया वहां छोटे स्वामीने प्रक्षिप्त कहदिया, आप ही कहिये दीवानचंदरामने क्या यह श्लोक प्रक्षिप्त माने हैं कदापि नहीं माने हैं तो प्रमाण दिखाइये।

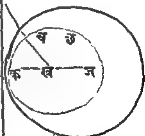
* सन् १८८४ पृ॰ ९३१ पं॰ * २४ में सन् १८९७ पृ॰ ९७१ पं॰ ११ उपलभी जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो ये भी इन २ मूर्तोंको ईश्वर नहीं समझते किंतु उनके सामने परमेश्वरकी भक्ति करतेहैं। समीक्षा—जब मुसल्मानोंको दयानंदका यह उत्तर है तब मूर्तिके आराधनाका खंडन क्यों करतेहैं। ग्यारहवीं बार ९६९ । १२

पूजन करते हैं, आप भी नामको उसका प्रतिनिधि मानते हैं ईश्वरनाम भी प्रतिनिधि है, हम नाम और रूप दोनोंको प्रतिनिधि करके पूजन करते हैं दूसरेके पूजनसे दूसरेको सन्तुष्ट नहीं करते और संसारमें कोई भी इस बातसे खाली नहीं है समाजी भी उसीके प्रतिनिधि रूप गायत्री वेदमंत्रोंको ईश्वरादि शब्दोंको उसका प्रतिनिधि मानते हैं नहीं तो अवाङ्मनस गोचरको क्यों ईश्वर २ कर पुकारते हैं और निराकारका प्रतिनिधि अ उ म् ईश्वर जैसा तुमने प्रतिनिधि किया है यदि हम विश्वासके साथ उसका प्रतिनिधि नियत कर उपासना करते हैं तो क्या दोष है॥

यदि हम पाषाणादिपूजा करते तो यों कहते कि, हे पाषाण ! तुम पत्थरके टुकडे हो कारीगरने तुमको छैनीसे गढा है इत्यादि हम तुम्हारी स्तुति प्रार्थना करते हैं परन्तु हम तो विष्णुके सन्मुख "सहस्रशीर्षा" शिवके सन्मुख "नमः शिवाय" कहकर पूजन करते हैं, इन मंत्रोंमें परमात्माहीका वर्णन है, इस कारण हम परमात्माका ही पूजन करते हैं, जडबुद्धियोंको जडपूजन दीखता है। और हम तो माला पुस्तक गुरुजन भूमि आदि सबहीका सत्कार करते हैं, पृथ्वीपर भी मंत्र पढकर चरण रखते हैं फिर हम मन्दिरोंका जहां प्रधान पूजनस्थान है क्यों न सत्कार करें, यदि कहो कि, पूजा होनेपर फिर सत्कारकी क्या आवश्यकता तो क्या आप दयानंदसे उपदेश ले चुकने पर फिर उनका तिरस्कार करते हो, तनक इतना तो कहिये भिन्न २ जातियोंके मन्दिरोंमें उनके माननीयोंके चित्र सन्मानके साथ हैं या नहीं आप भी संन्यासी बाबाका चित्र लटकाते हो, भेद इतना है आप थोडे सत्कार करते हो और हम कुछ विशेषता करते हैं, यह सनातन धर्मकी शैली ही है, आप नमस्ते आदाब अर्जमें ही अपनेको कृतार्थ मानते हो और यहां तो साष्टांग दंडवत् कर गुरुचरण शिरपर रखने विना सन्तोष ही नहीं होता यदि कहो कि, जिसका पूजन है वही प्रतिनिधि ही सन्तुष्ट होगा तो महारानीकी जुबिलीमें उनकी मूर्तिके सन्मुख बडे उपहार रखकर ध्वजा पताका फहराईगई, फूल माला लटकाईगई, प्रधान सिंहासन पर उच्च कर्मचारी बैठाये गये, उनके सामने बडे २ एड्रेस पढकर महारानीकी जय उच्चारण कीगई, गीत गाये गये, रोशनी कीगई, मूर्तिपूजा करनेमें तो आंतें कुलबुला उठती हैं परन्तु यह सब क्यों कियाजाताहै, क्या यह गीत लन्दन पहुंचे, यह रोशनी महारानीके मन्दिरमें पहुंची, यह भारतका द्रव्य आपने किस वेदके प्रमाणसे मट्टी और अग्निमें लगादिया, जब कि, आप राजभक्तिका उद्गार नहीं रोकसक्ते तो उपासक लोग हरिभक्तिका उद्गार कब रोकसक्तेहैं, महारानी सुनकर प्रसन्न हों इसी कारण आपने सब कुछ किया तो "पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः" 'ग्रहीता' जो प्रार्थना सुनता और देखता पूजादिक ग्रहण करता है क्या वह हमारे प्रेमभावको जानकर प्रसन्न न होगा क्या उसको यह नहीं जानता कि, मेरे

जानते हैं, सब विरुद्ध उसमें संभव है यथा "अणोरणीयान् महतो महीयान्" "तद्दूरेतद्दन्तिके" यह छोटेसे छोटा बडेसे वडा वह धीरे और दूर है उसमें सब कुछ होसकता है और जब कि, तुम एक तृणके तत्त्वको नहीं जानते तौ, गणित पढके २ दोका ठीक ठीक वर्गमूलतक नहीं निकाल सकते तौ जिसको जाननेमें वेद भी चकराता है उसे हम आपकी बुद्धिके अनुसार दालरोटी कहदें जो कहो विना समझे कैसे पूजें आपने अनेक कार्य बुद्धि लगा सोचकर पहलेसे नहीं किये, माताका दूध पीना खेलना पढना रेलपर चढना तार देना यह सब काम क्या समझकर ही किये हैं, वायुके अंशमें अभीतक कोई पक्का सिद्धांत नहीं तौ क्या आप साँस नहीं लेते यदि आप उस ईश्वरका तत्त्व न समझें तौ क्या उपासना छोड दें आप विना समझे सब कुछ करें और जिससे हृदयको शांति और अपूर्व आनंद होता है हम उस पूर्वाचार्य वेद सम्मत पूजनको क्यों न करें॥

यदि असम्भव कहो तो जबतक रेल तार न था तसबीरका फोटो न था तब तक इस बातका भी क्या आप सम्भव मानते थे परमाणुको आजतक किसीने देखा है। परन्तु इतना कहते हो कि, जिसका खण्ड होते २ फिर न होसके उसे परमाणु कहते हैं, युक्तिसे यह भी ठीक नहीं रहसका और रेखागणितसे भी यह स्पष्ट है कि, किसी पदार्थकी ऐसी कोई भी अवस्था भी नहीं जिसकी और एक छोटी अवस्था न होसके, यदि हम (अइ) रेखाके (ड) बिन्दुसे एक (कख) लम्ब उठावें और इसको (ख) की ओर अनन्त दूरतातक खिंची मानकर (ख) को केन्द्र मान (खक) व्यासार्द्धसे (कचछ) वृत्त बनावें और (अइ) रेखाके (अड) खण्डमें कहीं एक (घ) बिन्दु मानकर (घख) रेखा करदीजिये यह रेखा वृत्तकी परिधीको जहां काटे उ वहां (च) बिन्दु मानलो अब (कख) रेखाके बडे भागमें (ज) बिन्दु मानकर (जक) व्यासार्द्धसे एक और वृत्त करे तौ उसकी भी परिधि अवश्य ही इस (खघ)



रेखाके (चघ) खण्डको काटती जायगी क्यों कि दो वृत्त भी एकही बिन्दुपर स्पर्श

करते हैं तथा परिधि और सरल रेखाभी एकही विन्दुपर स्पर्श करती हैं जो (अइ) और पहिले वृत्तकी परिधिके बीचही बीच इसको जाना पडा जहां यह (चय) रेखाको काटे वहां ही (च) विन्दु मानो अब विचारो कि, प्रथमके (नय) खण्डसे यह (चय) छोटा होगया यदि योंही (ज) विन्दुको खिसकाते चलो तौ और (जउ) व्यासार्द्धसे वृत्त बनाते जाओ तौ वह सब काटते काटते इस रेखाख-ण्डको छोटा करते जायँगे परन्तु यह तो कहिये कि, यह खण्ड कभी ऐसा छोटा करते जायँगे परन्तु यह तो कहिये कि, यह खण्ड कभी ऐसा छोटा होगा कि, फिर जिसका छोटा न होसके यह कितना ही छोटा क्यों न होजाय (ज) विन्दु खसकाकर वृत्त करनेसे इसके टुकडे हो ही सकेंगे, तब कहिये रेखागणितकी सत्ताके विरुद्ध परमाणुका खण्ड न होना इस असम्भव पदार्थको क्या आपने स्वीकार नहीं किया, फिर एक संख्यामें २ आदि संख्याओंसे बढाकर भाग देते चले जानेमें कभी शून्य नहीं होसकता पर छोटा होता चला जायगा इत्यादि सैकडों असम्भव तौ स्वीकार करले परन्तु सर्वशक्तिमान्‌की महिमामें कोई असंभव बात जान पडे तौ छातीके टुकडे होने लगते हैं ॥

यदि कहो कि, अनन्त पदार्थका आकार नहीं तौ रेखागणितके अनुसार कि, आप (अइ) एकरेखाको परिमित खैंचकर भी उसे अपरिमित मानते हो, अनन्त कहते हो संख्यामें शून्यसे आप भाग देते हो और लम्बे चौंडे विन्दु रखदेते हो पर परमात्माका आकार कल्पनासे पेटमें दर्द होता है ॥

यदि कहो कि, सूक्ष्मका आकार नहीं होसकता तौ सुनिये बडे २ एम्. ए, बी. ए, इस बातको मान चुके हैं कि, विन्दुमें लम्बाई चौडाई नहीं रेखामें लम्बाई है चौडाई नहीं, परन्तु प्रोफेसर साहेब बोडपर एक खडियाका विन्दु गोलाकार और चौडी तुलीसी रेखा कर आपको दिखाते हैं क्या यह लक्षण ठीक है क्या विन्दु जैसा कहा वैसा ही है कभी नहीं पर समझनेके लिये आपको यों ही मानना पडेगा नहीं तो घर बैठो इसी प्रकार यहां भी समझलो कि, उस 'अणोरणीयान्' का यथावत् आकार न भी बनासके तौ क्या है उस विन्दुकी समान हमारे प्रयो-जनमें कोई बाधा नहीं पडसकती यदि अज्ञात पदार्थकी कल्पना नहीं होसकती यों कहो तो बीजगणितपर हरताल लगाना होगा, उसमें तो अज्ञात पदार्थ माना भी जाताहै कागजपर लिखा भी जाताहै और शनैः २ अज्ञातसे ज्ञान प्राप्त होता है, इसी प्रकार उस वाणी मनसे परेकी उपासना करते जाओ ज्ञात होगायगा। यदि कहो कि, निराकारका आकार नहीं माना जासकता तो शब्दको सब कराहिन मानते हैं पर यह तो कहिये यह आपने कलम ए, बी, सी, डी, अलिफ, बे, ते कहीं पेड पर लटके देखे हैं या बोलतेमें आपके दांतोंमें इनके टेडे बेडे आकार खटकते हैं, या बोलते २ मुखसे काली धारा निकलती है ॥

यदि आप यों कहदें कि जो पदार्थ कुछ है ही नहीं उसका आकार क्या होगा तो किसी महाविद्वान्से पूछिये कि, आपके पास हिमियानीमें सात रुपये हैं एक दिन तीन खर्च किये एक दिन चार तो आप पूछतेहैं क्या रहा, आप कहोगे कुछ नहीं परन्तु आप भूलतेहैं उसमें कुछ गोल २ अण्डेसा है, किसी बडे अंग्रेजीवालेसे पूछिये क्यों साहब क्या रहा तो वह झट ७-(३+४)-०आपके सामने गोल अण्डासा लिख देगा, बस आपके शून्यका आकार तो गोल हो सक्ता है परन्तु परमात्माके शालग्राम और नर्मदेश्वरादिके आकार नहीं होसक्ते इस कारण आप जैसा ईश्वरको निराकार कहते हैं वैसा नहीं है, जब सभी पदार्थोंका प्रतिनिधि स्वरूप आकार मानते हो तो जिसके माननेसे मुक्तितक प्राप्त होती है उसको क्यों न स्वीकार करोगे, हमारे श्रीनारायणाय नमः कहनेसे आपका चित्त दुखे परन्तु सन्ध्योपासनका लंबा चौडा नमस्कार आपकी जिह्वातक न दुखावे, यदि आप कहो प्रधानहीकी पूजा क्यों करतेहो तो आप भी 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव' में आप भी मातापिताका सत्कार करतेहो, पर यह तो कहिये आपके पितामें पितृत्व कहांसे कहांतक है, तब आप कहेंगे कि, सब ठौर तब आप उनके सत्कारके निमित्त चन्दन इतरादि सिरपर ही क्यों लगाते हो और दूसरे अपवित्र अंगोंमें क्यों नहीं लगाते तब आप शिरको उत्तमाङ्गही मानेंगे इसी प्रकार हम भी परमात्माकी श्रेष्ठही पदार्थोंमें पूजा करते हैं, पिताके पूजनमें भी तो चेतनका पूजन नहीं करसकतेहो पिताका चर्मही सत्कारके समय छूसकतेहो गलेमें माला भी चर्मकाही स्पर्श है पर शरीरकी पूजासे शरीरी प्रसन्न होताहै, ऐसे ही मूर्ति शरीर है परमात्मा शरीरी है यथा (यस्य पृथिवी शरीरम् यस्य अग्निः शरीरम्) यह अन्तर्यामी ब्राह्मणकी श्रुति पीछे लिख चुके हैं, जब पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा सब उसका शरीर है तो पञ्चभूतोंकी बनी मूर्ति उसका शरीर कैसे नहीं और शरीरकी पूजा करनेसे शरीरीका पूजन क्यों ठीक नहीं जो बिना अपने इष्ट देवकी प्रतिमाके आगे धरे ध्यान करतेहैं आंख खोलनेपर दूसरी वस्तु जो नेत्रोंके सन्मुख आवे उसीका चित्र अन्तःकरणपर पडता है और जब भगवान्की मूर्ति सन्मुख होतीहै तब जो ध्यान करतेहैं आंख खोलते ही वह वस्तु सन्मुख होनेसे ध्याता और ध्येयकी ऐसी एकता होतीहै, साक्षात्कार होजाताहै इस कारण भगवन्मूर्तिके सन्मुख ही उपासनाकी रीति सर्वोत्तम है । जिन लोगोंको भगवन्मूर्ति पाषाणरूप दीखती है वे क्या सब कुटुम्बियोंको हाड मांस कहकर पुकारतेहैं, वस्त्रादिका रुई नामसे बोलतेहैं सब बर्तनोंको क्या पीतल लोहा बोलते हैं जब सब वस्तुको भिन्न २ नाम लेकर पुकारतेहैं, तब भगवन्मूर्तिमें पाषाण कैसे दीखताहै, वह तो सर्वत्र ओतप्रोत हो रहाहै भक्तजन उसमें परमात्माका दर्शन करतेहैं अज्ञानी पाषाण देखते हैं ।

निराकारकी पूजा ध्यानादिसे केवल योगी जन कर सके हैं परन्तु उसमें भी मूर्तिपूजन सहायक है स्वयं परमप्रसिद्ध शंकराचार्य स्वामी वेदान्तके आचार्य होकर भी अनेक स्तव पूजनाविषयक कथन कर गये हैं, जो दिनरात इस जगत्जालमें मग्न रहते हैं उनसे कब यह ध्यान भूला जा सकता है, भला मैं कहता हूं आप तनक दयानदका ही ध्यान कर लो कि नंगे बैठे आंखें मीचे हैं, दूसरे लोग एक किसी सरोवर बागीचेका ध्यान कीजिये, जिसमें हरंतरहके फूल खिले हैं, ध्यान करके आप भूल जाइये क्यों कि, आपका ध्यान जमाया हुआ है, परन्तु जब अब इसको भी आप नहीं भूलसके तो यह अन्तकालके जगत्का अभ्यास आपको क्या पांच मिनट आंख मीचनेसे जाता रहेगा, हां यदि आप मंदिरमें बैठ नारायणमूर्तिके सन्मुख बैठकर भजन करें तो अवश्य चित्त एकाग्र होगा, जैसे सितार सारंगी सुनते ही आप चलते २ खडे होते हैं, तो क्या उनमें यदि भगवान्का स्मरण किया जाय (जाके प्रिय न राम वैदेही) तो कहिये कैसा ध्यान बंधता है उनके उत्सव आरती स्तोत्र पढनेसे मन तन्मय हो जाता है, इसपर भी यदि कोई बक उठें कि, मूर्तिपूजासे हानि हुई यह भी उनसे पूछना है, क्या मूर्तिपूजाने किसीका गांव नष्ट किया या स्वतंत्रता हरली या जगत् नष्ट कर दिया कुछ तो कहो जिस बातसे ईश्वरके भजनमें प्राणी मग्न हो जाता है तो आप स्वयं समझ सके हैं कि, उससे कुछ बिगाड नहीं हो सक्ता, किन्तु इतना और भी विशेष लाभ है कि, श्रेष्ठस्थानें मंदिरों गंगादि तीर्थोंमें विशेषकर भगवत्सम्बन्धी स्मरणहीको जी चाहता है, कुत्सित और चित्तकी वृत्ति नहीं जाती, तथा वह स्थान वेदपाठ मंत्र जप कथा वार्तासे युक्त रहते हैं, जहां जाकर शोकाक्रान्त भी मनुष्य प्रसन्न हो जाय यही एक देश है जहां सहस्रों गज भूमि श्रेष्ठ मंदिरोंसे व्याप्त है, दूसरे देशोंमें कबरस्तानादिसे बीघों पृथ्वी आच्छादित है, जब भिन्न २ पुरुषोंकी भिन्न २ प्रकारकी रुचि है इसी प्रकार अनेक सम्प्रदायोंमें भिन्न २ प्रकारसे पूजन होता है पूजन करनेसे ममत्व भी दूर होता है यदि कोई प्रश्न करें तो कह देते हैं कि, यह सब परमात्माकाही है हमारा क्या है, जैसे भारतमें अनेक ऋतु अनेक भाषा हैं इसी प्रकार भिन्न रुचिके कारण अनेक सम्प्रदायें हैं पर हां जिस दिनसे यहां कलिका आगमन हुआ भारतका युद्ध हुआ भाईने भाईको विष दिया, युधिष्ठिरको वनवास द्रौपदीका सभामें केशाकर्षण हुआ उसी दिनसे धर्म और राजलक्ष्मी इस देशसे बिदा होगई, जिस दिन श्रीकृष्ण और विदुरका उपदेश न माना गया, उसी दिनसे भारत उच्छृंखल होगया, जिस दिन राजा परीक्षितको सर्पने काटा उसी दिनसे भारत मूर्च्छित होगया है विद्याकी हीनतासे ही देशमें अनेक विघ्न हुए हैं इससे मूर्तिपूजनसे देशकी हानि नहीं हुई ॥

" तं यथायथैवोपासतेतदेवभवति तद्धनान्भूत्वावाति । तस्माद्-न्नमेवंवित् । सर्वंरेतेरूपासीतसर्वंहैतेदुभवतिसर्वंहैनमेतद्भूत्वावाति" श० मं० ब्रा० २०

जो जिस प्रकार जिस रूपमें उपासना करताहै वह वही हो जाता है और उसी रूपसे सेवकोंकी रक्षा करताहै, वेदमें अनेक स्थानोंमें भिन्न २ उपासना लिखी हैं " ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, वाचंब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत, योऽसावादित्ये पुरुषः" 'नमोस्तुनीलग्रीवाय' इत्यादि अनेक आकारसे उपासना हैं यही सम्प्रदाय भेद है जैसे किसी स्थानको कोई जाय वहां जानेके चार मार्ग हों तौ किसीमें चलो सब वहीं पहुंचेंगे भूमि आदिसे 'सोऽहम्' तक उपासनाका विधान लिखा है ॥

वेदमें कोई विषय तौ पूर्णोक्त अर्थात् यथावत् लिखा होताहै जैसा अग्निचयनादि, दूसरा संक्षेपोक्त होताहै वह पद्धतिआदिद्वारा संसारमें प्रचलित होता है जैसा उपनयन संस्कारआदि, तीसरा अनुक्त जिसके विषय कुछ न कहा हो जैसे मृदंग बजाना बजारको जाना आदि, चौथा निषिद्ध जिसे निषेध किया हो जैसे जुआ हिंसा आदि इनमें पहला तौ वेदविरुद्ध हो नहीं सक्ता, और संक्षेपोक्तके विस्तारको वेदविरुद्ध कह तो रात दिनके कार्य पद्धति आदि सब विरुद्ध हो जायँ और ऐसा ही हो तौ वेदमें रेल तार गणित शास्त्र निकालनेवाले बाबाजीकी बहुतेरी भट्टीख्वार हो, यदि अनुक्त विषय वेदविरुद्ध हो तो यह आपके कपडे अचकन कोट बूट घडी कारखाने यह सब व्यवहार बन्द होजायँ ४ वह जिसमें वेदने लिखाहो यह कार्य मत करो सो मूर्तिपूजन मत करो यह बात हमें कोई वेदमें लिखी दिखलाओ, वह रामायण कथा तौ वेदविरुद्ध, पर बाबाजीका तौंबा हुक्का खडाऊं सब वेदानुकूल हैं कोई यों भी कहते हैं 'प्रतिमास्वल्पबुद्धीनाम्' यदि उन्हींका कहा मानाजाय तौ योगी जीवन्मुक्तिको छोडकर सब स्वल्प बुद्धि ही हैं निषेध तौ नहीं आया, बाबाजीको तरुतारके मिलते ही तार दिया दाखपडी परन्तु (संवत्सरस्य प्रतिमासि) में प्रतिमा पूजनका विधान न देखा तथा (सनी बन्धुर्जनिता) में कहीं भक्तिका उद्रेक न मिला, कोई कहेंगे "न तस्य प्रतिमास्ति "यह तौ वेदवाक्य आप छोडे जाते हैं ॥

यद्यपि इसपर हम लिख चुके हैं फिर भी सही क्यों कि प्रसंग आगयाहै अर्थ इसका यही है कि, उसकी प्रतिमा नहीं है तौ क्या यह ज्ञेयांशका विशेषण कुछ उपासनाप्रकारमें बाधा डालेगा हम अप्रतिमकी प्रतिमाद्वारा पूजा करते हैं तौ क्या यह श्रुति इसका निषेध करैगी ? हम उसको निराकार कह साकार द्वारा

पूजते हैं प्रतिमाके तो अनेकार्थ हैं आपने भी बाट तराजूके अर्थ मनुमें लिखे ही हैं, परन्तु प्रतिमा शब्दका अर्थ उपमा है: इसमें विशेष प्रमाणकी आवश्यकता नहीं कारण कि, पहले लिख चुके हैं उपमा अर्थमें वाल्मीकिरामायण महाभारतमें बहुत स्थानपर आताहै यथा "इतो महात्मा वनमेव रामो गतः सुखान्यप्रतिमानि हित्वा" अतुलनीय अनुपम सुखोंको त्याग रामचन्द्र वनको गये, इसका यह अर्थ नहीं कि जिनकी मूर्ति न बनसके ऐसे सुखोंको छोड वनको गये। महाभारतमें नलको 'रूपेणाप्रतिमो भुवि' इसका यही अर्थहै कि, रूपमें नलकी समान कोई भूमिमें नहीं था यह अर्थ नहीं होसकताकि, नलकी मूर्ति न हो उनकी मूर्ति भी थी (इति स्म सा कारुवरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमैक्षत) तसवीरमें जो अच्छे कारीगरकी बनी थी दमयन्ती उसमें नलके साथ अपना प्रेम देखती थी, और इसी मंत्रके अगले भागमें लिखा है ' यस्यनाममहद्यशः ' जिसका नाम और अधम उधारादि यश बहुत बडा है आप विचारिये क्या इससे यों अर्थ बनाओगे कि, बडे यशस्वीकी मूर्ति नहीं हो सक्ती, यह अवश्य होसकताहै कि, उसकी सदृश कोई नहीं यदि मूर्ति यशस्वीके यशकी बाधिका हो तौ बडे २ कर्मचारी तथा आपके दयानंदकी ही तस्वीर दुष्कीर्तिका पुतला समझा जायगा, यदि पाषाणमयी देवमूर्ति आपको पत्थर दीखती है तौ दयानंदकी मूर्ति है ऐसा क्यों कहते हो बाबाजीके चित्रको कागद कहा करो इससे जो प्रकरण श्रुतियोंका है उसको हमारे पाठक समझ गये होंगे कि, किसका अर्थ ठीक है, इतनेपर भी यह विचारो कि, कौन ऐसा है जो अपने उपास्यपर विश्वास (ईमान) नहीं रखता जो नहीं रखता वह उसके विरुद्ध है" वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः १" इस मनुके वाक्यसे सदाचारका भी ग्रहण होता है दयानन्द भी सत्या० प्र० में कुछ सदाचार लिख गये हैं "येनास्य पितरो याताः" तौ वेदमें जो प्रसंग संक्षेपसे हो सदाचारमें हो तौ वह बराबर प्रमाण है और अनुक्त विषयमें सदाचार वेदकी समान प्रमाण है स्वयं कपिलदेवजी अपने सूत्रमें लिख गये हैं "मंगलाचरणं शिष्टाचारात्-" शिष्टाचारसे मंगलाचरण करते हैं वेदोंकी अनेक शाखा हैं वे इस समय सब प्राप्त नहीं हो सकतीं, फिर कौन कह सकता है कि उनमें क्या क्या लिखा है और उन्हींके अनुसार अनेक रीति प्रचलित हैं। पदार्थ विद्यासे इन दिनों तत्ववेत्ता सिद्ध करतेहैं मनुष्यका मस्तिष्क निर्गुण चिन्तनकी सामर्थ्य नहीं रखता है इसमें बडे साधनोंसे वह शक्ति उत्पन्न होगी इसी कारण अनेक मनके सम्पूर्ण भावोंसे परमात्मा चिन्तन हो शरीरसे उसीकी सेवा करे इस कारण पूर्व कालमें सम्पूर्ण जगत्‌ही मूर्तिपूजक था अब भी सब जातियोंमें किसी २ प्रक०

दायमें विद्यमान है, फिर शब्द प्रमाण भी कितना दृढ है कि यदि कहीं कोई आपसे कह उठे सर्प है झट आप चौंकपडेंगे आप्तवाक्यको शब्द कहते हैं इस कारण भारतवर्षके जो आप्तपुरुष इस विषयमें कहगये हैं उसको कौन मेट सकेगा कारण कि हमारे आचार्योंमें मिथ्या भाषणकी शंका भी नहीं है उन्हीं आप्तोंके शब्दोंको शिरपर रखकर पूर्व कालमें चारों वर्ण शाप हो वा आशीर्वाद अपनेको कृतार्थ मानते थे इस कारण वेदशास्त्र प्रतिपाद्य मूर्तिपूजामें किसी प्रकारका सन्देह करना उचित नहीं है. और जिनके चित्तमें सत्त्वगुण नहीं जो अपने वृद्धोंको मूर्ख समझते हैं उन मूर्खोंको होटेल बिस्कुट चुरट रममें निर्गुण ईश्वर दीखता होगा पाठकवर्ग समझनेको थोडा ही बहुत है मूर्तिपूजनमें कोई सन्देह नहीं है.

युक्तिप्रकरण समाप्त ।

स० पृ० ३२० पं० २० (द्वारकामें) जब सम्वत् १९१४ के वर्षमें तोपोंके मारे मंदिरकी मूर्ति अंगरेजोंने उडादी थी तब मूर्तियां कहां गई थीं ॥ ३४५ । १

समीक्षा–स्वामीजीकी यह वार्ता सर्वथा मिथ्या है कभी अंगरेजोंने ऐसा नहीं किया मूर्ति नहीं तोडी ॥

स० प्र० पृ० ३३६ पृ० १८ छापा सम्वत् १९६९ जगन्नाथमें वाममार्गियोंने भैरवीचक्र बनायाहै क्यों कि सुभद्रा श्रीकृष्ण और बलदेवकी बहन लगती है उसीको दोनों भाइयोंके बीचमें स्त्री और माताके स्थानमें बैठाई है ॥

समीक्षा–स्वामीजीका शास्त्रज्ञान कैसा विलक्षण है कि कहीं कुछ कहीं कुछ लिखदेतेहैं भला जहां कहीं सुभद्रा शब्द आवेगा वहां आप श्रीकृष्ण और बलदेवकी बहनका अर्थ करेंगे तो यजुर्वेद अ० २३ मं० १८ सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ' यहां सुभद्राका अर्थ श्रीकृष्णकी भगिनीका करोगे या और कुछ और ' भद्रा भद्रया सचमान आगात्' यहां भी भद्रापद विद्यमान है तब आपको तो यही अर्थ सूझेगा सायणाचार्यने यहां भद्राका अर्थ 'भजनीया' भजनके योग्य कियाहै अर्थात् जिसका सब भजन करते हैं तब इस अर्थको लेनेसे सुभद्राका अर्थ साक्षात् विष्णुप्रिया लक्ष्मीका होताहै तब यहां सुभद्रा साक्षात् महामाया लक्ष्मी क्यों न समझीजाय, और आप जो कहते हो कि स्त्री और माताके स्थानमें बैठाई है ऐसा अनर्थ क्यों करतेहो, किस प्रमाणसे कहतेहो जगन्नाथमाहात्म्यमें ही कहीं दिखाओ अन्यथा आपका कथन गप्प ही गिना जायगा जगन्नाथमा० अ०४श्लो० ६ बलेन भद्रया युक्तः, ऐसा पाठ है और लक्ष्मीका अर्थ है । इसी प्रकार और तीर्थों मन्दिरोंकी आपने मिथ्या समालोचना कीहै बुद्धिमान उन बातोंको निर्मूल और आपकी कल्पना मानते हैं हमने पृथक् यह नहीं दिखलाया है परन्तु जो

मूर्तिम पूजन वेदमें विद्यमान है तव मूर्तिपूजनके समाधानसें सबका समाधान होगया समझना ॥

स० प्र० पृ० २०४ पं० २३ में स्वामीजी लिखते हैं कि, ईश्वरके स्वरूपमें समाधिस्त हुए ॥

समीक्षा–समझे अव ईश्वरका स्वरूप होगया ॥ इसके आगे स्वामीजीने प्रसिद्ध २ मन्दिरोंकी निन्दा कीहै मूर्तिमण्डनमें सबका मण्डन आगया ॥

तीर्थप्रकरण ।

स० प्र० पृ० ३२३ पं० २८ यह तीर्थ भी प्रथम नहीं थे जब जैनियोंने गिरनार आबू आदि तीर्थ बनाये तो उनके अनुकूल इन लोगोंने भी बनालिये कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहै तो पण्डोंकी पुरानीसे पुरानी वही और तांबेके पत्र आदि देखें तो निश्चय होजायगा कि, यह सब तीर्थ पांचसौ वर्ष अथवा एक सहस्र वर्षसे इधर ही बने हैं सहस्र वर्षसे ज्यादेका लेख किसीके पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं ॥ ३४८ । २०

पृष्ठ ३२४ पं० ९ गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
हरिर्हरतिपापानि० इत्यादि
यह पोपपुराणके श्लोक हैं पृ० ३४३ । २४

पृ० ३२४ पं० २१ इनके मिथ्या होनेमें क्या शंका क्यों कि गंगा २ वा हरे २ रामकृष्ण नारायण शिव भगवती नामस्मरण करनेसे पाप नहीं छूटता ॥ ३४४ । १०

पं० २४ मूर्खोंको विश्वास है कि, हम पाप कर नामस्मरण कर तीर्थयात्रा करेंगे तो पापोंकी निवृत्ति होजायगी ॥ ३४४ । १२

स० पृ० ३२५ पं० ३ जो जलस्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं होसकते । पं० २०

पं० ६ प्रत्युत नौका आदिक तीर्थ होसकताहै कि, उससे समुद्र आदिको तरते हैं पं० २२

समानतीर्थेवासी ४ अ० ४ पा० ४ सू० १०७
नमस्तीर्थ्यायच–यजु०

ब्रह्मचारी एक आचार्यसे और एक शास्त्रको साथ साथ पढतेहों वे सब सतीर्थ अर्थात् समान तीर्थसेवी होते हैं जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि

धर्म लक्षणोंमें साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं ॥ २४४ । २४

समीक्षा-स्वामीजी तीर्थ भी उडाना चाहते हैं जो लिखाहै कि, ५०० वर्षसे ऊपर १००० वर्षसे नीचेके हैं क्यों कि पंडोंकी वही पुरानीसे पुरानी इतने ही दिनोंकी मिलती है धन्य है तीर्थोंके प्रमाणमें पंडोंकी वही तो प्रमाण और वेद-शास्त्र पुराणादि सब अप्रमाण जब कि, महाभारतमें पूर्णतासे तीर्थोंकी महिमा लिखी है जिसको रचे ५००० वर्ष व्यतीत होगये तो आपका कथन यह सर्वथा असत्य है कि तीर्थ पांचसौ वर्षके हैं तीर्थ तो वेदोंमें विद्यमान हैं ॥

नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च-यजु० अ १६ मं. ४२

भाषार्थः ।

हे शिव ! आप सब प्रकारसे सबमें श्रेष्ठ सब संसारके तारने पार उतारनेहारे हो क्यों कि आप तीर्थरूप हो जैसे गंगा अथवा आप तीर्थोंमें पर्यटन करतेहो आपके अर्थ नमस्कार और तीर्थोंके घाट किनारेरूप आपके लिये नमस्कार शष्प्य अर्थात् गऊरूपी फेनारूपी सिकतारूपी हो आपको वारंवार नमस्कार है यहां (नमस्तीर्थ्याय च) यह पद इसी हेतुमें है कि, आप प्रयागादि तीर्थोंमें विचरतेहो इसके अर्थ स्वामीजीने कुछ नहीं लिखे और गंगादिका माहात्म्य भी सुनिये ऋग्वेदमें इस प्रकार लिखाहै ॥

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या-
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया

ऋ० म० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

पदार्थः ।

हे गंगे हे यमुने सरस्वति शुतुद्रि यूयं मे मम स्तोमं सचत आसेवध्वम् परुष्ण्या सह मरुद्वृध आर्जीकीये त्वमपि असिक्न्या वितस्तया सुषोमया च सह आ शृणुहि आभिमुख्येन स्थित्वा शृणुहि-

भाषार्थः ।

हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञको सन्मुख होकर सेव करो हे मरुद्वृधे आर्जीकीये परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमाके साथ मे यज्ञको सेवन करो मेरी स्तुतियोंको सब प्रकारसे सुनो ९ निरु० उत्तरप० अ० ३ २६ में ऊपर लिखे अनुसार व्याख्यान है ।

यहां यह विचार करना है कि, यदि गंगादि नदियोंकी अधिष्ठात्री देवता न हों तो उनका आह्वान यह किस प्रकार है और स्तुति श्रवणकी प्रार्थना कैसे की है इस कारण गंगादितीर्थोंको अतीर्थ कहना अज्ञान है और देखो–

सरस्वतीसरयुः सिंधुरूर्मिभिर्महोमहीरवसायंतुवक्षणीः ।
देवीरापोमातरःसूदयित्न्वोघृतवत्पयोमधुमन्नोअर्चत ॥

ऋ० मं० १० अ० ६ सू० ६४ म० ९

पदार्थः ।

(महो) महतोपि (महीः) महत्यः (ऊर्मिभिः) सहिता (सरस्वती) (सरयुः) (सिन्धुःवक्षणीः) नद्यः (अवसा) रक्षणेन हेतुना (आयंतु) अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छन्तु (मातरः) मातृभूताः (सूदयित्न्वः) प्रेरयित्र्यः (देवीः) (आपःघृतवत् मधुमत्) (पयः) (नः अर्चत) प्रयच्छत..

भाषार्थः ।

महान्से भी महान् लहरोंसे युक्त सरस्वती सरयू सिंधुनामा नदी देवियां रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञमें आओ माताकीः समान प्रेरक जलदेवियां घृत मधु युक्त दुग्धको (वा जलको) हमें दो और देखो–*

आपोभूयिष्ठाइत्येकोअब्रवीदग्निर्भूयिष्ठइत्यन्योअब्रवीत् ।
वर्धयन्तींबहुभ्यःप्रैकोअब्रवीदृतावदंतश्चमसांआपिंशत ॥

ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ९

* जब छोटे स्वामी भी इनसे रक्षा मानतेहैं और नदी मानतेहैं तब यज्ञमें इनका आह्वान स्पष्ट पुण्यरूप है ।

हेऋभवःभवतांमध्येएकःकश्चित्तीर्थाश्रयेणैवप्राप्तदेवभावआप एवभूयिष्ठाइत्यब्रवीत्वर्षयन्ती (ते यूयं) (ऋता) ऋतानिसत्या-न्येवैतान्यवादीनितीर्थस्नानादीनिदेवताभावप्राप्तिसाधनानिव-दन्तउपदिशन्तियज्ञेषुचमसान्सोमयुक्तान् आपिंशत व्यभंजत

भावार्थ-ऋभव देवता स्तुतिद्वारा सद्गतिप्राप्तिसाधनोंका इस मंत्रमें उपदेश दियाहै हे ऋभव ! तुममेंसे कोई एक तीर्थ सेवन कर देवभावको प्राप्त हो तीर्थजलको सर्वोत्तम साधन कहताहै, कोई अग्निहोत्रादि साधन अनुष्ठानसे प्राप्त देवभाव तिसको सर्वोत्तम कहता है, इसी प्रकार कोई प्राणीमात्रपर दयाके अनुष्ठानसे देवभाव प्राप्त होनेसे दयाको सर्वोत्तम मानताहै, इस प्रकार यथार्थ साधनका उपदेश करते हुए यज्ञपात्रके विभाग करते हो, अथवा (ऋतावदन्त) इसका यह अर्थ है कि जितेन्द्री सत्यवादीको तीर्थ फल देते हैं,

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति अत्रा-दधुर्यजमानायलोकंदिशोभूतानियदकल्पयन्त-अथर्व० २८।४।७

(तीर्थैः) तीर्थोंद्वारा (प्रवतः) प्रकृष्ट (महीः) बडी आपत्तिको (इति) इस प्रकार (तरन्ति) तरजाते हैं अर्थात् तीर्थोंसे बडे बडे पाप नष्ट होजाते हैं (यज्ञकृतः) यज्ञोंके करनेवाले (सुकृतः) पुण्योंके करनेवाले (येन) जिस मार्गसे (यन्ति) जाते हैं वे (अत्र) इस पुण्यलोक प्राप्ति साधनके मार्गमें प्राप्त होते (यजमानाय) यजमानके निमित्त (लोकम्) पुण्यार्जितलोकको (अदधुः) विधान करैं (यत्) जो (दिशः) दिशा (भूतानि) सब प्राणीवर्ग अर्थात् दिशाओंमें स्थित प्राणी यजमानके निमित्त (अकल्पयन्त) कल्पना करतेहुए इसमें तीर्थोंसे तरना स्पष्ट है, अजितेन्द्री-असत्यवादीको नहीं यही बात महाभारतके वनपर्व तीर्थयात्रापर्वाध्यायमें लिखी है, और देखिये वाल्मीकि बालकां०, श्लो० २२ । २३ सर्ग ३५ ॥

एते ते शैलराजस्य सुते लोकनमस्कृते ॥
गंगा च सरितां श्रेष्ठा उमा देवी च राघव ॥ २१ ॥
सुरलोकसमारूढा विपापा जलवाहिनी ॥ २२ ॥

विश्वामित्र बोले हे रामजी ! गंगाजी और पार्वती दोनों हिमाचलकी कन्या हैं और दोनों श्रेष्ठ पूजनीय हैं २१ गंगाजी जलरूप हो पापोंका नाश कर स्वर्गलोकमें पहुँचाती है ॥ २२ ॥

पुनः अयोध्याकांडे श्लो० ८२-८७ तक स० ५२

मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता ॥
वैदेही प्रांजलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ॥
निदेशं पालयत्वेनं गंगे त्वदभिरक्षितः ॥ २ ॥
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ॥
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥ ३ ॥
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ॥
यक्ष्ये प्रमुदिता गंगे सर्वकामसमृद्धिनि ॥ ४ ॥
त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकसमक्षमे ॥
भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्संप्रदृश्यते ॥ ५ ॥
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ॥
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागमे ॥ ६ ॥
गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥ ७ ॥

जिस समय वनको जाते समय नौकामें बठ रघुनाथजी गंगापारको चले और नौका जब बीचमें पहुँची उस समय जानकीजी हाथ जोड इस प्रकारसे प्रार्थना करने लगीं १ हे गंगे ! यह महाराज दशरथके पुत्र वनवास करेंगे, तुम इनकी रक्षा करो २ चौदह वर्ष वनमें अपने भाई और मेरे सहित वास करेंगे फिर यहांसे घरको पधारेंगे ३ हे गंगादेवी ! तुम इनपर प्रसन्न हो और आनन्दमंगलसे फिर लाओ, तुम सकल मनोरथ सिद्ध करतीहो ४ हे गंगे ! तुम त्रिलोकीका कार्यसाधन करतीहो ब्रह्मलोकका वास देनेहारी हो समुद्रकी भार्या हो इस कारण हे देवी ! मैं तुम्हारी प्रार्थना हाथ जोडकर करती हूं ५ जब रघुनाथजी वनवाससे निवृत्त होके अपनी राजधानीमें प्राप्त होंगे तो तुम्हारे अर्थ हजार गौ वस्त्र और अन्न पतिकी प्रीतिके अर्थ ब्राह्मणोंको दूंगी ॥

अब सज्जन पुरुष विचारलेंगे कि गंगादितीर्थ कबसे हैं इनसे पाप दूर होतेहैं तथा मनोरथ पूरे होतेहैं यथा हि-

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ॥
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः-अ०८श्लो० ९२

यदि यमराज वैवस्वत देवता तुम्हारे मनमें विराजमान हैं, यदि तुम्हारा विवाद यमके साथ न हो तो गंगा और कुरुक्षेत्रमें मत जाओ अर्थात् जो तुम मिथ्या भाषण करोगे तौ पातक होगा, यमराजसे विवाद होगा पापकी शान्तिके अर्थ गंगा और कुरुक्षेत्रमें जाना होगा, और यदि सच्चे हो तौ पापरहित होनेसे तीर्थ जानेकी आवश्यकता नहीं यहां भी प्रत्यक्ष तीर्थोंकी महिमा है और यह श्लोक पुराने सत्यार्थप्रकाशमें भी आपने लिखाथा, और देखिये ऋग्वेद संहितामें ॥

सितासितेसरितेयत्रसंगथेतत्राप्लुतासोदिवमुत्पतन्ति । ये वैतन्वं १ विसृजन्तिधीरास्तेजनासोऽमृतत्वंभजन्ते-ऋ० परिशिष्ट. *

जहां स्वर्गीय गंगा यमुनाका संगम होता है वहां शरीर त्यागन करनेसे धीर पुरुष मुक्त होते हैं जब कि, तीर्थोंकी ऐसी महिमा है तौ फिर अन्यथा कैसे हो सक्ताहै वेद पुराण शास्त्रादिकमें सर्वथा तीर्थोंकी महिमा लिखीहै इस थोड़ेहीमें समझ लीजिये ॥

गुरुप्रकरणम् ।

स० पृ० ३२६ पं० ७ गुरुमाहात्म्य गुरुगीता बड़ी भारी पोपलीला है ३४५ । २६ पं० ९ जो गुरु लोभी क्रोधी मोही और कामी हो तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना दंड प्राणहरणतकमें भी कुछ दोष नहीं ३४६ । १

समीक्षा-स्वामीजीने तौ गुरुको बडा भारी दंड लिखा और गुरुमाहात्म्य जिसमें गुरुआके पास उठने बैठने बोलने चालनेकी विधि है, वोह पोप लीला है तो आपने शिक्षा क्यों बनाई, और यह दोष तौ आपहीमें घट सक्तेहैं, क्यों कि दार्थप लोभ यहांतक है कि, अपनी पुस्तकोंपर रजिस्टरी कराकर तिगुना मोल रखदिया जहां तहां चंदा उगाहा जिसके पास गये विना भेंट लिये पीछा न छोड़ा क्रोध ऐसा था कि, मूर्तिपूजनके विषयमें पुराणप्रकरणमें (ऐसोंका परमेश्वर नाश करै यह मर ही क्यों न गये) यह शब्द उच्चारण कियेहैं, मोह यहांतक कि अपने लिखेकी आप ही खबर नहीं. कामना ऐसी थी कि अनेक संकल्प विकल्प आपके ग्रन्थोंसे ही प्रगट हैं तौ फिर अब आपको किस प्रकार शिष्टाचारी करनी चाहिये; गुरुका गुरुत्व यही है कि कैसी ही भली या बुरी जो कुछ वाह आज्ञा करे सो मानना । अच्छा वचन तौ बालकसे लेके बूढेतकका मानना योग्य है फिर गुरुमें औरोंमें अन्तर क्या, आपने गुरुका कुछ मान न रक्खा तभी तौ कहीं अपने

* तु०रा० को तो परिशिष्ट बताते हो परन्तु हम परिशिष्टके बहुतसे मन्त्रोंको दूसरी संहिताओंमें दिखासकतेहैं ।

१ पांचवीं बारमें गुरुमाहात्म्य गुरुगीता आदि भी इन्हीं कुकर्मो त्यागानवन्द ६ पृ० २६१ पं० २२

गुरुको नमस्कार न किया न कुछ नाम ही लिया (आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया) गुरुकी भली बुरी आज्ञा विना विचारे संपादन करै शुद्ध जानकीजीको रामचंद्रकी आज्ञासे लक्ष्मण वनमें छोड आये पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माता और भाइयोंका वध किया, और देखो महाभारतका पौष्यपर्व तृतीय अध्याय आपोद धौम्य नाम मुनिके उपमन्यु शिष्य जो मुनिकी गोचारणमें नियुक्त था मुनिने उसको पुष्ट देखकर कहा कि जो तुम भिक्षान्न लाया करते हो सो हमें दे दिया करो, वोह भिक्षा देने लगा और यत्किंचित् धेनुके दुग्धसे जीवन धारने लगा जब गुरुने उसका भी निषेध किया तो फेनाधार रहा उसके भी निषेध करनेसे क्षुधित हो उपमन्युने अर्कपत्र भक्षण किये तिससे अन्धा हो कूपमें पतित हुआ, फिर गुरुने अन्वेषण कर अश्विनीकुमारकी स्तुति कराई, औ-नेत्र प्राप्त होगये, पश्चात् गुरुने आशीर्वाद दे सब विद्या दान करदी और वोह सर्वशास्त्रविशारद हो अपने घर गया और इसी प्रकार उनके दो शिष्य और भी थे ऐसे ही कार्य उनसे लिये पश्चात् वे भी परीक्षोत्तीर्ण हो विद्या पाय अपने घर गये मनुजी गुरुमहिमा लिखतेहैं कि–

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्तते ॥
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥
परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ॥
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ २०१अ०२मनु०

जहां गुरुका परिवाद अर्थात् दोषकथन करा जाता है और जहां निन्दा अर्थात् झूंठ ही दोष लगाकर कोई कहता हो तो वहांसे कान मूंदकर चला जाना उचित है ॥ २०० ॥ जो कोई गुरुके दोष कथन करता है वोह गधा होता है जो झूंठी निन्दा करता है वोह कुत्ता होता है और जो अनुचित रीतिसे गुरुका अन्न खाताहै वोह छोटा कीडा होता है और जो ईर्ष्या करता है वोह स्थूलकीट होताहै अब विचारनेकी बात है जब गुरुका सत्यदोष कथन करना भी पाप है तो गुरुको दंड देनेसे तो फिर उद्धार है ही नहीं ॥

पुराणप्रकरणम् ।

पुराणोंका वर्णन तीसरे समुल्लासमें कर चुके हैं परन्तु यहां संक्षेपसे विवरण लिखेंगे यह बात सब ही जानते हैं कि, अनादिकालसे यह सृष्टिचक्र चला आता है, अनन्तवार प्रलय और सृष्टि हो चुकी है जब अनेकवार उत्पत्ति हुई तो प्रत्येक समय एक ही समान उत्पत्ति नहीं हो सकी कुछ भेद हो ही जाता है. हां सबका आदि कारण परमेश्वर माना है इसमें कभी कुछ विरुद्धता नहीं है परमेश्वरसे

प्रकृति उत्पन्न होकर उनसे विविध प्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है इसी कारण पुराणोंमें सृष्टि कभी किसीसे कभी किसीसे उत्पन्न हुई लिखी है कभी आदिमें कोई हुआ कभी कोई हुआ जिस कल्पमें जो आदिमें हुआ है वोही उसका कर्ता कहा है यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है सतरजतमयुक्त तीन ही इसके देव हैं विष्णु ब्रह्मा महेश जब जो प्रधान होता है उसी देवतासे उसकी सृष्टि चलती है कहीं प्रकृतिको प्रधान मानके देवी नामसे संसारकी उत्पत्ति लिखी है जैसा कि वेदसे प्रगट है ॥

अहमेववातइवप्रवाम्यारभमाणाभुवनानिविश्वा ॥ पुरोदिवापरएनापृथिव्यैतावतीमहिनासंबभूव–ऋ० मं० १० सू० १२५ मं० १२

लक्ष्मीमायाका वाक्य है कि, मैं ही सब भुवनोंको उत्पन्न करती वायुके समान चलती हूं स्वर्ग और इस पृथ्वीसे परे जो पुरुष है उतनी ही और उससे युक्त मैं महिमासे नानारूपवाली हुईहूं ॥

इत्यादि वाक्योंसे सृष्टिकी रचना अनेकप्रकारकी है, ईश्वरहीकी मायारूप देवी देवता हैं, चाहें जिस देवके गुण गाओ, सब ईश्वरको ही पहुँचतेहैं, जैसे नदी समुद्रमें जातीहैं, किसीएक रूपमें विश्वासयुक्त मन लगानेसे सिद्धि प्राप्त होजायगी, अनेकोंमें लगानेसे शान्ति सिद्धि नहीं होती । इसीसे पुराणोंका यह आशय है कि जिस देवताका वर्णन किया है वा ईश्वरका नाम वर्णन किया है तो उसमें उसीकी उत्कृष्टता सबसे अधिक वर्णन की है, जो जिसका उपासक है वो उसे ही सर्वश्रेष्ठ जाने और उसका चित्त भटकता न फिरे ब्रह्मादिदेव दशअवतार भगवती गणेशादि देवताओंके सिवाय और किसीका पूजन किसी पुराणमें है नहीं व्यासजीने पुराण नवीन कल्पना नहीं करेहैं, उन कथाओंका जो लक्षों वर्षोंसे हैं संग्रह करदिया है, इस कारण वे नवीन नहीं हैं कथा पूर्वकालीनकी हैं व्यासजीने उन्हें श्लोकबद्ध करादियाहै बस इसी कारण जो पुराण जिस देवताकी महिमापर है उसमें सर्वोत्कृष्टतासे उसी देवताके गुण लिखेहैं सबकी रुचि एकसी नहीं होती, जिस देवतामें जिसकी प्रीति हो वह उसीके पुराणको ग्रहण करै मन लगावै तो पार होजाता है और जिस कल्पमें जहांतक प्रलय हुई है वहींसे फिर रचना आरम्भ होती है इस कारण सृष्टिके भिन्न २ प्रकारसे उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं अब शिवपुराणकी कथा जो दयानंदजीने लिखी है उस संक्षेपतः प्रकाश करते हैं ॥

स० पृ० ३२८ पं २९ से० पृ० ३३ पं० ७ तक

शिवजीने इच्छा की कि, मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण जलाशयको उत्पन्न किया उसकी नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ उसने देखा कि, सब जलमय है

जलकी अंजली उठा देखकर जलमें पटकदी उससे एक बुदबुदा उठा उस बुदबुदे मेंसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ उसने ब्रह्मासे कहा हे पुत्र ! सृष्टि उत्पन्न कर ब्रह्माने उससे कहा तू मेरा पुत्र है और दिव्यसहस्र वर्ष जलपर लडतेरहे उन दोनोंके बीचमें एक तेजोमय लिंग प्रगट हुआ और आकाशमें चला गया उसकी थाह लेआनेका प्रण करके कूर्मका रूप धरके विष्णु नीचेको और ब्रह्माजी हंसका रूप धार ऊपर गये जो पहले आवे वह पिता जो पीछे आवे वह पुत्र, यह प्रण कर दिव्यसहस्र वर्ष बीते पर भी अन्त न मिला, उस समय एक गाय और केतकीका वृक्ष ऊपरसे उतर आया और ब्रह्मासे कहा हम सहस्रों वर्षसे लिंगके आधार चले आते हैं थाह नहीं मिली ब्रह्माने कहा तुम हमारे साथ चलो यह साक्षी दो कि मैं इस लिंगके ऊपर दूध और फूल बरसाताथा वे ब्रह्माके शापके भयसे भीतहो कि, यह भस्म करने कहता है झूंठी साक्षी देनेको संमत हुए और नीचेको चले विष्णुजी पहलेहीसे बैठे थे ब्रह्माजीके कहनेपर बोले कि, मुझे लिंगकी थाह नहीं मिली ब्रह्माजीने कहा हम लिंगका अन्त देख आये ॥

गौ वृक्षकी गवाही दिवाई उनकी गवाही होतेही लिंगमेंसे शब्द निकला और यों शाप दिया कि, तेरा फूल किसी देवतापर न चढेगा और गाय तू झूंठ बोली इसस विष्ठा खाया करैगी, ब्रह्मासे कहा तेरी पूजा कहीं न होगी विष्णुजीसे कह तुम सर्वत्र पूजोगे पुनः दोनोंने स्तुति करी तो लिंगमेंसे एक जटाजूट मूर्ति निकली और कहा कि मैंने सृष्टि करनेको भेजा तुम झगडेमें पडगये और अपनी जटामेंसे एक भस्मका गोला निकालकर दिया और कहा इससे सब सृष्टिकी रचना करो ॥

भला कोई इन पुराणोंके बनानेवालोंसे पूछे कि, जब सृष्टितत्त्व और पंचमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्माविष्णुमहादेवके शरीर जल कमल लिंग गाय और केतकीका वृक्ष भस्मका गोला क्या तुम्हारे घरमेंसे आ गिरे ॥ ३४८ । २४

समीक्षा–यह कथा स्वामीजीने अपनी मिलावट और गडबडीसे लिखीहै विदित होताहै कि, स्वामीजीने कभी शिवपुराणका दर्शन भी नहीं किया जो कुछ शिवपुराणमें चौथेसे आठवें अध्यायतक लिखाहै सो संक्षेपतः कहते हैं ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनक ! जिसके अनन्तनाम और जो सबका स्वामी है उसको वैष्णवमत रखनेवाला विष्णु, शाक्त शक्ति, सूर्योपासक रवि, गाणपत्य उसीको विनायक जानते हैं इस निर्गुणपरमात्माकी इच्छा हुई कि, हम एकहैं अनेक हो जाँय तब आप शिवरूप होकर प्रगट हुए और शक्तिको भी अपने आनन्दके हेतु उपजाया, जिसको महामाया भगवती कहते हैं यही संसारकी आदि कारण है इन्हीं शिवको पुरुष महा-

मायाको प्रकृति कहते हैं शिवजीने विहारके निमित्त एक लोक बनाया जिसको अविमुक्त कहते हैं जो सब जीवोंको आनन्ददायक परम मनोहर है फिर शिवजीकी इच्छा हुई कि एक संसारका पालक पुरुष उत्पन्न करें ॥ इति ४ अध्यायः ॥

यह सुनतेही शक्तिने अवलोकनमात्रसे सुन्दर स्वरूप विष्णुजीको उत्पन्न किया और शिवजी बोले तुम्हारा नाम विष्णु होगा तुम सृष्टिमें श्रेष्ठ देवता पालक हो अब तप करो विष्णुजीके महातप करनेसे ऐसा जल उत्पन्न हुआ कि, विष्णुजी उसके अन्तर्गत हो योगविद्या जो शिवजीने बताई थी उसके आश्रित हो शयन करने लगे उस समय नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ उसमें शिवजीने ब्रह्माको उत्पन्न किया अब ब्रह्माजी सोचने लगे कि, मुझे किसने उत्पन्न किया यह विचार कमलकी नीचे थाह लेने चले गये और बहुत दिनोंतक उस कमलको भी न देखा तब आकाशवाणी हुई और दो अक्षर प्रगट हुए और एक स्थानके रहनेके हेतु उनमें प्रतिष्ठित हैं फिर विष्णुजी योगनिद्रा त्याग ब्रह्माजीके पास आनकर बोले कि, हम सृष्टिके कर्ता सत्‌चित्‌आनन्द हैं वेद हमारे उत्पन्न किये हैं तुम हमारे नाभिकमलसे उत्पन्न हो इस कारण हमारे पुत्र हो ब्रह्माजी बोले तुम हमें गुरुकी समान उपदेश देते हो तुम नहीं जानते कि, वेद क्या है इस वचनको सुन विष्णुजी विवाद करनेलगे इति पंचमोऽध्यायः ॥

उन दोनोंका विवाद देख शिवजी अन्तकालकी जलतीहुई वडवाग्निके सदृश प्रगट हुए यह देख ब्रह्मा विष्णुजी विवाद त्याग परस्पर विस्मित हो पूछने लगे कि, यह क्या है जो कोई इसका आदि अन्त देखले वही सृष्टिका मालिक हो ब्रह्माजी ऊपर और विष्णुजी श्वेतवाराह हो नीचे चले वही यह श्वेतवाराहकल्प कहाता है दिव्यसहस्र वर्षतक दोनों ढूंढते रहे परन्तु भेद न मिला और दोनों लौटि आये और जब वह अपना पूर्वस्थान भी न पाया तो जाना कि, कोई तीसरा हमसे भी अधिक है यह विचार दोनोंने प्रीति करली तब आकाशवाणी हुई कि तुम योग करो यह सुन दोनों योग धार स्तुति कर कहने लगे महाराज ! आप दर्शन दीजिये तब ओंकार प्रगट हुआ जिसको उन दोनोंने सम्यक् नहीं जाना परन्तु फिर उसके चार भाग हुए, अ, उ, म, बिन्दु, पहला लिंगकी ज्योति दूसरा मध्यभाग आधी मात्रा उस लिंगकी ज्योतिका शिर है बिन्दु सर्व लिंग ज्योति है इसीमें चारों वेद प्रतिष्ठित है कोई भी उस प्राणरूप लिंगका अन्त नहीं पाते ब्रह्मासे तृणपर्यन्त सब उसीमें मिलतेहैं प्राण वही शिवजीका स्वरूप है इस प्राणरूप शिवजीकी मूर्ति देख दोनोंने बडी स्तुति की ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

तब शिवजीने शरीरधार दर्शनदिया ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

शिवजी बोले तुम्हारा विवाद देखकर यह प्रणवरूपी लिंग हमने उत्पन्न कियाहै और फिर कहने लगे हमारा कहना मानो, यह कह श्वासके द्वारा वेदोपदेश किया प्रणवकी शिक्षा दी विष्णुजीको पालन, ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेमें नियुक्त किया और कहा कि, जिस क्षेत्रमें सब संसार लीन हुआ है उसे लिंग कहते हैं इस लिंगके पूजनसे लोक परलोक बनैगा और हम भी रुद्र नामसे अवतार ले तुम्हारे नगरमें आवैंगे हम चारोंका एक ही स्वरूप है जो पृथक् विचारैगा वह दुःखी होगा और कभी हम कभी ब्रह्मा कभी विष्णुजी सृष्टिकी आदिमें होते हैं मैं सबमें, सब मुझमें हैं. मैं तुम सब एक हैं यह कह दोनोंको अपनी शक्तिसे शक्ति दे सृष्टिरचनाकी आज्ञा कर शिवजी अन्तर्धान हुए विष्णुजी भी शक्तिसहित अन्तर्धान हुए तब ब्रह्माजीने प्रकृतिसे सृष्टिकी रचना आरम्भ की ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः॥

अब सज्जन पुरुष कथाको विचार लेंगे कि कहीं कोई द्रोह या वेदविरुद्धताकी इसमें बात है किन्तु वेद ओंकार ईश्वरहीके तीनों देवता स्वरूप हैं तथा विष्णु और ब्रह्मा उसी सूक्ष्मके स्थूल रूप हैं इत्यादि वस्तुओंका वर्णन किया है ॥

स्वामीजीने जो अपनी बनावट सत्यार्थप्रकाशमें लिखी है उसमें गौकी साक्षी वृक्षका उतरना भस्मका गोला यह सब स्वामीजीके मुखरूपी घरमेंसे निकलकर सत्यार्थप्रकाशमें आनपडे या अपने बाबाके घरसे लाये होंगे यह कथा शिवपुराणमें नहीं बस ऐसे ही और भी जानलेनी कि यह स्वामीजीने बनावट की है तथा बडे शिवपुराणमें भी गौकी साक्षी भस्मका गोला नहीं है और देवादिकी सृष्टि पहले हो चुकी थी पीछे कर्ताकी वार्ता हुई यह कथा बडे अध्यात्मविषयवाली है देखना हो तो हमारे किये शिवपुराणकी भाषाटीका देखो ॥

भागवतप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३३० प० १२

कश्यपसे दितिसे दैत्य दनुसे दानव अदितिसे आदित्य विनतासे पक्षी कद्रूसे सर्प सरमासे कुत्ते स्याल आदि और अन्य स्त्रियोंसे हाथी घोडे ऊंट गधा भैंसा घास फूस बबूर आदि वृक्ष कांटेसहित उत्पन्न होगये वाह रे वाह ! भागवतके बनानेवाले लाल बुझक्कड तुझे ऐसी बातें लिखते लाज और शर्म न आई निपटही अन्धा बन गया स्त्रीपुरुषके रजवीर्यके संयोगसे मनुष्य तो बनतेही हैं परन्तु परमेश्वरकी सृष्टि क्रमके विरुद्ध पशु पक्षी सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं होसके सिंहादि उत्पन्न होकर अपने माबापको क्यों न खागये इन ही झूंठी बातोंको वे अन्धे पोप बाहर भीतरकी फूटी आंखोंसे सुनते ३६० । ९ और पं० २७ इन भागवतादि पुराणोंके बनानेहारे जन्मते ही गर्भहीमें क्यों न नष्ट होगये वा जन्मते समय ही क्यों न मरगये । ३६० । २४

समीक्षा-स्वामीजीने सब सृष्टि कश्यपसे उत्पन्न होनेमें बडा आश्चर्य माना है और कहा कि सृष्टिक्रमके विरुद्ध नहीं होसकी यद्यपि हम यह विषय पहले लिख चुके हैं कि प्रथम तो सब जीवोंकी उत्पत्ति कैसे हुई वेदमें लिखा है कि उसमें घोडे चौपाये ढोर ग्रामके पशु आरण्यपशु उत्पन्न हुए (यजुर्वेद पुरुषसूक्त) तो क्य यह सब सृष्टि भी परमेश्वरके रजवीर्यसे हुई है प्रथम ऋषियोंको तप करनेसे बडी सामर्थ्य थी कर्मानुसार जो जिस योग्य थे वैसी ही योनिमें उनका जन्म हुआ निरुक्तमें लिखाहै "कश्यपः कस्मात् पश्यका भवतीति" जो भ्रान्तिरहित होकर संसारके जीवोंके कर्म यथावत् देखे उसे कश्यप कहते हैं ब्रह्माजीने कश्यपजीको सब प्रकारकी सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी जो जैसे शरीरमें उत्पन्न होने योग्य थे कश्यपजीने उन्हें वैसा ही ज्ञानसे बनाया और जो जिस योनिसे उत्पन्न हुए वो ही उनकी माता कहलाई यह बनानेसे पिता कहाये (वे अपने माबापोंको क्यों न खांय) यह भी कथन स्वामाजीका असत्य है क्यों कि "सिंहादि अपने माता पिताओंको नहीं खाते दूसरा वचन स्वामीजीकी सभ्यता प्रगट करताहै उसमें हम कुछ नहीं कहते क्यों कि "तुलसी बुरा न मानिये जो गँवार कहजाय" यदि स्वामीजीका जन्म न होता तो यह नवीन भ्रष्ट नियोगादि पंथ क्यों चलते आर मक्षे यह कष्ट उठाना क्यों पडता. जैसे ईश्वरसे पुरुषसूक्तमें घोडे गौओंकी उत्पत्ति हुई इसी प्रकार कश्यपसे उत्पन्न हुई स्वामीके सत्यार्थ प्रकाशमें तो यह गाली भरी पडीहैं और धर्मसभावालोंपर यह आक्षेप कि यह गाली देतेहैं शोक है ऐसी गाली देनेवालेंपर ॥

स० पृ० ३३२ पं० ९

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥ १ ॥
भा० स्कन्द० २ अ०९ श्लो० ३०

हे ब्रह्माजी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और अर्थ धर्म काम मोक्षका अंग है उसको मुझसे ग्रहण कर जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञानका विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषणसे रहस्यका भी पुनरुक्त है जब मूल श्लोक ही अनर्थक है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं ॥ ३५२ । ७

समीक्षा-यह भी स्वामीजीका विवाद निरर्थक है वह श्लोक स्वामीजी समझे नहीं जो आस्तिक बुद्धि होती तो समझमें आता इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं श्रीधरजी लिखते हैं कि-

ज्ञानं शास्त्रोक्तं विज्ञानमनुभवः रहस्यं भक्तिः सुगोप्यमपि वक्ष्यामीत्यादिनिर्देशात् तस्यांगं साधनम् ॥

हे ब्रह्मा ! मेरा शास्त्रोक्त ज्ञान अतिगोप्य है अनुभव भक्ति और सब साधन सहित है सो सुन । अब स्वामी बतावें इसमें पुनरुक्तिदोष किधर है ॥

स० पृ० ३३२ पं० १२

भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलयमें भी कभी मोहको प्राप्त नहीं होंगे ऐसा लिखके पुनः दशमस्कंधमें मोहित होके वत्सहरण किया इन दोनोंमेंसे एक बात सच्ची दूसरी झूंठी ऐसा होकर दोनों बातें झूंठी ॥ ३६२ । १३

समीक्षा–जब स्वामीजीने भागवतके अर्थोंहीमें गडबडी की है तौ वेदोंमें जितनी गडबडी की हो उतनी ही थोडी इसका अर्थ ही अशुद्ध किया है सुनिये इसका अर्थ–

एतन्मतं सम्यगनुतिष्ठ समाधिना चित्तैकाग्र्येण कल्पेषु ये विकल्पा विविधा सृष्टयस्तेषु विमोहं कर्तृत्वाभिनिवेशं न यास्यतीति

परम समाधिसे इस मतमें तुम स्थित रहोगे तौ कल्पोंके विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है इसके हम कर्त्ता हैं ऐसे मोहको प्राप्त नहीं होंगे ॥

भगवान्ने यह वर दिया कि कल्पोंकी अनेक सृष्टिमें हम कर्ता हैं ऐसे मोहको प्राप्त नहीं होगे जो समाधिमें स्थित रहोगे, सो वत्सहरणमें कोई सृष्टिका विकल्प नहीं था, होता तौ उसमें मोह होना शंकाका स्थान था, किन्तु यहां तौ ब्रह्माजीको भगवान्के चरित्रोंमें मोह होगया था इस कारण यह कहना ठीक नहीं कि, ब्रह्माजी मोहे, और विकल्पके अर्थ यहां प्रलयके भी नहीं हैं विविध सृष्टियोंके हैं । आप भागवतको जब समझ नहीं सके तो चेलोंके लिये तौ यह अथाहसमुद्र है ॥

स० पृ० ३३२ पं० १९ से जब वैकुंठमें राग द्वेष ईर्ष्या क्रोध दुःख नहीं है तौ सनकादिकोंको वैकुंठके द्वारमें क्रोध क्यों हुआ, जय विजय तौ द्वारपाल थे उन्हें स्वामीकी आज्ञा पालन करनी अवश्य थी, उन्होंने सनकादिकोंको रोका तौ क्या अपराध हुआ, जो कहा कि, तुम पृथ्वीमें गिरपडो इसके कहनेसे यह सिद्ध होता है कि, वहां पृथ्वी न होगी आकाश वायु अग्नि और जल होगा तौ ऐसा द्वार मंदिर और जल किसके आधार थे, पुनः जय विजयके विनय करनेपर उन्होंने कहा जो प्रेमसे नारायणकी भक्ति करोगे तौ सातवें जन्म और विरोधसे भक्ति करोगे तौ तीसरे जन्ममें वैकुण्ठ मिलेगा । इस पर विचार है जय विजय नारा-

न्यणके नौकर थे उनकी रक्षा करना नारायणका काम था नारायणका उचितथा र्कि, जय विजयकी सहायता कर सनकादिकोंको दंड देते उन्होंने भीतर आनेमें क्यों हट किया और नौकरोंसे क्यों लडे ॥ २९२।१८

समीक्षा-विदित होता है कि, स्वामीजीने भागवतका दर्शन भी नहीं किया जय विजयकी क्या बात है यह कथा यों है कि, जय विजय द्वारपाल थे जब सनकादिक वैकुण्ठमें नारायणके दर्शनको गये तौ जय विजयने हँसकर भीतर जानेसे रोका, इसपर सनकादिकोंने कहा कि, हमारे आने जानेकी कहीं रोक-टोक नहीं और थी भी नहीं, तुमको यह अनर्थ कहाँसे उत्पन्न हुआ जो वैकुण्ठमें होनेके योग्य नहीं, इस कारण जैसा तुम्हारे चित्तमें भाव हुआ है ऐसे ही लोकमें तुम जन्म लो ॥

लोकानितो व्रजतमंतरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रयईमे रिप-वोऽस्य ॥ स्कं० ३ अ० १५ श्लो० ३४

इन लोकोंमें तुम जाओ जहाँ भेदभाव दृष्टिसे काम क्रोध लोभ यह पापी हैं यही इस जीवके तीनों रिपु हैं ॥

पश्चात् नारायणने दर्शन देकर कहा कि, इन्होंने निश्चय अपराध किया जो मेरी विना आज्ञा तुमको रोका, मेरा किसी समय यह वचन नहीं कि, ब्राह्मणोंको रोको, इस कारण यह कुछ दिन इसका फल भोग फिर मेरे पास आवेंगे ॥

विचारनेकी बात है कि, स्वर्गमें क्रोधादियुक्त पुरुष कैसे रह सक्ता है सनकादिक कहते हैं ॥ भा०

तद्वामनुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुम्प्रकृष्टमिह धीमहि मंदधीभ्याम् । ३ । १५ । ३४

इस कारण इन वैकुण्ठनाथ परमश्रेष्ठ ईश्वरके, मंदभागी तुमसरीखे सेवकोंका जिसमें कल्याण हो वह हमने करनेका विचार किया है ॥

यह विचार सनकादिकोंने शाप दिया कि, वैकुण्ठमें ईर्ष्यावाला नहीं रहसक्ता इसी कारण जय विजय मनुष्यलोकमें आये जैसे यह लोक निराधार है उसी प्रकार वैकुण्ठ भी निराधार है वहाँ भी सब कुछ पृथ्वी आदि हैं और "तुम पृथ्वीमें गिरो वैरसे भक्ति करो सात जन्ममें तरो" यह वातें स्वामीजीने इस कथामें अपनी ओरसे मिलाई हैं स० प्र० पृ० ३३२ पं० २४ सनकादिकोंने जय विजयसे कहा जो प्रेमसे भक्ति करोगे तौ सातवें जन्म और विरोध भक्ति करोगे तौ तीसरे जन्ममें वैकुण्ठको प्राप्त होंगे ॥ ३९२ । २७

समीक्षा-यह प्रेमभक्ति और विरोधादि करनेकी बात भी भागवतमें सनक दिकोंने नहीं कही स्वामीजीकी गप्पलीला है ॥

स० पृ० ३३३ पं० ९ उनमेंसे हिरण्याक्षको वाराहने मारा उसकी कथा इ प्रकार है कि, वोह पृथ्वीको चटाईकी समान लपेट शिरहाने धर सोगया विष्णु वाराहका रूप धारण करके उसके शिरके नीचेसे पृथ्वीको, मुखमें धर लिया वो उठा दोनोंकी लडाई हुई वाराहने हिरण्याक्षको मारडाला इनसे कोई बूझे पृथ्वी गोल है वा चटाईके समान तौ कुछ न कहसकैंगे क्यों कि, पौराणिक लोग तौ भूगोलविद्याके शत्रु हैं भला जब लपेटकर ही शिरहाने धरली आप किसपर सोया और वाराहजी किसपर पग धरके दौडआये पृथ्वी तौ वाराहजीके शिरपर थी दोनों लडे किसके ऊपर वहाँ कोई ठहरनेको जगह नहीं थी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजीकी छातीपर खडे होकर लडे होंगे ॥ ३९३ । ८

समीक्षा-विदित होताहै कि, स्वामीजीने कभी भागवतको तौ अवलोकन ही नहीं किया पर कभी बालकोंमें बैठकर कहानी सुना करतेहोंगे वो ही यहाँ ऊट-पटांग लिखदी " यह तौ हैं ही परमहंस, भागवतसे विचारेको काम ही कब पडाथा !" धन्य है :इसी भरोसे भागवतका खंडन करनेलगे यह कथा यों है कि, जब पृथ्वी थोडी होनेके कारण भगवान् (वाराह) " पृथिवीं वरतीति वराहः " " जो पृथ्वीको उद्धार करै वह वराह" पृथ्वीको उद्धार करनेको जलमें कूदे थोडी पृथ्वी थी शेष महाप्रलयके जलमें मग्न थी पृथ्वीको वाराहजी उठाते निराधार आरहे थे कि, उसी समय-

हरेर्विदित्वा गतिमंग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ।
ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥
श्लो० २ स्कं० ३ अ० १८

हिरण्याक्षने नारदजीसे पूछा कि मेरी समान कोई युद्ध करनेहारा बताओ नारदजीने कहा वाराहजी पृथ्वी लेनेगये हैं वह तुमसे युद्ध करेंगे यह सुनकर वह पातालमें प्रवेश कर गया और भगवान्को पृथ्वी लेआते देख कठोर वचन कहने लगा भगवान् उस समय जलसे पृथ्वी निकाल ॥

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामुदधात्स्वसत्त्वम् ॥
अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीसे स्तुतिको प्राप्त सब देवताओंसे फूलोंकी वरसा स्वीकार करते श्रीभागवत पृथ्वीको जलपर धरकर अपनी आधारशक्तिसे स्थित करते हुए और पश्चात्॥

मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदंतं दुरुक्तैःप्रचंडमन्युःप्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ भाग०

कठिन वाक्योंसे वारंवार मर्मस्थानमें पीड़ा देते हिरण्याक्षसे वाराहजी हसकर बोले और फिर युद्ध कर मारडाला यह युद्ध पृथ्वीके स्थापित होने उपरान्त पृथ्वी पर हुआथा तीसरे स्कंधमें यह कथा विस्तारपूर्वक है अब स्वामीजीके छल प्रपंचको देखना चाहिये कि, क्या तौ कथा है और क्या लिखदी है यह भागवतसे विश्वास उठानेको स्वामीजीने गपोडा लिखदिया है यह चटाईकी तरहका लपेटना शिरके नीचेसे निकाल लेजाना इत्यादि स्वामीजीने बनावट लिखी है पौराणिक लोग तौ भूगोल विद्याके शत्रु नहीं हैं किन्तु सब सत्य विद्याओंके आप ही शत्रु हो ॥

स० पृ० ३३३ पं० १७ हिरण्यकशिपुका लडका प्रह्लाद अपने अध्यापकसे बोला मेरा पट्टीमें रामराम लिखदो, उसके पिताने इस बातको मना किया उसने न माना तब उसे बांधके पहाडसे गिराया कूपमें डाला परन्तु उससे कुछ न हुआ तौ एक लोहेका खंभा अग्निमें तपाके उससे बोला * जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा है तौ तू इसे पकडनेसे न जलैगा प्रह्लाद पकडनेको चला मनमें शंका हुई कि, जलनेसे बचूंगा या नहीं नारायणने उस खंभेपर छोटी छोटी चैंटियोंकी पंक्ति चलाई उसको निश्चय हुआ झट खंभेको जापकडा, वह फटगया और उसमेंसे नृसिंहने निकल उसके बापको मारडाला, प्रह्लादको प्यारसे चाटने लगा उससे कहा वर मांग उसने पिताकी सद्गति मांगी नृसिंहने कहा तेरे इक्कीस पुरुष सद्गतिको गये अब यह देखो भागवतके बांचनेवालेको कोई पकड पहाडसे गिरावै तौ कोई न बचावै चकनाचूर होकर मर ही जावे प्रह्लादको उसका पिता पढनेको भेजताथा क्या बुरा काम कियाथा, प्रह्लाद ऐसा मूर्ख था कि पढना छोड बैरागी होना चाहताथा, जो खंभेकी बात सच्ची माने उसे गरम खंभेके साथ लगा देना चाहिये जब वह न जलै तौ जाने और नृसिंह भी न जला तीसरे जन्ममें वैकुंठके आनेका वर सनकादिकका था क्या उसे नारायण भूलगया, भागवतकी रीतिसे ब्रह्मा प्रजापति कश्यप हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढिमें होताहै, इक्कीस पीढी प्रह्लादकी हुई भी नहीं इक्कीस पुरुष सद्गतिको गये यह कहना प्रमाद है और फिर ये रावण कुंभकर्ण शिशुपाल दंतवक्र हुए तौ नृसिंहका वर कहां उडगया ॥ ३९३ । २२ से

समीक्षा—यह कथा भी स्वामीजीने गपोडेसहित लिखी है, जब भागवत देखी

---

* भा० प्रकाशमें यह और प्रह्लादकी कथा दोनों जबानी लिखी बताई है क्या खूब खण्डन भागवतका करो और कथा जबानी लिखो स्वामीजीके इस मन घडन्तका कहीं ठिकाना है महामिथ्या प्रलाप है और छोटे स्वामीका भी घोर प्रलाप है ।

नहीं थी तो क्यों विना समझे लिखबैठे यहां तो बाबाजीने खुल्लमखुल्ला प्रह्लादके नास्तिक पिताका जो ईश्वरही नहीं मानता पक्ष लिया है क्यों न हो यह भी तो एक प्रकारके अनीश्वरवादी ठहरे जब प्रह्लादको ईश्वरकी कृपासे पूर्ण ज्ञान होगयाथा तो उसे क्या आवश्यकता थी कि, और अधिक पढै, क्या पढके स्वामीजीकी नौकरी करनीथी, और ज्ञानी ऐसे हुए कि पाठशालाकेसब विद्यार्थी उनके संगसे ज्ञानी होगये, पिताने सब प्रकारके दुःख दिये और यह कहताथा कि, मेरे सिवाय कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, प्रह्लाद कहताथा यह बात नहीं वह सर्वव्यापक है यह सुन हिरण्यकशिपु क्रोध करके बोला–

सप्तमस्कंध अ० ८ श्लो० १३, १९

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तंभे न दृश्यते ॥ १ ॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्स्तंभं तताडातिबलः स्वमुष्टिभिः ॥ २ ॥

जो तू कहताहै कि, तुम ईश्वर नहीं हो वह सर्वज्ञ और तुमसे पृथक् है तौ वह कहां है और सर्वत्र है तौ इस स्तंभमें क्यों नहीं दीखता १. ऐसे पुत्रसे कठोर वचन कह वह राक्षस खड्ग ग्रहण कर आसनसे उठा और एक घूसा स्तंभमें मारा कहां है इसमें होय तौ बोले नहीं तो तुझे मार डालूंगा. इतना कहते ही उसमेंसे नृसिंहजी निकले और उस राक्षसको पकड अपने नखोंसे उसका पेट चीर मार डाला और प्रह्लादके वर मांगनेके समय कहा (त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ) हे पापरहित ! पिता पितृ आदि और आगेके इक्कीस पुरुषोंके सहित तेरे पिताकी सद्गति होगी यह बात कुलके ऊपर कही है और सद्गति कहनेका प्रयोजन यह है कि, नीचयोनिमें जन्म नहीं होगा किन्तु जहां होगा बडे ऐश्वर्यसहित होगा इसी कारण ब्राह्मणोंके वचनानुसार तीनों जन्ममें रावण शिशुपालादि बडे ऐश्वर्यवान् हुए जिनकी दुर्गति नहीं हुई तीसरे जन्ममें उद्धार होगया चौथी पीढी लिखी है सो भी असत्य है क्यों कि ब्रह्मा–प्रजापति मरीचि कश्यप हिरण्याक्षादि, इस कथामें गरम खंभके ऊपर चींटियोंके फिरना प्रह्लादका डरना आदि यह बातें स्वामीजीने गपोडेकी लिखी हैं जिसकी ईश्वर रक्षा करनी चाहता है उसे सब प्रकार बचाताहै भक्तोंकी बडी महिमा है भक्ति करके कोई देखले तौ मालूम होजायगी कि भक्तोंकी क्या महिमा है भक्तजन तो उसीके आश्रित रहतेहैं स्वामीजीके ग्रंथोंमें तौ भक्ति और विश्वासका लेश भी नहीं गरमखम्भेकी बात महा झूंठ लिखी है यथा किसी समा-

जीमें दम है जो इस बातको भागवतमें दिखावे छोटे स्वामी कुछ आपमें हिम्म
हो तो बोलो ।

स० प्र० पृ० ३३४ पं० १२

रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति ।

कि अक्रूरजी कंसके भेजनेसे वायुवेगके समान दौडनेवाले घोडोंपर बैठ
सूर्योदयसे चले और चार मील गोकुलमें सूर्यास्तसमय पहुँचे अथवा घोडे भागव
बनानेवालेकी परिक्रमा करते रहे होंगे वा मार्ग भूलकर भागवत बनानेवालेके घर
घोडे हांकनेवाले और अक्रूरजी आकर सोगये होंगे ॥

समीक्षा-यह तीसरा वाक्य भी यही सूचना करता है कि, स्वामीजीने भागव
नहीं देखी भंगकी तरंग या हुक्केकी गुडगुडाहटमें यह बातें सूझी होंगी भाग
तमें कहीं यह श्लोक ही नहीं है स्वामीजी तौ अपनी चाल चले कि, इस ग्रंथप
लोगोंका विश्वास उठजाय परन्तु औंधे मुँह गिरे यह घोडे स्वामीजीके सत्यार्थप्रक
और बुद्धिमें घूमते होंगे सुनिये यहां यों लिखा है ॥

**अक्रूरोपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथ-
मास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ भा० द०अ०३८श्लो०**

उस रात्रिमें अक्रूरजी मथुरामें रह प्रातःकाल रथमें बैठ नंदरायके गोकुल
चले इसके सिवाय और कुछ नहीं है वायुवेगसे चले यह स्वामीजीकी भंग
गपोडा है और जब अक्रूरजी कृष्णको लेकर चले तौ यह श्लोक है ॥

**भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ २ ॥
भा० अ० ३९ श्लोक ३८**

अर्थात् अक्रूरसहित श्रीकृष्ण बलराम वायुवेगयुक्त रथकी चालसे यमुनाजी
आये बस देखनेकी बात है कि, ऊपरके श्लोकका आशय स्वामीजीके श्लोकसे
खुलता अब बुद्धिमान् विचारैं कितनी बडी जालसाजी की है चेलोंने एक पद

---

१ रथेन वायुवेगेन भाग० स्कं० १० अ० ३९ श्लो० ३८

जगाम गोकुलं प्रति भा० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४ (पृ० ३१४ । १२)

२ समीक्षा-यह जगाम गोकुलं प्रति० भी मिथ्या ही लिखा है कहीं भागवतमें ऐसा नहीं
मिथ्यावादियो धन्य यही सत्यता है अब तुलसीराम क्या कहेंगे । भा० प्र० यही पता तुलसीर
भी उतारा है इतना श्लोक तो लिखिये कि कहां यह पद आया है जिसमें 'जगाम गोकुलं
यह पाठ है अन्यथा जैसे बडे स्वामी तैसे छोटे ।

अध्यायके नामसे नया बनाया एकपद ३९ का इन दो पदोंका आधा श्लोक बनाया अर्थ एक निकला क्या यह कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनबा जोडा की कहावत चरितार्थ नहीं हुई, अबके छपे सत्यार्थप्रकाशमें पदोंके खण्डके अध्याय श्लोक लिख दिये हैं, परन्तु अर्थ वही रक्खा है तौ क्या कोई अर्थसिद्धि हो सकी है यदि यों ही पद निकाले जायँ तौ सत्यार्थप्रकाशमेंसे कहींसे दयानंद कहींसे महा, कहींसे मूर्ख, कहींसे धोखेबाज पद निकालकर उनकी बडाई करसक्ते हैं, बुद्धिमान् विचार लेंगे स्वामीका कैसा ज्ञान था । और अक्रूरजी गोकुलको चले गोकुल मथुरासे कितनी दूर है और प्रेममें मग्न होनेके कारण उनको घोडे चलानेकी सुरत न रही इस कारण देरमें पहुँचे और वहांसे शीघ्र चलकर यमुनाके किनारे आये, स्वामीजी सडक कच्ची थी या पक्की बारह मीलका हिसाब लगाओ।

स० पृ० ३३४ पं० १८ पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और बहुत लम्बा लिखा है मथुरा और गोकुल दबकर पोपजीका घर भी दबगया होगा ॥१५३॥२१॥

समीक्षा—यह भी कहना असत्य है कि, पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और उससे अधिक लम्बा था भागवतमें तौ यों लिखा है ॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥
पतमानोपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ॥
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम्-भा.द.पू.अ.६श्लो. १३।१४

जब श्रीकृष्ण उसके प्राण निकालने लगे तब वह गांवके बाहर आई तब वह बडी व्याकुल होके हाथपैर फैलाये हुए अपना रूप बढाकर ऐसे गिरी जैसे वज्र लगके वृत्रासुर गिराथा १ उसका देह छः कोसके भीतरी वृक्षोंको चूर्ण करता हुआ गिरा यह अद्भुत बात हुई पूतनाविषयमें भी आप कुछ नहीं समझते हैं श्लोकके अर्थ लगानेतक नहीं आते इसमें तौ लिखा है कि, हे राजन् ! गिरे हुए उसके देहने छः कोशके वृक्षोंको चूर्ण करदिया इसका तौ यही अर्थ है कि, वह मरते समय अपना बडा रूप धारण कर इतनी तडपी कि, उसके छटपटानेसे छः कोसके वृक्ष चूर्ण होगये, आशय यह कि, जैसे मतवाला हाथी वनका नाश कर देता है कुछ हाथीका शरीर इतना बडा नहीं होता इसी प्रकार पूतना ऐसी तडपती फिरी कि, छः कोसके वृक्ष चूर्ण होगये, मरनेपर भी शरीरमें धनंजय वायु रहता है, अकस्मात् प्राण जानेसे तडफडाता है, जैसे छपकलीकी पूंछ तडपती रहती है, इसी प्रकार पूतना वनमें तडपती फिरी उसके आघातसे वृक्ष चूर्ण होगये और यही आश्चर्य हुआ ॥

स० पृ० ३३४ पं० २१

अजामिलकी कथा उटपटांग लिखी है उसने नारदके कहनेसे पुत्रका नाम नारायण रक्खा मरते समय अपने पुत्रको पुकारा नारायण बीचमें कूदपडे, जिन्हों उसके मनका भाव न जाना कि, मुझे पुकारताहै या अपने पुत्रको, ज्योतिश्शास्त्र विरुद्ध सुमेरुका परिमाण लिखा है प्रियव्रत राजाके रथकी लीकसे समुद्र होग उनचास कोटि योजन पृथ्वी है अब कोई नारायणका नाम लेकर कैदसे क न छूट जाता, इत्यादि मिथ्या बातोंका गपोडा भागवतमें लिखा है ॥३५४।२५

समीक्षा-अजामिलकी कथा भी असत्य लिखी है नारदजी कभी अजामिल पर नहीं आये न पुत्रके नाम लेनेसे नारायण आये, यह स्वामीजीने अनपढ लोगोंक धोखा दिया है यहाँ तो ऐसा लिखाहै ॥

निशम्यम्रियमाणस्यब्रुवतोहरिकीर्तनम् ॥

भर्तुर्नाममहाराजपार्षदाः सहसापतन् ॥३०॥स्कं० ६ अ०

मरते समय नारायणका नाम कीर्तन सुनकर भगवान्के पार्षद उसके समी आये नाम तौ नारायणका मुखसे निकला उसका पुत्र नारायण था तो क्या हुअ यथार्थमें नारायणशब्द वाच्य तो भगवान्ही है स्वामीजीको विदित नहीं (यस नाम महद्यशः) जिसका नाम ही बडा यश है, नामके कारण अनेक तरगं भागवत स्वामीजीने देखी नहीं, नारायण आये नारदके कहनेसे नाम रक्खा य सब झूंठ है। यदि स्वामीजीके किसी चेले या छोटे स्वामीमें कुछ दम हो त बतावें कहां लिखा है । जो नारायणका नाम लेता है कैदसे छूटना क्या संसा बन्धनमें भी नहीं पडता, अमृत जाने अनजाने पीनेसे अपना गुण करताही है सुमेरु और पृथ्वीका परिमाण जो भागवतमें लिखाहै सत्य है दूर न जाइये अप स्वीकार किये योग सूत्रपर व्यासभाष्यको देखिये जो इस पुस्तकमें ब्रह्माण्डप्रकर पर हमने लिखाहै उसमें आप सब लोक और भूमिमण्डलको जानजांयगे भागव में चन्द्रसूर्यादि नक्षत्र पर्यन्त स्थूल प्रतिबिम्ब भूमिका परिणाम लिखा है य हमारी भागवत भूमिकामें अच्छी प्रकार देखिये जो १९५४ की छपी है जैसे

अब आप मानतेहैं यह कदाचित् अंग्रेजोंकी बताई मानतेहोंगे परन्तु जबतक अमेरिका देश विदित नहीं हुआ था तबतक पृथ्वी उतनीही समझी थी और यदि और देश नये इसी प्रकार मिलेंगे तौ क्या उन्हें जलमें ही मग्न कर दोगे, ब्रह्मा ण्डका विस्तार भागवतमें व्यासजीने अपने भाष्यकेही अनुसार लिखाहै, प्रियव्रतके रथकी लीकसे समुद्र नहीं हुए, किन्तु उस समय वह आकाशगामी रथपर बैठ सागर देखनेगया और उसने सब सागर देखकर लोगोंको प्रगट कर बताये समु

अध्यायके नामसे नया बनाया एक पद ३९ का इन दो पदोंका आधा श्लोक बनाया अर्थ एक निकला क्या यह कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनबा जोडा की कहावत चरितार्थ नहीं हुई, अबके छपे सत्यार्थप्रकाशमें पदोंके खण्डके अध्याय श्लोक लिख दिये हैं, परन्तु अर्थ वही रक्खा है तो क्या कोई अर्थसिद्धि हो सक्ती है यदि यों ही पद निकाले जायँ तो सत्यार्थप्रकाशमेंसे कहींसे दयानंद कहींसे महा, कहींसे मूर्ख, कहींसे धोखेबाज पद निकालकर उनकी बढाई करसक्ते हैं, बुद्धिमान् विचार लेंगे स्वामीका कैसा ज्ञान था । और अक्रूरजी गोकुलको चले गोकुल मथुरासे कितनी दूर है और प्रेममें मग्न होनेके कारण उनको घोडे चलानेकी सुरत न रही इस कारण देरमें पहुँचे और वहांसे शीघ्र चलकर यमुनाके किनारे आये, स्वामीजी सडक कच्ची थी या पक्की बारह मीलका हिसाब लगाओ।

स० पृ० ३३४ पं० १८ पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और बहुत लम्बा लिखा है मथुरा और गोकुल दबकर पोपजीका घर भी दबगया होगा ॥३५४॥२१॥

समीक्षा—यह भी कहना असत्य है कि, पूतनाका शरीर छः कोस चौडा और उससे अधिक लम्बा था भागवतमें तो यों लिखा है ॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥

विद्वद्धनेशशिष्येण भिषक्केशवसूनुना ।
तेन वेदपदस्थेन बोपदेवद्विजेन यः *

बोपदेवके बनाये धातुपाठ प्रसिद्ध ग्रन्थमें लिखाहै धनेश्वरके शिष्य वैदरा केशवजीके पुत्र बोपदेव उपनाम वेदशब्दने धातुपाठ बनाया है अब कहिये कह बंगाली कहां द्रावडी दोनोंके पिताका नाम भिन्न होनेसे यह भाई नहीं हैं यह त सिद्ध होगया ॥

१२६३ विक्रममें कुतबुद्दीन दिल्लीका राजा था उसके समय बखतिया खिलजीके उपद्रवसे नदियाशान्तिपुरके राजा लक्ष्मणसेन जगन्नाथ पुरीको च गये इनकी सभामें जयदेव थे (तारीख फरिस्ता) यह राजा पंडित भी थ गीतगोविन्दमें प्रथम सर्गका चौथा श्लोक (वाचः पल्लवयति) इसी राजाका यह वृत्तान्त गीतगोविन्दकी टीका मानाकी तथा नारायण भट्टीमें है ॥

गीतापर जो ज्ञानेश्वरी टीका है वह दाक्षिणदेशस्थ अलंदी ग्रामवास ज्ञानेश्वर महात्माकी है १३४७ संवत्में वह टीका बनी उनसे हेमाद्रि होगये इनके पास बोपदेव रहते थे यह समय बोपदेवका है दोनोंमें लग भग १०० वर्ष अन्तर है ॥

अब इस विवादको इतनेमें ही मिटातेहैं कि, श्रीस्वामी शंकराचार्यको आप सत्यार्थ प्र० २८६ में बाईस सौ वर्ष लिखे हैं उन्होंने वासुदेवसहस्र नामके भा 'स आश्रयः परब्रह्म' पचपनकी व्याख्या परयत्पदोरूप १३७ नामकी व्याख्या 'सत्वंरजस्तमः इतिप्रकृतेर्गुणाः' २१९ नामकी, व्याख्यामें ' छन्दोमयेन गरुडेन तथा चतुर्दशमतविवेकमें ' परमहंसधर्मो भागवते पुराणे कृष्णेन उद्धवायोपादि इति ' यह भागवतका प्रमाण दियाहै तथा रामानुजीय सारसंग्रहमें तथा शंक स्वामीके पूज्यगौडपादाचार्यने पंचीकरण व्याख्यामें 'जगृहे पौरुषं रूपं भगव न्महदादिभिः' यह भागवतका प्रमाण ग्रहण कियाहै ॥

जब कि बहुत पहलेसे भागवतपर अनेक टीका विद्यमान हैं तब बोपदेव बनाई कैसे और स्वयं बोपदेवने श्रीमद्भागवतपर परमहंसप्रिया टीका लिखी इनके बनाये मुक्ताफलकी टीका हेमाद्रीने की है उसमें इनके ग्रंथोंकी गणन भी लिखी है ॥

यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनाः स्फीताः प्रबन्धा दश

* इस निर्णयपर मा० प्रकाशका पाण्डित्य लोप होगया है, तुलसीरामजी शुकदेवजीका शरी रपात भारतमें वर्णित नहीं है किन्तु शरीरके सहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति है और देवलोकमें, भार भी सुनायाहै ।

प्रख्याता नव वैद्यकेथ तिथिनिर्धारार्थमेकोद्भुतः ।
साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य भु-
व्यन्तर्वाणिशिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः ॥

अर्थात् वोपदेवके व्याकरणमें दश वैद्यकमें तीन तिथिनिर्णयमें एक साहित्यमें तीन भागवततत्त्वनिर्णयमें परमहंसप्रिया मुक्ताफल हरिलीला यह तीन ग्रन्थ बनाये हैं यदि भागवत बनाते तौ इस ग्रन्थमें भागवत बनाया ऐसा लिखनेमें क्या कष्ट पडता परमहंसप्रिया टीकामें भागवतको आर्ष लिखा है इससे व्यासरचित स्पष्ट है इसने हरिलीलामृतमें लिखा है ॥

विदुषा वोपदेवेन मंत्रिहेमाद्रितुष्टये ॥
श्रीमद्भागवतस्कंधाध्यायार्थादि निरूप्यते ॥ तथा
हेमाद्रिर्वोपदेवेन मुक्ताफलमचीकरत् ॥

वोपदेवने हेमाद्रिकी प्रसन्नताके निमित्त भागवतके स्कंध अध्यायोंकी अनुक्रमणिका निरूपण करी है यह हमारे मुरादाबादमें छपी मिलती है जिसकी इच्छा हो देखले तथा हेमाद्रिने मुक्ताफल ग्रंथ बनवायाहै अब इस बातका विचार करना चाहिये कि बहुधा टीकाकार जिस ग्रंथपर टीका करते हैं उसके अध्याय श्लोक और संक्षेप विषय निरूपण करते हैं हेमाद्रिके कथनसे भागवतका सूचीपत्र बनादिया तौ क्या भागवत वोपदेवकी बनाई होगई एकश्लोकी रामायण श्लोक किसीने बनाया तौ क्या वाल्मीकि रामायण उस पुरुषका हो गया यह आपहीके मुखसे शोभा पाती है ।

फिर यह पहले श्लोक ही खोगये, बाद हेमाद्रिमें भागवतकी अनुक्रमणिकाका क्या प्रसंग वहां तौ धर्मशास्त्रका निबंध दानखण्ड व्रतखण्ड वर्णित है, विदित होताहै कि स्वामीने हेमाद्रि देखा भी नहीं भागवतके प्रमाण प्रसंग पर मिलेंगे हरिलीला ग्रन्थमें भागवतकी अनुक्रमणिका लिखी है, जिसका प्रथम श्लोक लिख चुके हैं धन्य पहले श्लोक खोगये दोका आशय याद रहा, शेष आठ श्लोक क्यों न याद रहे इस महा अनर्थका क्या ठिकाना है ।

जो यह श्लोक खोगये और नये श्लोक बनाकर धोखा देनेके लिये लिखा कि, यह श्रीमद्भागवत मैंने बनाया है ऐसा वहां नहीं है यहां तो अनुक्रमणिका लिखीहै हरिलीलाकी टीका हेमाद्रिने बनाई है इस कारण आपका यह कथन है कि इसका अवकाश नहीं था सर्वथा अशुद्ध है टीकाकारोंकी शैली होती है कि अध्यायके प्रथम कोई श्लोक उसके विषयका लिखतेहैं तथा उसके पर्व स्कन्ध या भागवतमें अध्यायोंकी

सूची भी लिखा करते हैं देखो श्रीमद्भागवतके टीके पर श्रीधरने भी ऐसा ही कि है, इससे इस विषयमें स्वामीजीने जो कुछ लिखा है वह सब मिथ्या धोखा देने कारण लिखा है वह किसी प्रकार प्रमाण नहीं है।

पुराणोंमें इसका माहात्म्य भी लिखा है जिसमें भागवतके सब चरित्र वर्ण होगये हैं सो माहात्म्य भागवतके साथ लगा हुआ रहता है जो और पुराणोंमें संग्रह किया गया है यदि यह बोपदेवकी बनाई होती तो और पुराणोंमें इसक वर्णन क्यों होता यह भागवत भी व्यासजीका बनाया है इसमें प्रमाण यह है ॥

मत्स्यपुराणमें लिखा है ॥

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ॥
वृत्रासुरवधोपेत तद्भागवतमिष्यते ॥ १ ॥
लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् ॥
प्रोष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ॥ २ ॥
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ॥
मत्स्यपुराणे । पुराणान्तरे च-
ग्रंथोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कंधसंमितः ॥
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ॥ १ ॥
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ॥
पद्मपुराणे अम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः ।
अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ॥
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम्॥ १ ॥ पाद्मे.

भाषार्थः ।

जिसमें गायत्रीको आगे लेकर धर्म वर्णन किया जाता है और वृत्रासुरका वध है उसीका नाम भागवत है १ जो कोई इसे लिखाकर सुवर्णके सिंहासन सहित भादोंकी पूर्णमासीको दान करता है वह परम गतिको जाता है इस ग्रंथमें अष्टादश सहस्र श्लोक हैं और पुराणोंमें लिखा है जिस ग्रन्थमें अठारह सहस्र श्लोक बारह स्कंध हयग्रीव ब्रह्मविद्या वृत्रासुर वध १ गायत्रीसे प्रारम्भ है उसीको भागवत कहते हैं पद्मपुराणमें लिखा है गौतमजी कहते हैं-हे अम्बरीष ! जो संसारसे पार होनेकी इच्छा करता है तो शुकदेवजी कथित भागवतको सदा सुन और पाठ कर॥

इन श्लोकोंसे यह भली भाँति प्रगट होता है कि श्रीमद्भागवत अष्टादशपुराणान्तर्गत व्यासकृत यही है और इसमें माखन लीला आदि समाधी भाषा है

इसमें रहस्य है और रासलीलामें जो गोपियाँ थीं वोह सब वरदान पाये हुए थीं और श्रीकृष्णसे भिन्न न थीं देखो हमारा टीका किया रास पंचाध्यायी और शुकदेवजी योग शरीर धारण किये जीवन्मुक्त यथेच्छाचारी थे ॥

मार्कण्डेयपुराणप्रकरणम् ।

स० पृ० ३३१ पं० २३

मार्कंडेयपुराणमें रक्तबीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पडनेसे उसके सदृश रक्तबीजके उत्पन्न होनेसे सब जगत्में रक्तबीज भरजाना रुधिरकी नदीका वह चलना आदि गपोडे बहुतसे लिखे हैं जब रक्तबीजसे सब जगत् भरगया तो देवी और देवीका सिंह और उसकी सेना कहां रही, जो कहो कि देवीसे दूर थे तो सब जगत् रक्तबीजसे नहीं भरा था, भरजाता तो पशुपक्षी मनुष्यादि प्राणी वृक्षादि कहां रहे थे यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवालेके घरमें भागके चले गये होंगे ॥ ३५१ । २२

समीक्षा–रक्तबीजसे जगत्का भरजाना श्लोकका आशय नहीं है किन्तु यही आशय है कि रक्तबीज बहुतसे उत्पन्न होजानेसे उस संग्राममें जिधर तिधर रक्त- बीज ही दृष्टि आने लगे थे जैसे जब नदीमें जल अधिक आ जाता है तो जलके किनारे खडे होनेवालोंको जल ही जल दिखाई देता है तब वह यह कहने लगते हैं कि आज यह जगत् जलमय हो रहा है सिवाय जलके और कुछ दृष्टि नहीं आता यद्यपि सब जगत् जलमग्न नहीं है परन्तु कहनेमें यही आता है ऐसे ही रक्तबीजकी जगत् भरजानेकी वार्ता कहकर उसकी अधिकता दिखाई है अतिश- योक्ति अलंकार है ॥ तुम इस बातको क्या जानो ब्याहे न बरात गये ।

ज्योतिश्शास्त्रप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३३६ पं० २४ देखो ग्रहोंका कैसा चक्र चलाया है जिसने विद्या- हीन मनुष्योंको ग्रस लिया है (३५७ । ४) पुनः पृ० ३३७ पं० ७ यजमानो तुम्हारे आज आठवां चन्द्रमा है सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं ढाई वर्षको शनैश्चर पगमें आया है बडा विघ्न होगा पूजा पाठ करोगे तो बचोगे (यह पोपलीला है) पृ० ३३८ पं० ९ सच तो यह है कि सूर्यादिलोक जड हैं न वे किसीको सुख और न वे किसीको दुःख देनेकी चेष्टा कर सकते हैं ३५८ । २२

पृ० ३३९ पं० १ जो धनाढ्य दरिद्र प्रजा राजा रंक होते हैं अपने कर्मोंसे होते हैं ग्रहोंसे नहीं और गणित करके विवाह करनेसे फिर विधवा क्यों होजाती है इस

लिये कर्मकी गति सची ग्रहोंकी गति दुःख सुख भोगमें कारण नहीं ग्रह आकाश और पृथ्वी भी आकाशसे बहुत दूर है इनका संबन्ध कर्ता और कर्मोंका साथ साक्षात्कार नहीं और जो सचे हों तो एक चक्रवर्तीके समान दूसरा क्यों नहीं राजा हो यह उदर भरनेके वास्ते हैं ॥ ३६९ । १७ ।

समीक्षा–स्वामीजी ग्रहोंका फल नहीं मानते कि, जड पदार्थ किसीको दुःख देत नहीं वेद इस बातको कहता है कि, ग्रह दुःख देते हैं यदि ग्रह दुःख नहीं देते तौ क्यों उनकी शान्ति वेदमें की है निश्चय यह उपायसे शान्ति करतेहैं जस छत्रसे सूर्यताप निवारण होता है ऐसेही शान्तिसे ग्रहदशा निवारण होती है ग्रहोंका पृथ्वीसे सम्बन्ध है इससे उनके निवासियोंका भी सम्बन्ध है ॥

शंनोमित्रः शंवरुणः शंविवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शन्नोदिविचराग्रहाः ॥ १९ । ९ । ७
नक्षत्रमुल्काभिहतंशमस्तुनः ॥ १९ । ९ । ९
शन्नोग्रहाश्चान्द्रमसाःशमादित्यश्चराहुणा
शंनोमृत्युर्धूमकेतुः शंरुद्रास्तिग्मतजसः ॥ १९ । ९ । १०
आरेवतीचाश्वयुजौभगंम आमरयिं भरण्य आवहन्तु । १९ । ७।५
अष्टाविंशानिशिवानिशग्मानिसहयोगंभजन्तुमे
योगंप्रपद्येक्षेमंचक्षेमंप्रपद्येयोगंचनमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।१९।८।२
स्वास्तितंमेसुप्रातःसुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ३
अथर्ववेदे १९ । ९ । ७ से०

मित्र वरुण विवस्वान अन्तक अर्थात् काल पृथ्वी अन्तरिक्षके उत्पात और आकाशमें फिरनेहारे ग्रह हमारा कल्याण करें १ नक्षत्र उल्कापातसे हमको कल्याण रहे २ ग्रह चन्द्रमा आदित्य राहु मृत्यु (धूमकेतु) (केतु) और रुद्र हमारा कल्याण करें ३ रेवती अश्विनी भरणी आदि हमको ऐश्वर्य और धन दें ४ अट्ठाईस नक्षत्र योग रात दिन हमको सुखकारक हों ५ प्रातःसाय दिनमें अच्छे शकुन सुखको हों ६

इसमें रहस्य है और रासलीलामें जो गोपियाँ थीं वोह सब वरदान पाये हुए थीं और श्रीकृष्णसे भिन्न न थीं देखो हमारा टीका किया रास पंचाध्यायी और शुकदेवजी योग शरीर धारण किये जीवन्मुक्त यथेच्छाचारी थे ॥

मार्कण्डेयपुराणप्रकरणम् ।

स० पृ० ३३१ पं० २३

मार्कंडेयपुराणमें रक्तबीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पडनेसे उसके सदृश रक्तबीजके उत्पन्न होनेसे सब जगत्में रक्तबीज भरजाना रुधिरकी नदीका बह चलना आदि गपोडे बहुतसे लिखे हैं जब रक्तबीजसे सब जगत् भरगया तो देवी और देवीका सिंह और उसकी सेना कहां रही, जो कहो कि देवीसे दूर थे तौ सब जगत् रक्तबीजसे नहीं भरा था, भरजाता तौ पशुपक्षी मनुष्यादि प्राणी वृक्षादि कहां रहे थे यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवालेके घरमें भागके चले गये होंगे ॥ ३९१ । २२

समीक्षा–रक्तबीजसे जगत्का भरजाना श्लोकका आशय नहीं है किन्तु यही आशय है कि रक्तबीज बहुतसे उत्पन्न होजानेसे उस संग्राममें जिधर तिधर रक्तबीज ही दृष्टि आने लगे थे जैसे जब नदीमें जल अधिक आ जाता है तौ जलके किनारे खडे होनेवालोंको जल ही जल दिखाई देता है तब यह यह कहने लगते हैं कि आज यह जगत् जलमय हो रहा है सिवाय जलके और कुछ दृष्टि नहीं आता यद्यपि सब जगत् जलमय नहीं है परन्तु कहनेमें यही आता है ऐसे ही रक्तबीजकी जगत् भरजानेकी वार्ता कहकर उसकी अधिकता दिखाई है अतिशयोक्ति अलंकार है ॥ तुम इस बातको क्या जानो ब्याहे न बरात गये ।

ज्योतिश्शास्त्रप्रकरणम् ।

स० प्र० पृ० ३३६ पं० २४ देखो ग्रहोंका कैसा चक्र चलाया है जिसने विद्याहीन मनुष्योंको ग्रस लिया है (३९७ । ४) पुनः पृ० ३३७ पं० ७ यजमानके तुम्हारे आज आठवां चन्द्रमा है सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं ढाई वर्षको शनैश्चर पगमें आया है बडा विघ्न होगा पूजा पाठ कराोगे तो बचोगे (यह पोपलीला है) पृ० ३३८ पं० ९ सच तो यह है कि सूर्यादिलोक जड हैं न ये किसीको सुख और न वे किसीको दुःख देनेकी चेष्टा कर सकते हैं ३९८ । २२

पृ० ३३९ पं० १ जो धनाढ्य दरिद्र प्रजा राजा रंक होते हैं अपने कर्मोंसे होते हैं ग्रहोंसे नहीं और गणित करके विवाह करनेसे फिर विधवा क्यों होजाती है ?

कि, जबतक जर्मनकी छायाकी बात नहीं चलीथी तबतक राहुके सिद्धान्तसे ग्रहण सिद्ध होताथा या नहीं और इस समय भी ज्योतिषी उसी सिद्धान्तसे ग्रहण लगातेहैं और जब इस समय भी उसका समय अंग्रेजीहिसाबके अनुसार ही लगता है अपने सिद्धान्तमें किस बातकी कमी है जो बात २ अंग्रेजोंके सिद्धान्तके शिष्य बनरहे हैं इसी कारण आपने अपने वेदभाष्यको भी अंग्रेजी लिबास पहरायाहै जिससे अंग्रेजी पढे श्रद्धा करैं, राहुकेतु ही छायाग्रह हैं यही भूमिकी छायामें प्रविष्ट होते हैं और उस छायाका भयंकर असर होताहै गर्भवती या उसका पति ग्रहणके समय कुछ काम करे तो गर्भस्थ संततिमें विकृति होजाती है राहुका वर्णन वेदमें है साधारणछायासे बुरा असर नहीं होता यह स्वामीजीने अपना शास्त्र छोड अंग्रेजोंका अनुकरण कियाहै ज्योतिषका मत है जब केतु सूर्य एक राशिमें हो तो उनकी छाया पडनेसे तीसरे स्थानके पृथ्वीवासियोंको ग्रहण दीखताहै और एसे ही राहु चंद्रमा एक राशिपर होनेसे चन्द्रग्रहण सबको दीखताहै ॥

पूर्णिमाप्रतिपत्संधौ राहुः संपूर्णमण्डलम् ।
ग्रसते चन्द्रमर्कं च पर्वप्रतिपदन्तरे ॥

यदि पृथ्वी चलती होती तो इसको राशियोंमें आना जाना पूर्व आचार्य मानते और यदि हमारे यहांके सिद्धान्त अशुद्ध होते ग्रहणादिकोंकी यह ठीक विधि कैसे मिलती और किसी २ ने राहुको ही पृथ्वी कहाहै और वेद ब्राह्मणोंमें ही यह राहुकाही आच्छादन करना लिखाहै ॥

देखिये जिस ग्रहलाघवका यह वाक्य है उसका प्रसंग यों है ग्रहणाधिकार संख्या ॥ ॥

श्लोक २ "एवंपर्वान्ते विराह्वर्कबाहोरिद्राल्पांशाः रुंभपश्चेद्ग्रहस्य ।
तैंशानिघ्नाः शंकरैः शैलभक्ताव्यग्वर्काशः स्यात्पृपत्कोंगुलादिः॥

अर्थ-इसी प्रकार पर्वान्त अर्थात् तिथ्यन्तमें सूर्यमें राहु कम कर फिर भुजा बनाय देखना १४ अंशसे न्यून हो तो ग्रहणका होना समझा जाताहै अंश ग्यारहके संग गुण सातका भाग देकर जो प्राप्त हो राहु चढाये हुए सूर्यकी दिशाकी तरफ शर होताहै आगे यह वही श्लोक चतुर्थ है जो कि, स्वामीजी सिद्धान्तशिरोमणिका लिखतेहैं (छादयत्यर्कमिंदुर्विधुंभूमिभाश्छादकच्छाद्यमानैक्यखंडंकुरु इति ४) इसका अर्थ सूर्यको राहु चन्द्रमाके साथ होकर छादन करताहै और चन्द्रमाको राहु भूमिके साथ मिलकर छादन करताहै पूर्व जो दूसरा श्लोक (एवंपर्वा०) है इसका अर्थ पूर्व लिखचुकेहैं राहु सूर्यसे हीन क्यों किया जाताहै यदि

शंदेवीः शंबृहस्पतिः १९।९।११

देवी और बृहस्पति कल्याण करें ॥

देखिये यदि ग्रह दुःख नहीं देते तो उनकी शान्तिके अर्थ प्रार्थना करनी क्यों है क्या यह अनर्थ मलाप है कभी नहीं। वेदमें प्रार्थना इसी कारण है कि शान्त भी होजाते हैं, और जैसे मनुष्योंके कर्म होते हैं तदनुसार ही ग्रह होते हैं, ग्रह और कर्म एकसे ही होते हैं ग्रहोंसे मनुष्योंके कर्म जाने जाते हैं जिनके ग्रह स्पष्ट हैं शुद्ध हैं उसके कर्म प्रत्यक्ष होजाते हैं उनकी जन्मपत्रकी बात कभी झूंठी नहीं होती, राशियोंमें ग्रहोंके आनेसे मनुष्योंके नामोंसे सम्बन्ध होता है, क्यों कि (गृह्णते ते ग्रहाः) ग्रहण करते हैं इसीसे उनका नाम ग्रह है यह ज्योतिश्शास्त्र ही है कि, जिसके द्वारा भूत भविष्य वर्तमान दशा मनुष्य जानसक्ता है, ज्योतिश्शास्त्रका अपेल सिद्धान्त है इसीसे इस देशकी उन्नति हुई, जबसे इसका लोप होता चला तबसे नास्तिकता फैलने लगी, जिस समय एक चक्रवर्ती राजा होगा उस समय कोई दूसरा नहीं होसकता क्यों कि, उसके कर्म और ग्रह ऐसे ही होत हैं दूसरा उत्पन्न ही नहीं होसकता पतिका वियोग भी ग्रहोंके अनुसार होता है यदि पृथिवीका ग्रहोंसे सम्बन्ध न हो तो हीरा माणिक उत्पन्न नहीं होसके भूमि स्थिर न रहे ताप शीत न हो पदार्थविद्यामें तो आप कोरे हैं ॥

स० पृ० ३३८ पं २६

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुंभूमिभाः *

यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचन और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादिमें भी है जब सूर्य भूमिके मध्यमें चन्द्रमा आताहै तब सूर्यग्रहण और जब सूर्य और चन्द्रके बीचमें भूमि आती है तब चन्द्रग्रहण होताहै अर्थात् चन्द्रमाकी छाया भूमिपर भूमिकी छाया चन्द्रमापर पडती है सूर्य प्रकाशरूप होनेसे उसके सन्मुख छाया किसीकी नहीं पडती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीपसे देहादिकी छाया उलटी जाती है वस ही ग्रहणमें भी समझो ॥ ३९९।१०

समीक्षा—वाह स्वामीजी धन्य है ग्रहलाघवका वाक्य लिखकर नाम सिद्धान्तशिरोमणिका लेते हैं और ऐसा ही सूर्यसिद्धान्तका लेख बताते हैं क्या ही अद्भुत बात है कि, जब सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें भूमि आवेगी तो चंद्रग्रहण होगा वस इतनी बात अंग्रेजोंके सिद्धान्तकी लेकर वेद शास्त्रपर कुछ भी विचार न करके आपने सनातन सिद्धान्तपर हरताल फेरदी, स्वामीजी या उनके शिष्य बतावें

* १८९७ वालेमें ग्रहलाघवके अ० ४ श्लो० ४ लिखाहै । पर चेलोंने अप्रमाणीकग्रन्थका वचन रहने क्यों दिया निकालडालना चाहिये।

अर्थ--ग्रहणके समयमें जप दान हवनका महाफल है यह स्मृति पुराण वेदवेत्ता कहते हैं श्रेष्ठोंके योग्य यह चमत्कार्यरूप सूर्यचन्द्रग्रहण स्फुट कहता है इस लोकके ऊपर स्मृति पुराणवचन भास्कराचार्यने स्वरचित भाष्यमें लिखे हैं सो लिखते हैं ॥

स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमसुरार्चने ।
सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ॥ १ ॥
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पंके गौरिव सीदति ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनंतं राहुदर्शने ॥ २ ॥
संध्याराज्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः ।
द्वयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ॥ ३ ॥
उपस्युपति यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ ।
चंद्रसूर्योपरागे च प्राजापत्येन तत्फलम् ॥ ४ ॥

अर्थ--स्नान ग्रहणादिमें करे होम देवपूजन मध्यमें करे सर्वस्वसे भी राहुदर्शनमें श्राद्ध करै १ जो नास्तिकतासे जपादि न करै तौ कीचडमें फँसी हुई गायकी नाई अत्यन्त दुःखित होता है । स्नान दान जप श्राद्ध राहुके ग्रासमें अनन्त होते हैं २ श्राद्ध संध्यारात्रिमें न कर ग्रहणसमयमें सदा करै ३ प्रातःकाल जो स्नानका फल है संध्याका जो फल है यह फल प्राजापत्यरूप ग्रहणमें मिलता है ४ इत्यादि यह सत्ययुगका बना ग्रन्थ है और पुराण उस समय भी थे इससे पुराण प्राचीन हैं प्रमाण—

अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृतं युगमिति ।

अर्थात् यह अट्ठाईसवां सत्ययुग व्यतीत होता है ॥ जब कि छाया ही पडती है तो चन्द्रसूर्यका एक ओरका प्रकाश बना ही रहता है तो तारागण न दीखने चाहिये इससे छादन अर्थ ग्रासका है ॥

गरुडपुराणप्रकरणम् ।

स० प्र० ३३९ पं० १४ क्या गरुडपुराण झूँठा है (उत्तर) हां असत्य है (प्रश्न) जो यमराजा चित्रगुप्त मंत्री उनके भयंकर गण पहाडसे शरीरवाले पकड लेजाते हैं पापपुण्यके अनुसार स्वर्ग नरकमें डालते हैं उसके लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण वैतरणी आदि नदी तरनेके लिये करते हैं क्या यह बात झूंठी है (उत्तर) यह सब पपालीला है जो यमलोकके जीव पाप करैं तौ दूसरा यमलोक मानना

-राहु छादक नहीं तो राहुके स्थानमें चन्द्रमा हीन क्यों नहीं किया जाता प्रत्यक्ष लिखा है और सूर्यका अंश १४ के बीच अन्तर दोनोंका होगा तो ग्रहण होगा नहीं तो क्योंकर राहुका अन्तर १५ अंशग्रहणमें छादक चन्द्र होता तो चन्द्रका अन्तर १४ से न्यून होगा तो सूर्यग्रहण होगा यह ग्रन्थकारने क्यों नहीं लिखा और जो चन्द्रमाको ही मानो तो प्रत्येक अमावस्यामें सूर्य चन्द्रका अन्तर १४ से न्यून होता है किस कारण प्रत्येक अमावस्याको सूर्य ग्रहण नहीं होता इस कारण यावत्काल राहु या केतु अन्तर अंश १४ का सूर्य चन्द्रसे न होगा तो ग्रहणकाभी न होगा (प्रश्न) फिर छादयत्यर्कमिन्दुः—यह क्योंकर लिखा (उत्तर) राहु तो पूर्व श्लोकमें कह चुके हैं चन्द्रमा इस श्लोकमें कहा इससे जाना जाता है कि, दोनों मिलें तो ग्रहण होता है यदि राहु न लिया जाय प्रत्येक अमावस्याको सूर्य चन्द्रतुल्य होनेसे ग्रहण होना चाहिये पुनरुक्तिदोषके कारण चन्द्रमाके साथ राहु फिर दो बार नहीं लिखा स्वामीजीको सिद्धान्तशिरोमणिका प्रमाण देना था ग्रहलाघवका अप्रमाण था इस कारण ग्रहलाघवके श्लोकखण्डको सिद्धान्तशिरोमणिके नामसे लिख दिया शोक है इस झूंठे जाल और संन्यासपर परन्तु हम सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोक लिखते हैं ग्रहणाध्याय श्लो० ८–१०

दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति ।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥ १ ॥
राहुः कुभामंडलगः शशांकं शशांकगश्छादयतीनबिम्बम् ।
तमोमयः शंभुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥ २ ॥ *

अर्थ–दिशा देश काल आवरण भेदसे राहुको छादक जो नहीं मानते वो पुरुष केवल गोलविद्या संहिता वेद पुराणोंसे बाह्य हैं राहु पृथ्वीकी छायामें होकर चन्द्रमाको छादे हैं चन्द्रमें होकर सूर्यको छादन करता है राहु अंधेरारूप शिवजीके वर होनेसे अदृश्य है सम्पूर्ण वेदसंमत यह वाक्य है, यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचन है अब गणिताध्यायमें ग्रहणाध्यायका प्रथम श्लोक–

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदः प्रवदंति हि ।
सदुपयोगि जने सचमत्कृतिं ग्रहणमिंद्विनयोः कथयाम्यतः ॥ १ ॥

* क्या चमत्कार है जो प्रमाण सिद्धान्तशिरोमणि ग्रहणप्रकरणमें यह लिखे हैं उन्हें छोटे स्वामी प्रक्षिप्त बनाते हैं कि इन श्लोकोंमें पुराणका नाम आया है इससे यह पीछेके हैं और अपने प्रमाण असली सिद्धान्तशिरोमणिके बताते हैं, जब पुराण शब्द आजानेमें यह श्लोक प्रक्षिप्त है तब ऋग्वेदमें पुराण और राहु शब्द होनेपर उसे प्राचीन मानियेगा या आधुनिक समझकर कहना।

अर्थ--ग्रहणके समयमें जप दान हवनका महाफल है यह स्मृति पुराण वेदवेत्ता कहते हैं श्रेष्ठोंके योग्य यह चमत्कार्यरूप सूर्यचन्द्रग्रहण स्फुट कहता है इस श्लोकके ऊपर स्मृति पुराणवचन भास्कराचार्यने स्वरचित भाष्यमें लिखे हैं सो लिखते हैं ॥

स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमसुरार्चने ।
सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ॥ १ ॥
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पंके गौरिव सीदति ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनंतं राहुदर्शने ॥ २ ॥
संध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः ।
द्वयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ॥ ३ ॥
उषस्युषसि यत्स्नानं संध्यायामुदिते रवौ ।
चंद्रसूर्योपरागे च प्राजापत्येन तत्फलम् ॥ ४ ॥

अर्थ--स्नान ग्रहणादिमें करे होम देवपूजन मध्यमें करे सर्वस्वसे भी राहुदर्शनमें श्राद्ध करै १ जो नास्तिकतासे जपादि न करै तौ कीचड़में फँसी हुई गायकी नाईं अत्यन्त दुःखित होता है । स्नान दान जप श्राद्ध राहुके ग्रासमें अनन्त होते हैं २ श्राद्ध संध्यारात्रिमें न करे ग्रहणसमयमें सदा करे ३ प्रातःकाल जो स्नानका फल है संध्याका जो फल है वह फल प्राजापत्यरूप ग्रहणमें मिलता है ४ इत्यादि यह सत्ययुगका बना ग्रन्थ है और पुराण उस समय भी थे इससे पुराण प्राचीन हैं प्रमाण—

अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृतं युगमिति ।

अर्थात् यह अट्ठाईसवां सत्ययुग व्यतीत होता है ॥ जब कि छाया ही पड़ती है तो चन्द्रसूर्यका एक ओरका प्रकाश बना ही रहता है तो तारागण न दीखने चाहिये इससे छादन अर्थ ग्रासका है ॥

गरुडपुराणप्रकरणम् ।

स० पृ० ३२९ पं० १२ क्या गरुडपुराण झूंठा है (उत्तर) हां असत्य है (प्रश्न) जो यमराजा चित्रगुप्त मंत्री उनके भयंकर गण पहाड़से शरीरवाले पकड़ लेजाते हैं पापपुण्यके अनुसार स्वर्ग नरकमें डालते हैं उसके लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण वैतरणी आदि नदी तरनेके लिये करते हैं क्या यह बात झूंठी है (उत्तर) यह सब पपोलीला है जो यमलोकके जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना

चाहिये वहांके न्यायाधीश न्याय करें पर्वतकी समान यमके गण हों तो दीखते क्यों नहीं और जिस घरमें आवें वोह टूटता क्यों नहीं इत्यादि और पिंडदानादि कुछ नहीं पहुंचता ॥ ३६०।१

समीक्षा–स्वामीजीने गरुडपुराणकी वृथा निन्दा करी बेशक यमराजके गण पापियोंके प्राण निकालते हैं उनका अत्यन्त सूक्ष्म शरीर हैं और ऐसी शक्ति है कि, वे अपने शरीरको घटा बढासक्तेहैं स्वप्नमें अन्तःकरणमें हाथी घोडे किधरसे घुस पडतेहैं। ये दूत ही प्राण निकालतेहैं और यमलोकमें क्या अपराध करैंगे वह तौ पराधीन होकर कष्ट भोगते हैं, और यदि अपराध भी करैं तो दूसरे यमलोककी क्या आवश्यकता है, वही यमराज दण्ड दे सके हैं जैसे जेलखानेमें कैदी कोई अपराध करें तौ उसकी कैद और बढादी जाती है, वेदमें गोदान यमराज आदि सबका वर्णन है ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

पदार्थः–(परेयिवांसम्) अत्यन्त दूर गये (प्रवतः) प्रकर्षवती (महीः) भूमिके प्रति अर्थात् समस्तभूमियोंकी अतिक्रमण करके वर्तमान (बहुभ्यः) बहुतसे पितृलोकको गये हुए जीवोंके (पन्थाम्) मार्गको (अनुपस्पशानम्) जाननेवाले (जनानाम्) मृतक हुए जनोंके (संगमनम्) प्राप्तिस्थानभूत (यमम्) यम (राजानम्) राजाको (हविषा) हविसे (सपर्यत) पूजन करो, इसमें यमको हविदानका विधान है ।

मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असूंन् पितृभ्योगमयांचकार-
अथर्व १८। २। २७

पदार्थः–(मृत्युः) मारकदेव (यमस्य) यमका (दूतः) कर्म करनेवाला दूत (आसीत्) है (प्रचेता) विशेषज्ञानवाला यह म्रियमाण पुरुषके (असून्) प्राणोंको (पितृभ्यः) पितरोंमें अनुप्रवेशके निमित्त (गमयांचकार) प्राप्त करताहै इसमें मृत्युका दूत होना और प्राण लेना स्पष्ट है ।

यांतेधेनुं निपृणामि यमु तेक्षीरओदनम् ।
तेनाजनस्यासोभर्तायोत्रासदजीवनः १८। २। ३०

हे प्रेत (याम्) जिस (धेनुम्) गायको (ते) तेरे उद्देश्यसे (निपृणामि) देताहूं (उ) तथा (यम्) जो (क्षीरे) दूधमें पकाहुआ (ओदनम्) भात (ते)

तेरे निमित्त देताहूं (तेन) उस धेनु और क्षीरोदनके साथ (जनस्य) इस जनक या जन्म लेनेवालेका (भर्ता) धारक वा पोषक (असः) हो (यः) जो (अत्र इस चितास्थलमें (अजीवनः) मृतक (असत्) है इस मंत्रमें स्पष्ट गोदान औ क्षीर ओदनका मृतकके निमित्त वर्णन है ।

एतत्ते देवः सविताघासोंददातिवासोंददातिंभर्तवे ।

तत्त्वंयमस्यराज्येवसांनस्ताप्यं चर-अथ० १८ । ४ । ३१

हे प्रेत (सविता) सबका प्रेरक (देवः) देव (एतत्) यह (वासः) वस (भर्तवे) भरण वा आच्छादनके निमित्त (ते) तेरे निमित्त (ददाति) देता (तत्) उस (ताप्यम्) प्रीतिकारक वस्त्रको (वसानः) धारण कियेहुए (यमस्य प्रेताधिपतिके (राज्ये) राज्यमें (चर) विचरण कर इसमें प्रेतके निमित्त स्प वस्त्र दान और परलोकमें उसकी प्राप्ति है ।

धानाधेनुरंभवत् वत्सोअस्यास्तिलोभवत् ।

तवियमस्यराज्ये अक्षितामुपजीवाति ३२

(धाना) भुने जौ (धेनुः) प्रीतिकारक गौ (अभवत्) हैं (तिलः) तिल (अस्याः) इस धानरूपा गौका (वत्सः) बछडा (अभवत्) है (वै) निश्च (ताम्) उस (अक्षिताम्) क्षयरहित वत्सरूप तिलवाली धानरूपा गायको लेक (यमस्य) यमके (राज्ये) राज्यमें (उपजीवति) यह प्रेत जीवित होताहै, इस मंत्रमें तिल जौ प्रेतके लिये हितकर कहे हैं ।

एतास्ते असौधेनवः कामदुघा भवन्तु ।

एनीः श्येनीःसरूपाविरूपास्तिलवत्सा उपतिष्ठन्तुत्वात्र ३३

(असौ) हे अमुकनाम प्रेत (ते) तेरे निमित्त (एताः) यह (धेनवः) गाये (कामदुघा) इष्ट फल देनेवाली (भवन्तु) हों (एनीः) चितकबरी (श्येनीः श्वेतवर्णवाली (सरूपाः) समान रूपवाली (विरूपाः) अनेकरूपवाली (तिल वत्साः) तिलरूप बछडेवाली धानरूप गौ (अत्र) इस स्थल वा यमराज्यमें (त्वा) हे प्रेत तेरे निमित्त (उपतिष्ठन्तु) अभिमत फल देनेके लिये स्थित हों ।

एनीर्धानाहरिणीः श्येनीरस्यकृष्णाधानारोहिणीर्धेनवस्ते ।

तिलवत्साऊर्जमस्मैदुहानाविश्वाहासन्त्वनपस्फुरन्तीः ३४

(एनीः) विचित्ररंगवाली (धानाः) धानसम्बन्धी (हरिणीः) हरे रंगवाली

(श्येनीः) श्वेतरंगकी (कृष्णाः) कालेरंगकी (धानाः) धानसम्बन्धी (रोहिणीः) लालरंगवाली (धेनवः) जो धेनु हैं तथा (तिलवत्साः) तिलरूप बछडेवाली (अस्मै) इस (ते) तुझ प्रेतके निमित्त (ऊर्जम्) रसको (दुहानाः) क्षरण करतीहुई (अनपस्फुरन्तीः) नाशरहित (विश्वाहा) सब दिन वा निरन्तर हों इस मंत्रमें भी तिल जौ गौ आदिक विधान है।

देखिये तप दान श्राद्ध 'यमराज गोदान आदि सब विधान अथर्व वेदमें हैं' यहां दयानन्दने एक कल्पित आदका इतिहास लिखाहै जिसमें स्पष्ट है कि बाबाजी डबलपोप है।

स० पृ० ३४२ पं० ७ 'यमेन वायुना सत्यराजन्' इत्यादि वेद वचनोंसे निश्चय है कि, यमनाम वायुका है शरीर छोडके वायुके साथ अन्तरिक्षमें जीव रहते हैं जो सत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा धर्मराज है वह सबका न्याय करता है ३६१।१

समीक्षा–धन्य स्वामीजी पञ्चयज्ञ महाविधिमें पृ० ९८ पं० १८ में सानुगाय यमायनमः का अर्थ लिखाहै जो सत्य न्याय करनेवाला ईश्वर और उसकी सृष्टिमें सत्य न्याय करनेवाले सभासद वे (सानुगाय) शब्दार्थसे ग्रहण होते हैं यहां तो ईश्वर और हाकिमोंको यम लिखा है पुनः सत्यार्थ० पृ० ३० पं २४ मृत मेतके निषेधमें लिखा है देखो जब कोई प्राणी मरताहै तब उसका जीव पापपुण्यके वश होकर परमेश्वरकी व्यवस्थासे सुखदुःखके फल भोगनेके अर्थ जन्मान्तर धारण करता है यहांतक कि दूसरी देहमें होकर जन्मान्तरमें भोग लिखाहै और यहां ऊपर आकाशमें वायुमें रहना लिखते हैं, यहां शरीररहित आत्माकी स्थिति वायुमें मानी है, अब विचारिये–कहीं ईश्वर और कहीं हाकिमोंको यम लिखाहै कहीं तत्काल देह धारण माना, कहीं विना देह जीवकी स्थिति नहीं होती यह माना, कहीं विना देह जीवोंको वायुमें लटकाया है, यह सब ऐसी विरुद्ध बातें हैं जिसे थोडी भी बुद्धि होगी वह स्वामीजीका बुद्धिभ्रम जानलेगा २१ नरक मनुजीने अंथतामिस्रादि अध्याय ४ में (नरकानेकविंशतिम् ८७) श्लोक ८७ से ९० तक लिखे हैं इससे गरुड पुराण वेदविरुद्ध नहीं और (यमेन वायुना) इसको स्वामीजीने यह नहीं लिखा कि, यह कौनसे वेदका मंत्र है इसका अर्थ तो यह है कि, हे राजन् यम वायुरूपके सत्य हैं " यह क्या बात हुई अब चित्रगुप्तकी पढासकी सेतरसे लिखते हैं ब्रह्माण्डकी सम्पूर्ण रचनाके संस्कार आकाशमें संचित रहते हैं यह अति सूक्ष्म होनेसे हम नहीं देख सके परन्तु योगीजन इसको ऐसे देखते हैं जैसे हम स्थूल पदार्थ देखते हैं, आकाशके चित्र कभी नष्ट नहीं होते यह सदैव गुप्तरूपसे आकाशमें स्थित रहते हैं इसी कारण इन चित्रोंका नाम शास्त्र पुराणोंमें चित्रगुप्त कहा है यही धर्मराजके दफ्तरोंका बही खाता है, धर्मराजके दफ्तर सब प्राणियोंके

कर्मोंको आकाशरूपी बहीमें चित्रोंद्वारा लिखते हैं दिव्य चक्षुवाले ही इसको पढ सकते हैं जैसे मूर्ष्णिकलानैनका चित्र कपडे पर उतरता है· इसी प्रकार इसके अधिष्ठात्री देवताके निकट सब वटबीजकी समान अंकित रहतेहैं इनकी चेष्टा नष्ट नहीं होती सदा सचेष्ट रहतेहैं बुद्धिमान् इसका विस्तार करलेंगे वा जैसे फोनोग्राफमें सब शब्दोंके चित्र चित्रित होतेहैं, इसी प्रकार इसके कर्म आकाशमें चित्रित रहते हैं, जैसे हजारों गायोंमें बछडा अपनी माको पहचानताहै ऐसे ही चलते समय सब कर्म इसको चिपटते हैं ॥

व्रतप्रकरणम् ।

स० पृ० ३४४ पं० ४ ये गरुडपुराणादि और तन्त्र वेदसे उलटे चलते हैं तन्त्र भी वैसे ही हैं जैसे कोई मनुष्य एकका मित्र सब संसारका शत्रु वैसाही पुराण और तन्त्रका माननेवाला पुरुष होताहै, क्यों कि एक दूसरेके विरुद्ध करानेवाले यह ग्रन्थ हैं, इनका मानना किसी विद्वान्का काम नहीं किन्तु इनका मानना अविद्वत्ताहै, देखो शिवपुराणमें त्रयोदशी सोमवार आदित्यपुराणमें रवि चन्द्रखण्डमें सोम ग्रहवाले मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतुके वैष्णव एकादशी द्वादशी नृसिंह वा अनन्तकी चतुर्दशी चन्द्रमाकी पौर्णमासी दिक्पालोंकी दशमी दुर्गाकी नवमी वसुओंकी अष्टमी मुनियोंकी सप्तमी कार्तिकस्वामीकी षष्ठी नागकी पञ्चमी गणेशकी चतुर्थी, गौरीकी तृतीया, अश्विनीकुमारकी द्वितीया आद्यदेवीकी प्रतिपदा पितरोंकी अमावस्या पुराण रीतिसे यह दिन उपवास करनेके हैं सर्वत्र यही लिखा है जो मनुष्य इन वार और तिथियोंमें अन्न ग्रहण करेगा वोह नरकगामी होगा निर्णयसिंधु व्रतार्कादि ग्रन्थ प्रमादी लोगोंने बनाये हैं ॥ ३६४ । २७ पंक्तिसे–

पं० २२ एकादश्यामन्ने पापानि वसंति ॥ ३६५ । १६

जितने पाप हैं एकादशीके दिन अन्नमें बसते हैं इन पोपजीसे पूछा जाय कि, किसके पाप उसमें बसते हैं जो सबके सब पाप एकादशीमें जाबसें तो किसीको दुःख न होना चाहिये, ऐसा नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदिसे दुःख होता है दुःख पापका फल है इससे भूखों मरना पाप है पृ० ३४५ पं० १३ एक पानकी बीडी जो स्वर्गमें नहीं एकादशीके फलसे भेजना चाहते हैं कोई दे तो पं० २१ ज्येष्ठमहीनेके शुक्लपक्षमें जिस समयपडी भर जल न पीवें तो मनुष्य व्याकुल होजाता है व्रत करनेवालोंको महादुःख हो विशेषकर बंगाले देशमें सब विधवा स्त्रियोंकी व्रतके दिन बड़ी दुर्दशा होतीहै इस निर्दयी कसाईको लिखते समय कुछभी दया न आई नहीं तो निर्जलाका नाम सजला और पौष महीनेकी शुक्ल पक्षकी एकादशीका नाम निर्मला रख देता, गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री लडके वा युवा पुरुषोंको तो कभी उपवास न करना चाहिये, किसीको करना हो तो जिस दिन

अजीर्ण हो क्षुधा न लगै उस दिन शर्करा (शर्बत) पीकर रहना चाहिये भूख नहीं [३६६ । १९]. पृ० ३४४ पं०२०ब्रह्मलोककी वेश्या एकादशीके पुण्य स्वर्गको चलीगई इत्यादि ॥ ३६५ । २२

समीक्षा–अब स्वामीजी व्रतोंहीको उडानेके निमित्त वाग्जालविस्तार करतेहैं यद्य व्रतोंकी प्रथा सब ही मतोंमें प्रचलित हैं ईसाई यवनादि भी व्रत करतेहैं परन्तु स्वा मीजीको तो अपना पन्थही पृथक् करनाहै वह क्यों व्रत विधान लिखेंगे, वेद पुरा णादि सबमें व्रत करनेकी आज्ञा है वैद्यकसे तो यह स्पष्ट है कि, व्रत करनेवालेक रोग नहीं रहता जो एक मासमें दो भी व्रत करलेतेहैं वे चिरकालतक सुखी रहते और व्रत करनेकी जो पुराणोंमें प्रत्येक तिथि लिखी है वे इस कारण हैं कि जो जिस देवताकी भक्ति उपासना करै वह उसकी प्रसन्नताके निमित्त उसीकी तिथिमें व्रत करैं कुछ वे व्रत यह नहीं कहते कि, इस दिन करो इस दिन मत करो, प्रतिप दासे पूर्णिमातक जिस दिन व्रत करना हो करै, इसमें यह तो हो ही नहीं सक्ता कि, सब ही देवताओंका उपासक हो, सबहीका व्रत करै केवल जिसका उपासक हो उसीका व्रत करै, निश्चय पुण्य होगा विष्णुभगवान्की पूजामें एकादशीव्रत न कर- नेसे पाप है, उनकी प्रीतिके अर्थ एकादशीव्रत है, व्रत रखनेसे ब्रह्मप्राप्ति होती है जैसे एक मनुका श्लोक पूर्व लिख आये हैं (स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः*) ब्रह्मलोकमें वेश्या थी यह स्वामीजीका कथन झूंठ है ब्रह्मलोककी वेश्याकी कोई कथा नहीं किन्तु इन्द्रलोककी गन्धर्वी तो एकादशीके पुण्यफलसे इन्द्रलोकको गई थी यदि ऐसी ही कोई देवांगना आजाय तो अब भी जासक्ती है, लोग तो शरीर त्याग वैकुंठको जाते हैं परन्तु विदित होता है स्वामीजी जीवित ही खबर ले आये कि वहां पान नहीं होता, वहां चाब- नेको पान न मिला होगा यह क्या संन्यासी होकर अहा ? पानहीके लिये लौट आये और यह तो किसी ग्रन्थमें नहीं लिखा कि, कुछ खाओ ही मत किन्तु एक समय फलाहार वा दुग्धाहार करना लिखा है दो तीन व्रत निर्जल भी हैं अपने धर्मसिन्धु ग्रन्थोंको प्रमाद लिखा है परन्तु यज्ञोपवीतसंस्कारमें तीन दिनका व्रत आपने ही कथन कर दिया है धन्य है इस बुद्धिपर ज्येष्ठके महीनेकी निर्जलासे बडे घबडाये क्या कभी करनी पडी थी बेशक अब तो बुरी ही मालूम होती होगी क्यों कि अब तो तोसक तकिये मखमली बिछौनोंपर शयन, दूध खीर हलुवा भोजन, चरण दाबनेको नौकर, भला तुमसे व्रत कैसे होसकैं इसी कारण व्रत करना बुरा लिखा, और जो एक दिनकी निर्जलामें बुराई है तो यह तपस्या संयम नियम सब कुछ बुरे

* मनुका यह श्लोक प्रमाणमें लिखा होनेपर भी भास्करप्रकाशके कर्ताको न सूझा जो लिखते हैं कोई भी प्रमाण न दिया मनु अ० ११ श्लो० २१२ से २६१ तक मन देखो २६१ में प्राजापत्यादि और भोजन न करना लिखा है. और धर्माईवाली बात हजम होगई क्या ।

-ठहरे, विद्या पढना आदि भी क्यों कि इन सब ही कामोंमें चित्त और शरीरको कष्ट होता है, जाडोंमें जलमें, गरमीमें पंचाग्निमें, चौमासेमें मैदानमें बैठ तपस्वी तप करते हैं, तो क्या यह सब मिथ्या हैं ! नहीं कभी नहीं और देखिये (यह व्रत लिखनेवाले कसाईको दया न आई) यह पुराणकर्ता भगवान्व्यासको गालिप्रदान की है, मनुजीने बहुत पापियोंके पाप दूर करनेको अतिकृच्छ्र आदि महाकठिन व्रतोंका विधान किया है यथा हि—

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक् । यैर्यैर्व्रतै-
रपोह्यंते तानि सम्यङ् निबोधत–अ० ११ श्लो० ७१

यह सब ब्रह्महत्यादि पाप जैसे अलग २ कहे गये वे जिन २ व्रतों करके नाशको प्राप्त होते हैं उनको अच्छी तरहसे सुनो ॥

ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वाशवशिरोध्वजम् ॥ ७२ ॥

जो ब्राह्मणको मारे वह वनमें कुटीको करके और मुरदेके शिरका चिह्न शिरपर करके भीख मांगके खाता हुआ अपनी शुद्धिके अर्थ बारह बरस वनमें वास करे ७२

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वासकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

चावलकी खुद्दी या खली एक समय रातको वर्षदिनतक भक्षण करै बुरा कपडा और सिरपर बाल रक्खे सुरापात्र चिह्नवाला होवे तो सुरा पानका पाप दूर हो ॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥ ११० ॥

इन्द्रियोंको वश करता हुआ गोमूत्रसे स्नान करै और कृत्रिम लवणवर्जित हविष्य अन्नको चौथे कालमें भोजन करे दो मासपर्यंत ऐसा करै ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्ष्येण व्रतयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुध्यति ॥ १२४ ॥

उस प्राप्त हुए भिक्षासे एक काल भोजन करता हुआ त्रिकालस्नानके आचरण करनेवाला एक वर्षमें शुद्ध होता है (इच्छासे शुक्रत्सर्ग करनेसे)

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ।
स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥१३॥ अ० ४

किसी प्रकारसे निर्वाह करता हुआ स्नातकद्विज स्वर्ग आयु यशके देनेवाले इन व्रतोंको धारण करे, इत्यादि व्रत करनेमें बहुत प्रमाण हैं एकादशीके दिन अन्नमें पाप घसते हैं यह वाक्य भी पुराणोंका नहीं आदित्यपुराण. चंद्रखंड स्वामीजीके सत्यार्थप्रकाशमें ही दीखते हैं, भूखों मरना यह स्वामीजीने व्रतके अर्थ किये हैं- वेदमें देखो " वय ॰ सोम व्रतेतव अ० ३ मंत्र ५६ यजु०" तथा " अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि यजु ० १।५ " हे व्रतपते अग्नि मैं व्रत धारण करताहूं इत्यादि इन मंत्रोंमें व्रतका विधान किया है धन्य है व्रतमें ही जब पाप है तौ पुण्य क्या चोरी करना होगा ॥ " व्रतमुपैष्यन् " श० १ । १ । १ । १ । शतपथमे पहले ही व्रत करना लिखा है।

ब्रह्माण्डप्रकरणम् ।

स०पृ०३४६ पं० २८ देखो जैमिनिने मीमांसामें सब कर्मकाण्ड पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्रमें सब उपासनाकाण्ड और व्यास मुनिने शारीरक सूत्रोंमें सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है ॥ ३६७ । २५

समीक्षा--इस कथनसे सिद्ध होताहै कि व्यासजीने वेदान्त सब यथार्थ लिखाहै फिर " अनावृत्तिः शब्दात् " इस व्याससूत्रको यह ठीक नहीं ऐसा लिखते स्वामीजीको लज्जा न आई अब वही पतंजलिका व्यासभाष्यसहित एक सूत्र लिखते हैं जिसमें ५० कोटि योजन पृथ्वी और स्वर्गादिका सविस्तर वर्णन है ॥

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्-यो० पा० ३ सू० २४

ततः प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेःप्रभृतिमेरुपृष्ठंयावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततः परः स्वर्लोकः पंचविधो माहेन्द्रस्तृतीयलोकश्चतुर्थःप्राजापत्यो महर्लोकास्त्रिविधो ब्राह्मः तद्यथाजनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति । ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवितारा भुविप्रजा इति ॥

अर्थ-सूर्यमें सुषुम्नानाडीमें संयम अर्थात् ध्यान धारणासमाधिरूप त्रितयसे योगीको भुवनका ज्ञान होताहै, तिस भुवनका विस्तार सप्तलोक हैं अवीची नाम नरकाशसे लेकर सुमेरुपर्वतकी पीठतक भूलोक है तिससे प्रारंभ कर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्रादि करके विचित्र अन्तरिक्ष लोक है और तिससे परे स्वर्ग चतुर्थ पंचमका एक माहेन्द्रलोकनामक तृतीयलोक है और प्रजापतिका महर्लोक है और तीन प्रकारका ब्रह्मलोक है जनलोक तपलोक सत्यलोक ॥

भाष्यम्—तत्रावीचेरुपर्य्युपरिनिविष्टाः षण्महानरकभूमयोघनसलिलानलानिलाकाशतमःप्रतिष्ठाः महाकालाम्बरीपरौरवमहारौरवकालसूत्रान्धतामिस्राः यत्रस्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्यजायन्ते ॥

भाषार्थ—तिन सप्तलोकोंमें अवकाशसे ऊपर २ रचित षट्महानरकस्थान हैं पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश अन्धकारमें प्रतिष्ठित हैं तात्पर्य्य यह है इन षट् महानरक स्थानोंके पृथ्वी आदि परिवार हैं कोटवत् जिस नरकस्थानका कोई परिवार नहीं तिसका आकाश ही परिवारवत् परिवार है इन नरकोंके महाकाल अम्बरीष रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र ६ नाम हैं जिन स्थानोंमें अपने कर्मजन्य दुःख वेदनायुक्त प्राणी कष्टरूप दीर्घायुको प्राप्त होकर जन्म लेते हैं इससे यह विदित है कि नरक एक कोई पृथक् स्थान है ॥

भाष्यम्—ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातलपातालाख्यानि सप्त पातालानि भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः ॥

तिस नरक स्थानसे ऊपर २ महातल रसातल अतल सुतल वितल तलातल पाताल नामवाले सप्त पाताल हैं और भूमि यह अष्टमी सप्तद्वीपवाली धनवती है जिस भूमिके मध्यमें सुमेरुनाम पर्वतराज सुवर्णका प्रकाशमान उज्ज्वल दीप्तिवाला पृथ्वीरूप पुष्पके मध्यमें कर्णिकावत् शोभायमान अनन्त निवासस्थान युक्त है ॥

भाष्यम् ।

तस्य राजतवैडूर्य्यस्फाटिकहेममणिमयानि शृंगाणि तत्र वैडूर्य्यप्रभानुरागान्वितोत्पलपत्रश्यामो नभसो दक्षिणभागः श्वेतः पूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरुण्डकाभ उत्तरः दक्षिणपार्श्वे चास्य जम्बू यतोऽयं जम्बूद्वीपतस्तस्य सूर्य्यप्रचाराद्रात्रिदिवं लग्नमिव विवर्तते तस्य नीलश्वेतशृंगवन्त उदीचीनास्त्रयः पर्वता द्विसहस्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि रमणकं हिरण्मयमुत्तराः कुरव इति ॥

तिस सुमेरु पर्वतके पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तरकी तरफ क्रमसे राजतमणिमय ६ शृंग वैडूर्य्यमणिमय स्फटिकमणिमय और हेममणिमय शृंग हैं तिन चार शृंगोंमेंसे दक्षिणकी ओर वैडूर्य्यमणिमय शृंग है तिसकी प्रभाके अनुरागयुक्त नील

कमलवत् श्याम आकाशका दक्षिणभाग है और ऐसे ही राजतमणिमय शृंगकी प्रभानुराग प्रभावसे पूर्वका आकाश भाग श्वेत है और पश्चिमका स्वच्छ है और उत्तर कुरुण्डकाभ नाम हरेपनसे युक्त है क्यों कि सुवर्णकी छाया हरेपनको लिये होती है, इससे उत्तरभाग आकाशका सुवर्णमणिमय शृंगकी छायायुक्त होनेसे हरा है, और सुमेरुके दक्षिणकी तरफ जम्बूक वृक्ष है इससे प्रथम सुमेरुके चारों ओर नवखण्डयुक्त जम्बूद्वीप है तिस पर्वत सुमेरुके चारों ओर सूर्यप्रचारसे रात्रिदिन लमवत् भ्रमण करते हैं, और तिस सुमेरुकी उत्तर दिशामें दो दो हजार योजन दीर्घ नीलश्वेत शृंगोवाले तीन पर्वत हैं तिन पर्वतरूप अन्तरायके होते नौनौ हजार योजन तीन खण्ड हैं, रमणक हिरण्यमय उत्तरकुरु नामवाले सुमेरुके समीप जो प्रथम पर्वत है, नील शृंगयुक्त होनेसे नील, और श्वेत शृंग पर्वतके मध्यमें रमणकखण्ड है, वर्ष खण्ड दोनों शब्द एकार्थक हैं और श्वेतशृंग पर्वतोंके मध्यमें हिरण्यमय खण्ड है, और श्वेतशृंग पर्वत तथा लवणोदधि उत्तर समुद्रके बीचमें उत्तर कुरुनामक खण्ड है ॥

निषधहेमकूटहिमशैला दक्षिणतो द्विसाहस्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि हरिवर्ष किंपुरुषं भारतमिति सुमेरोः प्राचीना भद्राश्वमाल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः केतुमालगन्धमादनसीमानो मध्ये वर्षमिलावृतम् ॥

अर्थ सुमेरुके दक्षिण दिशामें निषध हेमकूट हिमशैल नामवाले तीन पर्वत हैं दो दो हजार योजन विस्तारवाले तिनके अन्तरायके होते तीन खण्ड हैं नौ नौ हजार योजन हरिवर्ष किंपुरुष भारतनामवाले हैं तिनमें सुमेरुके निकट जो निषध पर्वत तथा हेमकूट पर्वत हैं तिन दोनोंके मध्यवर्ती हरिवर्ष खण्ड है और हेमकूट तथा हिमशैलके मध्यवर्ति किंपुरुष खण्ड है और हिमशैल तथा दक्षिण लवण समुद्रके बीचमें भारतखण्ड है और सुमेरुके पूर्व भद्राश्वखंड है माल्यवान् पर्वत जिसकी सीमा है आशय यह है कि, जैसे उत्तर दक्षिणमें तीन पर्वत हैं ऐसे सुमेरुके पूर्व पश्चिममें एक एक पर्वत है, पूर्वमें माल्यवान् दक्षिणमें गन्धमादन तो यह सिद्ध हुआ कि, पूर्व समुद्र और माल्यवान् पर्वतके बीचमें भद्राश्वखण्ड है और पश्चिमकी तरफ पश्चिम लवणसमुद्र तथा गन्धमादन पर्वतके बीच केतुमालखण्ड है, उत्तरका नीलपर्वत और दक्षिणका निषधपर्वत पूर्वका माल्यवान पर्वत पश्चिमका गन्धमादनपर्वत यह चार पर्वत चारों तरफ रहनेवाले एक ओर और एक ओर सुमेरुपर्वत कीलीके समान स्थानापन्न और मध्यमें वर्ष इलावृत है अर्थात् सुमेरुपर्वतके चौगिर्द चार पर्वतोंके बीचमें इलावृत खण्ड है ॥

भाष्यम् ।

तदेतद्योजनशतसहस्रं सुमेरोर्दिशिदिशि तदर्द्धेन व्यूढं स खल्वयं शतसाहस्रायामो जम्बूद्वीपस्ततो द्विगुणेन लवणोदधिना वलयाकृतिना वेष्टितः ततश्च द्विगुणाःशाककुशक्रौञ्चशाल्मलगोमेधपुष्करद्वीपाः सप्त समुद्राश्चसर्षपराशिकल्पाः सविचित्रशैलावतंसा लवणेक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्डक्षीरस्वादूदकसप्तसमुद्रवेष्टितावलयाकृतयो लोकालोकपर्वतपरिवाराःपंचाशद्योजनकोटिपरिसंख्याताः

अर्थ–अब सकल जम्बूद्वीपका परिमाण कहते हैं सो यह सौ हजार योजन सुमे-
ो सब दिशाओंमें लंबेपनमें है और तिससे आधे भागकरके चौडाईमें है सो यह
हजार योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है तिससे द्विगुण लवणसमुद्र कंकणाकारसे
ढा है और तिससे उत्तर उत्तर द्विगुण, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मल, गोमेध,
कर इन नामवाले द्वीप हैं सप्तसमुद्र तौ सर्षपकी राशितुल्य हैं और द्वीप संपूर्ण
चित्र पर्वतरूप शिरोंवाले हैं और लवण, इक्षुरस, सुरा, सर्पि, दधिमण्ड, क्षीर,
दूदक इन नामवाले सात समुद्रोंसे चारों ओर घेरे हुए हैं कंकणाकार लोका-
 पर्वत परिवृत है यह सब पचास करोड योजन परिमाणवाले हैं भूमण्डलके दो
ग हैं एक स्थूल एक सूक्ष्म सूक्ष्मविभाग यह पृथ्वीका गोला है जिसकी संख्य
१६ मील कही जाती है स्थूल भूमण्डलका वह आवरण है जिसमें अग्नि वायु आ-
 यह सब आवरण हैं जहांतक पृथिवीका सम्बन्ध है और उस अग्नि वायु आदिके
म्बन्ध आवरणको लिये हुए विराट् भूमिका परिमाण ५० कोटि योजन है ।

भाष्यम् ।

तदेतत्सर्वं सुप्रतिष्ठितसंस्थानमण्डलमध्येव्यूढम् ।

र्थ–सो यह संपूर्ण वसुधामंडल सुप्रतिष्ठित स्थानोंवाला ब्रह्माण्डके मध्यमें
अर्थात् संक्षिप्त हो रहा है ॥

भाष्यम् ।

मण्डश्चप्रधानस्याणोरवयवो यथाकाशे खद्योत इति तत्र पाताले जलधौ पर्वतेष्वेतेषु देवनिकायाऽसुरगंधर्वकिन्नरकिंपुरुषयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकाऽप्सरोब्रह्मराक्षसकूष्माण्डविनायकाः प्रतिवसंति सर्वेषुद्वीपेषु पुण्यात्मानो देवमनुष्याः सुमेरुस्त्रिदशानामुद्यानभूमिस्तत्र मिश्रवनं नंदनं चैत्ररथं

सुमानसमित्युद्यानानि सुधर्मा देवसभा सुदर्शनं पुरं वैजयंतः प्रासादः ग्रहनक्षत्रतारकास्तु ध्रुवे निबद्धा वायुविक्षेपनियमेनोपलक्षितप्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरिसंनिविष्टा विपरिवर्त्तन्ते माहेन्द्रनिवासिनः षड्देवनिकायास्त्रिदशा अग्निष्वात्ताायाम्यास्तुषिताः ॥

अर्थ-ब्रह्माण्ड अत्यन्त सूक्ष्म प्रधानका एक अवयव है जैसे आकाशमें खद्योत होता है तैसे प्रधानमें अण्ड है (अब वोह भुवन वृत्तान्त है जिसके हेतु यह सब लिखा है देवजाति सब मनुष्योंसे भिन्न है सो दिखाते हैं, जिस स्थानमें जो जो रहते हैं सो सो दिखाते हैं) पाताल, समुद्र, पर्वत, जो पहले निर्णय कर चुके हैं तिनमें देवनिकाय नाम देवजाति असुर, गन्धर्व, किन्नर, किम्पुरुष इतने नामवाले निवास करते हैं और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देवता तथा मनुष्य निवास करते हैं और सुमेरु त्रिदशनामक देवता ओंकी उद्यानभूमि है तिसमें मिश्रवन, नन्दनवन, चैत्ररथवन, सुमानसवन यह बगीचे हैं सुधर्मा देवसभा है सुदर्शन पुर है वैजयन्त मंदिर है इतने स्थान सुमेरुपर हैं और ग्रह नक्षत्र तारागण, ध्रुवमें बंधे हुए हैं वायुके व्यापार नियमसे उनका प्रचार देखा जाता है सुमेरुके ऊपर ऊपर संबद्ध ही विचरते हैं माहेन्द्रलोकमें षट्देवजाति हैं त्रिदश अग्निष्वात्त, याम्य और तुषित यह छः जाति देवतोंकी है माहेन्द्रलोकमें ।

व्यासभाष्यम् ।

अपरिनिर्मितवशवर्तिनः परिनिर्मितवशवर्तिनश्चेति सर्वे संकल्पसिद्धाः अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारकाः कामभोगिन औपपादिकदेहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिवाराः ॥

भाषार्थः ।

और अपरिनिर्मितवशवर्ती परिनिर्मितवशवर्ती संपूर्ण सत्यसंकल्प अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त हैं, कल्पपर्यन्त आयुवाले हैं वृंदारक नाम सबसे पूजनयोग्य विषय भोग प्रधानतावाले हैं, और औपपादिकदेह नाम माता पिताके संयोगके विना ही स्वसंकल्पसे दिव्यदेही सूक्ष्मभूतोंसे उत्पन्न कर व्यवहार करते हैं (इससे यह भी स्वामीजीका कथन असिद्ध होगया कि, सृष्टिक्रमके विरुद्ध विना माता पिताके कोई उत्पन्न नहीं होता) वैशेषिकमें लिखाहै कि-

सन्त्ययोनिजाः-वै० अ० ४ आ० २ सू० १०

अयोनिज भी ब्रह्मादिकके शरीर होते हैं और वोह देवता सर्व सौगुणसंपन्न

अप्सराओंसे युक्त हैं सत्यसंकल्प अयोनिज शरीर अणिमादि सिद्धिके प्रभावसे सम्पन्न होकर यथेष्ट विचरते हैं ॥

व्यासभाष्यम् ।

महति लोके प्राजापत्ये पंचविधो देवनिकायः कुमुदा ऋभवः प्रतर्दना अञ्जनाभाः प्रचिताभा इत्येते महाभूतवशिनो ध्यानाहाराः कल्पसहस्रायुषःप्रथमे ब्रह्मणो जनलोके चतुर्विधो देवनिकायो ब्रह्मपुरोहिताःब्रह्मकायिकाःब्रह्ममहाकायिका अमरा इति ते भूतेन्द्रियवशिनो द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषो द्वितीये तपसि लोके त्रिविधोदेवनिकायः।आभास्वराःमहाभास्वराःसत्यमहाभास्वरा इति ते भूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनः द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्यानाहाराःऊर्ध्वरेतस ऊर्ध्वमप्रतिहतज्ञाना अधरभूमिष्वनावृतज्ञानविषयाः तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकाया अच्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति ।

प्रजापतिके महत् लोकमें पांच देवजाति हैं कुमुद, ऋषभ, प्रतर्दन, अंजनाभ, प्रचिताभ यह संपूर्ण देवता महाभूत वशी हैं ध्यानमात्र आहारवाले हैं सहस्रकल्पकी उनकी आयु होती है ब्रह्माके:प्रथम जनलोकमें चार प्रकारकी देवजाति हैं ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर यह सम्पूर्ण देवता भूत इन्द्रियवशी हैं आशय यह है कि, पृथिव्यादि पंचभूत और श्रोत्रादि इन्द्रियगण उन देवताओंकी इच्छासे स्व स्व कार्यमें प्रवृत्त होते हैं और उनसे दूनी आयुवाले हैं, और दूसरे तपलोकमें तीन प्रकारकी देवजाति हैं आभास्वर, महाभास्वर और सत्यमहाभास्वर यह देवता सम्पूर्ण भूत इन्द्रिय प्रकृतिवशी हैं प्रकृतिनाम तन्मात्राका है तन्मात्रा तिन देवताओंकी इच्छासे शरीराकार वा विषयाकार परिणामको प्राप्त होते हैं, और उत्तर २ द्विगुण आयुवाले हैं और ध्यानसे तृप्त रहते हैं ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचर्यसम्पन्न हैं ऊर्ध्वलोकमें अप्रतिबद्ध ज्ञानवाले हैं पृथ्वी मूलसे लेकर तपोलोकपर्यन्त सब पदार्थोंके सूक्ष्मव्यवहित व्यवहारको जानते हैं तृतीय सत्यलोकमें देवताओंकी चार जाति हैं अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ, संज्ञासंज्ञी ॥

व्यासभाष्यम् ।

अकृतभुवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठा उपर्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनो यावत्स्वर्गायुषः तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः शुद्धनि-

वासाः सविचारध्यानसुखाः सत्यभा आनंदमात्रध्यानसुखाः संज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्राध्यानसुखास्तेऽपि त्रैलोक्यमध्ये प्रतितिष्ठन्ति त एते सत्यलोकाः सर्वे एव ब्रह्मलोका विदेहप्रकृतिलयास्तु मोक्षपदे वर्तन्ते न लोकमध्ये न्यस्ता इत्येतद्योगिना साक्षात्कर्तव्यं सूर्यद्वारे संयमं कृत्वा ततोन्यत्रापि एवं तावदभ्यसेद्यावदिदं सर्वं दृष्टमिति ॥

भाषार्थः ।

यह चार प्रकारके अच्युतादि संज्ञावाले देवता अकृतभुवनन्यास नाम निवासस्थानसे वर्जित स्वप्रतिष्ठानाम आधारान्तररहित हैं और सबके ऊपर स्थित हैं, और प्रधान वशी हैं अर्थात् इनके संकल्पमें सत्त्वादिगुण परिणामको प्राप्त होते हैं, और ब्रह्मलोककी स्थिति पर्यन्त आयुवाले हैं, इस स्थानमें ब्रह्मलोकका नाम ही स्वर्ग है तीन देवोंमें अच्युत देवता तो सवितर्क ध्यानसे तृप्त रहतेहैं और शुद्धनिवास सविचार ध्यानसे तृप्त हैं संज्ञासंज्ञि अस्मिता ध्यानसे तृप्त हैं ये अस्मिता ध्यानवाले भी देवता त्रिलोकीके मध्यमें ही स्थित हैं यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक है जनलोकादि और विदेह तथा प्रकृतिलय योगिजन मोक्षपदमें वर्तमान है, इस कारण लोकोंमें तिनको प्रवेश नहीं करा, भाव यह है कि, बुद्धिवृत्तिपरिणामवाले ही लोकपात्रोंमें वर्तमान हैं और बुद्धिवृत्तिपरिणाम रहित प्रकृतिमें लीन रहते हैं, विदेह और प्रकृतिलय योगीजनोंमें भेद इतना है कि, विदेह तो स्थूलशरीर रहित केवल लिंगशरीरमें सावरणब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्रकृतिमें लीन होकर भोगोंको भोगते हैं परन्तु प्रकृतिलयोंकी अपेक्षासे मलिन हैं, यह भोग और प्रकृतिलय योगीजन केवल सत्त्वप्रधान निवारणप्रकृतिमें वर्तमान निर्मल प्रकृतिकार्य विषयभोग भोगते हैं और महारैश्वर्य संपन्न होते हैं, और विदेहाके नियन्ता होकर वर्तमान हैं ये ही प्रकृतिलय योगीजन महान् कोटिमें कहे जातेहैं, यह संपूर्ण पूर्ववर्णित ब्रह्माण्ड योगीको साक्षात् कर्तव्य हैं, इससे यह बात सिद्ध होगई कि, देवता मनुष्य असुरआदि सब पृथक्स्थानोंमें रहते हैं, देवता विद्वान् मनुष्योंका नाम नहीं है, पूर्वोक्त विस्तार जो कुछ पुराणोंमें लिखा है सो इसीके अनुसार ठीक है * ॥

* मेरठके छोटे स्वामी यह व्याख्यान देखकर बहुत व्याकुल हुए अन्तमें गुरुओंसे न रही [illegible] पूछा कि यह किसीने निकाली है वा [illegible] मंत्र करनेवाला किसी भुव[illegible] अनुभव करके इसे प्रसिद्ध नहीं [illegible] यह [illegible] गुरुदेवोंने [illegible] दिया ।

इसी प्रकार मोहनादि सब प्रयोग सत्य हैं मंत्र गुप्त हैं उनका विधान गोप्य है इस कारण प्रयोगविधि नहीं लिखी है जो पवित्रदेशमें मंत्र आराधन करै निश्चय सिद्धि होती है और योगसे भी अष्टसिद्धि प्राप्त होती हैं ॥

भस्मासुरके पीछे भागनेसे जो शिवजी भागे थे इस कारण लोग डमरू बजाते बंबं शब्द करते हैं यह ३९२. पृष्ठका आक्षेप असत्य है ॥

स० प्र० पृ० ३५० पं० ८ एक मनुष्य वृक्षके नीचे सोता था सोता सोता ही मरगया काकने विष्ठा करदी ललाटपर तिलकाकार होगई (पं० १४) विष्णुके दूत उसे सुखसे वैकुंठमें ले गये इत्यादि ३७३ । १८

समीक्षा-स्वामीजीका यह कथन सपरर्ण ही असत्य है कहीं भक्तमालमें ऐसी कथा नहीं है यह झूंठी कथा लिखी है ॥ नाभाजीकी या हमारी भक्तमाल पढो । और ३७४ पृ० पं० २० पर ग्यारहवीं धारमें जो लेख छपाहै उसमें तो स्वामाकी असलियत ही खुलती है ॥

इसके आगे स्वामीजीने कबीर नानक दादूपंथी आदिकोंका खंडन कियाहै जो जो बातें इन्होंने लिखी है यद्यपि यह संस्कृतसे बहुत कुछ मिलती हैं परन्तु भाषामें हैं वेदानुकूल जो उसमें हैं इस वैदिकधर्मकी पुष्टिसे इनके ग्रंथोंका भी मंडन होगया हमारा आशय वैदिकधर्मोंके दिखानेका है वेदमें जो कुछ लिखा है सत्य है जो इसके विरुद्ध है यह असत्य है, सिद्धान्त यह है कि, जो वेदवाक्य हैं उनका मानना सब वर्णोंका परम धर्म है उसीके अनुसार जो कुछ भाषामें जिसने लिखा है यह माननीय है इसके अतिरिक्त अप्रमाण है इस कारण कबीरादिके ग्रंथोंके खंडन मंडनसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं ॥

स० प्र० पृ० ३७९ पं० २२ जो विद्याका चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा है इसको छोड मुसलमान ईसाइयोंके सदृश बनबैठना यह भी व्यर्थ है॥ ४०२।२२

समीक्षा-धन्य है स्वामीजी यह संस्कार विद्याका चिह्न है तो और संस्कार काहेके चिह्न हैं भला गर्भाधान काहेके वास्ते है और इसका चिह्न क्या है, खूब विद्याकी वृद्धि करी, यदि यह विद्याके चिह्न होते तो विद्या पढनेके उपरान्त चोटी और यज्ञोपवीत धारण कराया जाता फिर तीनही वर्णोंको शिखासूत्रकी कडी आज्ञा क्यों, और जो विद्या न पढे होते उनके शिखा सूत्र न होते जो तीन वर्णोंमें हैं उनके भी क्या यज्ञोपवीत तगुमा है, जो पढने उपरान्त पहराया जाता चुटिया रखाई जाती फिर ब्राह्मणको (गर्भाष्टमेब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्) गर्भके आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना क्यों लिखा, क्या जबतक विद्या न होती तबतक घोटमघोट ही रहते, इससे शिखा सूत्रको विद्याका चिह्न बताना भूल है शिखा तो मुण्डन संस्कारसे ही आरंभ होतीहै जब तीसरावर्ष होताहै उस समय बालक क्या पढा होताहै फिर पीछे तो गरमदेशकी दुहाई देकर चुटिया कटवाई यहां कैसे रखाते हो ॥

स० प्र० पृ० ३८९ पं० १८ कलियुग नाम कालका है कालनिष्क्रय होनेसे कुछ धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं ॥ ४०९।९

समीक्षा–स्वामीजी कहते हैं कि, काल धर्ममें साधक बाधक नहीं काल त सब ही कुछ है समयानुसार मनुष्य उत्पन्न होता बढता पुनः नष्ट होता है समयमें ही धान्य बोयेजाते उत्पन्न होते कटते हैं, कालसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन प्रलय होती हैं जैसा समय वैसा ही उसका फल होता है जैसा युग होता वैसे ही उसके धर्म होते हैं इसी प्रकार कलियुगमें पापादि अधिक होते हैं और अपने ४३२००० वर्षतक अवधि भोगेगा, तबतक अनेक अधर्म पाप संसारमें रहेंगे यह अठ्ठाईसवां कलियुग है यदि युगोंकी अवस्था न मानी जायगी तो यह सृष्टिके उत्पन्न होनेके वर्ष जो आपने लिखे हैं कहांसे मालूम होगये, इससे जैसा समय होगा वैसा ही धर्म होगा, कलियुग खोटा समय है इससे इसमें खोटी ही बातें होंगी इससे ऊपर लिखी बात कि, समय धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं यह कहना ठीक नहीं ॥

स० प्र० पृ० ३८९ पं० १० (प्रश्न) गिरी पुरी भारती आदि गुसांई तो अच्छे हैं पं० १३ (उत्तर) यह दश नाम पीछेसे कल्पित किये हैं सनातन नहीं किन्तु उनकी मंडलियां केवल भोजनार्थ हैं ॥ ४१०। १

समीक्षा–सब महात्मा लोग इस बातको जानतेहैं कि, दश नाम जो संन्यासियोंके हैं उसीके अन्तर्गत "सरस्वती" भी है यदि यह नवीन कल्पित नाम मिथ्या है तो आपने अपने नामके अन्तमें (सरस्वती) क्यों लगाया जो संन्यासियों नामोंमें पीछे लगा रहताहै, कोई प्राचीन नाम धरा होता और स्वामीजीके शिष्य भी तो इस उपदेशको नहीं मानते और इस सरस्वती शब्दकी कलंगी लगा ही फिरते हैं, जैसे अक्षयानंद सरस्वती ब्रह्मानंद पूर्णानंद ईश्वरानंदादि स० जो देव नन्द सरस्वती ही बना फिरताहै " वाहजो थूके वो ही मुंहमे आवै" आगेसे सावधान रहना कि, कोई दयानंदी संन्यासी आनंदसरस्वती पर नाम न रखने पावै.

स० प्र० पृ० ३९० पं० ७ स्वायंभू मनुसे लेकर महाराज युधिष्ठिरपर्यन्तक इतिहास महाभारतादिमें लिखा ही है. ४११।१६

समीक्षा– जहां अपना मतलब आया वहीं महाभारत भी मानलिया और यदि और कोई महाभारतका कुछ प्रमाण दे तो झट कह दे कि, प्रमाण नहीं फिर यहां स्वायंभू मनुसे महाराज रामचन्द्रतक ५६ पीढीके लगभग होता है यदि एक पीढी १०० वर्षकी भी मान ले तो ५६०० वर्ष रामचंद्रजीके समयतक आते हैं रामचन्द्रजी त्रेताके अन्तमें हुए हैं जिसमें १७२८०००सतयुगके बीते और १२९६००० त्रेतायुगके बीतगये तो १०० वर्षकी आयु माननेसे यह व्यवस्था कैसे ठीक होगी इस कारण उस समय बहुत बडी आयु होती थी।

यथारामायणे.

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक-वाल्मीकि बा०

विश्वामित्रजी मुझे ६०००० वर्षकी अवस्थामें रामचंद्र प्राप्त हुए हैं यह विश्वामित्रजीसे दशरथजीने जब वे बुलानेको आये थे तो कहाथा इससे विदित है कि, आयु बडी होती थी मनुके समयसे रामचंद्रके समय तक तथा अब भी ब्रह्मलोकमें वसिष्ठजी विद्यमान हैं इत्यादि यदि आयु अधिक न मानी जायगी तो युगोंकी व्यवस्था बिगडजायगी ॥ *

इसके उपरान्त पृष्ठ ३९५ से ५८४ तक जैनी ईसाई मुसलमानोंका खंडन स्वामीजीने किया है जिसके विषयमें भला बुरा लिखनेसे हमारा कोई भी प्रयोजन नहीं है क्यों कि यह वेदमतके अनुकूल न होनेसे हमको इष्ट नहीं है यदि वे अपनी हानि समझें तो इसका स्वामीको उत्तर दे लेंगे हमें कुछ प्रयोजन नहीं ॥

स० प्र० पृ० ५८५ पं० ११ मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतान्तर चलानेका लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है ॥ ६२१ । १२

समीक्षा-धन्य है नया मत भी खडा करदिया प्राचीन रीति छोड नई ही चलाइ, शास्त्रोंको जडसे खोदडाला मूर्तिपूजन श्राद्ध, तर्पण, मन्त्र, जप, तप, सब झूंठा बताया, नियोगादि कुकर्म चलाया, आर्य समाज जहाँ तहाँ स्थापित कर ब्राह्मणोंको पोप बताया, जाति वर्ण सब मिटाया, शूद्रको वेद पढनेका ढंग निकाला, अलग वेदभाष्य रचा, प्राचीनरीतिके उडानेको कुछ कसर न रक्खी, इसी हेतु सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्यभूमिकादि ग्रंथ रचे, वेदमें रेल तार निकाला, ईश्वर पाप दूर नहीं करता, नाम जपनेसे कुछ नहीं होता, मुक्तिसे लौटना इत्यादि सब अपना ही मत स्थापित किया है, और कहते हैं मैंने कुछ नया नहीं किया इस झूंठका क्या ठिकाना और मतमें क्या जहात बोलते ॥ इसी प्रकार आजकल राधास्वामी सन्तमति ये घटरामायणीमत चले हैं सो सर्वथा मिथ्या ही हैं ॥

इसीके आगे स्वामीजीने स्वमन्तव्य लिखे हैं वह सत्यार्थप्रकाशके अंतर्गत ही आगये इससे उनका भी खंडन होगया और स्वमन्तव्य तो स्वयं ही खंडनीय है क्यों कि वह वेद और विद्वानोंके तो मन्तव्य नहीं घरमें बैठेका नाम राजा धर लिया तो उससे क्या ऐसे ही यह स्वमन्तव्य है सो इनसे क्या लाभ है केवल बुद्धिको भ्रमजालमें डालनेको लिखे हैं ॥

---

* मेरठके स्वामीको इस वेदारठीमें कुछ थेगडी लगानी चाहिये जिससे उनकी सृष्टिके वर्ष तो पूरे हो जांय नहीं तो यह मामला अधूरा ही रहेगा ।

स० प्र० पृ० ५८९ पं० २३ आर्यावर्तदेश इस भूमिका नाम इस लिये है कि, इसमें आदि सृष्टिसे आर्य लोग निवास करते हैं ॥ ६२८ । ३

समीक्षा–स्वामीजीकी बुद्धिका चमत्कार देखिये पहले लिखा था कि आर्य त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बतसे आये हैं अब स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें लिख दिया कि आर्य सदासे यहां रहते हैं धन्य है ॥

इस प्रकार यह ५८९ पृष्ठपर्यन्त सन् १८८४ का छपा हुआ सत्यार्थप्रकाश खण्डन हुआ नवीन छपे हुओंमें कदाचित् पृष्ठ पंक्तिका भेद हो जाय तौ पाठकगण उसका विषय आगे पीछे देख लेंगे इस ग्रन्थमें समीक्षा कर सनातन वैदिकमतका स्थापन और दयानन्द कल्पित आधुनिकमतका खण्डन किया है इसमें सम्पूर्ण मन्तव्य वेदसे निर्णीत कर लिखे हैं, और जहां कहीं दूसरे ग्रन्थोंका वर्णन किया है वह उन्हींका है जिनका स्वामीजीने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशमें माना है, मैंने यह ग्रन्थ द्रोह या ईर्ष्यासे किसीका मन दुखानेको नहीं बनाया है किन्तु सत्यासत्यके निर्णयके वास्ते रचना की है, जो पुरुष स्वामीजीके निस्सार युक्तियोंसे अपना सनातन मत झट छोड बैठते हैं वे पहले पक्षपात रहित होकर इसे विचारें पीछे जो मनमें आवै सो करैं जो जिज्ञासु हैं वे निश्चय इससे लाभ उठावेंगे, इसकी भाषा भी यथाशक्ति सरल करी है, इस ग्रन्थके अवलोकनसे आर्यगण सब प्रकारसे धर्मका निर्णय कर चारों पदार्थके अधिकारी होंगे, और महाशय शास्त्रोंका गूढतत्त्व जानेंगे, यदि इसमें कहीं भ्रमवश कोई बात अनुचित लिखीगई हो उसे क्षमा करेंगे और हंसोंकी समान गुणग्राही होंगे, आप महाशयोंके ही आदरसे यह ग्रन्थ प्रकाशित होगा परमेश्वर सच्चिदानन्द श्रोता वक्ताका कल्याण करै। शम्भवतु ॥

इति श्रीमद्दयानन्दतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतस्य एकादशसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् । १० सि० १८९०.

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

दूसरी पृष्ठ पंक्ति ग्यारहवीं बारके छपे सत्यार्थप्रकाशकी हैं।

पाठक महाशयोंके अवलोकनार्थ दयानन्दकृत वेदभाष्यका संक्षिप्त नमूना तथा मांसभक्षी दयानन्दीयमहात्माओंका वेदार्थ दिखाया जाताहै जैसे एक चावलसे सब खिचडी जान लीजाती है इसी प्रकार थोडेमें सब समझिये--

भावार्थ ।

१ अध्याय १३ मन्त्र ४९ के भाष्य यजुर्वेदमें जो जंगलमें रहनेवाले नील गाय आदि प्रजाको हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥

२ अ० १३ मं० ४८ के भावार्थमें जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ॥

३ अ० १४ मं० ९ के पदार्थमें वैश्यनिंदा अर्थात् पीठपर बोझ उठानेवाले वैश्य ऊंट आदिके सदृश हैं ॥

४ अ० १९ मन्त्र ९३ के भावार्थमें कन्याओंको पुरुष और पुरुषोंको कन्या परीक्षा कर अत्यन्त प्रीतिके साथ चित्तसे परस्पर आकर्षित होकर विवाह करें ॥

५ अ० १९ मं० २० इस संसारमें बहुत पशुवाला होम करके हुतशेषका भोक्ता सत्य क्रियाका कर्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसाको प्राप्त होताहै ॥

६ अ० १७ मं० ४४ का भावार्थ सभापतिको चाहिये कि, शूरवीरा स्त्रियोंकी सेना भी स्वीकार करै ॥

७ अ० १६ मं० ५२ के पदार्थमें राजाकी निंदा अर्थात् सुअरकी समान सोनेवाले राजन्

८ अ० २१ मं० ५२ का पदार्थ शरीरमें स्तनोंको जो ग्रहण करने योग्य क्रिया है उनको धारण करो ॥

९ अ० २१ मं० ६० का पदार्थ परमैश्वर्यके लिये बैलसे भोग करै सुंदर पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओंका ग्रहण करै (छेरीआदिके दूध आदिसे प्राणापानकी रक्षा करै)

१० अ० २४ मन्त्र २३ के पदार्थमें मुर्गो तथा उल्लू और नीलकण्ठादि पक्षियोंकी प्राप्ति और भावार्थमें उनके बढानेको अच्छा माना है ॥

११ अ० २४ मं० २४ के पदार्थमें हे मनुष्यो जैसे पक्षियोंके काम जाननेवाला जन ऐश्वर्यके लिये बटेरों विद्वानोंकी स्त्रियोंके लिये जोगिओंको मारती हैं उन पखेरिओंको प्राप्त होताहै वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥

१२ अ० २६ मं० २४ के भावार्थमें स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं वे उत्तम गुणवाले होते हैं ॥

१३ अ० २७ मन्त्र ३४ के पदार्थमें हेजमाईके तुल्य विद्वान् ॥

१४ अ० २८ मं० ३२ का भावार्थ हे मनुष्यो जैसे बैल गायोंको गाभिन करके पशुओंको बढाता है वैसेही गृहस्थलोग स्त्रियोंको गर्भवती कर प्रजाको बढावें ॥

१५ अ० २९ मं० ४० के भावार्थमें माताके तुल्य सुख देनेवाली पत्नी और विजय सुखको प्राप्त हों ॥

१६ अ० ३० मं० १६ पदार्थोंमें हे जगदीश्वर मच्छियोंसे जीनेवालोंको उत्पन्न कीजिये॥

१७अ० ३० मं० २१ के पदार्थमें हे परमेश्वर! सांप आदिको: उत्पन्न कीजिये॥
१८अ० १९मं०७६के पदार्थ और भावार्थमें अति अनुचित अकथनीय अश्लील लेखहैं॥

१९ अ० १९ मं०८८ का भावार्थ स्त्री पुरुष गर्भाधानके समय परस्पर मिलकर प्रेमसे पूरित हो मुखके साथ मुख आंखके साथ आंख मनके साथ मन शरीरके साथ शरीरका अनुसंधान करके गर्भको धारण करें जिससे कुरूप और वक्रांग सन्तान न हो॥

२० अ० २० मं०९ के पदार्थमें अनुचित अकथनीय अश्लील है॥

२१ अ० २९ मं० १ के पदार्थमें अकथनीय अश्लील है और अण्डवण्ड अर्थसे विद्यार्थियोंकी दुर्दशा की है॥

२२अ०२९मं०७ सर्वथा अश्लील है अर्थात् स्थूल पायु इन्द्रीसे सर्प पकडनेको कहाहै॥
२३ अ०३७ मं० ९पदार्थ हे मनुष्य यज्ञ स्थलमें घोडेकी लीदसे तुझको पृथिव्यादि ज्ञानके लिये तत्त्वबोधके उत्तम अवयवके लिये यज्ञसिद्धिके लिये सम्यक् पकाताहूँ॥

२४ अ० ६ मं० १४ में गुरु शिष्यकी गुह्येन्द्री पवित्र करै (इसे दयानंदी वेदमें देखना तो) इत्यादि बुद्धिमान् इतनेमें ही समझ लेंगे कि, दयानंदजीने वेदोंमें कैसी २ बातें लिखी हैं॥

पं० दयानंदकृत ऋग्वेदभाष्यका नमूना।

१ ऋ०मं० २ अ० ३ सू० २८ में विद्यार्थियोंको घोडेकी उपमा दी है॥

२ ऋ० अ० २ अ० ४ वा० १३ मं० १ विद्वानोंकी चाल पक्षियोंसी लिखी है॥

३ ऋ० मं ३ अ० १ सू० १ मन्त्र १० विद्यार्थियोंको भैंसके सींगसा कहाहै॥

इत्यादि ऐसी थोथी वार्ताओंसे दयानंदके वेदभाष्य पूर्ण हैं जिनकी समालोचना पृथक् की जायगी पाठक महाशयोंको उचित है कि, इनके वाग्जालसे बचें॥

आर्य्यसमाजमें दो दल हैं एक घासपार्टी एक मांसपार्टी दोनों एक दूसरेको विरोधी कहते हैं एक वेदमें घास पात खाना कहते हैं एक बकरे आदि जीवोंको भूनकर खाना अच्छा बताते हैं इसपर पुस्तकें छप चुकी हैं जोधपुरके पंडितों आर्य्योंकी सराही हुई मांसभोजनविचार नामक पुस्तक बडी विचित्र है उसमें मांस खानेका लम्बा चौडा व्याख्यान मन्त्रोंके प्रमाण देकर छापा है जोधपुर राजधानी मवाडसे आर्योंने आर्योंके लिये प्रकाशित कीहै॥

मां० भो० वि० पृ० ८६ अजमनज्मिपयसाघृतेन दिव्यंसुपूर्णं पयसंबृहन्तम्। तेनगेष्मसुकृतस्यलोकंस्वरारोहन्तोअभिनाकमुत्तमम् पृ० ८९ भावार्थ। ४। १४। ६ अथर्व०

जल और घीसे पकाया हुआ बकरा सर्वोत्तम खाना है इससे उत्तम सुख प्रकाश और ज्ञानादियुक्त धर्मलोक प्राप्त होते हैं इस मन्त्रमें ज्ञान तथा धर्मादिका साधन अजपाक भोजन है। अथर्व० ९। १९। ६

मां० भो० वि० पृ० ९४

प्रतीच्यांदिशिभसदमस्यधेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहिपार्श्वम् ऊर्ध्वायांदिश्यजस्यानूकंधेहिदिशिध्रुवायांधेहिपाजस्यमन्तारिक्षेमध्यतोमध्यमस्य–अथर्व० । ४ । १४ । ८

पृ० ९७ में इसका पदार्थ देखिये (अस्य) इस बकरेके (भसदम्) जघनमांस सिद्ध भातको (प्रतीच्याम्) पश्चिम (दिशि) दिशामें (धेहि) धरो उत्तरस्याम्) उत्तर (दिशि) दिशामें (उत्तरम्) दक्षिणसे दूसरे ागके मांससे पकाये भातको और (पार्श्वम्) पार्श्व अर्थात् कुक्षिस्थ ांससे पकाये भातको (धेहि) धरो (ऊर्ध्वायाम्) ऊर्ध्व (दिशि) दिशामें (अजस्य) बकरेके (अनूकम्) बकोपाले स्थानसे सिद्धभातको (धेहि) रो (ध्रुवायाम्) ध्रुवयाभूमि जो पादतलस्था है अर्थात् अपने पादके इधर उधर थत यद्वा नीच स्थान जो उत्तमोंके बैठनेकी अपेक्षासे है उस तर्फमें (पाजस्यम्) लके लिये जो अंग उनके मांससे पकाये भातको (धेहि) धरो (मध्यात्) ावसे (मध्यम्) मध्यभागके मांससे पकाये भातको (अन्तरिक्षे) अव-ाशमें (धेहि) धरो॥

अब पाठक महाशय समझ गये होंगे दयानन्दी कैसी विचित्र लीला है म बहुतसी विनोनीबातोंसे पाठकोंका चित्त घृणित करना नहीं चाहते न्तु इतना कहते हैं २२० पृष्ठकी यह पुस्तक मांसके पकाने बांटनेके लिये वर्णन की है और अगले मंत्रोंमें विद्वानोंको मांस बांटनेकी आज्ञा सुनाई है॥ इतनेहीसे हम आपको सूचित करते हैं कि, इन लोगोंकी बाहरी नियमोंकी क पर न जाकर तनक भीतरी भेद तो देखिये सब पोल खुल जायगी कहाँ ा खानेका हठ कहाँ मांस पर विचार इस दयानन्दी लीलाको पाठकोंके वार ही पर छोडते हैं॥

पं० ज्वालाप्रसादमिश्र.

स्वामी दयानंदजीकृत दश नियमोंका खण्डन

जो कि समाजके मूलकारण हैं.

व सत् विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जानेजाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। समीक्षा–जब सबका आदिमूल परमेश्वर है तो स्वमन्तव्य ६ पृ०९८७ में प्रकृति ाणु और जीवको नित्य मानना इस नियमके विरुद्ध है दोनोंमें कौन बात सच्ची है॥ २ ईश्वर जो सच्चिदानंदस्वरूप निर्विकार सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयालु न्मा अनंत निर्विकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वव्यापक अन्तर्यामी र अमर अभय नित्यपवित्र और सृष्टिका कर्ता है उसीकी उपासना करनी योग्य है समीक्षा–यह दूसरा नियम सर्वथा अशुद्ध है जब ईश्वर निर्विकार है तो उसमें रचनाका विकार कैसे है और वह सृष्टि क्यों करता है और जो सर्वशक्तिमान

है तौ जो चाहे सो क्यों नहीं करसक्ता न्याय करना दया करनी यह निर्विकार संभव कहां अथवा यह ज्ञान ईश्वरका परोक्ष है वा अपरोक्ष है और संशयकी निवृ परोक्ष वा अपरोक्ष ज्ञानसे होती है परोक्ष (जो प्रत्यक्ष न हो) ज्ञानसे तौ सं यकी निवृत्ति हो नहीं सक्ती क्यों कि जो देखा नहीं उसका होना तथा गुण कर्मों निश्चय नहीं हो सक्ता इस कारण जबतक ईश्वरके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न हो तबतक उपरोक्त गुण उसमें कैसे सम्भव हो सक्ते हैं और उपासक उपासना किस करे जब कि, ईश्वरका साक्षात्कार ही नहीं तौ यह नाम कैसे कल्पना कर लि निराकारके भी और नाम किसीके ऊपर दया करते देखा जो दयालु नाम रखलिय यह तौ नाम जभी सिद्ध होसकेंगे जब ईश्वरका साकार अवतारधारी निश्च करलोगे निराकारमें यह नाम कल्पनामात्र है ।

३ वेद सत्यविद्याओंका पुस्तक है वेदका पढना और सुनना सब आर्योंक परम धर्म है ॥

समीक्षा—जब वेदका पढना पढाना ही परम धर्म है तौ आपने सत्यार्थप्रका शादि ग्रंथोंमें महाभारत मनुस्मृति शतपथब्राह्मणवाक्य वेदानुकूल मानकर क्यों ग्रहण किये यदि मंत्रभागहीमें सब धर्मोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति सब पदार्थोंकी उत्पत्ति स्थिति लय और जो कुछ सृष्टि और कल्याणके लिये होना चाहिये लिखा है तौ पृथक् पृथक् स्थानपर प्रमाणके लिये केवल मंत्रभागकी ही श्रुति पूर्ण थी मनु- स्मृति महाभारत और २ पुस्तकोंके श्लोकोंके और ब्राह्मणभागके प्रमाण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी क्यों कि मन्त्रभागको आप स्वतः प्रमाण मानते हैं तौ मंत्रोंके ही प्रमाणसे सृष्टिक्रम युगोंकी व्यवस्था ब्रह्माके दिन वर्षकल्पकी संख्या प्रतिमापूजनका निषेध अवतारोंका न होना दायभाग ब्राह्मणादिलक्षण सब कुछ उसीसे साबित करते परन्तु अपने सत्यार्थप्रकाशादिमें जो और ग्रंथोंके प्रमाण लिखे हैं इनकी क्या आवश्यकता थी यदि वे वेदानुकूल लिखे हैं तौ मंत्र ही क्यों न लिख दिये, यह तौ आपने ऐसा किया जैसा कोई आम छोड बबूरपर गिरे, चाहिये था कि केवल मंत्र ही तौ अपने ग्रंथोंमें लिखे रहने देते शेष सब निकाल डालते ।

४ सत्यका ग्रहण और असत्के छोडनेमें सदा उद्यत रहना चाहिये ॥

समीक्षा—यह नियम विवेकान्तर्गत है जबतक विवेक न होगा तबतक सत् असत्की परीक्षा कैसे होगी यदि कोई कहे ईश्वर सत्य है, या जगत् जगत् तो नाशवान् होनेसे असत् और ईश्वर नित्य होनेसे सत् है, जब जगत् मिथ्या ईश्वर सत्य है, तो किसका ग्रहण किसका त्याग करे, ग्रहण और त्याग दूसरे पदा- र्थका होता है जब दूसरा पदार्थ असत्य ही है तो त्याग किसका इस नियमका धर्मसे कुछभी संबंध नहीं है यह नियम निश्चयरहित है मिथ्या पदार्थोंका क्या ग्रहण क्या त्याग हो सक्ता है ॥ और सत्यार्थप्रकाशके असत्य अप्रमाण और वचनोंका आजतक त्याग न हुआ ।

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत् और असत्का विचार कर करना चाहिये।

समीक्षा-स्वामीजीने ईसाइयोंके दश नियमोंके अनुसार अपने नियम बनाये

इसमें भी वही वार्ता है जो ४ नियममें है पहले तो यह देखना चाहिये कि, शरीरका क्या धर्म है और आत्माका क्या धर्म है शरीर जड और दुःखरूप है उसकी उत्पत्ति घटना बढना नष्ट होना प्रत्यक्ष है, आत्मा दृश्य है नित्यैकरस चैतन्य जन्ममरणसे रहित है जो जन्म मरणसे रहित है सोई आनंद है फिर आत्मामें अनात्माभिमान और अनात्मामें आत्माभिमान कैसा फिर कैसे धर्मानुसार सत् असत्का विचार करके नियम किया और यहभी आश्चर्य है कि, निरवयव चैतन्य आत्माको माना, और प्रभंजन माना, निरवयव आकाश जड तो सर्वव्यापक और निरवयव चैतन्य आत्मा प्रभंजन तो बताओ यह धर्म अनुसार सत्यका ग्रहण है या असत्यका त्याग है, जब निरवयव है तो दो या तीनकी तथा एकही स्वरूपमें कैसे हो सक्ती है ॥

६ संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य प्रयोजन है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

समीक्षा-इसमें यह बात विचारने योग्य है कि परमेश्वरको सर्वाधार सर्वेश्वर मानकर उपासना कीगई है फिर संसारकी उन्नति और उपकारमें भी आपका आक्षेप करना ये उपास्यकी बराबरी है इसमें तो अपनी और संसारकी उन्नतिमें परमेश्वरकोही अधिष्ठाता और प्रतिनिधि समझना चाहिये यही परमधर्म है और जब कर्मानुसार है तो आपसे उन्नति कैसी ॥

७ सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

समीक्षा-प्रीति अनुकूल पुरुषोंमें होती है यदि धर्मानुसार पर दृष्टि है तो धर्मविरोधी हठ करनेवाले अभिमानको शत्रु समझना चाहिये फिर सबसे प्रीतिपूर्वक वर्तना कैसा यदि चोर चोरी करे तो उसके साथ प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार कैसे वर्ते और प्रीति करे तो धर्म कहां और धर्म करे तो प्रीतिसे यथायोग्य बर्ताव कैसे हो सकता है शत्रुके साथ यथायोग्य होनेमें प्रीति कहां ॥

८ अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिये ॥

समीक्षा-विद्या यथार्थज्ञानको कहते हैं 'विद्ययामृतमश्नुते' विद्यासे अमृत अर्थात् मुक्ति होती है जिससे संसारमें जन्म नहीं होता और आपने मुक्तिसे भी लौटना माना है तो सारी तुम्हारे ग्रंथोंमें अविद्याही अविद्या है २ परमेश्वर सजाति विजाति भेदरहित है जगत् नाशवान् होनेसे स्वप्नवत् है जगत्में सत्यबुद्धि परमेश्वरमें भेद बुद्धि यही अविद्या है सो आपने सम्पूर्ण ग्रंथमें ईर्ष्या निन्दा द्रोह यह सब अविद्याही भरी है वेदान्तरूप ब्रह्मविद्याका नाश किया है फिर अविद्याका नाश कैसा ॥

९ हरेकको अपनी उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

समीक्षा-जबतक भेदबुद्धि है तबतक यह नियमभी निर्वाह नहीं होसक्ता यह तो आपकी कथनमात्र है क्यों कि आप भेदवादी हैं और भेदवादियोंमें यह बात नहीं कि औरोंकी उन्नतिसे संतुष्ट हो ऐश्वर्यकी तो बात ही रहने दीजिये फिर

जब स्वामीजीने अपना नवीन मत ही कल्पना करलिया तो अपनेसे और धर्मावलंबियोंके उन्नति आप कब चाहेंगे आपने सैकडों दुर्वाक्य कहे और सनातनधर्मकी अवनतिमें सत्यार्थप्रकाश ही बनाया है यह नियम कथनमात्र है यथा कि-

पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।

१० सब मनुष्योंको सर्वदा द्रोह छोडकर सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिये और पृथक् सर्व हितकारी नियमोंमें सब स्वतंत्र हैं ॥

समीक्षा–जो सर्वहितकारी नियम हैं सो प्रति २ लेकर सर्व कहलाते हैं फिर यह बडे अचंभेकी बात है कि पृथक् हितकारी नियममें स्वतंत्रता और सर्व हितकारीमें परतंत्रता क्या बात यह इनके नियम १० अशुद्ध हैं सर्वहितकारी और पृथक् सर्वहितकारीमें अन्तर ही क्या है सो तो लिखा होता क्या सामाजिक सर्व हितकारी और पृथक् सर्व हितकारीमें केवल समाजको छोडकर और सब मनुष्य नहीं आगये, फिर परतंत्र स्वतन्त्र कैसा सबके लिये एकसा ही करनाथा ॥

इति श्रीस्वामिदयानंदकृतनियमखंडनं संपूर्णम् ।

वैदिक सिध्दान्त।

जिनका वर्णन इस पुस्तकमें आया है वह प्रकाश करतेहैं ॥

१ ईश्वर, जिसके अनन्त नाम हैं वोह निर्विकार सर्वशक्तिमान् निराकार साकार है अनेकविध अवतार धारण करता है सच्चिदानंदरूप तर्करहित उसकी महिमा वेदादिशास्त्रोंसे जानी जाती है इसका भेद मनुष्य नहीं जान सक्ते ॥

२ वेद, मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागोंका नाम वेद है दोनों अंग अंगी होनेसे निर्भ्रान्त प्रमाण हैं, क्यों कि इन ग्रन्थोंमें एक अलग करै तो यह भाग कहे जाते हैं, जैसे मंत्रभाग ब्राह्मणभाग इस कारण दोनोंका नाम वेद है दोनों ही स्वतः प्रमाण हैं ॥

३ धर्म, जिसकी वेदादिशास्त्रोंमें विधि है वोह धर्म और जिसका निषेध है वोह अधर्म है जो मनुष्योंने अपनी ओरसे कल्पना कर लिया है वोह धर्म नहीं ॥

४ जीव, जो कर्मबन्धनसे युक्त है वोह जीव कर्म बंधन छूटनेसे आत्माकी जीवसंज्ञा नहीं रहती ॥

५ जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जीव ईश्वरका भेद मिट जाता है ॥

६ अनादि एक ईश्वर है उसकी अनन्तसामर्थ्यसे सब जगत् प्रकृतिसहित उत्पन्न होता है ॥

७ सृष्टि, जो ईश्वर अपनी अनन्तसामर्थ्यसे रचताहै वो ही सृष्टि है उसकी। और वोह सृष्टि विविध प्रकारके द्रव्योंका मेल कर्मोंका मेल ईश्वरकी रचनाका चमत्कार है इन सबका कर्ता ईश्वर है इस कारण यह सृष्टि सकर्तृक कही जाती है ॥

८ बन्धन, कर्मोंके विद्यमान रहनेसे होताहै चाहे अच्छे हों या बुरे क्यों कि दोनोंका फल पराधीन हो भोगना पडताहै ॥

९ मुक्ति, संपूर्ण कर्म और वासनाओंके क्षय होनेसे मुक्ति होतीहै जिसको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता ॥

१० मुक्तिके साधन वेदांत विचार उपासना, ध्यान, योगाभ्यासादि ॥

११ अर्थ जो धर्मानुष्ठानसे उपार्जन किया जाय सो अर्थ इसके विपरीत अनर्थ है।

१२ काम, अर्थ और धर्मसे जो प्राप्त किया जाय सो काम है ॥

१३ वर्ण, जन्मसे होताहै कर्मसे नहीं ॥

१४ देवता, मनुष्यभिन्न देवलोकादिमें रहनेहारे हैं और असुर राक्षस पिशाच भी पृथक् जाति हैं ॥

१५ पूजा, देवता, अतिथि माता, पिता और ईश्वरकी करनी योग्य है ईश्वर और देवताओंकी पूजा मूर्तियोंमें करनी योग्य हैं ॥

१६ पुराण, वह ग्रन्थ हैं जो ऐतरेय शतपथ इतिहास कल्प गाथा आदिसे भिन्न हैं और प्राचीन हैं जिन्हें व्यासजीने संग्रह कर भागवतादि नामसे प्रसिद्ध कियाहै

१७ तीर्थ, गंगादिनदी पुष्करराजादि सरोवर तथा काशीस्थानादि जिनके दर्शनसे पाप दूर होते हैं ॥

१८ प्रारब्ध और पुरुषार्थमें प्रारब्ध मुख्य है प्रारब्ध पुरुषार्थसे सिद्ध होता है।

१९ संस्कार, जन्मसे लेके मरण पर्यन्त १६ हैं यह कर्तव्य हैं और मृतकोंके लिये दानश्राद्धादि करना प्रबल वैदिक सिद्धान्त है ॥

२० यज्ञ, अश्वमेधादि राजोंको कर्तव्य हैं, ब्रह्मविचारशील ब्राह्मणोंको ब्रह्मयज्ञ कर्तव्य है जिसकी विधि मीमांसा शास्त्रमें लिखी है ॥

२१ आर्य, आर्यावर्तके रहनेवाले तथा श्रेष्ठ पुरुषोंको कहते हैं जो सदासे इस देशमें रहते हैं इनसे विपरीतोंको दस्यु कहते हैं ॥

२२ आर्य्यावर्त, इस विंध्याचल और हिमालयके बीचमें हैं इसमें आर्य जाति ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रा सदासे रहते हैं ॥

२३ शिष्टाचार वा सदाचार जो वृद्धोंसे चला आताहै वोह वेदानुसार ही है

२४ प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण हैं ॥

२५ आप्त उसको कहते हैं जिसके वाक्यमें कभी संदेह न हो सदा निश्चित यथार्थ बोले, जिसे अपने वाक्यका बदल न करना पड़े ॥

२६ पांच प्रकारके वाक्योंसे परीक्षा होतीहै प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, निगमन उपनयन इन्हींसे सब कुछ निश्चय होजाताहै और वोह वाक्य हेत्वाभासरहित विद्यानुसार शास्त्रयुक्त हो ॥

२७ स्वतंत्र, ईश्वर सदा सब कालमें स्वतंत्र है विपरीतज्ञानरहित सर्वसामर्थ्ययुक्त है जीव सदा सब कालमें परतंत्र है ॥

२८ स्वर्ग, पृथ्वीके ऊपर लोकविशेष है ॥

२९ नरक, स्थानविशेष जिसमें केवल दुःख ही होता है यमराजकी यातना भोगनी पड़ती है।

३० विवाह आठ प्रकारके होते हैं, गान्धर्व विवाहको छोडकर और सब विवाहोंमें कन्या पिताके अधीन रहती है, गान्धर्वविवाह नरेशोंमें पूर्वकालमें होता था और जातिमें नहीं ॥

